CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतगोविन्दकाव्यम्

आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

4.1

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

२५८

महाकवि-श्रीजयदेवविरचितं

गीतगोविन्दकाव्यम्

श्रीकुम्भनृपतिप्रणीत-'रसिकप्रियया' व्याख्यया

'भावप्रकाशिका'-हिन्दीव्याख्यासमन्वितम्

हिन्दीव्याख्याकार

आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी

साहित्याचार्य, वेदान्ताचार्य, एम० ए० (संस्कृत-हिन्दी)

वेदान्तविभागाध्यक्ष : श्री हनुमत् संस्कृतमहाविद्यालय, अयोध्या

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117, गोपाल मन्दिर
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाषा : 2333431

सर्वाधिकार सुरक्षित
पुनमूर्दित संस्करण 2003 ई.
मूल्य 100.00

अन्य प्राप्ति-स्थान
चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाषा : 2320404

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38. यू. ए., बंगलोरोड, जवाहरनगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007
दूरभाषा : 23956391

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भूमिका

गीतगोविन्द : एक परिचय

बारहवीं शताब्दी के बङ्गाल के राजा लक्ष्मणसेन के आश्रित महान् प्रतिभा-सम्पन्न कवि श्रीजयदेव ने गीतगोविन्द नामक गीतिकाव्य का प्रणयन करके गीतिकाव्य-परम्परा में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। इस काव्य में कवि ने श्रीराधा-माधव के प्रणय का मनोज्ञ वर्णन किया है। शृङ्गार रस के विप्रलम्भ तथा सम्भोग दोनों पक्षों का चरमोत्कर्ष इस गीतिकाव्य में देखने को मिलता है। जयदेव कवि की मान्यता है कि विप्रलम्भ-परिपुष्ट सम्भोग शृङ्गार सहृदयों को अधिक सुखप्रद प्रतीत होता है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ बारह सर्गों तथा चौबीस प्रबन्धों में निबद्ध है। गीतगोविन्द के प्रख्यात व्याख्याकार कुम्भकर्ण नृपति के अनुसार इस ग्रन्थ में अट्ठाईस प्रबन्ध हैं। प्रत्येक प्रबन्ध में एक-एक अष्टपदी का सन्निवेश है। प्रत्येक अष्टपदी में प्रायः आठ-आठ पद्यों का सन्निवेश किया गया है, किन्तु प्रारम्भ की कुछ अष्टपदियों में पद्यों की संख्या अधिक दिखती है। उदाहरणार्थ प्रथम अष्टपदी में पद्यों की संख्या ग्यारह है, द्वितीय से षष्ठ अष्टपदी पर्यन्त पद्यों की संख्या नव-नव हैं, सातवीं अष्टपदी में पद्यों की संख्या दस है और आठवीं अष्टपदी में पद्यों की संख्या नव है। किन्तु दसवीं अष्टपदी में पद्यों की संख्या पाँच हो गयी है। इसके आगे की अष्टपदियों में पद्यों की संख्या आठ ही है।

अष्टपदियों की अवतरणिका तथा उपसंहार के रूप में कुछ श्लोकों का भी सन्निवेश किया गया है।

श्रीजयदेव कवि ने प्रत्येक सर्गों का विषयानुकूल नाम भी रखा है। प्रथम सर्ग का नाम सामोददामोदर, द्वितीय सर्ग का अक्लेशकेशव, तृतीय सर्ग का मुग्धमधुसूदन, चतुर्थ सर्ग का नाम स्निग्धमधुसूदन, पञ्चम सर्ग का साकांक्ष-पुण्डरीकाक्ष, षष्ठ सर्ग का धन्यवैकुण्ठ, सप्तम सर्ग का नागरनारायण, अष्टम सर्ग का विलक्ष्यलक्ष्मीपति, नवम सर्ग का मुग्धमुकुन्द, दशम सर्ग का चतुर-चतुर्भुज, एकादश सर्ग का सानन्ददामोदर तथा अन्तिम द्वादश सर्ग का नाम सुप्रीतपीताम्बर रखा है।

सर्गों के इन नामों से पूर्णतः स्पष्ट है कि समस्त सर्गों का नाम उन्होंने श्रीभगवान् की विभिन्न मनःअवस्थाओं को दृष्टिपथ में रखकर रखा है। श्रीराधा श्रीभगवान् की प्रियतमा, उनकी अनन्य प्रेयसी तथा मनःस्थिति के परिवर्तन की मूल है।

गीतगोविन्द के प्रत्येक प्रबन्धों के विषय भी अलग-अलग हैं। प्रथम प्रबन्ध में कवि ने श्रीभगवान् के दश अवतारों की स्तुति करते हुए स्पष्ट किया है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्ण भगवान् ने दस अवतार धारण किये हैं। प्रयोजन-विशेष को दृष्टिपथ में रखकर श्रीभगवान् ने लोकोपकारार्थ मत्स्य, कूर्म, यज्ञवाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध तथा कल्कि—इन दस दिव्य शरीरों को धारण किया। द्वितीय प्रबन्ध में श्रीजयदेव कवि ने बतलाया है कि एक ही श्रीकृष्ण भगवान् के श्रीविष्णु, सवितृमण्डलमध्यवर्ति, कालियमर्दन, मधुरिपु, श्रीराम आदि रूप हैं। तीसरे प्रबन्ध में सखी ने श्रीराधा को यह बतलाया है कि श्रीभगवान् व्रजयुवतियों के साथ यमुना तट में विहार करते हुए वसन्तोत्सव मना रहे हैं। सखी के द्वारा प्रेरित श्रीराधा ने देखा कि वस्तुतः श्रीभगवान् व्रजाङ्गनाओं के साथ वसन्त की मादक वेला में मदनमहोत्सव का अनुभव कर रहे हैं। श्रीभगवान् के द्वारा की जानी वाली अपनी उपेक्षा श्रीराधा के लिए असह्य हो गयी। सखी ने श्रीराधा के समक्ष श्रीभगवान् के अन्यनायिकापरत्व का विस्तृत वर्णन चतुर्थ प्रबन्ध में किया है।

द्वितीय सर्ग का प्रारम्भ पाँचवें प्रबन्ध से होता है। श्रीभगवान् की अनन्य प्रेयसी श्रीराधा अपनी सखी के द्वारा श्रीभगवान् की स्वेच्छाचारिता को जानकर विरहाग्नि की पीड़ा में व्याकुल हो गयीं। फिर भी उनका मन भगवान् कृष्ण में ही लगा था। वे चाहती थीं कि श्रीकृष्ण के विषय में न सोचें; किन्तु उन्हें श्रीभगवान् के कल्याणकारक गुण ही याद आते थे। उनके मन में भगवान् के दोषों के लिए कोई स्थान ही नहीं रह पाता था। छठे प्रबन्ध में उन्होंने अपनी सखी से प्रार्थना की कि श्रीकृष्ण ने इसी यमुना तट के निकुञ्ज गृह में, जहाँ पर मैं विद्यमान हूँ, मेरा कौमार्यापहार किया है। इस प्रकार श्रीराधा ने श्रीमाधव के साथ अपने प्रथम समागम के समस्त सुखद अनुभवों का वर्णन इस प्रबन्ध में किया है।

गीतगोविन्द काव्य का छठा प्रबन्ध तीसरे सर्ग से प्रारम्भ होता है। वसन्त ऋतु की मधुर वेला में व्रजाङ्गनाओं से परिवृत श्रीभगवान् ने जब यह अनुभव किया कि उनकी नित्य प्रेयसी श्रीराधा उनके समीप नहीं हैं, तो उनका सम्पूर्ण आमोद-प्रमोद विषाद में बदल गया। श्रीभगवान् इधर-उधर श्रीराधा का अन्वेषण कर रहे थे। श्रीराधा को खोजते हुए श्रीकृष्ण यमुनातट के निकुञ्ज, वेतसीलतागृह आदि में आये, किन्तु राधा नहीं मिली। समस्त व्रजाङ्गनाओं को छोड़कर अब विषण्ण वे एकान्त में किसलय-शय्या पर पड़े-पड़े सोच रहे थे कि कहीं से राधा आ न रही हों। श्रीराधा ने मुझे गोपाङ्गनाओं से आवृत देखा होगा, इसीलिए वह अप्रसन्न होकर कहीं चली गयी होगी। उनको अपने किये हुए पर बड़ा पछतावा हो रहा था। राधा ही मेरी प्राणेश्वरी है। यदि वही नहीं तो वसन्तोत्सव कैसा? वह भी मेरे ही समान कहीं बैठकर दुःखानुभव कर रही होगी। विप्रलम्भ का विषैला प्रभाव उनके तन और मन को बेचैन बना रहा था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आठवें प्रबन्ध में श्रीराधा-विप्रयोगविषण्ण श्रीकृष्ण के समीप आकर श्रीराधिका की सखी ने श्रीराधा के प्रणयपूर्ण विरह को बतलाया। उसने कहा कि श्रीराधा सम्प्रति विरहाग्नि की भीषण ज्वाला में संतप्त हो रही हैं। शीतलोपचार के समस्त साधन व्यर्थ हो गये हैं। वह मरणासन्न हो रही है। आपके अभाव में श्रीराधा विक्षिप्त-सी हो गयी है। आमोद-प्रमोद के समस्त साधन उसे और संतप्त ही कर रहे हैं।

गीतगोविन्द के नवें प्रबन्ध में सखी ने कहा कि—श्रीराधा हार को भी भार समझती है, चन्दन रस उसे विष के समान संतप्त कर रहा है, मलयानिल उसकी कामाग्नि को और प्रज्ज्वलित कर रही है, उसकी नीलकमल के समान मनोहर आँखों में अश्रुकण ही सर्वदा भरे रहते हैं और अपने हाथों पर गाल रखकर सर्वदा वह आपके ही विषय में सोचती रहती है। नवपल्लवों की शय्या उसे आग की तरह लाल दीखती है। सर्वदा वह आपके श्रीहरि नाम को इस भावना से जपती रहती है कि जन्मान्तर में भी आप ही उसके पति हों। इस दयनीय स्थिति में आप उसे शीघ्र दर्शन दें, अन्यथा उसके प्राणपखेरू उड़ने ही वाले हैं। जिस राधा ने कभी भी आपके विप्रयोग को बर्दास्त नहीं किया वह आपके बिना इस बसन्त ऋतु में भी कैसे जीवित है? यही आश्चर्य की बात है।

गीतगोविन्द का पाँचवाँ सर्ग दसवें प्रबन्ध के साथ प्रारम्भ होता है। श्रीभगवान् ने श्रीराधिका की सखी से कहा कि मैं यहाँ निकुञ्जगृह में हूँ, तुम शीघ्र ही श्रीराधा को यहाँ लाओ। सखी ने भी श्रीराधा के सन्निकट आकर इस सम्पूर्ण प्रबन्ध में श्रीभगवान् की श्रीराधाविषयिणी सतृष्ण आकांक्षा का निवेदन किया। उसने बतलाया कि तुम्हारे बिना श्रीभगवान् विकल हैं, कामाग्नि की ज्वाला से संतप्त हैं, कोयल की कूजन और भ्रमरों की गुञ्जन उन्हें दुःखी ही बना रहे हैं। प्रहृष्टता उनसे दूर-सी चली गयी है। वे लता-कुञ्ज में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

ग्यारहवें प्रबन्ध में सखी ने श्रीराधा से कहा कि अब तुम्हें श्रीभगवान् के सन्निकट चलने में देर नहीं करनी चाहिए। वे तुम्हारा ही नाम लेकर वंशी बजा रहे हैं। जब कोई पक्षी वृक्ष की शाखा पर बैठता है तो पत्तों की आवाज सुनकर उन्हें आभास होता है कि किसी ओर से श्रीराधा आ रही है। वे घबरा कर तुम्हें देखने के लिए निकुञ्जगृह से बाहर आकर देर तक तुम्हारी प्रतीक्षा करते रहते हैं। अतएव तुम शीघ्र अलंकृत होकर श्रीभगवान् के सन्निकट चलो।

गीतगोविन्द काव्य का द्वादश प्रबन्ध षष्ठ सर्ग से प्रारम्भ होता है। सखी ने अनुभव किया कि श्रीराधा भगवान् के विरह में इतना कमजोर हो गयी हैं कि वे श्रीभगवान् तक पहुँचने में असमर्थ हैं। उसने पुनः श्रीभगवान् को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बतलाया कि भगवन् ! श्रीराधा आपके आने की प्रतीक्षा कर रही है। सदा वह आपकी राह देखती रहती है। वह आपके अभिसारानन्द को याद कर चलती तो है; किन्तु कुछ ही कदम चलकर मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है। वह अपने में आपका अध्यास करके अनुभव करती है कि मैं ही श्रीकृष्ण हूँ। वह आपकी अनेक लीलाओं को करती है। अन्धकार को देखकर उसे लगता है कि श्याम-मूर्ति श्रीभगवान् आ गये और वह अन्धकार का ही आलिङ्गन और चुम्बन करने लग जाती है। वह इतनी दुर्बल और असमर्थ हो गयी है कि कहीं उसकी यह रात बीत भी न पाए।

सातवें सर्ग का प्रारम्भ त्रयोदश प्रबन्ध से होता है। इस प्रबन्ध में कवि ने चन्द्रोदय हो जाने पर विरहिणी नायिका श्रीराधा की मनः स्थिति का विशद वर्णन किया है। चन्द्रमा की शीतल किरणें विरहिणी राधा के लिए अत्यन्त सन्तापकारिणी थीं। वह विलाप करने लगी। उसे लग रहा था मेरा यौवन और सौन्दर्य सब कुछ व्यर्थ है, अन्यथा मेरे श्रीकृष्ण मेरी इस प्रकार से उपेक्षा क्यों करते? अब तो मेरा मर जाना ही अच्छा है। वसन्त की रात्रि तो मुझे जलाये जा रही है और श्रीकृष्ण किसी पुण्यशालिनी व्रजाङ्गना का अनुभव कर रहे हैं। मेरे ये समस्त आभूषण श्रीकृष्ण के बिना व्यर्थ हैं। यह कोमल पुष्पमाला भी काम का बाण बनकर मुझे सता रही है। काम भी तो कुसुमसायक ही कहलाता है। मैं तो वेतसलतागृह में श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रही हूँ और श्रीकृष्ण मुझे मन से भी याद नहीं करते हैं।

इसी बीच श्रीराधाजी की सखी श्रीकृष्ण के पास से लौट कर आ गयी, किन्तु वह उदास और मौन थी। आयी हुई सखी को देखकर श्रीराधा के मन में हुआ कि लगता है कि मेरी सखी ने उस दशा में श्रीकृष्ण को देखा है, जब कि वे किसी अन्य युवति के साथ विलास कर रहे थे।

गीतगोविन्द के चौदहवें प्रवन्ध में श्रीराधा ने सखी से कहा—सखी! मैं जानती हूँ कि कामक्रीड़ा के अनुकूल वेश बनाकर कोई अधिक गुणवती सुन्दरी श्रीभगवान् के साथ रमण कर रही है। श्रीभगवान् के साथ विपरीत रति करने वाली उस रमणी के हार चञ्चल हो रहे होंगे, मुख पर काले घुँघराले केश लटक रहे होंगे, गालों पर चञ्चल कुण्डल सुशोभित होते होंगे, श्रीकृष्ण के देखने पर वह लज्जित होकर मुस्कुरा देती होगी और अनेक प्रकार की रतिकूजन करती होगी। उसके श्वासों और काम की गति तीव्र होती होगी और अन्त में स्वेदकण से लथपथ शरीर वाली वह श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर विश्राम करती होगी।

पन्द्रहवें प्रबन्ध में श्रीराधा ने श्रीकृष्ण के साथ रमण करने वाली शङ्कित रमणी के ही अनुमानित स्वरूप का निरूपण किया है। कामकेलि के पश्चात् उस उपभुक्ता रमणी का श्रीकृष्ण किस प्रकार अलङ्करण करते होंगे—इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बात का श्रीराधा ने विशद अनुमान लगाया है। प्रबन्ध के अन्त में श्रीराधा ने कहा—भले ही श्रीकृष्ण ने मेरी उपेक्षा की; वे मेरे पास नहीं आये, किन्तु मेरे प्राण उनकी उपेक्षा नहीं करेंगे; अब वे स्वयं मेरे शरीर से निकल कर उनके पास जायेंगे।

सोलहवें प्रबन्ध में विरहिणी श्रीराधा ने कहा कि वह नीलकमल के समान नेत्रों वाली भाग्यशालिनी रमणी इस वसन्त ऋतु में मेरे समान संतप्त तो नहीं होती होगी। कामदेव के कुसुमबाण उसके लिए अकिञ्चित्कर प्रतीत होंगे। वह श्रीकृष्ण के अमृत के समान मधुर वचनों को सुनकर प्रसन्न होती होगी। उसके लाल-लाल हाथ-पैर श्रीकृष्ण के मन को बहुत लुभाते होंगे। जलभरे बादलों को देखकर वह प्रसन्न होती होगी, मेरे समान दुःखी नहीं। पीताम्बर-धारी श्रीकृष्ण के साथ उसे देखकर उसकी कोई भी सखी उसका उपहास नहीं करती होगी, क्योंकि वह संसार के सर्वश्रेष्ठ युवक श्रीकृष्ण के साथ सुशोभित होती होगी। इस प्रबन्ध के अन्त में श्रीराधा ने करुण विलाप किया। वे काम से प्रार्थना करती थीं कि वह उनके प्राणों का हरण कर ले।

गीतगोविन्द काव्य का आठवाँ सर्ग सतरहवें प्रबन्ध से प्रारम्भ होता है। श्रीकृष्ण के विरह में संतप्त श्रीराधा ने किसी प्रकार उस वसन्त की रात्रि को बिताया, क्योंकि वह कामसंतप्त थी। उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधा के सन्निकट आये और उनसे प्रणय-प्रार्थना करने लगे। किन्तु श्रीकृष्ण के इस व्यवहार से क्षुब्ध श्रीराधा ने उनसे कहा—श्रीकृष्ण! रात्रि में आपने बहुत जागरण किया है, आपकी आँखें लाल हैं। हे कमलनयन! आप जाइये, उसी के साथ रहिए, जिसके साथ आपने रात व्यतीत की है। उसी नायिका के नेत्रों के आँजन आपके दाँतों एवं अस्त्रों को सुशोभित कर रहे हैं। उसके द्वारा किये गये नखक्षत से आपके श्यामवर्ण के वक्षःस्थल पर कामविजय की रेखा-सी प्रतीत होती है। उसके चरणालक्तक की छाप आपके वक्षःस्थल को सुशोभित कर रही है। उसके दन्तक्षत के कारण आपके होठ अब भी घायल हैं। आपका शरीर ही नहीं मन भी काला है। लगता है आप अबलाओं का वध करने के लिए वन में विचरण किया करते हैं। आपने बचपन में भी पूतना नामक नारी का वध किया था। हे श्रीकृष्ण! आपके इस व्यवहार से मुझे कष्ट तो कम होता है, लज्जा अधिक होती है। आपने मेरे प्रख्यात प्रेम को तोड़ दिया है, अतएव आप यहाँ से चले जायें।

अठारहवें प्रबन्ध में कलहान्तरिता श्रीराधा को एकान्त में समझाते हुए सखी ने कहा—श्रीराधे! वसन्त की वेला में श्रीभगवान् तुम्हारे पास आये हैं। इससे बड़ा कौन-सा सुख हो सकता है? तुम अपना मान छोड़ दो। अपने बड़े तथा रसपूर्ण स्तनकलशों को व्यर्थ न बनाओ। मैंने बार-बार तुमसे कहा है कि श्रीभगवान् का परित्याग अच्छा नहीं। तुम्हारे इस व्यर्थ रुदन को देखकर सभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सखियाँ हँसती हैं। शीतल जलकण युक्त कमलपत्र की शय्या पर श्रीभगवान् से तुम अवश्य मिलो। अपना विषाद छोड़कर श्रीभगवान् से मिलकर मिठी-मिठी बातें करती हुई तुम आनन्दानुभव करो। स्नेह युक्त भी श्रीभगवान् से तुम कलह करती हो, उनसे विमुख बनी हो, इसीलिए तो तुम्हें कष्ट होता है।

गीतगोविन्द का दसवाँ सर्ग उन्नीसवें प्रबन्ध से प्रारम्भ होता है। सायंकाल की वेला हो गयी, रुष्ट और दीर्घ निःश्वास लेती हुयी श्रीराधा के पास आकर श्रीभगवान् ने कहा—श्रीराधे! तुम मान छोड़ दो, मुझसे कुछ बातें करो, तुम्हारे दाँतों की कान्ति प्रसृमर होए। मैं कामसन्तप्त हूँ, मुझे चुम्बन दो। कामक्रीड़ा करती हुई तुम नखक्षत तथा दन्तक्षत करो। अपनी भुजाओं के बन्धन में मुझे बाँध लो। तुम ही मेरा भूषण और जीवन हो। तुम्हारे नीलकमल के समान मनोहर नेत्र अब भी कोपकषायित हैं, यह बड़े खेद की बात है। तुम कामबाणों का प्रहार मेरे ऊपर करो, अपने स्तनों को सजाओ, तुम्हारी घूँघरू की आवाज वाली करधनी काम की राजाज्ञा का उद्घोष करे। मैं तुम्हारे लाल-लाल पैरों को आलक्तक रस से रञ्जित कर देना चाहता हूँ। तुम अपनी शङ्का छोड़ दो। तुम जैसा सोचती हो, वैसा दोष मुझमें नहीं है। अब मेरे साथ कामक्रीड़ा करो। अपना मौन भङ्ग करो, इससे मुझे कष्ट होता है; कुछ भी तो बोलो। तुम्हारे पुष्पवत् अङ्ग-प्रत्यङ्ग मुझे कामदेव के समान मादक प्रतीत होते हैं। तुम एक हो, किन्तु तुममें अनेक देवसुन्दरियों का निवास है।

एकादश सर्ग का प्रारम्भ बीसवें प्रबन्ध से होता है। इस प्रबन्ध में सखी ने श्रीराधा से कहा कि अब तो श्रीभगवान् ने तुमसे क्षमा भी माँग ली, अतएव तुम्हें उनका अनुसरण करना चाहिए। तुम भी उनके साथ वञ्जुललतागृह में प्रवेश करो। हंस के समान चलती हुई तुम्हारे पैरों की नूपुर एक बार झंकृत हो जायें। देखो, कोयल कामदेव के सन्देश को सुना रही है, शीतल मन्द सुगन्ध वायु बह रही है और तुम्हारे फड़कते हुए ये स्तन श्रीहरि के भावी आलिङ्गन को सूचित करते हैं। अब तो तुम सजो और अपनी सखियों का हाथ पकड़ कर रतिकेलिनिकुञ्ज में प्रवेश करो। वहाँ पर श्रीकृष्ण तुम्हारी प्रतीक्षा व्यग्रतापूर्वक कर रहे हैं। तुम्हारी आँखों में अंजन, कानों में तमालपत्र, गले में नीलकमल की माला, शरीर पर नीला वस्त्र डालने का काम अकेले यह अन्धकार ही करेगा; अतएव इस अन्धेरे में ही जाकर श्रीभगवान् से तुम मिलो।

इक्कीसवें प्रबन्ध में कवि ने बतलाया है कि सखी के द्वारा प्रेरित श्रीराधा रतिकेलिनिकुञ्ज के दरवाजे पर पहुँची तो वहाँ पर व्यग्रता से प्रतीक्षा करते हुए श्रीकृष्ण को देखकर वह लज्जा से लाल हो गयी। इस प्रकार लज्जित श्रीराधा को देखकर सखी ने कहा—श्रीराधे! इस मनोहर रतिनिकुञ्ज में तुम प्रवेश करो। नवीन पल्लवों से बनी शय्या पर तुम श्रीकृष्ण के साथ विपरीत रति करो। तुम्हारे स्तनों के हार चञ्चल हो जायें। पुष्पों से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समलंकृत इस विलास-निकुञ्ज में तुम विलास करो। रतिजन्य श्रमापहारिणी शीतल मन्द सुगन्ध बयार चल रही है, अतएव यहाँ पर तुम दीर्घ काल तक श्रीमाधव के साथ विलास करो। भँवरे गुञ्जन कर रहे हैं, कोयल कूक रही है। यही तुम्हारा श्रीकृष्ण के साथ विलास करने का समय है। अब देर न करो, इस समय श्रीकृष्ण तो तुम्हारे क्रीतदास हैं। तुम इनके अङ्क को समलंकृत करो, ये तुम्हारे पैरों की सेवा करेंगे।

बाइसवें प्रबन्ध में श्रीराधा ने लतानिकुञ्ज में प्रवेश किया। आयी हुई श्रीराधा को देखकर श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न थे। उनके शरीर पर कामविकार स्पष्ट रूप से लक्षित हो रहे थे। श्याम वर्ण के शरीर पर हार सुशोभित हो रहा था, पीताम्बर धारण किये हुए उनकी आँखें चञ्चल हो गयी थीं, गालों पर कुण्डल सुशोभित हो रहे थे और वे मुस्कुरा रहे थे। काले घुँघराले बालों के बीच-बीच में पुष्प लगे हुए थे। उनका सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो रहा था। इस प्रकार से मनोहर श्रीकृष्ण को देखकर प्रसन्न श्रीराधा की बड़ी-बड़ी आँखों से हर्षजन्य अश्रु के बिन्दु निकल पड़े। चतुर सखियों ने देखा कि हमलोगों के यहाँ रहने से श्रीराधा-माधव के मधुर और स्वच्छन्द मिलन में व्यवधान हो रहा है। अतएव वे तरह-तरह का बहाना बनाकर उस रतिकेलिनिकुञ्ज से बाहर चली गयीं। अब क्या था, श्रीकृष्ण को एकान्त में प्रेमपूर्वक देखती हुयी श्रीराधा को देखकर लज्जा भी लज्जित होकर श्रीराधा से दूर चली गयी। श्रीकृष्ण ने आनन्दपूर्वक श्रीराधा को अपनी भुजाओं के विशाल अन्तराल में भर लिया और प्रेमपूर्वक गाढालिङ्गन करते समय श्रीराधा की पीठ की ओर मानो इस शङ्का से वे देख रहे थे कि कहीं राधा के कठोर स्तन उसकी पीठ को फोड़कर बाहर न निकल जायें।

गीतगोविन्द काव्य का अन्तिम बारहवाँ सर्ग तेइसवें प्रबन्ध से प्रारम्भ होता है। श्रीराधा-माधव को स्वच्छन्द मिलन का अवसर प्रदान करने के लिए सखियाँ विभिन्न प्रकार का बहाना बनाकर लतानिकुञ्ज से बाहर चली गयीं। कामपरतन्त्र श्रीराधा श्रीकृष्ण को देखकर मुस्कुराती हुई बार-बार किसलयशय्या को देख रही थीं। उनके मन के भावों को समझकर श्रीकृष्ण ने कहा—सुन्दरि! इस किसलयशय्या पर अपने चरणकमलों को रखो। तुम दूर से चलकर आयी हो, थक गयी होगी; मैं तुम्हारे पैरों को दबा देता हूँ। अपने मुखचन्द्र से वचनामृत का उच्चारण करो। मेरे और तुम्हारे मिलने में बाधक तुम्हारे उन्नत उरोजों पर विद्यमान वस्त्र को मैं हटा दे रहा हूँ। तुम अपने मङ्गलमय स्तनकलशों को मेरे वक्षःस्थल पर स्थापित कर दो। इससे मेरा कामसंताप दूर हो जायेगा। मैं तुम्हारे अधरों के अमृत का पान करके पुनर्जीवित होना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी मणिमयी करधनी ध्वनित हो और रतिकालिक कण्ठध्वनि भी मेरे कानों को आप्यायित करे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुमने व्यर्थ ही मेरे ऊपर क्रोध किया था, अब तो मुझे स्नेहपूर्वक देखो। इसके पश्चात् श्रीराधा-माधव की अत्यन्त मनोहर कामक्रीड़ा प्रारम्भ हुई। पुरुषायित रतिव्यापृत श्रीराधा ने अपने स्तनों का भार श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर रख दिया, उन्हें अपने भुजपाश में बाँध दिया। श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर नखक्षत किया और ऊनके ओठों को अपने दाँतों से काट लिया। अपनी जाँघों से श्रीकृष्ण को असकृत् प्रताड़ित करती हुई हाथों से उनके बालों को पकड़ कर खींचा तथा उनके अधरों का पान करके मोहित कर दिया। श्रीराधा की इस क्रिया से श्रीकृष्ण को अत्यधिक तृप्ति हुई। लगता है कि श्रीराधा ने काम-क्रीडा श्रीकृष्ण पर विजय प्राप्त करने के लिए बड़े जोर-शोर से पुरुषायित रति प्रारम्भ किया था, किन्तु वह हार गयी। उसकी जाँघें निश्चेष्ट हो गईं, भुजलताएँ शिथिल हो गयीं, हृदय लम्बी श्वास के कारण जोर-जोर से उछल रहा था और अपनी आँखें बन्द करके वह श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर सो गयी। प्रातःकाल श्रीकृष्ण ने जब श्रीराधा के नखक्षत युक्त वक्षःस्थल, नींद से व्याकुल लाल-लाल आँखें, लाली रहित स्वच्छ अधर, मुर्झायी तथा बालों से खुलकर गिरी माला तथा अस्त-व्यस्त केशकलाप को देखा नहीं कि वे देखते ही रह गये। उनका मन कीलित हो गया। खुले काले घुंघराले चञ्चल बाल श्रीराधा के मुख को मधुर बना रहे थे, गालों पर पसीने की सूखी रेखाएँ तथा मुरझाई ओठों की शोभा सबके सब श्रीकृष्ण के लिए आकर्षण के साधन थे। स्तनों की कान्ति हार की शोभा को तिरस्कृत कर रही थी तथा करधनी भी फीकी प्रतीत होती थी। जगकर अपने को वस्त्ररहित देखकर लज्जित श्रीराधा ने हाथों से अपने स्तनों तथा जाँघों को ढँक लिया। श्रीराधा के इस सौन्दर्य ने श्रीकृष्ण के मन को मोहित कर लिया। श्रीराधा का तात्कालिक मनोहर मुख देखने का सौभाग्य तो कोई भाग्यवान् पुरुष ही प्राप्त कर सकता था।

चौबीसवाँ प्रबन्ध गीतगोविन्द का अन्तिम प्रबन्ध है। कामक्रीड़ा के अन्त में श्रीराधा ने देखा कि श्रीकृष्ण प्रसन्न हैं। उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा—प्रियतम ! मेरे मनोहर स्तनों पर आप कस्तूरी रस से पत्रक का निर्माण कर दे, मेरी आँखों का काजल फिर से ठीक कर दें, मेरे कानों में कुण्डल पहना दें, मुख पर पड़े बालों को हटाकर आप मेरे मुखड़े को सजा दें। अष्टमी के चन्द्र के समान मनोहर मेरे ललाट पर कस्तूरी का तिलक लगा दें। मेरे काले घुंघराले बालों में पुष्प सजा दें और अपने हाथों से प्रसन्नतापूर्वक मेरी जाँघों पर करधनी सजाएँ। इस प्रकार श्रीराधा ने जो-जो कहा श्रीकृष्ण ने प्रसन्न मन से उन सभी कार्यों को किया।

काव्यतत्त्वालोचन

श्रीजयदेव कवि ने इस काव्य में गान्धर्वविद्या का कौशल, परमात्म-चिन्तन का समस्त रहस्य, संभोग तथा विप्रलम्भ दोनों प्रकार के शृङ्गार रस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का विस्तृत विवेचन तथा काव्यप्रणयन की प्रातिभ पद्धति—सभी का मणि-काञ्चन सन्निवेश किया है। उन्होंने स्वयम् कहा है—

'यद् गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानं च यद् वैष्णवं,
यच्छृङ्गारविवेकतत्त्वरचनाकाव्येषु लीलायितम्।
तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः
सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः' ॥

(१२।२४।११)

इस पद्य के चतुर्थ चरण का यह भी अभिप्राय है कि इन समस्त वस्तुओं का पूर्णतः शुद्ध रूप इस गीतगोविन्द काव्य में ही एकत्र समुपलब्ध हो सकता है। अतएव विद्वानों को चाहिए कि वे इस काव्य का भलीभाँति परीक्षण करके देखें और जानें भी। श्रीजयदेव कवि को इस बात का दृढ़ विश्वास है कि गीतगोविन्द काव्य के माधुर्य के सामने अंगूर की मदिरा, चीनी, द्राक्षा, अमृत, पके आम्रफल तथा कामिनी के अधर रस सबके सब उपेक्षणीय हैं, क्योंकि इस काव्य में शृंगार रस का सम्पूर्ण सार समाविष्ट है—

'साध्वी ! माध्वीक चिन्ता न भवति भवति शर्करे ! कर्कशासि,
द्राक्षे ! द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत ! मृतमसि क्षीर ! नीरं रसस्ते।
माकन्द ! क्रन्द कान्ताधर ! धर न तुलां गच्छ यच्छन्ति भावं,
यावच्छृङ्गारसारं शुभमिव जयदेवस्य वैदग्ध्यवाचः' ॥

इस काव्य में जयदेव कवि ने विभिन्न छन्दों, रसों, अलङ्कारों तथा औचित्यों का सन्निवेश किया है। श्रीराधा-माधवविलास का मधुर गायन ही कवि का प्रमुख ध्येय है। इस काव्य की चौबीस अष्टपदियों के माध्यम से कवि ने संगीतशास्त्र तथा कामशास्त्र के अपने गहन अध्ययन का विशद परिचय दिया है। प्रत्येक अष्टपदी के भिन्न-भिन्न राग तथा भिन्न-भिन्न ताल हैं। लगता है कि श्रीराधा-माधव के संभोग तथा विप्रयोग का कवि ने समाधि की स्थिति में कृष्णैकान्तमना होकर साक्षात्कार किया है।

गीतगोविन्दकार जयदेव

गीतगोविन्दकार ने इस काव्य में अपने माता-पिता के नाम का स्वयम् उल्लेख किया है—

'श्रीभोजदेवप्रभवस्य रामादेवी सुतश्रीजयदेवकस्य।
पराशरादिप्रियवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु' ॥

(१२।२४।११)

अर्थात् श्रीजयदेव कवि के पिता का नाम भोजदेव तथा माता का नाम रामा देवी अथवा राधा देवी है। इनके किसी प्रियमित्र का नाम पराशर था। ये बारहवीं शताब्दी के राजा लक्ष्मणसेन के आश्रित कवि थे। गीतगोविन्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काव्य के उन्नीसवें प्रबन्ध के अन्तिम पद्य में कहा गया है—'जयति पद्मावती-रमण जयदेव' इससे पता चलता है कि श्रीजयदेव कवि की पत्नी का नाम पद्मावती था। श्रीमच्चन्द्रदत्त कृत भक्तमाल ग्रन्थ में भी जयदेव कवि की पत्नी का नाम पद्मावती बतलाया गया है। गीतगोविन्द काव्य के—

'वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरो,
जानीते जयदेव एव शरणः श्लाघ्यो दुरूहद्रुतेः।
शृङ्गारोत्तरसत्प्रबन्धरचनैराचार्यगोवर्धन-
स्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरधोयीकविक्ष्मापतिः'॥

(गी० गो० १।४)

इस श्लोक के अनुसार उमापतिधरशरण, गोवर्धनाचार्य, धोई कविराज इत्यादि इनके समकालिक कवि थे। गीतगोविन्दकाव्य के—

'किन्दुबिल्वसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन'। (गी० गो० ३।७।१०)

इस पद्य तथा गीतगोविन्द की रसिकप्रिया तथा रसमञ्जरी टीकाओं के अनुसार गीतगोविन्दकार के ग्राम का नाम किन्दुबिल्व था।

जयदेव कवि श्रीकृष्णभक्त तथा साधु प्रकृति के महापुरुष थे। भक्तमाल ग्रन्थ के ३९वें सर्ग से लेकर ४१वें सर्ग तक विस्तार से चन्द्रदत्त कवि ने श्री-जयदेव कवि के चरित्र का वर्णन किया है।

इस ग्रन्थ के अनुसार जयदेव कवि उत्कल प्रान्त के ब्राह्मणवंशावतंस थे। विद्याभ्यासपरायण ये कवि भगवान् जगन्नाथ की अहर्निश पूजा किया करते थे। श्रीजगन्नाथ भगवान् के मन्दिर में एक बार देवशर्मा नामक ब्राह्मण आये। उन्होंने श्रीभगवान् को प्रणाम करके प्रतिज्ञा की कि भगवन्! यदि मुझे कोई सन्तान हुई तो मैं अपनी प्रथम सन्तान को आपको समर्पित कर दूँगा। श्री-भगवान् की कृपा से देवशर्मा की प्रथम सन्तान पुत्री हुई। कुछ दिनों के पश्चात् वे अपनी पुत्री को लाकर श्रीभगवान् को समर्पित कर दिये। रात्रि में जब वे बाहर सो रहे थे तो श्रीभगवान् ने स्वप्न में कहा—देवशर्मन्! मैंने आपकी पुत्री को स्वीकार कर लिया है, आप इसे मेरे भक्त जयदेव को समर्पित कर दीजिये। जयदेव मेरे दूसरे रूप हैं। अब वे अपनी पुत्री को लेकर श्री-जयदेव के पास आये तो देखा कि शास्त्राभ्यासपरायण दरिद्र ब्राह्मण जयदेव अपनी कुटी में बैठे हैं। उन्होंने श्रीजगन्नाथ भगवान् का ध्यान करके कहा—यह मेरी पुत्री पद्मावती है। जगन्नाथ भगवान् की आज्ञा से इसे लेकर मैं आपके पास आया हूँ, इसे आप स्वीकार करें।

जयदेव कवि ने कहा—मैं दरिद्र ब्राह्मण हूँ, विवाह भी नहीं करना चाहता हूँ। अतएव श्रीभगवान् का नाम लेकर आप मुझे इस प्रकार क्यों ठग रहे हैं? इस पर अपनी पुत्री को वहीं पर छोड़कर जाते हुए देवशर्मा ने कहा—पुत्रि! ये तुम्हारे पति हैं, इनकी सेवा करना तुम्हारा धर्म है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सपत्नीक देवशर्मा के चले जाने पर जयदेव कवि ने कहा—तुम अकेले यहाँ कैसे रहोगी? तुम्हारे माता-पिता तो चले गये? इस पर पद्मावती ने कहा—आप मेरे पति हैं, आपके साथ रहकर मैं अकेली कैसे हूँ। श्रीजयदेव कवि ने विचार किया कि अब इसका त्याग करना ठीक नहीं। वे उसको साथ लेकर उसके माता-पिता के घर आये। सभी के समक्ष उन्होंने पद्मावती का पाणिग्रहण किया और अपने घर आये। इसके पश्चात् पति-पत्नी दोनों एकप्राण हो गये। वे दोनों नाचते-गाते और भगवान् श्रीकृष्ण की अर्चना करते थे।

एक बार जयदेव कवि ने सोचा कि अपने गीतों से मैं श्रीभगवान् को प्रसन्न करूँगा। उन्होंने गीतगोविन्द नामक काव्य का निर्माण किया और सपत्नीक गा-गाकर श्रीभगवान् के समक्ष नृत्य करते थे। एक दिन उन्होंने श्रीराधा-कृष्ण के रासचरित का निर्माण किया। उस चरित में श्रीकृष्ण ने राधा से कहा—मेरे शिर पर पैर रखो, किन्तु श्रीभगवान् के ऐश्वर स्वभाव को स्मरण कर श्रीराधा ऐसा न कर सकीं। श्रीराधा के पैरों के समान श्रीभगवान् दूसरा पैर खोज न सके।

इसके पश्चात् पुस्तक रखकर जयदेव कवि जब स्नान करने के लिए गये तो श्रीभगवान् जयदेव कवि का रूप बनाकर आये और पद्मावती से पुस्तक माँग कर जयदेव कवि के अभिप्रेत अर्थ को लिखकर पुनः चले गये। जब स्नान-पूजनादि से निवृत्त होकर जयदेव कवि ने आकर पुनः पुस्तक माँगा तो उस पद्य को देखा जो उन्होंने नहीं लिखा था। उस पुरुष के विषय में पूछने पर पत्नी ने कहा—आपको भ्रम क्यों हो रहा है, आप ही तो अभी लौटकर आये थे और मुझसे पुस्तक माँग कर लिखकर पुनः स्नानार्थ चले गये। श्रीभगवान् की अहैतुकी कृपा से जयदेव कवि अपने को कृतकृत्य मानने लग गये और अपनी पत्नी पद्मावती को अत्यन्त पवित्र। वे सर्वदा उसी अर्थ का व्यग्र होकर विचार करने लग गये। रात्रि में श्रीभगवान् ने भी उस अर्थ को स्वप्न में स्पष्ट कर दिया। उस दिन से वे अपनी पत्नी के साथ गीतगोविन्द के पदों को गा-गाकर परम प्रसन्नता का अनुभव करते थे।

एक बार गीतगोविन्द को सुनकर वहाँ के राजा ने जयदेव प्रणीत गीतगोविन्द के आलोक में वैसे ही गीतगोविन्द का प्रणयन किया और विद्वानों को आदेश दिया कि आज से यही गीतगोविन्द गाया जाय। जो ऐसा नहीं करेगा उसे दण्डित किया जायेगा। राजा ने गीतगोविन्द काव्य का अपने नाम से प्रचार कराया।

राजा की आज्ञा से राजकृत गीतगोविन्द का ही सबलोग गान करने लगे। एक दिन राजा जब जगन्नाथ भगवान् का दर्शन करने गये तो उन्होंने देखा श्रीभगवान् के समक्ष जयदेव कवि स्वप्रणीत गीतगोविन्द को गा-गाकर नृत्य कर रहे थे। राजा ने पूछा—आप हमारा गीतगोविन्द क्यों नहीं गाते? जयदेव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कवि ने कहा — मेरे गीतगोविन्द से श्रीभगवान् जितना प्रसन्न होते हैं उतना आपके गीतगोविन्द से नहीं। यह सुनकर राजा ने भगवान् के समक्ष दोनों गीतगोविन्दों को रखकर कहा — भगवन् ! आपको जो प्रिय हो उस ग्रन्थ को ऊपर रख दीजिए। सबलोग मन्दिर से बाहर चले गये। कुछ देर के बाद सभी ने जब मन्दिर खोला तो देखा कि श्रीजयदेव प्रणीत गीतगोविन्द ऊपर था और राजप्रणीत नीचे। यह देखकर राजा शोकसंतप्त हो गये और अन्न-जल का त्याग कर रात्रि में वहीं निवास किया। रात्रि में स्वप्न में भगवान् ने कहा — राजन् ! तुम्हारे गीतगोविन्द से भी मैं प्रसन्न होता हूँ, किन्तु जयदेव प्रणीत गीतगोविन्द मुझे सर्वाधिक प्रिय है। तुम भी उसे स्वीकार करो। जगकर राजा ने प्रहर्ष का अनुभव किया। उसी समय से राजा जयदेव कवि के परम भक्त और मित्र हो गये तथा उन्होंने जयदेव कवि प्रणीत गीतगोविन्द काव्य का प्रचुर प्रचार करवाया।

गीतगोविन्द की टीकाएँ

इस गीतगोविन्द काव्य की निम्नलिखित छः प्रख्यात टीकाएँ प्राप्त होती हैं —

(१) रसमञ्जरी—इसके प्रणेता श्रीमहामहोपाध्याय दिनेश्वरमिश्रात्मज श्रीमहामहोपाध्याय शङ्कर मिश्र है। उन्होंने इस टीका का प्रणयन श्रीशालिनाथ की प्रेरणा से किया था।

(२) रसिकप्रिया—इस व्याख्या के प्रणेता कुम्भनृपति कुम्भकर्ण हैं। ये मेवाड़ के राजा थे। इनके राज्य का समय ईसा की चौदहवीं शताब्दी का प्रथम चरण माना जाता है।

(३) सञ्जीवनी — इसके प्रणेता वनमाली भट्ट हैं।

(४) पदद्योतनिका—इसके प्रणेता नारायण भट्ट हैं।

(५) बालबोधिनी — इसके प्रणेता का नाम अज्ञात है।

(६) दीपिका—इसके प्रणेता आचार्य गोपाल हैं।

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन के अधिकारियों के आग्रह पर गीतगोविन्द काव्य की भावप्रकाशिका व्याख्या का प्रणयन किया गया है। इस ग्रन्थ का वे सद्यः प्रकाशन कर रहे हैं, यह अत्यन्त प्रमोद का विषय है। संभव है इस काव्य के अतुल भावों के प्रकाशन में व्याख्या में कुछ त्रुटि रह गयी हो; विज्ञ महापुरुष यदि उसका निर्देश करेंगे तो उसका भी उदारता के साथ भावी प्रकाशन में समावेश किया जायेगा।

विद्वज्जनविधेय

श्रीशिवप्रसाद द्विवेदी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतगोविन्दकाव्यम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्रीः ॥

श्रीजयदेवकविविरचितं

गीतगोविन्दकाव्यम्

प्रथमः सर्गः

(सामोददामोदरः)

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे ! गृहं प्रापय ।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः ॥ १ ॥

अनुवाद—हे राधे ! आकाश मेघों से मनोज्ञ हो गया है, तमालवृक्षों के द्वारा वनभूमि श्यामवर्ण वाली हो गयी है, रात्रि की वेला है तथा मैं भीरु स्वभाव वाला हूँ, अतएव तुम ही मुझे घर पहुँचा दो। इस प्रकार श्रीकृष्ण के द्वारा कहे जाने पर नन्द के समीप से चले हुए श्रीराधा तथा माधव की यमुना के तट में मार्ग में पड़ने वाले कुञ्ज के वृक्षों की छाया में ऐकान्तिक सुरतक्रीडा सर्वोत्कृष्ट होने के कारण नमस्करणीय है ॥ १ ॥

रसिकप्रिया

कल्याणं कमलापतिर्दिशतु मे यः कौस्तुभे राधया
वीक्ष्य स्वं प्रतिबिम्बितं प्रतियुवत्येषेति तर्काकुलम् ।
आश्लेषोन्मुखयापि मानपरया मन्वानया कैतवं
तिर्यग्वक्रितकन्धरं वलितया सासूयमालोकितः ॥ १ ॥

सोऽव्यान्मामरविन्दनाभ उदयद्यन्नाभिपद्मालया
पद्मा पद्मविनीलमीलनविधिप्रावीण्यवन्नेत्रयोः ।
योगादर्धनिमीलिताम्बुजवशात्सम्भोगभोगेतरा-
वस्थाद्वन्द्वभवानुभूतिजनितक्रीडासुखान्यन्वभूत् ॥ २ ॥

दिश्यान्मेऽर्धशिवातनुः स भगवाञ्छित्योदितां सम्पदं
शम्भुर्विश्वजयश्रियः परवशीकारैकसत्कार्मणम् ।
यत्रैकाङ्गनवीनविभ्रमरसादेकाङ्गगुप्तेरना-
स्वादात्सम्भवदद्भुतैकपरमा जागर्ति हेमाद्रिजा ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नत्वा मतङ्गभरतप्रमुखान्सुगीतसङ्गीतशास्त्रनिपुणाञ्जयदेववाचाम् ।
श्रीकुम्भकर्णनृपतिर्विवृतिं तनोति गानं निधाय सरसं रसिकप्रियाह्वाम् ॥ ४ ॥

श्रीवैजपायनसगोत्रवर्यः श्रीबप्पनामा द्विजपुङ्गवोऽभूत् ।
हरप्रसादादपसादराज्यप्राज्योपभोगाय नृपोऽभवद्यः ॥ ५ ॥

यदन्वये निर्जिततर्कवादिपदःपदं तत्परमा व्यभाति (?) ।
श्रीमेदपाटे गुहिलप्रधाने यत्राभवन्भूपतयः प्रसूताः ॥ ६ ॥

तत्र क्रमाद्भूव्यपरम्पराढ्ये हम्मीरनामा नृपतिर्बभूव ।
चन्द्रादिरत्नप्रकरक्रमेण रत्नाकरे कल्पतरुर्यथासीत् ॥ ७ ॥

दानानि सङ्गतवनीपकमात्रपात्रमासाद्य यो ददिरनन्तगुणानि कामम् ।
पञ्चाननो विषमघाटिषु यः प्रसिद्धश्चक्रे मृधान्यखिलशत्रुभयावहानि ॥ ८ ॥

तस्मादभूत्सत्तनयः प्रभूतनयः परायः सवयः शतायुः ।
श्रीक्षेत्रसिंहः प्रतिपक्षनागसिंहः पराहङ्कृतिमत्तसिंहः ॥ ९ ॥

ततोऽभवल्लक्ष उदीतलक्षविपक्षपक्षक्षयकारदक्षः ।
गयाविमोक्षास्थितधर्मरक्षः स्वक्षः कृतत्र्यक्षसमस्तलक्ष्यः ॥ १० ॥

तन्नन्दनो निर्जितपूर्वराजचारित्रसम्पादितमेदिनीकः ।
श्रीमोकलेन्द्रः प्रणतारिमौलिमाणिक्यभाभासितपादपद्मः ॥ ११ ॥

श्रीकुम्भकर्णस्तदनु क्षितीन्द्रः क्षितिं बिभर्तीन्द्रसमानसारः ।
शेषादिकेभ्यो धरणे धरित्र्या भरस्य विश्राणितविश्रमः सन् ॥ १२ ॥

स श्रीशभक्तिप्रवणः प्रवीणः सङ्गीतशास्त्रेऽखिलशास्त्रवेत्ता ।
श्रीगीतगोविन्दसुगीतकस्य नव्याकृतिं व्याकृतिमातनोति ॥ १३ ॥

जित्वा तु पृथिवीं कृत्वा तत्पतीन्करदायिनः ।
राधामाधवसारस्य रसिको रमतेऽधुना ॥ १४ ॥

प्रत्यज्ञायि प्रबन्धो यो जयदेवेन धीमता ।
न तस्य विद्यते लक्ष्म सर्वाङ्गैरुपलक्षितम् ॥ १५ ॥

अतः स्वरादिभिः षड्भिरङ्गैः संयोज्य तथ्यताम् ।
नीत्वा गीत्वा तदा हित्वा कुटीकासु (स्तु) प्रवर्त्यते ॥ १६ ॥

शृङ्गारे सप्रपञ्चे रस इह रुचिरौचित्ययुक्तौ प्रकृष्टे-
ऽलङ्कारे नायिकाया गुणगणगणने वर्णने नायकस्य ।
गीतौ प्रीतौ च वृत्तौ लयमनु रसिकः कौतुकं चेत्तदेमा
दोषैर्मुक्ता गुणाढ्याः शृणुत नरपतेः कुम्भकर्णस्य वाचः ॥ १७ ॥

स किं बन्धः श्लाघ्यो व्रजति शिथिलीभावमसकृ-
द्विचारेणाक्षिप्तो ननु भवति टीकापि किमु सा ।
न या ग्रन्थग्रन्थिप्रकटनपटुः किं तु तददो
द्वयं युक्तं कर्तुं प्रभवतितरां कुम्भनृपतिः ॥ १८ ॥

शृङ्गारोत्तरसत्काव्यवेदिविद्वन्मुदे मया ।
मेघैर्मेदुरमित्यादिपद्यं व्याक्रियतेऽधुना ॥ १९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गमकालापपेशलतया मध्यमग्रामे षाडवेन मध्यमग्रहेण मध्यमादिरागेण गीयते ।

गणपतिमभिमतफलदं वरदं प्रणिपत्य सिद्धिगुणविशदम् ।
गीतौ जयदेवकृते धातुं कुम्भो नृपस्तनुते ॥ २० ॥
अथ कुम्भकर्णनृपतिः स्तुत्वा नत्वा सरस्वतीं देवीम् ।
स्वरपाटतेनकानां करोति गुम्फं सुमानार्थम् ॥ २१ ॥

मेघैरिति । जयन्ति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते । सर्वोत्कृष्टत्वेन नमस्करणीयत्वमुक्तम् । तेन नमस्क्रिया काव्यमुखं द्योतितम् । आशीर्वा । कास्ताः ? रहःकेलयः सुरतक्रीडाः । 'रहो गुह्ये रहो रते' इति । तासां विषयं निर्दिशति क्व ? यमुनाकूले प्रत्यक्षध्वकुञ्जद्रुमम् । अध्वनि कुञ्जद्रुमोऽध्वकुञ्जद्रुमः । अध्वकुञ्जद्रुमं प्रतीति प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमम् । ननु चात्र नित्यसमासत्वाद्वाक्येन न भवितव्यम् । नैतदस्ति । प्रतिशब्दस्य वीप्सायां कर्मप्रवचनीयसंज्ञा विहिता । तद्योगे यथा स्यादित्येवमर्थः । तस्याश्च वाक्य एव प्रयोगो नान्यत्रेति वाक्यमपि स्यात् । 'अर्थमर्थं प्रति' इत्यादि भाष्यकारप्रयोगाच्च । कस्मिन्सति ? रह एकान्ते । एकान्तं कयोः ? राधामाधवयोः । अत्र राधाया जगद्गुरुपरिग्रहणसकलमातृत्वेनाभ्यर्हितत्वादल्पाक्षरतरत्वाच्च पूर्वनिपातः । किं लक्षणयोः ? इत्थं वक्ष्यमाणप्रकारेण, कृष्णोक्तेरनु नन्दनिदेशात इति, नन्दसमीपाच्चलितयोः । तमेव प्रकारमाह — हे राधे ! तत्तस्माद्धेतोरिमं मल्लक्षणं जनं त्वमेव गृहं प्रापय । सामान्यनारीव्यावृत्त्या गृहिणीनिर्वर्त्ये सम्भोगादिकर्मणि समुदिता भवेत्यर्थः । अत्र 'गृह'शब्देन तात्स्थ्याद् गृहिण्युच्यते; 'गृह'शब्दच्छलेन तामेव पुरस्कृत्य वनविहारदर्शनात् । अत्र प्राप्नोतिरुदयार्थे वर्तते । 'प्रलाभोदययुक्तिषु' इति चूडामणिः । त्वयैवाहं गृहिणीमान् स्यामिति यावत् । एवकारोऽन्ययोगव्यावृत्त्यर्थः । तस्मादिति किम् ? यतोऽयं मल्लक्षणो जनो भीरुः, भीरुरिति एभिर्भावहेतुभिः स्मराहतीः सोढुमसमर्थः । तानेव भावानाह — अम्बरमाकाशं मेघैर्मेदुरं सान्द्रस्निग्धं वर्तते । अपरं च, तमालद्रुमैः श्यामा वनभुवो वर्तन्ते । अपरं च — नक्तं रात्रिकालः । एवं देशकालवस्तुलक्षणा विभावाः सूचिताः । किमुक्तं भवति ? अत्र काव्ये शृङ्गाररसप्राधान्यात्तस्य मेघाद्यास्त्रयोऽप्युद्दीपनभावा उक्ता भवन्ति । राधाद्या आलम्बनविभावाः । भीरुरित्यस्यानुभावः । हर्षावेगशङ्कौत्सुक्यव्रीडाचपलतादयो व्यभिचारिणः । इत्थं कार्यकारणसहकारिभी रतिस्थायिभावः सकलरससम्राट् सप्रपञ्चः सम्भोगाख्योऽभिलाषविरहेर्ष्यासूयालक्षणो विप्रलम्भः शृङ्गारः साङ्गोपाङ्गः समुन्मीलितो भवति । तदुक्तम् (का० प्र० उ० ४)—'कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि तु । रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाटचकाव्ययोः ॥ विभावा अनुभावाश्च कथ्यन्ते व्यभिचारिणः । व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः ॥' तथा चाभाणि भरतेन — 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' इति । एवमेतेन पथा श्रीजयदेवेन कविना रसमुख्ये स्थिरीकृते तदाशयमबुद्ध्वा कैश्चिद् व्याख्यातं तत्तावन्न विचक्षणपरीक्षाक्षममीक्षामहे । तथा हि — इत्थं नन्दनिदेशतो नन्दादेशाच्चलितयोः केलयो जयन्ति । इत्थमिति किम् ? राधा काचन गोपिका तस्या नन्देन सम्बोधनम् । हे राधे ! इमं मम शिशुं रात्रौ भीरुं त्वमेव गृहं प्रापय, त्वय्येव मम विश्वास इति । तदा नायकस्य शिशुत्वेन परवशत्वं, तस्याश्च धात्रीत्वं नन्दस्य दूतीकर्म, शृङ्गारविभावानां भयानकहेतुत्वं, कवि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निरूपितरसस्यान्यथात्वं चापद्यते। तत्र तेषामायुष्मतां क उपालम्भः ? यतः—'निर्देशो भावणादेशसामीप्यार्थमजानतः। आदेश एव विश्रान्तमतेर्व्याख्या भवेन्न किम् ? ॥ लोके किं कूपमण्डूकः समुद्रमपि तत्समम्। न वेद वेदवादोऽयमिति श्रुतिभिया किल ? ॥' अथैवं नन्दादेशादनु तथा ग्राम्यतायां शृङ्गारो विनाशितो भवति। यथाह—'अथ शृङ्गारपरता सुतरां सा तिरस्कृता। यतः कुलवधूवत्स चमत्काराय संवृता ॥ श्वशुरे वदति प्रायः सूनो रतमनु स्नुषाम्। सा नाम ग्राम्यतापीष्टा सापि नेष्टा विपश्चितः ॥ प्रयुक्तं कविना द्वित्वं तदाशयमजानता। नन्दनिर्देशहारिण्यास्तस्या एकत्वमिष्यते ॥ नायकत्वं यदाम्नातं हरेः काव्यकृता कृतौ। तस्यां तस्मिन्विनिक्षिप्ते गतिः का नाम तस्य ते ? ॥ यो गीतगोविन्द इति प्रबन्धो गोविन्दनेतारमनुप्रबद्धः। राधावशे तत्र कृतेऽर्भकत्वात्स गीतराधः कथमत्र न स्यात् ? ॥ प्रामाण्यं सुधियोऽवदन्कविगिरां धर्मोपदेशे बुधा यत्तन्नो भवितुमुदार्हति गुरोराज्ञा विचार्या न यत्। तत्रेदं तु विचारणीयमिह यो यस्याः करे दीयते रक्षायै स च कामयेत यदि तां तत्किञ्चिदद्यावधि ॥ शृङ्गारोपक्रमे चात्र भयानकनिमित्तता। मेघाडम्बरतादेस्तन्महद्व्याख्यानकौशलम् ॥ अन्यहेतुभिरन्यस्योत्पत्तिश्चेद् दृश्यते तदा। विस्मयस्थायिभावत्वादद्भुतोपस्थितिर्न किम् ? ॥ धात्रीयोगान्न शृङ्गारो न हास्यो रहसीङ्गितैः। न भयानकता तस्माद्रसः कोऽत्रावतिष्ठताम् ? ॥ तस्मादत्र विभावानुभावसञ्चारिभिर्भवेत्। शृङ्गारो नन्दसामीप्यात्तयोश्चलितयोः स्वतः ॥ यथा द्रव्याणि नानात्वं भावान्तरविभावतः। व्रजन्ति नानारसतां तथा भावास्त एव हि ॥ एवं मेघादयोऽपि स्युः शृङ्गारे च भयानके। विभावाद्यवियुक्तेन भावकेन विभाविताः ॥' तस्मात्काव्याभिप्रायसूचितशृङ्गारपरत्वेनात्र कृतं व्याख्यानमेव न्याय्यमिति। अत्र 'मेघैः' इति बहुवचनेनाक्रममेव नवभिरप्यवस्थाभिराक्रमणाच्चेतसोऽन्यथावृत्तिः सूचिता। 'अम्बरम्' इति स्वच्छन्दविहारभङ्गशङ्कां मा कृथा इति। 'वनभुवः' इति बहुवचनेन नानावस्थरतक्षमं प्रदेशबाहुल्यं द्योतितम्। 'नक्तम्' इति कालस्य स्वच्छन्दप्रच्छन्नकामुकयोग्यत्वमुक्तम्। 'माधव'शब्दः सत्यामपि लक्ष्म्यां तस्यामनुरागातिशयद्योतनार्थः। 'यमुनाकूल' इति रतिश्रमनिराससाधनशिशिरसमीरसद्भावार्थम्। 'अयम्' इति रत्युद्रेकाकुलतया स्वाङ्गेष्वप्यौदासीन्यद्योतनाय। यथा श्रीहर्षमिश्रस्य हंसेन स्वात्मनि निराशीभूतेन 'गतिस्तयोरेकतरस्तमर्दयन्' (नैषध० २।१३५) इत्याद्यभाणि। यथा वा श्रीकालिदासस्य ईश्वरेण तयावगणिते आत्मन्यनास्थापरत्वेन 'अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने' (कुमार० ५।४०) इत्याद्यवादि। अत्र वर्णवृत्त्यनुप्रासः शब्दालङ्कारः। पूर्वार्धे समुच्चयोऽर्थालङ्कारः। तल्लक्षणं तु (का० प्र० १०।११६) 'तत्सिद्धिहेतावेकस्मिन् यत्रान्यत्तत्करं भवेत्। समुच्चयोऽसौ'। यथा—'दुर्वाराः स्मरमार्गणाः प्रियतमो दूरे' (शार्ङ्ग० ५०) इत्यादि। उत्तरार्धे चाशीः। तद्योजनं च—सर्वोत्कृष्टास्ताः केलयो विलासकलासु कुतूहलिनः पान्तु। अत्र शब्दार्थालङ्कारयोश्च संसृष्टिः—'सेष्टा संसृष्टिरेतेषां भेदेन यदिह स्थितिः' (का० प्र० १०।१३९) इति। अत्र 'अयम्' इत्यात्मन्यौदासीन्यद्योतकं सर्वनामपदं तिलकायमानं बिभ्राणा सूक्तिः समुचितपरभागातिशयेन रुचिरतामावहन्ती शरदिन्दुसुन्दरवदनेव श्यामतिलकेन श्यामेव शुभविशेषकेण विभूषिता अर्थौचित्यचमत्कारकारिणी सकलकविकुलललामभूता कामपि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विच्छित्तिमातनोति। यथा (सा० द०)—'मग्नानि द्विषतां कुलानि समरे त्वत्खड्गधाराजले नाथास्मिन्निति बन्दिवाचि बहुशो देव ! श्रुतायां पुरा। मुग्धा गुर्जरभूमिपालमहिषी प्रत्याशया पाथसः कान्तारे चकिता विमुञ्चति मुहुः पत्युः कृपाणे दृशौ॥' अत्र 'मुग्धा' पदं कैश्चित्काव्यलिङ्गमित्यलङ्कारोऽभाणि। तन्न; तल्लक्षणाभावात्॥ लक्षणं तु—'तदेवोक्तं काव्यलिङ्गं हेतोर्वाक्यपदार्थता' (का० प्र० १०।११४) इति। नात्र 'वपुः-प्रादुर्भावात्—' इतिवद्धेतोर्वाक्यार्थता। नापि 'प्रणयिसखीसलीलपरिहासरसाधिगतैः' (मालती० ५।३१) इतिवदनेकपदार्थता। नापि 'भस्मोद्धूलन भद्रमस्तु भवते' इतिवद्धेतोरेकपदार्थता। तस्य गतिं त एव प्रष्टव्याः। एवमिह सुनिपुणमपि निरूप्यमाणोऽलङ्कृतिगुणो न विद्वच्चित्तचमत्कृतिमातनोति॥ तर्हि काव्यचारुतानिबन्धनभृङ्गाररसस्वीकारेण रसवदलङ्कारतेत्यपि नाशङ्कनीयम्। यतोऽत्र शृङ्गारस्य प्राधान्यान्नालङ्कारत्वं येनालङ्कारता स्यात्। यदाह—'प्रधाने यत्र वाक्यार्थे यत्रायान्ति रसादयः। काव्ये तस्मिन्नलङ्कारो रसादिरिति मे मतिः'॥ प्रकृते तु शृङ्गारस्य प्राधान्यमपि प्रतिपन्नम्। अत्र वैदर्भी रीतिः 'अस्पृष्टा दोषमात्राभिरनल्पगुणगुम्फिता। विपञ्चीस्वरसौभाग्या वैदर्भी रीतिरिष्यते'॥ (का० सू० १।२।११) शृङ्गारावस्थानसूचिका कैशिकी वृत्तिः। सम्भाविता गीतिः। तस्याश्च लक्षणम्—'सम्भाविता भूरिगुर्वक्षकला वार्तिके पथि'। मध्यो लयः। प्रसादो गुणः। अनुकूलो नायकः। स्वाधीनपतिका नायिका॥ पूर्वार्धेऽभिलाषो विप्रलम्भः। अपरार्धे सम्भोगश्च शृङ्गारः। एवं 'केलय' इति कथाबीजलक्षणं वस्त्वपि निर्दिष्टं भवति॥ एवं च त्रिविधमपि काव्यमुखं महाकविना समुन्मीलितं भवति॥ यदत्र कश्चित्सम्भोगशृङ्गारलक्षणं वस्त्ववदत्, स एव चास्य विवेचनक्षमः॥ शार्दूलविक्रीडितं छन्दः। यथा—'सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्'॥ १॥

भावप्रकाशिका—निर्विघ्न ग्रन्थ की परिसमाप्ति के लिए तथा शिष्यों को शिक्षा देने के लिए महाकवि जयदेव शिष्टाचार-परम्परा से प्राप्त ग्रन्थ के आरम्भ में 'मेघैर्मेदुरमम्बरम्०' इत्यादि श्लोक से मङ्गलाचरण करते हुए कह रहे हैं—भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि राधे ! मुझे तुम घर पहुँचा दो। भगवान् श्रीकृष्ण की इस उक्ति का सामान्य अर्थ यह है कि मुझे घर पहुँचा दो। किन्तु 'गृहं प्रापय' इस वाक्य के गृह शब्द से तात्स्थ्यलक्षणा है और गृह शब्द गृह में रहने वाली गृहिणी रूपी अर्थ को लक्षित करता है; तथा प्र-पूर्वक आप् धातु उदयार्थक है। अर्थात् मैं तुमसे ही गृहिणी वाला बन जाऊँ। क्योंकि मैं भीरु स्वभाव का हूँ। अर्थात् यहाँ पर समुपस्थित उद्दीपन विभावों के कारण काम के वेग को सह पाने में समर्थ नहीं हूँ। समुपस्थित उद्दीपन विभावों को निर्दिष्ट करते हुए श्रीभगवान् कहते हैं कि सम्प्रति आकाश बादलों से भर जाने के कारण मनोज्ञ हो गया है, तमाल के वृक्षों द्वारा वनभूमि श्यामवर्ण की हो गयी है तथा रात्रि की वेला है। ये तीनों कारण यहाँ पर सम्भोग-शृङ्गार के उद्दीपन विभाव के रूप में उपस्थित हैं। स्वयं सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेयसी श्रीराधा आलम्बन विभाव है। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा कहे जाने पर भगवान् के भावों की अभिज्ञा श्रीराधा श्रीभगवान् के साथ चल पड़ी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार श्रीनन्दजी के सन्निकट से चले हुए राधा और माधव ने मिलकर यमुना के तट में मार्ग में पड़ने वाले कुञ्जद्रुमों के नीचे जिन सुरतक्रीडाओं को किया उन सुरतक्रीडाओं की जय हो, क्योंकि वे सर्वोत्कृष्ट तथा भक्तजनों के द्वारा नमस्करणीय हैं।

इस श्लोक में महाकवि ने सूचित किया है कि इस काव्य का अङ्गीरस रसराज शृङ्गार है। रात्रि की वेला, मेघाच्छादित आकाश तथा तमालवृक्षमण्डित सस्य-श्यामला वनभूमि — ये सभी उद्दीपन विभाव हैं। श्रीराधा ही आलम्बन विभाव है। रति स्थायिभाव है। हर्ष, आवेग, औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भाव हैं। भीरुत्व अनुभाव है।

इस श्लोक के अनेक पदों द्वारा अनेक प्रकार के अर्थ अभिव्यंजित होते हैं। जैसे — 'अम्वरम्' पद के द्वारा भी भगवान् ने इस अर्थ को सूचित किया है कि तुम्हें स्वच्छन्द विहार में होने वाले किसी प्रकार के विघ्न की शङ्का नहीं करना चाहिए। 'वनभुवः' पद में बहुवचनान्त प्रयोग के द्वारा सूचित किया गया है कि अनेक प्रकार की रतिक्रीडा करने योग्य प्रदेश की यहाँ पर वहुलता है। 'नक्तम्' पद के द्वारा स्वच्छन्द प्रच्छन्नकामुक-योग्यता वतलायी गयी है। माधव पद के द्वारा इस अर्थ की सूचना दी गयी है कि यद्यपि श्रीभगवान् लक्ष्मीपति हैं फिर भी उनका श्रीराधा में ही प्रेमाधिक्य है। 'यमुनाकूले' पद के द्वारा रतिजन्य श्रमापनोदनक्षम शिशिर-समीर सम्प्राप्तियुक्तत्व को सूचित किया गया है।

इस श्लोक के पूर्वार्धं में समुच्चयालङ्कार तथा उत्तरार्धं में आशीः अलङ्कार है। फलतः दोनों की संसृष्टि है। इस श्लोक में वैदर्भी रीति, कैशिकी वृत्ति, संभाविता गीति, मध्य लय, प्रसाद गुण, अनुकूल नायक तथा स्वाधीनपतिका नायिका है।

इस श्लोक के पूर्वार्ध में अभिलाष-लक्षण विप्रलम्भ शृङ्गार तथा उत्तरार्द्ध में सम्भोग शृङ्गार है। शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ १ ॥

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्ती।
श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेतमेतं करोति जयदेवकविः प्रबन्धम् ॥ २ ॥

अनुवाद—जिसका चित्तरूपी सद्म सरस्वती देवी के चरित्र से चित्रित हो गया है। श्रीलक्ष्मी देवी का सेवकाग्रगण्य, श्रीराधा तथा भगवान् श्रीकृष्ण की रतिक्रीडा की कथा से समन्वित गीतगोविन्द नामक काव्य की रचना जयदेव कवि कर रहे हैं ॥ २ ॥

कविरिदानीं सकलकलिकलुषहारिहरिचरितानुस्मरणसरसतापादनेन तद्भक्ताननुगृह्णन्समुचितेष्टदेवताभावनाभावितान्तःकरणस्तत्फलभूतं शृङ्गारोत्तरं प्रबन्धं कर्तुं प्रतिजानीते — वाग्देवतेति। जयदेवकविरेतं गीतगोविन्दाभिधं प्रबन्धं करोति। अत्र जगदानन्दकन्दलीकन्दगोविन्दपदारविन्दमकरन्दामोदमधुरतरास्वादमधुकरमधुरचेता भागवतप्रधानः परमकारुणिको जयदेवकविर्देवदेवे भगवत्याविष्टचित्तःकलिकलुषान्तःकरणत्वेनेतस्ततः परिविक्षिप्तान् सुखेन तदभिमुखीकरणाय कलावतीकेलिकुतूहलिनं हलिसोदरं निरूपयितुं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्गुणं निरूपयिषुः 'निर्विशेषं परं ब्रह्म साक्षात्कर्तुमनीश्वराः। ये मन्दास्तेऽनुकम्प्यन्ते सविशेषनिरूपणैः।' ॥ इति दर्शयितुं धर्मार्थकामाः स्वनुष्ठिता मोक्षायेति मोक्षोपायतया धर्मार्थयोरुपरि वर्तमानस्य पुरुषार्थविशेषस्य निदानत्वेन पितॄणामानृण्यहेतुभूतापत्योत्पत्तिद्वारेण नितम्बिनीमूलत्वमुपदर्शयितुं तद्विशिष्टं वासुदेवं विवर्णयिषुरिमं प्रबन्धमुपनिबध्नाति। तथा चोक्तमभियुक्तैः—'संसारे यदुदेति किञ्चन फलं तत्कृच्छ्रसाध्यं नृणां किं त्वेतत्सुखसाध्यमस्ति युगलं सम्यग्यदि ज्ञायते। तल्लक्ष्मीसमुपार्जनं पुलकिनां रक्तस्वरं गायतां तत्कान्तारतिनिस्तरङ्गमनसामुत्पद्यते नन्दनः ॥' इति। कामशास्त्रेऽपि—'किं स्यात्परत्रेत्याशङ्का यस्मिन्कार्ये न जायते। न चार्थघ्नं सुखं चेति शिक्षास्तस्मिन्व्यवस्थिता ॥' इति। परस्त्रीगतोऽप्ययं रस उपनिबध्यमानो न पातकाय। यतः—'कान्तासम्मिततया' इत्युपदेशप्रामाण्यात्। यथा—एवं श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेतम्। श्रीश्च वासुदेवश्च तौ; तयो रतिकेलिकथासमेतम्। अत्र स्त्रीनामलाञ्छितं सर्वं 'श्रीरि'ति 'श्री'शब्देन राधाभिधीयते। अथवा श्रीः शोभा लक्ष्मीर्वा तद्वतो वासुदेवस्य। तदसूचि पूर्वपद्ये 'माधव'शब्देन रतिकेलीति सुरतक्रीडाकथनेन वा। रत्या शृङ्गारस्थायिभावेनानुरागेण या केलयः कथाः परस्परसङ्कथनानि तत्समेतम्। अथ कविरात्मनो विशेषणद्वारेण सरस्वतीचरणकिङ्करत्वम्, अनु च प्रबन्धस्य पद्मावतीदेवतासमाराधनफलत्वमाह—वाग्देवतेति। वाग्देवताचरितेन चित्रितं सञ्जातचित्रं चित्तसद्म यस्य स तथा। सरस्वत्यनुस्मरणपरहृदय इत्यर्थः। अपरं च—लक्ष्मीचरणसेवकाग्रणीः। पद्मं करेऽस्ति यस्याः सा पद्मावती लक्ष्मीः। 'शरादीनां च' (पा० ६।३।१२०) इति दीर्घः। अथ पद्मावती अष्टाक्षरमन्त्राधिदैवतं तस्याश्चरणचारणेन परिचर्याविशेषेण चक्रवर्ती। कविराज इत्यर्थः। 'पद्मावती तस्य कलत्रमेके वदन्ति यत्तन्न विचारचारु। यतः सदाचारपरम्परैषा गृह्णन्ति तन्नाम न नाम सन्तः ॥ कर्मादिसद्दैवतसम्प्रयोगे तत्कीर्तनं किं न विशेषगर्हम्? । रहो विहाय क्व च नापि दृष्टं सतां स्वकान्ताप्रणयादिकं तु ॥' अतस्तद्व्याख्योपेक्षा। एवं यद्यप्यस्ति तत्त्वं तथापि महतामिहालौकिकचमत्कारि चरितं किञ्चिदीक्ष्यते—'तथा हि सत्यभामाग्रे ननर्त नरकान्तकृत्। देहार्धे च बभारोमामीशो योगिवरोऽपि सन् ॥ अथवा भक्तियोगस्य स्वभावः कोऽप्यनीदृशः। यतस्तद्योगयुक्ता हि गणयन्ति न लौकिकम् ॥ अथात्मा जायते यस्यां सा जायेति श्रुतीरणात्। तत्स्वरूपपरस्वत्वात्सा भक्तिर्या तया सह ॥ तथा हि धर्मकार्याणि न सन्त्यत्र तया विना। सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्न्युक्ता दक्षिणाङ्गगा ॥ किन्तु सा भक्तिरत्रोक्ता योपचारेण वर्जिता। तां विनाऽतोऽनुरज्यन्ति सन्तः स्वेनेष्टदैवते ॥ शृङ्गारित्वादय स्वीयां जायां नर्तयतीह सः। परार्थनिष्ठबुद्धीनां न हि लोकव्यतिक्रमः ॥ लोको वेदस्तथाध्यात्मं प्रमाणं त्रिविधं स्मृतम्। तत्र लोकस्य मुख्यत्वात्तदुक्तिर्नान्यथा भवेत् ॥ अतः पद्मावती तस्य कलत्रमिति नान्यथा। परभागवतस्यास्य जयदेवस्य युज्यते ॥ लोकातीतचरित्रस्य लोकेशस्य पुनः सदा। स्वजायानर्तनं युक्तमिति युक्ततरं वचः ॥' अत्र चित्तसद्मनोरभेदारोपाद्रूपकालङ्कारः, अनुप्रासश्च। 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' ॥ ओजो गुणः। गौडीया रीतिः। भारती वृत्तिः। भूरिगुरुत्वात्सम्भाविता गीतिः ॥ अत्र वसुभिर्दीयत इति तदपत्याभिधानेन प्राप्तपितृधनस्य केलिकरणमुचितमिति अम्लानप्रतिभाप्रकर्षोत्प्रेक्षितेन 'वासुदेव'पदेन सकल-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रबन्धस्यापि पीयूषवर्षेणेव समुचितार्थविशेषेण प्रबन्धः स्फुरदिव चमत्कारकारितामापद्यते। तथा चोक्तम्—'उचितार्थविशेषेण प्रबन्धार्थः प्रकाशते। गुणप्रभावभव्येन विभवेनेव सज्जनः ॥' यथा—'जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानाम्—' (मेघ० पू० ६) इत्यत्राचेतनस्य चेतनाध्यारोपेण मेघस्य दूत्ययोग्यताभिधानाय प्रथितपुष्करावर्तकवंशत्वाद्युपन्यस्तम् ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—ग्रन्थ के इस द्वितीय मङ्गल श्लोक में महाकवि जयदेव बतला रहे हैं कि मैं इस गीतगोविन्द नामक काव्य की रचना कर रहा हूँ। श्लोक के पूर्वार्द्ध में आये हुए दो पदों के द्वारा महाकवि अपनी विशेषता बतलाते हुए कहते हैं—वाग्देवता इत्यादि। अर्थात् वाणी की अधिष्ठातृ सरस्वती देवी हैं, उन्हीं का एक नाम वाग्देवता है। उन श्रीसरस्वती देवी के चरित्रों से मेरा अन्तःकरण समलंकृत हो गया है और इस प्रकार का चित्त ही मेरा आश्रय है। अर्थात् मैं सर्वदा श्रीसरस्वती देवी का स्मरण करता रहता हूँ तथा मैं लक्ष्मी देवी के श्रीचरणों के सेवकों में अग्रगण्य हूँ। 'पद्मं करे अस्ति यस्याः सा' यह पद्मावती शब्द की व्युत्पत्ति है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार पद्मावती शब्द लक्ष्मी देवी का वाचक सिद्ध होता है। श्रीपद्मावती देवी अष्टाक्षर मन्त्र की अधिष्ठातृ देवता हैं। जयदेव कवि कहते हैं कि उन्हीं के चरणों की सेवा-विशेष करने के कारण मैंने कविचक्रवर्ती अर्थात् कविराज पद को प्राप्त कर लिया है। इस प्रकार का मैं जयदेव महाकवि इस गीतगोविन्द नामक काव्य का प्रणयन कर रहा हूँ। इस काव्य की विशेषता को बतलाते हुए वे कहते हैं—'श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेतम्' अर्थात् इस काव्य में राधा रूप में अवतीर्ण श्रीदेवी तथा वसुदेव-पुत्र के रूप में अवतीर्ण, सम्पूर्ण जगत् के स्वामी एवं आत्मास्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण की रतिकेलि-कथा का वर्णन है। 'श्रीश्च वासुदेवश्च श्रीवासुदेवौ, तयो रतिकालीनायाः कथाः, ताभिः समेतम्' यह इस पद की व्युत्पत्ति है। अर्थात् श्रीदेवी ही श्रीराधा के रूप में अवतीर्ण हैं तथा श्रीभगवान् ही वसुदेवात्मज के रूप में अवतीर्ण हैं। उन दोनों के शृङ्गार रस के स्थायिभाव रति अर्थात् अनुराग के कारण परस्पर वार्तालाप इत्यादि की जो केलिकथाएँ हैं, उनसे परिपूर्ण यह गीतगोविन्द नामक काव्य है। उसी काव्य का महाकवि निर्माण कर रहे हैं।

गीतगोविन्द की व्याख्या रसमञ्जरीकार के अनुसार इस प्रकार है—विचित्रकवितारूपी महाधन का निधान होने तथा भगवान् श्रीकृष्ण की क्रीडाओं का वर्णन आदि के कारण संसारतापसंतप्त कविजनों का विश्रामस्थान होने के कारण जयदेव कवि ने चित्त को सद्म शब्द से अभिहित किया है। सामान्य गृह तो अनेक प्रकार के चित्रों से चित्रित होते हैं, किन्तु कवि का चित्तरूपी गृह तो सरस्वती देवी के चरित्रों से चित्रित है। इस प्रकार यह चित्तरूपी सद्म सामान्य सद्मों की अपेक्षा विलक्षण है। रसमंजरीकार के अनुसार पद्मावती जयदेव की पत्नी का नाम है। उनके चरणों का संचारण करने के कारण महाकवि नटसार्वभौम हो गये हैं, अतएव वे अपने को चक्रवर्ती बतलाते हैं। इससे कवि में श्रीकृष्णभक्ति के आधिक्य तथा उनके शृङ्गारी होने की ध्वनि निकलती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस श्लोक में चित्त तथा सद्म का अभेद बतलाया गया है, अतएव रूपकालङ्कार हैं तथा अनुज्ञालङ्कार भी। 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इस लक्षण के अनुसार वसन्ततिलका वृत्त, ओज गुण, गौडीया रीति, भारती वृत्ति तथा संभाविता गीति है ॥ २ ॥

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकलासु कुतूहलम् ।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ॥ ३ ॥

अनुवाद—हे श्रोताओ ! यदि श्रीहरि के स्मरण में आप लोगों का मन अनुराग युक्त है तथा विलास-कलाओं के विषय में आपके भीतर कुतूहल है तो मधुर, कोमल तथा कान्तिगुण वाले पदसमूह से युक्त जयदेव कवि की वाणी को सुनें ॥ ३ ॥

कविरिदानीं स्वप्रबन्धस्य प्रयोजनमाविष्करोति—यदीति। हे श्रोतरित्यध्याहार्यम्। तदा तर्हि जयदेवसरस्वतीं प्रबन्धरूपां वाणीं शृणु। किं लक्षणाम् ? मधुरकोमलकान्तपदावलीम्। मधुरा कोमला कान्ता पदानामावलिर्यस्यां सा। एतेन माधुर्यौजःप्रसादाद्या दशापि गुणा उक्ता भवन्ति। तदेति किम् ? यदि हरिस्मरणे मनः सरसम् एकाग्रं सरागं वर्तते। अपरं च—यदि विलासकलासु कुतूहलम्। विलासिनां शृङ्गारिणां कलास्तासु। 'विलासो गमनादिः स्याच्चेष्टा श्लिष्टाङ्गया कृता' इति। एतेनास्य प्रबन्धस्य प्रयोजनाभिधेयसम्बन्धाधिकारिण उक्ता भवन्ति। विलासकलाशिक्षा अवान्तरप्रयोजनम्। हरिस्मरणं परमं प्रयोजनम्। स्मार्यस्मारकलक्षणः सम्बन्धः वैष्णवा अधिकारिणः। दीपकमलङ्कारः। द्रुतविलम्बितं वृत्तम्—'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ'। पाञ्चाली रीतिः। कैशिकी वृत्तिः॥ अत्र मधुरकोमलकान्तपदावलीत्यादिपदैर्विलासकलासु कुतूहलस्यौचित्योद्भावनेन शृङ्गाररसस्वरूपानुरूपो वाक्यार्थ उन्निद्रो भवति। तथा चोक्तम् (औ० १२)—'औचित्यरचितं वाक्यं सन्ततं सम्मतं सताम्। त्यागोदग्रमिवैश्वर्यं शीलोज्ज्वलमिव श्रुतम्' ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में महाकवि गीतगोविन्द काव्य के अधिकारी, प्रयोजन तथा विषय का निर्देश करते हैं। वे कहते हैं कि सज्जनो ! यदि आपका मन श्रीहरि के स्मरण के विषय में सानुराग है। 'यदि' पद के द्वारा कवि इस अर्थ को सूचित करते हैं कि सबों का मन श्रीभगवान् के स्मरण में नहीं लगता। श्रीभगवान् के गुणों के स्मरण में प्रवृत्ति तो बड़े ही सौभाग्य से होती है। श्रीहरि तो जीवों को स्मरण करने मात्र से ही संसार के इस दुःखमय बन्धन से विमुक्त कर देते हैं। अतएव वे हरि शब्द से अभिहित किये जाते हैं। 'हरति संसारबन्धनमिति हरिः' यह हरि शब्द के नाम का अर्थ है। किञ्च यदि आपके भीतर विलास-कलाओं के विषय में कौतूहल है। स्त्रियों के हाव-विशेष का नाम विलास है। गमनादि की क्रियाओं को विलास कहा जाता है। अथवा शृङ्गारी पुरुषों की कलाओं के विषय में आपको कुतूहल हो तो आप जयदेव कवि की वाणी रूपी इस गीतगोविन्द नामक काव्य का श्रवण करें। गीतगोविन्द काव्य की विशेषता बतलाते हुए महाकवि कहते हैं—'मधुर-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कोमलकान्तपदावलीम्' अर्थात् इस काव्य के पदसमूह माधुर्यगुणोपेत, कोमल वर्णों से ग्रथित तथा रमणीय हैं, क्योंकि वे कान्ति नामक गुण से युक्त हैं।

माधुर्य नामक गुण को प्राचीन आलङ्कारिकों ने दो प्रकार का बतलाया है—शब्दाश्रित एवं अर्थाश्रित। वाक्यगत पृथक्पदत्व को शब्दाश्रित माधुर्य कहते हैं तथा उक्ति की विचित्रता को अर्थगत माधुर्य कहते हैं। ये दोनों प्रकार के माधुर्य इस काव्य में पाये जाते हैं। इसी प्रकार कोमलता भी दो प्रकार की होती है। शब्द तथा अर्थ के पारुष्य के अभाव में वह काव्य में सुरक्षित रहती है। कान्तिगुण भी शब्दाश्रितत्व एवं अर्थाश्रितत्व के भेद से दो प्रकार का होता है। उज्ज्वल बन्ध-विशेष के कारण श्रोत्र तथा मन आदि के प्रह्लादत्व आदि को शब्दगत कान्ति नामक गुण कहा जाता है तथा रस की दीप्ति को अर्थगत कान्ति नामक गुण माना जाता है। प्रकृत काव्य में इन दोनों प्रकार के कान्तिगुणों का सद्भाव है।

इस काव्य का परम प्रयोजन श्रीहरि का स्मरण है तथा अवान्तर प्रयोजन विलास कला की शिक्षा है। स्मार्य-स्मारक भाव रूपी सम्बन्ध है तथा श्रीवैष्णव इस काव्य के अधिकारी हैं।

इस श्लोक में दीपकालङ्कार, पाञ्चाली रीति, कैशिकी वृत्ति तथा द्रुतविलम्बित छन्द है। 'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।' यह द्रुतविलम्बित वृत्त का लक्षण है॥ ३॥

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरां
जानीते जयदेव एव शरणः श्लाघ्यो दुरूहद्रुतेः।
शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन-
स्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरो धोयी कविक्ष्मापतिः॥ ४॥

अनुवाद—उमापतिधर नामक कवि अपनी वाणी का विस्तार मात्र करते हैं। जयदेव कवि ही वाणी की संदर्भ-शुद्धि को जानते हैं। शरणनामा कवि दुरूह कविता करना ही जानते हैं। शृङ्गार-प्रधान निर्दोषार्थ काव्य की रचना के विषय में आचार्य गोवर्धन का कोई प्रतिस्पर्धी नहीं है तथा कविराज धोयी तो श्रुतिधर हैं॥ ४॥

इदानीं कविः कविगणनायां परैरपि कविभिरहं परिगणित इति स्वप्रशंसार्थं क्षेपकमपि तत्कृतं श्लोकं स्वप्रबन्धस्य कुर्वन्नाह—वाच इति। तानेव परिगणितान्कवीन्स्वस्वगुणेनोपश्लोकितानाह—उमापतिधरनामा कविः वाचो वाणीः पल्लवयति विस्तारयति। साकूतैर्विशेषणैर्गद्यादिप्रबन्धे चतुरः। अपरं च—गिरां वाचां सन्दर्भशुद्धिं गुम्फवैशद्यं जयदेव एव जानीते। शरणसंज्ञः कविः दुरूहद्रुतेः श्लाघ्यो दुर्विचारपदपदार्थज्ञानात्प्रशस्यः। शृङ्गारप्रधाननिर्दोषार्थनिर्माणैराचार्यगोवर्धनस्पर्धी कोऽपि न। एतेन तस्य सर्वाधिक्यमुक्तं भवति॥ अपरं च—श्रुतिधरनामा कविर्विश्रुतो विख्यातः; स तु तस्य गुणैरेव प्रसिद्धः। अपरं च—धोयीनामा कविः कविक्ष्मापतिः। कविराज इत्यर्थः। धोयीति तस्य नाम देशरूढ्या व्युत्पन्नं प्रातिपदिकम्। इति षट् पण्डितास्तस्य राज्ञो लक्ष्मणसेनस्य प्रसिद्धा इति रूढिः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः। समुच्चयोऽलङ्कारः॥ ४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावप्रकाशिका—यह श्लोक क्षेपक श्लोक है, महाकवि जयदेव प्रणीत नहीं है; फिर भी इस श्लोक को कवि अपने काव्य में सन्निविष्ट कर रहे हैं। महाराज लक्ष्मणसेन की सभा में छह प्रख्यात कविपण्डित थे। उन छह कविपण्डितों में जयदेव कवि अन्यतम थे। उन छहों पण्डितों की विशेषता इस श्लोक में बतलायी गयी है। जो निम्न प्रकार से है—(१) उमापतिधर नामक कवि राजा लक्ष्मणसेन के अमात्य थे। ये केवल अपनी वाणी का विस्तार करना जानते थे। अर्थात् इनके काव्य में वाङ्-माधुर्य तथा शब्दार्थगुणों का अभाव होता था। फलतः वह सहृदयहृदयाह्लादक न होकर केवल चित्रकोटि के काव्य में सन्निविष्ट होता था। (२) शरणकवि लक्ष्मणसेन की सभा के दूसरे कवि थे। ये दुरूह तथा शीघ्रतापूर्वक कविता का प्रणयन करने के लिए प्रख्यात थे। इस तरह उनका भी काव्य गूढार्थत्वादि दोषों से युक्त एवं प्रसादादि गुणों से रहित होता था। (३) गोवर्धनाचार्य लक्ष्मणसेन की सभा के तीसरे पण्डित थे। इनके काव्यों में शृङ्गार रस की प्रधानता तथा निर्दोष अर्थ का सन्निवेश होता था। इस विषय में इनका कोई दूसरा प्रतिस्पर्धी नहीं था। (४) श्रुतिधर नामक कवि तो अपने गुणों के ही कारण प्रसिद्ध थे। वे केवल एक बार सुनकर ही काव्य को याद कर लेते थे। (५) धोयी कवि अपनी कविराज की प्रथा से प्रथित थे। (६) लक्ष्मणसेन की सभा के छठें कवि जयदेव थे। उनकी विशेषता में कहा गया है कि ये 'सन्दर्भशुद्धिं गिरां जानीते' अर्थात् कवि जयदेव वाणी के गुम्फवैशद्य को जानते हैं। अर्थात् ये गुण तथा अलङ्कारों से समन्वित काव्य-विशेष की रचना में निपुण हैं।

रसमंजरीकार लक्ष्मणसेन की सभा के पाँच कवियों को ही स्वीकार करते हैं और वे 'श्रुतिधरः' पद को कवि-विशेष की संज्ञा न मानकर उसे धोयी कवि का विशेषण मानते हैं। इस विषय नें उनका कथन है कि धोयी कवि तो किसी काव्य को एक बार सुनने मात्र से ही उसको कण्ठस्थ कर लेते हैं।

इस श्लोक में 'सूर्याश्वैमसंजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।' इस लक्षण के अनुसार शार्दूलविक्रीडित वृत्त तथा समुच्चयालङ्कार है ॥ ४ ॥

अष्टपदी १

मालवगौडरागेण रूपकतालेन गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ १ ॥

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्
विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ।
केशव धृतमीनशरीर
जय जगदीश हरे ॥ ध्रुवपदम् ॥ १ ॥

अनुवाद—अष्टपदी एक।

(यह प्रबन्ध मालवगौड राग तथा रूपक ताल से गाया जाता है।)

हे श्रीहरि! हे केशव! हे मत्स्यावतारधारी! हे जगदीश! आपकी जय हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपने मत्स्यावतार धारण कर वेदों को धारण किया तथा अनायास पोत का कार्य किया ॥ १ ॥

इदानीं केलिं विवर्णयिषुर्नायकस्य वर्णनेन तद्‌गुणाकर्णनप्रवीणाञ्श्रोतॄन्विधातुं तदवान्तरकेलीरपि वर्णयितुं श्रीकृष्णं नायकं दशभिरवतारैस्तास्ताः केलीः कुर्वाणमुपश्लोकयति। आदितालेन गीयते। लघ्वादितालः। मालवरागेण—प्रलयेति। हे हरे! धृतमीनशरीर! केशव! जगदीश! असीति। त्वम् अखेदं विहितवहित्रचरित्रं यथा स्यात्तथा प्रलयपयोधिजले कल्पान्तसागरवारिणि वेदं धृतवान्। अतो जय॥ अत्र 'जय'शब्देन सर्वोत्कृष्टत्वम्। तेन सर्वदाऽसाधारण्येन जगत्पाहीति योजना। एवं सर्वत्रासीति तिङन्तप्रतिरूपकं पदं युष्मदर्थेऽव्ययम्। अखेदम्। अनु च। विहितवहित्रचरित्रमित्युभयमपि साधारणक्रियाविशेषणम्। तेन पोतचेष्टितमङ्गीकृत्यापि मनागप्यायासं नाप्तवानित्यर्थः। इति प्रथमं पदम्। केशव हरे जगदीश इति सम्बोधनत्रयमादरातिशयद्योतनार्थम्। अत्र 'केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे' इति पाठः॥ इति ध्रुवपदम्॥ गानवेलायां केशव केशव इति द्विरुक्तिः॥ अत्रार्धमागधी रीतिः॥ अत्र केशवस्य केवलशब्दवाच्यत्वं हरिशब्दसहितकेशवशब्दवाच्यत्वम् इति व्याख्यानम्। तत्पाठमात्रमप्यजानतां प्रमादेन क्रियाविशेषणानां कर्मसंज्ञा नपुंसकता च। 'धृतमीनशरीर' इति मत्स्यावतारः। अत्रोपमातिशयोक्ती अलङ्कारौ। उत्साहस्थायिभावो वीरो रसः। दशस्वपि पदेषु धीरललितो नायकः॥ १॥

भावप्रकाशिका—महाकवि जयदेव को श्रीभगवान् की क्रीडाओं का वर्णन करना ही अभिप्रेत है। श्रीभगवान् के गुणों के वर्णन के माध्यम से श्रोताओं को श्रीभगवान् के गुणों के श्रवण में प्रवीण बनाने के लिए जयदेव कवि भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रधान दश अवतारों में जिन-जिन क्रीडाओं को किया उन्हीं का वर्णन इस अष्टपदी के द्वारा कर रहे हैं।

यह अष्टपदी मालवगौड राग तथा रूपक-ताल से गायी जाती है। दीपिकाकार ने मालव राग का स्वरूप निम्नांकित बतलाया है—

'नितम्बिनीचुम्बितवक्त्रपद्मः, शुकद्युतिः कुण्डलवान् प्रमत्तः।
सङ्गीतशालां प्रविशन् प्रदोषे, मालाधरो मालवरागराजः'॥

नायिका के द्वारा चुम्बित मुखकमल वाला, शुक के समान हरित वर्ण की कान्ति वाला, कुण्डल धारण किये हुए तथा मदमत्त, माला पहने हुए रागों का राजा मालव प्रदोष की वेला में संगीतशाला में प्रवेश करता है। इस अष्टपदी का ताल रूपक है।

इस अष्टपदी में श्रीभगवान् के लिए चार सम्बोधन प्रयुक्त हैं। इसमें 'केशव' पहला सम्बोधन है। श्रीभगवान् के बाल जो वराहावतार में गिर पड़े थे, वे ही कुश रूप से अंकुरित हुए। कोई भी दैव-पैत्र्य कार्य बिना कुश के सविधि सम्पन्न नहीं हो सकता। सभी वेदविहित कार्यों में कुश की आवश्यकता होती है। अतएव कुश रूप में अंकुरित श्रीभगवान् के केश याज्ञिक क्रियाओं में अत्यन्त प्रसिद्ध हो गये। इसीलिए श्रीभगवान् को केशव कहा जाता है। 'केशाद्वोऽन्यतरस्याम्' इस पाणिनीया-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नुशासन के अनुसार केश शब्द से प्रसिद्ध अर्थ में 'व' प्रत्यय होकर केशव शब्द बनता है। किञ्च श्रीभगवान् के द्वादश व्यूहों में केशव नामक व्यूह का सर्वप्रथम स्थान है, अतएव कवि श्रीभगवान् के इस केशव नाम का सर्वप्रथम स्मरण करते हैं। इस नाम का अर्थ लिखते हुए भगवद्गुण दर्पणकार कहते हैं—'प्रशस्तस्निग्धनीलकुटिलकुन्तलः' अर्थात् केशव यह श्रीभगवान् का नाम उन श्रीभगवान् को प्रशस्त काले तथा घुंघराले बालों वाला वतलाता है।

'धृतमीनशरीर' यह श्रीभगवान् का दूसरा सम्बोधन है। श्रीभगवान् सज्जनों के परित्राणार्थं तथा पापियों का विनाश करने के लिए विभिन्न अवतारों को धारण करते रहते हैं। उनके उन अवतारों की गणना नहीं की जा सकती है। किन्तु उन असंख्य अवतारों में से उनके दस अवतार प्रधान माने जाते हैं। मत्स्यावतार उन प्रमुख दस अवतारों में प्रथम अवतार है। इस अवतार में श्रीभगवान् ने वेदापहार-कर्ता हयग्रीव का वध करके वेदों का उद्धार किया था।

'जगदीश' ! इस तीसरे सम्बोधन के द्वारा कवि वतला रहे हैं कि श्रीभगवान् सम्पूर्ण चराचर जगत् के एकमात्र नियन्ता हैं। वे सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं पालन का नियमन करते हैं तथा जगत् के भीतर अन्तर्यामी रूप से स्थित होकर उसका नियमन करते हैं। यही इस जगदीश पद का अभिप्राय है।

'हरे' ! इस पद के द्वारा श्रीभगवान् के भक्तक्लेशविनाशकत्व को बतलाया गया है। 'हरति भक्तानां क्लेशम्' यह हरि पद की व्युत्पत्ति है।

इन चारों सम्बोधनों का समुदित आशय श्रीभगवान् के प्रति आदरातिशय का प्रकाशन है।

चूंकि यह पद प्रत्येक पद के साथ आवृत्त करके गाया जाता है, अतएव इसे ध्रुवपद कहा जाता है। कहा भी गया है—'ध्रुवत्वाच्च ध्रुवो ज्ञेयः'।

इस अष्टपदी में श्रीभगवान् के मत्स्यावतार के चरित्रों का वर्णन किया गया है। मत्स्यावतार में श्रीभगवान् ने प्रलयकालीन सागर के जल में वेदों को धारण किया तथा स्वयं नाव का रूप धारण करके सम्पूर्ण बीजों तथा मनु सहित सप्तर्षियों को प्रलयकाल पर्यन्त धारण कर बिना प्रयास के ही उनका वहन करते हुए उनकी रक्षा की। अतएव मत्स्यावतारधारी श्रीभगवान् की जय हो।

रसिकप्रियाकार का कहना है कि गाने के समय केशव ! केशव ! यह पद दो बार उच्चारित किया जाता है।

यहाँ पर अर्धमागधी रीति, उपमा तथा अतिशयोक्ति अलङ्कार, उत्साह नामक स्थायिभाव तथा वीररस हैं ॥ १ ॥

क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे
धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ।
केशव धृतकच्छपरूप
जय जगदीश हरे ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद---विशाल तथा पृथिवी के धारण करने के चिह्नचक्रों से गौरवान्वित आपके विशालतर पृष्ठ के ऊपर पृथ्वी स्थित है। हे कच्छप रूप धारण करने वाले जगत् के स्वामी तथा भक्तों के पापनाशक केशव ! आपकी जय हो ॥ २ ॥

अथ कूर्मः। केशवेत्यादि ध्रुवपदं पूर्ववत्। 'धृतकच्छपरूप' इति कूर्मावतारकथनं विशेषः ॥ तवेति। तवातिविपुलतरे विशाले अतिक्रान्तं विपुलतरं तस्मिश्च धरणीधरणेन हेतुना जातं यत्किणचक्रं तेन गरिष्ठे गौरवयुक्ते पृष्ठे क्षितिस्तिष्ठति इति भवप्रवाहस्यानादित्वादनेकवारं धरणीधरणे चिह्नबहुत्वम्। इति द्वितीयपदम् ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—अष्टपदी के इस द्वितीय पद में श्रीभगवान् के कच्छपावतार का का वर्णन किया जा रहा है। कच्छपावतार धारण करके श्रीभगवान् पृथिवी के नीचे विद्यमान हैं और उनके पृथिवी की अपेक्षा अत्यधिक विशाल पृष्ठ पर यह भूमण्डल स्थित है। श्रीभगवान् बार-बार पृथिवी को पृष्ठ पर धारण करते रहते हैं, फलतः उनके पृष्ठ पर पृथिवी के धारण करने से चिह्नों का जाल-सा बन गया है। वे उन चिह्नजाल से समलंकृत हैं। कवि कह रहे हैं कि इस कच्छपावतार में अपने पृष्ठ पर पृथिवी को धारण करने वाले हे भगवन् ! हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् ! भक्तों के पापतापविनाशक केशव ! आपकी जय हो। इस प्रकार इस अष्टपदी का द्वितीय पद परिपूर्ण हुआ ॥ २ ॥

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना।
केशव धृतशूकररूप
जय जगदीश हरे ॥ ३ ॥

अनुवाद---हे जगदीश ! हे हरे ! हें वराहावतार धारण करने वाले केशव ! जिस प्रकार चन्द्रमा के भीतर मनोहर कलङ्क दिखलायी देता है, उसी प्रकार आपके दाँतों के ऊपर पृथिवी टिकी हुई है ॥ ३ ॥

अथ वराहः। वसतीति। धृतशूकररूपेति ध्रुवे विशेषः। धरणी पृथ्वी तव दशनशिखरे दंष्ट्राग्रभागे लग्ना संसक्ता वसति। केव ? शशिनि चन्द्रमसि मग्ना अन्तर्गता कलङ्ककलेव। अनेन दंष्ट्राया महत्त्वं तदपेक्षया धरण्या अतिसूक्ष्मत्वं द्योतितम्। अत्रोपमालङ्कारः। इति तृतीयम् ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—अष्टपदी के इस तृतीय पद में कवि जयदेव श्रीभगवान् के वराहावतार की स्तुति करते हैं। वे कहते हैं कि हे जगत् के स्वामिन् तथा भक्तों के पापतापविनाशक वराह-शरीर को धारण करने वाले केशव ! हम सामान्य जीवों की अपेक्षा श्रीभगवान् की यह विशेषता है कि वे अपनी इच्छा के अनुसार ही तत्-तत् शरीरों को धारण किया करते हैं। उनके समस्त शरीरों के धारण करने में उनकी अपनी इच्छा ही प्रधान रहती है। वे जिस समय जिस शरीर के द्वारा दुष्टों के दमनपुरस्सर सज्जनों का समुचित परित्राण उचित समझते हैं, उस समय अपने सत्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संकल्प के द्वारा वे उसी शरीर को धारण कर लेते हैं। श्रीभगवान् के द्वारा स्वीकृत समस्त देह दिव्य हुआ करते हैं; हम संसारी जीवों के कर्मजन्य शरीर के समान नहीं।

सृष्टि के प्रारम्भ में हिरण्याक्ष जब बीजभूत पृथ्वी का अपहरण करके पाताल-लोक में चला गया था तो श्रीभगवान् ने वराह रूप धारण किया और प्रलयकालीन जल के भीतर प्रवेश करके अपने दाँतों के अग्रभाग पर पृथ्वी को उठाकर ले आयें तथा अपने सत्य संकल्प रूपी योगबल के द्वारा जल के ऊपर पृथिवी को स्थापित किया। प्रकृत पद में जयदेव कवि श्रीभगवान् के इसी चरित्र का गान कर रहे हैं।

जिस समय भगवान् अपने दन्ताग्रभाग पर पृथ्वी को उठाकर ला रहे थे, उस समय उनके उजले-उजले दाँतों के ऊपर-पृथ्वी उसी प्रकार सुशोभित हो रही थी जिस प्रकार चन्द्रमा के भीतर उसके बीच में उसकी कालिमा सुशोभित होती है। इस उपमा के द्वारा कवि ने श्रीभगवान् के दाँतों के महदाकारत्व को तथा पृथ्वी के अल्पाकारत्व को सूचित किया है। इस प्रकार इस अष्टपदी का तीसरा पद परिपूर्ण हुआ।

इस पद में उपमालङ्कार है ॥ ३ ॥

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम्
दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम्।
केशव धृतनरहरिरूप
जय जगदीश हरे ॥ ४ ॥

अनुवाद—हे जगदीश! हे हरे! हे नृसिंहरूपधारी केशव! आपकी जय हो। आपके श्रेष्ठ करकमल के ऊपर नखरूपी अद्भुत शृङ्ग (अग्रभाग) विद्यमान है, जिसने हिरण्यकशिपु रूपी भृङ्ग का विदारण किया ॥ ४ ॥

अथ नृसिंहः। 'धृतनरहरिरूप' इति ध्रुवे विशेषः। तव करेति। तव करकमलवरे नखमद्भुतशिखररूपं भाति। किं लक्षणम्? हेतुगर्भविशेषणमाह—'दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम्' दलितो विदारितो हिरण्यकशिपोस्तनुभृङ्गस्तनुरेव भृङ्गो येन तत्तथा। तनुभृङ्ग इत्यत्र रूपकमलङ्कारः। 'करकमलवर' इत्यत्रापि करस्य कमलत्वेन कमलाग्रत्वारोपः। भृङ्गः किल कमलाग्रं विदारयति; अत्र कमलाग्रेण भृङ्गविदारणमित्यद्भुतोत्पत्तिः। इति चतुर्थम् ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य के माध्यम से जयदेव कवि श्रीभगवान् के नृसिंह रूप की स्तुति कर रहे हैं। दितिपुत्र हिरण्यकशिपु ने भगवत्शरणागत महाभागवत प्रह्लाद पर अत्याचार किया तो श्रीभगवान् ने उनकी रक्षा के लिए नृसिंहावतार धारण किया। उसी अवतार को लक्षित करते हुए जयदेव कवि कहते हैं कि श्रीकृष्ण भगवान् ने ही वह नृसिंहावतार धारण किया था। इस अवतार में श्रीभगवान् ने उस महादैत्य के वक्षःस्थल को अपने नखों के ही द्वारा विदीर्ण कर दिया। महर्षि बादरायण श्रीमद्भागवत में कहते हैं—'ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद् यथा'। अर्थात् जिस प्रकार चटाई बुनने वाला बिना प्रयास के ही सींक को अपने नखों से फाड़ देता है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसी प्रकार श्रीभगवान् ने अत्याचारी हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को बिना किसी प्रयास के ही फाड़ दिया।

महाकवि जयदेव कहते हैं कि हे नृसिंह रूपधारी भगवन् ! आपके हाथ श्रेष्ठ कमल के समान हैं। हाथ के अग्रभाग में विद्यमान तीक्ष्ण नख ही उस श्रेष्ठ कमल के अद्भुत अग्रभाग हैं। इस नखरूपी कमलाग्रभागों की यह अद्भुतता है कि अन्य कमलों के अग्रभाग का विदारण तो भ्रमर किया करते हैं, किन्तु आपके इस श्रेष्ठ करकमलों के अग्रभाग ने स्वयं हिरण्यकशिपु के शरीर रूपी भ्रमर का ही विदारण कर दिया।

हाथों में कमलत्व का आरोप, नखों में शृङ्गत्व का आरोप तथा तनु में भृङ्गत्व के आरोप के कारण इस पद्य में रूपकालङ्कार है।

इस रूप के माध्यम से श्रीभगवान् के हाथों की अपेक्षा हिरण्यकशिपु के शरीर की अतिलघुता तथा उसके कृष्णवर्णत्व को भी सूचित किया गया है।

रसमञ्जरीकार का कहना है कि अन्यत्र तो भौंरें कमलाग्र का भेदन करके मकरन्द पान करके तृप्त होते हैं, किन्तु यहाँ पर तो स्वयं यह भौंरा कमलाग्र के द्वारा ही विदीर्ण हो गया। यही इस नखभृङ्ग की अद्भुतता है ॥ ४ ॥

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन
पदनखनीरजनितजनपावन।
केशव धृतवामनरूप
जय जगदीश हरे॥ ५ ॥

अनुवाद—हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् ! श्रीहरे ! केशव ! वामन शरीर धारण करने वाले भगवन् ! आपकी जय हो। अपने पैर के नखजल से समस्त प्रजा को पवित्र बनाने वाले अद्भुत वामन भगवन् ! आप अपने तीन पग भूमि नापने की क्रिया से बलि नामक दैत्य को छल रहे हैं॥ ५ ॥

अथ वामनः। 'धृतवामनरूप' इति ध्रुवे विशेषः। छलयसीति। हे अद्भुतवामन ! त्वं बलिं दानवं छलयसि वञ्चयसे। अत्र भूतेऽप्यद्यापि बलिसमीपे वर्तमानत्वात्, छलं कुर्वन्नसीति वर्तमानसामीप्याद्वा प्रवाहानादित्वेन प्रतिवामनावतारं छलनप्रारम्भापरिसमाप्तत्वाद्वर्तमानापदेशः। वामनस्याकारेण खर्वत्वात्प्रभाप्राग्भारेणाविभाव्यस्वरूपत्वाददद्भुतत्वम्। क्व ? विक्रमणे विक्रमत्रयकरणे। अत्र हेतुगर्भविशेषणम्। पदेति। पदनखनीरेण जनितं जनपावनं येन। इदमत्राकूतम्—बलिना वामनस्य चरणार्घे क्रियमाणे सहसा वृद्धिमाप्ते चरणार्थं यदुदकं गृहीतं तन्नखमात्र एव पर्याप्तम्। अतः पदनीरे वक्तव्ये पदनखनीर इत्युक्तिः। अथवा—तृतीये पदविन्यासे चरणाग्र एव ब्रह्मलोकमितो झटिति ब्रह्मणा दीयमानार्घजलजनितविष्णुपादाग्रसम्भवजलेन पावन इति। अत्राद्भुतो रसः। अतिशयोक्तिरलङ्कारः। इति पञ्चमम्॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य के द्वारा महाकवि जयदेव श्रीभगवान् के वामन रूप की स्तुति कर रहे हैं। बलि नामक दैत्यराज को प्रवञ्चित करने के लिए श्रीभगवान् ने वामन रूप धारण किया। बलि की यज्ञशाला में जाकर उससे आपने तीन पग पृथ्वी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की याचना की और बलि के द्वारा संकल्प कर दिये जाने के पश्चात् आपने अपना त्रिविक्रम रूप बनाकर एक पग में ऊपर के समस्त लोकों को तथा दूसरे पग में पृथिव्यादि समस्त नीचे के लोकों को नाप लिया। तीसरे पद के लिए कोई स्थान ही नहीं बचा जिसे नापते। अंत में तीसरे पग में बलि के शरीर को नाप कर श्रीभगवान् ने उसे अनुगृहीत किया। श्रीभगवान् के इस रूप को महाकवि 'अद्‌भुत वामन' इस सम्बुद्धि पद से संबोधित कर रहे हैं। अद्‌भुत वामन रूप को धारण कर श्रीभगवान् ने बलि को छला। इसी रूप में आकर भगवान् ने तीन पदों के द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को नाप लिया, किन्तु बलि को अपने वरदान से अनुगृहीत करके आज भी पाताललोक में बलि के साथ निवास करते हैं। इसी अभिप्राय से महाकवि ने 'छलयसि' इस वर्तमानकालिक क्रियापद का प्रयोग किया है।

अथवा श्रीभगवान् प्रत्येक कल्प में वामनावतार धारण करके बलि को छलने का काम किया करते हैं। इस प्रकार श्रीभगवान् का बलि को छलने का काम अनादि काल से चलता आ रहा है। इसलिए कवि ने वर्तमानकालिक क्रियापद का प्रयोग किया है।

'पदनखनीरजनितजनपावन' इस सम्बुद्धि पद का अभिप्राय व्यक्त करते हुए रसिकप्रियाकार कहते हैं कि भगवान् जब तीन पग भूमि नापने के लिए अपने शरीर को बढ़ायें, उस समय बलि जो श्रीभगवान् के पादप्रक्षालनार्थ जल लाया था, वह केवल उनके चरणों का नख धोने के लिए ही पर्याप्त हो सका। इसीलिए श्रीजयदेव कवि पदनीर न रहकर 'पदनखनीर' कहते हैं। उस जल के द्वारा श्रीभगवान् ने अपने भक्त बलि को पवित्र बना दिया। श्रीमद्भागवतकार कहते हैं कि—

'यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा।
अवनिज्यावहन् मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः'॥
(श्रीमद्भागवत ८।२०।१८)

अर्थात् यज्ञकर्ता बलि ने स्वयं अपने हाथों से श्रीभगवान् के दोनों श्रीचरणों को प्रसन्नतापूर्वक धोकर सम्पूर्ण जगत् को पवित्र बना देने वाले उस जल को अपने सिर पर चढ़ा लिया। इस पद का दूसरा अर्थ बतलाते हुए रसिकप्रियाकार कहते हैं कि जिस समय श्रीभगवान् अपने पद-विन्यास के द्वारा ऊपर के लोकों को नाप रहे थे उस समय भगवान् के चरणों के अग्रभाग में ब्रह्मलोक आ गया। क्योंकि ऊपर के समस्त लोकों के ऊपर ब्रह्मलोक ही था। श्रीभगवान् के श्रीचरणों को देखकर ब्रह्माजी ने जो अर्घ्य का जल गिराया वह भगवान् के चरणों के अग्रभाग में ही आया। वह जल ही श्रीगङ्गाजी के रूप में परिणत हो गया। उस जल से समस्त भगवद्भक्तजन पवित्र हो जाते हैं।

इस पद्य में अद्‌भुत रस तथा अतिशयोक्ति अलङ्कार हैं॥ ५॥

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापम्
स्नपयसि पयसि शमितभवतापम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केशव धृतभृगुपतिरूप
जय जगदीश हरे ॥ ६ ॥

अनुवाद—हे परशुरामरूपधारिन् ! जगत्स्वामिन् ! श्रीहरे ! आप निष्पाप सम्पूर्ण जगत् को क्षत्रियों के रक्तमय जल में स्नान कराते हैं ॥ ६ ॥

अथ परशुरामः। 'धृतभृगुपतिरूप' इति ध्रुवे विशेषः। क्षत्रियेति। एतत्पदस्य पुराणकथासापेक्षा व्याख्या। हे राम ! जगत्स्नपयसि। क्व ? पयसि जले। किम्भूते जले ? क्षत्रियरुधिरमये क्षत्रक्षतजविकारे। परशुरामः किल क्षत्रक्षयं कृत्वा कुरुक्षेत्रे रामह्रदतीर्थे क्षत्रशोणितजलेन पितॄनतार्प्सीदिति पौराणिकाः। तत्राद्यापि जगत्स्नाति, अपगतपापं च भवति। तदेव कविराह। अत्रापि स्नानं प्रति रामशब्दस्यैव प्रवृत्तिनिमित्तत्वात्स्नपयसीति पदान्तराध्याहारेण भूतार्थालङ्कारस्थाने लये गतिश्चिन्तनीया। यस्त्वं स्नपयसि स जयेति वा। किम्भूतं जगत् ? अपगतपापमिति हेतुगर्भं विशेषणम्। अत एव शमितभवतापं शमितो भवतापोऽपगतभवतापत्वादाध्यात्मिकादिदुःखत्रयं येनेति तत्तथा। अत्र भाविनि भूतवदुपचारन्यायेन स्नानेन पापहानिः। तथा च दुःखत्रयाभिघातः। उभयमपि क्रियाविशेषणं वा। स्नपयसीति 'ग्लास्ना—' (ग० १९०) इति मित्वाद्ध्रस्वत्वम्। रुधिरमये इति विकारे मयट्। स्वभावोक्तिरलङ्कारः। अत्र बीभत्सो रसः। प्रलयेत्यादिपदषट्के धीरोद्धतो नायकः। तल्लक्षणं सङ्गीतराजे रसरत्नकोशे—'मात्सर्यदर्पभूयिष्ठश्छद्मचहङ्कारवाञ्छली। चण्डो विकत्थनश्चैव धीरोद्धत उदाहृतः' ॥ तद्गुणाः—दार्ढ्यं, तेजस्विता, दक्षता, धार्मिकत्वं चेति। तल्लक्षणं रसरत्नकोशे यथा—'व्यवसायादचलनं दार्ढ्यं विघ्नशतैरपि। अधिक्षेपाद्यसहनं तेजः प्राणात्ययेष्वपि। दक्षता क्षिप्रकारित्वं धार्मिकत्वं तु तत्कृतिः' ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—इस अष्टपदी में महाकवि जयदेव श्रीपरशुरामावतार का वर्णन कर रहे हैं। इस पद के ध्रुवपद की यह विशेषता है कि इसमें 'धृतभृगुपतिरूप' यह पद सन्निविष्ट हो जायेगा। इस पद की व्याख्या पौराणिक कथासापेक्ष है। अत्याचारी क्षत्रियों का विनाश श्रीभगवान् ने परशुरामावतार में किया। उन्होंने कुरुक्षेत्र में क्षत्रियों के रक्त से रामह्रदतीर्थ नामक सरोवर का निर्माण करके उसी रुधिर से अपने पितृगणों का तर्पण किया। यह पुराणों की प्रसिद्ध कथा है। उस रामह्रदतीर्थ में आज भी संसार के प्राणी स्नान करके समस्त पापों से विमुक्त हो जाते हैं। समस्त संसारी जीव इस ह्रद में स्नान करके समस्त पापतापों से मुक्त हो जाते हैं। यह उस रामह्रद की महिमा है। उसी महिमा का जयदेव कवि इस पद में अनुसंधान कर रहे हैं।

इस पद में स्वभावोक्ति अलङ्कार तथा अद्भुत रस है।

'प्रलयपयोधिजल' से लेकर इस षष्ठ पद पर्यन्त पद्यों के धीरोद्धत नायक हैं। धीरोद्धत नायक का लक्षण सङ्गीतराज तथा रसकोश में निम्नांकित प्रकार से कहा है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'मात्सर्यदर्पभूयिष्ठश्छद्मचहङ्कारवाञ्छली ।
चण्डो विकत्थनश्चैव धीरोद्धत उदाहृतः' ॥

अर्थात् धीरोद्धत नायक में मात्सर्य एवं दर्प की प्रचुरता होती है। वह प्रच्छन्न अहङ्कारी, छली, उद्धत तथा आत्मप्रशंसा करने वाला होता है। उसके—दृढ़ता, तेजस्विता, दक्षता तथा धार्मिकता—ये चार गुण बतलाये गये हैं। इन चारों गुणों का निरूपण करते हुए रसरत्नकोश में कहा गया है—

'व्यवसायादचलनं दार्ढ्यं विघ्नशतैरपि ।
अधिक्षेपाद्यसहनं तेजाः प्राणात्ययेष्वपि ।
दक्षता क्षिप्रकारित्वं धार्मिकत्वं तु तत्कृतिः' ॥

अर्थात् अनेकों विघ्नों के आने पर भी अपने निश्चय से नहीं विचलित होने को दार्ढ्य कहते हैं। प्राणसंकटापन्न हो जाने पर भी किसी के द्वारा की जाने वाली अपमानजनक बात को नहीं सह सकने को तेजस्विता, किसी भी कार्य को शीघ्र सम्पादित कर देने को दक्षता तथा धार्मिक कार्यों को सम्पादित करने को धार्मिकता कहते हैं ॥ ६ ॥

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयं
दशमुखमौलिबलिं रमणीयम् ।
केशव धृतरामशरीर
जय जगदीश हरे ॥ ७ ॥

अनुवाद—हे राम रूप धारण करने वाले! जगत्स्वामिन् श्रीहरे! भगवन् केशव! आप संग्राम में दिक्पालों को अभिमत तथा मनोज्ञ रावण के मुकुटभूषित शिरों की बलि दिशाओं में प्रदान कर रहे हैं ॥ ७ ॥

अथ रामः। 'धृतरामशरीर' इति ध्रुवे विशेषः। वितरसीति। हे राम! त्वं वितरसि ददासि। दशमुखमौलिबलिं रावणस्य मौलय एव बलिः। 'मौलि'शब्दः शिरोवाची। अथवा—'मौलि'शब्दः किरीटे वर्तते। 'चूडाकिरीटकेशाश्च संयता मौलयस्त्रयः' इत्यभिधानात्, तथापि बलेर्मांससाध्यत्वान्मौलिशब्देन तात्स्थ्याच्छिरांसि लक्ष्यन्ते। शिरांसि छेदं छेदं दिक्पतिभ्यो बलिदानं कृतवानित्यर्थः। जगतां रक्षोपलक्षणोपद्रवोपशान्त्यै रक्षःशिरांस्येव बलित्वेनोपहृतवानिति। कुत्र? दिक्षु। किम्भूतं बलिम्? दिक्पतिकमनीयमभिलषणीयम्। पुनः किम्भूतम्? रावणवधद्वारा लोकाभिरामत्वाद्रमणीयम्। अत्र यावन्तो दिक्पतयस्तावन्त्येव शिरांसीति कमनीयत्वे हेतुः। अत्रापि वितीर्णवानिति वक्तव्ये तत्कालापेक्षया वर्तमानापदेशो वा। यो वितीर्णवान् स त्वं जय इत्यादि कल्पनीयम्। अत्र जातिरलङ्कारः। वितरसीत्यत्र धीरोदात्तो नायकः। तल्लक्षणं रसरत्नकोशे—'कृपावानतिगम्भीरो विनीतश्चाविकत्थनः। धीरोदात्तः स विज्ञेयो रामो दाशरथिर्यथा' ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—अष्टपदी के प्रकृत पद में जयदेव कवि भगवान् के श्रीरामरूप का वर्णन कर रहे हैं। अन्य पदों के ध्रुवों की अपेक्षा इस पद के ध्रुव की यह विशेषता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है कि इसमें 'धृतरामशरीर' यह पद जुड़ जायेगा। श्रीभगवान् ने रामावतार धारण कर राक्षसराज रावण का वध किया। यद्यपि श्रीभगवान् के समस्त अवतारों का प्रधान प्रयोजन स्वाश्रित जन का परित्राण ही हुआ करता है; राक्षसादि का वध तो आनुषङ्गिक ही प्रयोजन हुआ करता है, किन्तु व्यावहारिक जीवन में लोकोपद्रवकारी रावणादिकों के वध का ही महत्त्व अत्यधिक बढ़ जाया करता है। उसी का वर्णन करते हुए भक्तजन आनन्दानुभूति किया करते हैं। जयदेव कवि भी श्रीरामावतार के प्रधान कार्य के रूप में रावणवध का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे जगदीश ! हे श्रीहरे ! हे केशव ! आपने ही राम-शरीर को धारण किया और इस शरीर को धारण करके लड़ाई के मैदान में रावण के किरीटमंडित शिरों की दश दिशाओं के स्वामियों को बलि दी। 'दशमुखमौलिवलिम्' इस पद की व्युत्पत्ति 'दशमुखस्य ये मौलयः तान्येव बलिम्'। अर्थात् रावण के किरीटमण्डित शिर ही बलि हैं। यद्यपि मौलि शब्द सिर तथा किरीट दोनों का वाचक है, फिर भी चूंकि बलि मांस की दी जाती है, अतएव मौलि शब्द के द्वारा 'मौलिमण्डित शिर' यह अर्थ तात्स्थ्यलक्षणा के द्वारा स्वीकार किया जाता है। अर्थात् रावण के शिरों को काटकर श्रीभगवान् ने रामावतार में दिगीशों (दिक्पालों) को बलि चढ़ाया, जिससे कि संसार में राक्षसों के द्वारा बढ़े हुए उत्पात की शान्ति हो जाय। राक्षसों द्वारा होने वाले उत्पातों की शान्ति के लिए मांस की बलि भी दी जाती है।

रावण के शिरों की बलि दिक्पालों को अत्यन्त अभिप्रेत थी, क्योंकि रावण का वध हो जाने से वह बलि लोकाभिराम थी। इस बात को जयदेव कवि ने 'दिक्पति-कमनीयम्' एवं 'रमणीयम्' इन दो पदों के द्वारा अभिव्यक्त किया है। दिक्पालों की संख्या दश हैं तथा रावण के किरीटमण्डित शिरों की भी संख्या दश ही हैं। इसलिए भी दिक्पालों को यह बलि अत्यन्त कमनीय थी।

इस पद के नायक धीरोदात्त नायक हैं। रसरत्नकोश ग्रन्थ में धीरोदात्त नायक का लक्षण निम्नांकित बतलाया गया है—

'कृपावानतिगम्भीरो विनीतश्चाविकत्थनः।
धीरोदात्तो स विज्ञेयो रामो दाशरथिर्यथा'॥

अर्थात् धीरोदात्त नायक स्वाश्रित जनों पर कृपा करने वाला, अत्यन्त गम्भीर स्वभाव वाला, विनयावनत रहने वाला तथा अपनी स्वयं प्रशंसा नहीं करने वाला होता है। उदाहरणार्थ दाशरथी श्रीराम।

इस पद में जाति अलङ्कार है॥ ७॥

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम्
हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम्।
केशव धृतहलधररूप
जय जगदीश हरे॥ ८॥

अनुवाद—हे जगत्स्वामिन् ! श्रीहरे ! बलदेव रूप धारण करने वाले भगवन्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

केशव ! आप अपने शुभ्र शरीर पर हल से मारे जाने के भय से आयी हुई यमुना के जल की कान्ति के समान कान्ति वाले नीलवर्ण का वस्त्र धारण करते हैं ॥ ८ ॥

अथ बलदेवः । 'धृतहलधररूप' इति ध्रुवे विशेषः । वहसीति । अत्र यद्यपि 'रामो रामश्च कृष्णश्च' इति कृष्णचरित्रं वर्णनीयं तथापि कृष्णस्यैवैते दशापीति कृष्णस्य नायकत्वेन वर्णनीये बलदेवोऽपि दशंसु गणितः । तथा चोक्तम्—'वनजौ वनजौ खर्वस्त्रिरामी सतपोऽतपः' इति । हे राम ! त्वं नीलं वसनं वहसि धत्से । किं लक्षणंम् ? जलदाभं मेचकम् । क्व ? विशदे शुभ्रे वपुषि । तच्च यमुनयोपमीयते । हलहतिभयेन त्वामेव सेवितुमागता यमुनेव । तदिवाभातीति तदाभम् । धवलमेचकसङ्गत्या प्रयागत्वे तन्मूर्तेः पापहारित्वं कामदत्वं च व्यञ्जितम् । वहसीत्यत्र धीरललितो नायकः । तल्लक्षणम्—'कान्तापरवशो धीरललितो निश्चितो मृदुः' । अथवा—शृङ्गारी नायकः । तल्लक्षणं सङ्गीतराजे रसरत्नकोशे—'शृङ्गारी नायकस्त्वन्यः पञ्चमः कथ्यते यथा । विलासवाक्कायशीलः सुभगः स्थिरवाग्युवा । गतिः सधैर्या दृष्टिश्च सविलासस्मितं वचः' ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद का महाकवि जयदेव श्रीभगवान् के बलदेव रूप का वर्णन कर रहे हैं । इस पद के ध्रुव पद की यह विशेषता है कि इसमें 'धृतहलधररूप' यह विशेषण जुड़ जायेगा । इस विशेषण के द्वारा श्रीजयदेव कवि कह रहे हैं कि श्रीभगवान् ने ही बलराम रूप धारण किया था । इस रूप में श्रीभगवान् हल नामक अस्त्र-विशेष को धारण करते हैं ।

बलरामजी का रूप गोरा था । इसीलिए कवि उनको 'विशदवपु' कहते हैं । बलरामजी नील-हरित वर्ण का वस्त्र धारण करते थे । कवि उनके वस्त्र को ज़लदाभ कहते हैं । जल से भरे कृष्ण वर्ण के मेघ को जलद कहते हैं । 'जलदस्य आभा इवाभा यस्य तम्' यह 'जलदाभ' पद का विग्रह है । जलद कृषक के नयनों को तृप्त करने वाला होता है । बलरामजी का वस्त्र भी भक्तों की अभिलाषा को पूर्ण करके उनको आनन्द प्रदान करता है ।

बलरामजी के वस्त्र की दूसरी विशेषता बतलाते हुए कवि कहते हैं—'हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम्' । इस विशेषण के साथ एक पौराणिक कथा का सम्बन्ध है । एक बार बलरामजी वृन्दावन गये । मदिरापान करके गोपियों के साथ क्रीड़ा करने के लिए उन्होंने यमुना को बुलाया । यमुना ने यह समझकर उनका अनादर कर दिया कि इस समय ये मदिरापान करने के कारण मदमत्त हो गये हैं । इसीलिए यमुना नहीं आयीं । यमुना के इस गर्व को दूर करने के लिए बलरामजी ने अपने हल नामक आयुध के द्वारा यमुना को घसीटा तो डर कर यमुना आकर उनकी क्रीड़ा में सम्मिलित हो गयीं । इस बात को ही बतलाने के लिए कवि कहते हैं—'हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम्' ।—'हलेन या हतिः तद्भीत्या मीलिता या यमुना तस्या आभा इव आभा यस्य तत्' । अर्थात् हल के द्वारा मारे जाने के भय से बलरामजी की सेवा करने के लिए आयी हुई यमुना के जल के समान आभा वाले नील वर्ण के वस्त्र को धारण करने वाले आप हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिस प्रकार प्रयाग में धवल वर्ण के गङ्गाजल के साथ यमुना के नीलवर्ण के जल के मिलने पर अत्यधिक शोभा उत्पन्न होती है, उस जल में स्नान करने वालों के पाप विनष्ट हो जाते हैं तथा सम्पूर्ण अभिलाषाओं की पूर्ति हो जाती है, उसी तरह गौरवर्ण के बलरामजी के शरीर का नीलवर्ण के वस्त्र के साथ संयोग हो जाने से वह सभी पापतापों का विनाशक है।

इस पद के नायक श्रीबलरामजी धीरललित नायक हैं।

'कान्तापरवशो धीरललितो निश्चितो मदुः' अर्थात् धीरललित नायक कान्तापर-वश, चिन्तारहित तथा मृदु स्वभाव वाला होता है। रसरत्नकोश के अनुसार श्रीबलरामजी शृङ्गारी नायक की कोटि में आते हैं। रसरत्नकोश में शृङ्गारी नायक का स्वरूप निम्न प्रकार से बतलाया गया है—

'शृङ्गारी नायकस्त्वन्यः पञ्चमः कथ्यते यथा।
विलासवाक्कायशीलः सुगमः स्थिरवाग्युवा।
गतिः सधैर्या दृष्टिश्च सविलासस्मितं वचः'॥

अर्थात् धीरोदात्त, धीरललित, धीरोद्धत एवं धीरप्रशान्त इन चारों से भिन्न पाँचवें प्रकार का नायक शृङ्गारी कहलाता है। वह स्वभावतः विलासयुक्त वाणी तथा शरीर वाला होता है। देखने में सुन्दर, स्थिरवाणी वाला, युवावस्था वाला, स्थिर बुद्धि तथा दृष्टिवाला एवं विलासपूर्वक मुस्कुराकर बोलने वाला होता है॥ ८॥

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्
सदयहृदय दर्शितपशुघातम्।
केशव धृतबुद्धशरीर
जय जगदीश हरे॥ ९॥

अनुवाद—हे जगत् के स्वामिन्! श्रीहरे! बुद्ध शरीर धारण करने वाले भगवन् केशव! आपकी जय हो। आपने दयायुक्त हृदय के कारण यज्ञविधानों के द्वारा पशुओं की हिंसा देखकर श्रुति-समूह की निन्दा की॥ ९॥

अथ बुद्धावतारः। 'केशव धृतबुद्धशरीर' इति ध्रुवे विशेषः। निन्दसिति। हे सदयहृदय! त्वं यज्ञविधेः श्रुतिजातं ऋतुविधानसम्बन्धि वेदवाक्यसमूहं निन्दसि। किम्भूतम्? दर्शितपशुघातमुपदिष्टगवाश्वादिमारणम्। अहहेत्यद्भुते। परमेश्वरास्यैवोपदेष्टृत्वाविज्यत्वात्तत्फलदातृत्वाच्च किमपि प्रयोजनमभिसन्धाय तन्निन्दा नाश्चर्यम्। निन्दसीत्यत्र धीरशान्तो नायकः। तल्लक्षणम्—'शान्तो विनीतो धीरश्च धीरशान्तो द्विजो वणिक्'॥ ९॥

भावप्रकाशिका—इस नवें पद्य में जयदेव कवि श्रीभगवान् के बुद्धावतार का वर्णन कर रहे हैं। इस पद्य में श्रीभगवान् के एक अद्भुत चरित्र का वर्णन कवि कर रहे हैं। श्रीभगवान् के सभी अवतारों का एक प्रयोजन यह भी रहता है कि वैदिक धर्मों की प्रतिष्ठा जगत् में की जाय। वेद श्रीभगवान् के श्वासस्वरूप हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'तस्य निःश्वसितं वेदाः' यह श्रुति इसी अर्थ का प्रतिपादन करती है। वेदों को स्वयं श्रीभगवान् की आज्ञास्वरूप माना जाता है। किसी भी अज्ञात अर्थ के निर्णय में वेदों को परं प्रमाण माना जाता है। किन्तु श्रीभगवान् ने जब बुद्धावतार ग्रहण किया तो इस अवतार में इन्होंने वेदों की निन्दा की। यह एक आश्चर्य की बात है और आपने उन वेदवाक्यों की निन्दा की जो वेदवाक्य यज्ञों का विधान करते हैं। यज्ञ स्वयं श्रीभगवान् का रूप है। फिर भी उसकी निन्दा श्रीभगवान् ने क्यों की? इस शंका का समाधान करते हुए श्रीजयदेव कवि कहते हैं—'सदयहृदय दर्शितपशुघातम्' अर्थात् यज्ञों में पशुओं की हिंसा का विधान किया गया है। अश्वमेधादि यज्ञों में सैकड़ों पशुओं की हिंसा करनी पड़ती है। यज्ञ में की जाने वाली पशुओं की हिंसा को देखकर श्रीभगवान् के हृदय में दया का भाव आविर्भूत हो गया और अपने दया के परतन्त्र होने के कारण श्रीभगवान् ने बौद्धावतार में यज्ञप्रतिपादक वेदवाक्यों की निन्दा की।

इस पद में वर्णित भगवान् बुद्ध धीरप्रशान्त नायक हैं। धीरप्रशान्त नायक का स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है—'शान्तो विनीतो धीरश्च धीरशान्तो द्विजो वणिक्'।

अर्थात् धीरप्रशान्त नायक ब्राह्मण अथवा वणिक् जाति का होता है। वह शान्त स्वभाव वाला, विनयावनत तथा धैर्यसम्पन्न होता है ॥ ९ ॥

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालं
धूमकेतुमिव किमपि करालम्।
केशव धृतकल्किशरीर
जय जगदीश हरे ॥ १० ॥

अनुवाद—हे कल्कि शरीर धारण करने वाले! जगत्स्वामिन्! श्रीहरे! भगवन् केशव! आप मलेच्छ-समूह का विनाश करने के लिए धूमकेतु के समान भयङ्कर कृपाण धारण करते हैं ॥ १० ॥

अथ कल्क्यवतारः। 'धृतकल्किशरीर' इति ध्रुवे विशेषः। म्लेच्छेति। हे हरे! म्लेच्छनिवहनिधने म्लेच्छसमूहवधनिमित्तम्। अपिः निश्चये। त्वं करवालं खड्गं कलयसि इति वितर्कयामि। 'किं' वितर्के। अन्यथा चक्रादिषु सत्सु कथं खड्गस्यैव धारणम्। किम्भूतं करवालम्? भीषणम्। किमिव? धूमकेतुमिव। म्लेच्छानामुत्पातशंसिनं धूमकेतुं ताराविशेषमिव। अथवा—धूमः केतुश्चिह्नं यस्य सः तम्। म्लेच्छकुलविनाशपिशुनमिव। उत्पाते हि वह्निर्धूमशिखो भवति, स तु प्रायेण रत्नमयो भवति। खड्गतेजो हि नीलभास्वरं भवति, अत उभयसाम्येनोपमा। म्लेच्छेत्यत्र धीरोद्धतो नायकः। तल्लक्षणमुक्तं प्राक् ॥ १० ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में महाकवि जयदेव श्रीभगवान् के कल्कि अवतार की स्तुति करते हैं। श्रीभगवान् के प्रमुख दस अवतारों में कल्कि अवतार का अन्तिम स्थान है। श्रीभगवान् चाहे जो भी रूप ग्रहण करें, उन सभी अवतारों में उनका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगत्स्वामित्व, भक्तजनों के पाप-तापविनाशकत्व के कारण श्रीहरित्व बना ही रहता है। ये सभी अवतार श्रीभगवान् केशव के ही हैं। उन्होंने कल्कि अवतार ग्रहण किया। इस अवतार का विशेष प्रयोजन है—म्लेच्छ-समुदाय का विनाश करना। इस अवतार में भगवान् ने म्लेच्छों का विनाश किया। बुद्ध अवतार तो दया-प्रधान अवतार था, किन्तु इस अवतार में श्रीभगवान् कठोर बन गये। पृथिवी पर अनेक प्रकार का अत्याचार करने वाले म्लेच्छों का विनाश किया आपने।

यद्यपि श्रीभगवान् के सुदर्शन चक्र आदि अस्त्र तो उनकी इच्छामात्र से सभी अवतारों में उपस्थित होते रहते हैं, किन्तु इस अवतार में भगवान् ने चक्रादि को नहीं अपनाकर भयङ्कर कृपाण को शस्त्र के रूप में अपनाया। 'किमपि' पद के द्वारा कवि ने उस कृपाण के भयङ्करत्वातिशय्य को सूचित किया है।

श्रीभगवान् के कृपाण की करालता का अतिशय्य सूचित करने के लिए कवि कृपाण की उपमा धूमकेतु से देते हैं। धूमकेतु एक तारा-विशेष का नाम है, जिसे लोक में पुच्छलतारा भी कहा जाता है। इस पुच्छलतारा के उदित होने पर महान् उपद्रव होने की शङ्का की जाती है। धूमकेतु तारा लम्बे आकार का होता है तथा तलवार भी लम्बी होती है। यह श्रीभगवान् का कृपाणरूपी धूमकेतु म्लेच्छों के विनाश की सूचना देने वाला है।

धूमकेतु शब्द अग्नि का भी वाचक है। 'धूमः केतुः (चिह्नं) यस्यासौ धूमकेतुः तमिव।' यह अग्नि के वाचक धूमकेतु शब्द का विग्रह है। यद्यपि अग्नि स्वभावतः रत्न के समान देदीप्यमान होता है किन्तु उत्पात की वेला में अग्नि धूमकेतु हो जाता है। अतएव अग्नि अर्थ करने पर भी धूमकेतु शब्द म्लेच्छ-समुदाय के अनिष्ट को सूचित करता है।

कृपाण का तेज भी नील तथा भास्कर होता है, उसी तरह धूमकेतु तारा तथा औत्पातिक अग्नि भी। फलतः दोनों की समता होने से यहाँ पर उपमालङ्कार है। इस श्लोक में वर्णित नायक धीरोद्धत नायक हैं। धीरोद्धत नायक का लक्षण छठे श्लोक की रसिकप्रिया तथा भावप्रकाशिका में विवेचित है ॥ १० ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम्
शृणु सुखदं शुभदं भवसारम्।
केशव धृतदशविधरूप
जय जगदीश हरे ॥ ११ ॥

अनुवाद—हे दश रूपों को धारण करने वाले, जगत्स्वामिन्! श्रीहरे! केशव भगवन्! आप मुझ जयदेव कवि की औदार्यमयी, संसार के सारस्वरूप, सुखप्रद एवं कल्याणप्रद स्तुति को सुनें ॥ ११ ॥

इदानीं दशभिरवतारैः कृतविस्तारभेदेन श्रीकृष्णपरत्वेनोपसंहरन्नाह । तथा च वक्ष्यति 'वेदानुद्धरते' इत्यादि । 'केशव धृतदशविधरूप, जय जगदीश हरे' इति ध्रुवे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेषः । श्रीजयदेवकवेरिति । हे धृतदशविधरूप ! जयदेवकवेर्मम इदं स्तोत्ररूपम् उदितं भणितं शृणु मामकीनोऽयं मां स्तौतीति बुद्ध्यावधारय । किम्भूतम् ? उदारम् । झटिति पदार्थार्पकम् । पुनश्च भवसारम् । भवे संसारे सारं साररूपम् । अथवा—भवोच्छेदक-हेतुमध्ये सारम्; मध्यमपदलोपित्वात् । अत एव सुखदम्; सद्यःपरनिर्वृतिहेतुत्वात् । अत एव शुभदम्; शिवेतरक्षतिहेतुत्वात् । अत्र शान्तो रसः । पर्यायोक्तिरलङ्कारः ॥११॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में महाकवि जयदेव कह रहे हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण ने ही उपर्युक्त मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलराम, बुद्ध तथा कल्कि शरीरों को धारण करके तत्तत् प्रकार से लोकोपकार कार्य को सम्पादित किया। ये सभी रूप श्रीकेशव भगवान् के ही हैं। श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हुए जयदेव कवि कहते हैं कि भगवन् ! मैंने आपकी यह उदार अर्थात् सरलभाषा में संसार के सारस्वरूप होने के कारण मोक्षप्रद, किञ्च सुखप्रद एवं कल्याणप्रद स्तुति की है। अतएव आप इसका श्रवण करें तथा अपने मन में यह निश्चय करें कि मेरा भक्तकवि जयदेव मेरी इस प्रकार की स्तुति कर रहा है।

'सुखदं' पद के द्वारा कवि ने यह बतलाया है कि काव्य के सद्यःपरनिर्वृतिकारक होने के कारण यह स्तुतिकाव्य श्रवण काल में ही परमानन्द प्रदान करने वाला है तथा शुभद होने के कारण परमात्म-प्राप्ति के समस्त प्रतिबन्धकों का विनाश करने वाला है। 'भवसारम्' पद के द्वारा यह भी सूचित किया गया है कि संसाररूपी सागर को पार करने के जितने भी साधन हैं, उन सबों में प्रधान है। 'भवच्छेदकहेतु-मध्ये सारम्'। यह मध्यमपदलोपी समास 'भवसारम्' पद में समझना चाहिए।

इस श्लोक में शान्तरस तथा पर्यायोक्ति अलङ्कार हैं॥ ११ ॥

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान्मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥ १२ ॥

अनुवाद—वेदों का उद्धार करने वाले, जगत् को धारण करने वाले, भूमण्डल का उद्धार करने वाले, हिरण्यकशिपु दैत्य का विदारण करने वाले, बलि को छलने वाले, क्षत्रियों का विनाश करने वाले, रावण पर विजय प्राप्त करने वाले, हल नामक आयुध को धारण करने वाले, करुणा का विस्तार करने वाले तथा म्लेच्छों का विनाश करने वाले दशशरीरधारी आप श्रीकृष्ण भगवान् को नमस्कार है ॥ १२ ॥

इदानीं दशानामप्यवताराणामभेदं निरूप्य तत्तद्रूपं श्रीकृष्णं प्रणमति—वेदानुद्धरत इति । हे हरे ! तुभ्यं कृष्णाय नमः । वेदानुद्धरत इत्यादि मीनावतारादिपदव्याख्यानेनैव निगदव्याख्यातम् । वृत्तमिदं शार्दूलविक्रीडितम् । दीपकोऽलङ्कारः । 'वेदानुद्धरते' इत्यत्र तदेषूक्ता नायकाः । अत्र प्रलयपयोधीत्याद्येकादशस्वपि पदेषु कीर्तिधवलं नाम छन्दः । तल्लक्षणं यथा—'अयुजि पदे द्वादशैव युजि तु यस्य हि दश वाष्ट मात्राश्चेत् । परमपि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पदयुगमेवं तं कीर्तिधवलमिह धीराः प्राहुः ॥' ध्रुवपदे तु 'षताषचौ भ्रमरः' इति भ्रमरो नाम छन्दः। 'बालभुजङ्गमललितम्' इति छन्दश्चूडामणिरपि। 'छन्दसा कीर्तिपूर्वेण धवलेन विनिर्मितः। पदान्तभोगरुचिरस्ततः पाटस्वराश्चितः॥ दशावतारकीर्त्याढ्यो धवलोऽयं प्रबन्धराट्। रागोऽत्र मध्यमादिः स्यादादितालो विलम्बितः॥ लयः स्यान्मागधी रीतिः शृङ्गारोऽत्र रसः स्मृतः। कीर्तनं वासुदेवस्य विनियोगो नृपोत्सवे॥' ॥१२॥

इति दशावतारकीर्तिधवलो नाम प्रथमः प्रबन्धः।

भावप्रकाशिका—इस गीतगोविन्द काव्य के प्रथम सर्ग के प्रथम प्रबन्ध के दश पद्यों में श्रीजयदेव कवि ने भगवान् श्रीकृष्ण के तत्-तत् अवतारों की लीलाओं का मनोज्ञ वर्णन किया है। श्रीभगवान् के मत्स्यादि अवतार तो अंशावतार हैं, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार तो परिपूर्ण है। वे ही सब अवतारों के अवतारी हैं। उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार करते हुए कवि कहते हैं—'कृष्णाय तुभ्यं नमः' अर्थात् आप श्रीकृष्ण भगवान् को नमस्कार है। भगवान् श्रीकृष्ण ने मीन, कच्छप आदि दश दिव्य आकृतियों को धारण किया—इस बात को कवि 'दशाकृतिकृते' इस पद के द्वारा कहते हैं।

श्रीभगवान् ने जिन प्रयोजनों की सिद्धि के लिए तत्-तत् अवतारों को धारण किया उन सभी प्रयोजनों को बतलाते हुए श्रीजयदेव कवि कहते हैं—

(१) 'वेदानुद्धरते' अर्थात् मत्स्यावतार धारण करके भगवान् ने वेदों का उद्धार किया। हयग्रीव नामक दैत्य ने वेदों का प्रलयकाल में अपहरण कर लिया था। मत्स्यावतारधारी भगवान् श्रीकृष्ण ने उस दैत्य का वध करके वेदों का उद्धार किया।

(२) कच्छपावतार धारण करके भगवान् ने सम्पूर्ण जगत् का भार अपने पृष्ठ पर धारण किया। इस अर्थ को श्रीजयदेव कवि ने 'जगन्निवहते' पद द्वारा कहा है।

(३) वराहावतार में श्रीभगवान् हिरण्याक्ष के द्वारा चुराकर पाताललोक में ले जायी गयी पृथ्वी को अपने दाँतों के अग्रभाग पर रखकर ऊपर उठा लाए। इस बात को महाकवि ने 'भूगोलमुद्बिभ्रते' इस पद के द्वारा बतलाया है।

(४) नृसिंहावतार में श्रीभगवान् ने दैत्यराज हिरण्यकशिपु का विदारण किया और प्रह्लाद की रक्षा की—इसे गीतगोविन्दकार ने 'दैत्यं दारयते' पद द्वारा कहा है।

(५) वामनावतार धारण करके भगवान् ने बलि को छला। उन्होंने तीन पग पृथ्वी के बहाने तीन डगों में सम्पूर्ण लोकों को ही नाप लिया तथा बलि को पाताल लोक में प्रेषित कर स्वर्ग का राज्य इन्द्र को प्रदान किया। 'बलिं छलयते' इस अंश से कवि ने इसी अर्थ को कहा है।

(६) श्रीपरशुरामावतार में भगवान् ने दुष्ट क्षत्रिय राजाओं का विनाश किया। इस बात को 'क्षत्रक्षयं कुर्वते' इस अंश से कहा गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(७) श्रीरामावतार में भगवान् ने अत्याचारी लोकरावण रावण का वध किया—इस बात को 'पौलस्त्यं जयते' वाक्यांश द्वारा कहा गया है।

(८) 'हलं कलयते' पद द्वारा बतलाया गया है कि श्रीबलराम रूप धारण करके भगवान् ने अपने आयुध-विशेष रूप में हल को धारण किया।

(९) 'कारुण्यमातन्वते' इस वाक्यांश के द्वारा जयदेव कवि ने बतलाया है कि बौद्धावतार में भगवान् ने अपनी करुणा का विस्तार किया। तत्-तत् वेदोक्त यज्ञों में अनेक प्रकार के पशुओं का वध देखकर श्रीभगवान् के हृदय में दया का संचार हो गया। उन्होंने अपनी आज्ञारूप यज्ञप्रतिपादक वेदों की निन्दा की तथा सर्वत्र अहिंसा का प्रचार किया।

(१०) श्रीभगवान् के दश प्रमुख अवतारों में उनका सबसे अन्तिम अवतार कल्कि अवतार है। इस अवतार से आपने अपने हाथ में भयंकर तलवार लेकर म्लेच्छों का विनाश किया—इस अर्थ को महाकवि ने 'म्लेच्छान् मूर्च्छयते' पद से कहा है।

इस प्रकार दश प्रमुख अवतार धारण करने वाले हे भगवन् श्रीकृष्ण ! आपको नमस्कार हैं। यह कवि जयदेव अपने इस पद्य में कहते हैं।

विशेष—पूर्वकथित ग्यारह पद्यों में कीर्तिधवल नामक छन्द है।

'अयुजिपदे द्वादशैव युजि तु यस्य हि दश वाष्ट मात्राश्चेत्।
परमपि पदयुगमेवं तं कीर्तिधवलमिह धीराः प्राहुः'॥

अर्थात् जिस छन्द के प्रथम तथा तृतीय पादों में बारह मात्राएँ तथा द्वितीय एवं चतुर्थ पादों में दश मात्राएँ होती हैं उस छन्द को धीरों ने कीर्तिधवल कहा है। इन सबों के ध्रुव पद में भ्रमर छन्द है। किन्तु छन्दश्चूडामणि में कहा गया है कि इसमें 'बाला भुजङ्गमललित' नामक छन्द है।

इस प्रथम प्रबन्ध की विशेषताओं को बतलाते हुए रसिकप्रियाकार का कहना है कि इस प्रबन्ध में कीर्तिधवल छन्द, पाटस्वर, इसमें मध्यमादि राग, आदिताल, विलम्बित लय, मागधी रीति तथा शृङ्गार रस हैं। इसमें श्रीवासुदेव भगवान् के यश का वर्णन है तथा इसका नृपोत्सव में विनियोग होता है॥ १२॥

गुर्जरीरागनिःसारतालाभ्यां गीयते ॥ प्रबन्धः २ ॥

अनुवाद—गुर्जरी राग तथा निःसारताल से गाया जाने वाला द्वितीय प्रबन्ध।

भावप्रकाशिका—गुर्जरी राग के स्वरूप का निरूपण करते हुए गीतगोविन्द के पदद्योतनिकाकार कहते हैं—'श्यामास्तु केशी मलयद्रुमाणां मृदूल्लसत्पल्लवतल्पयन्ती। श्रुतेः स्वराणां दधती विभागं तन्त्रीमुखा दक्षिणगुर्जरीया'।

अर्थात् दक्षिणगुर्जरी राग का यह स्वरूप है कि वह युवती, मनोहर केशों वाली, चन्दन वृक्ष के कोमल पल्लवों की अपनी शय्या बनाने वाली, सुनने में स्वरों के विभाग से युक्त तथा तन्त्री(वीणा)प्रधान नायिकास्वरूप है।

निःसार ताल के स्वरूप को बतलाते हुए गीतगोविन्द के बालबोधिनीकार का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहना है कि—'द्रुतद्वन्द्वाल्लघुद्वन्द्वं मिस्सारः' अर्थात् निस्सार में दो ताल द्रुत एवं दो ताल लघु होते हैं।

रसमञ्जरीकार का कहना है कि इस द्वितीय प्रबन्ध का राग प्रतिमंठ है।

श्रितकमलाकुचमण्डल,
धृतकुण्डल ए ।
कलितललितवनमाल,
जय जय देव हरे ॥ ध्रुवपदम् ॥ १ ॥

अनुवाद—हे लक्ष्मीजी के स्तनमण्डल का आश्रयण करने वाले, कुण्डल धारण करने वाले तथा मनोहर वनमाला धारण करने वाले भगवन्! आपकी जय हो, जय हो ॥ १ ॥

इदानीं वर्ण्यमानं श्रीकृष्णं स्वरूपनिरूपणद्वारा मङ्गलगीतेन स्तौति। तत्रेदमाद्यं पदं ललितरागेण लघ्वादिताल इति आदिताले गीयते ॥ 'गीतमुद्ग्राह्यते येन स उद्ग्राहः प्रकीर्तितः। आभोगस्त्वन्तिम इति ध्रुवत्वाच्च ध्रुवः स्मृतः ॥' उद्ग्राहादिधातूनां विश्राममूमित्वात्। अन्यानि च उद्ग्राहादिप्रतिरूपकाणि पदानीति प्रतिबोद्धव्यम्। एवमन्यास्वष्टपदीषु ज्ञेयम् ॥ श्रितकमलेति। अत्र 'ए'काराद्यालापो ज्ञेयः। 'जय जय देव हरे' इत्यत्र ध्रुवः। श्रितं कमलायाः कुचमण्डलं येन स तथा तस्य सम्बोधनम्। धृते कुण्डले येन स तथा तस्य सम्बुद्धिः। 'ए' इति एतदन्ते रागपूर्त्यै गानवेलायां प्रतिपदं एतावत्पदम्। 'जय जय देव हरे' इति सर्वत्र ध्रुवपदम्। कलिता धृता ललिता मनोहरा आर्द्रा क्लिन्ना वनमाला पुष्पदाम येन। 'वनमम्भसि कानने' इति तज्जन्यत्वात्पुष्पाणि कमलानि वा तेषां माला ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—गीतगोविन्द काव्य के प्रथम प्रबन्ध में श्रीभगवान् की केलियों (क्रीडाओं) का वर्णन किया गया है, किन्तु नायक के उत्कर्ष के बिना केलियाँ नहीं हो सकती हैं। अतएव महाकवि जयदेव अब इस भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूपनिरूपण द्वारा उनकी स्तुति मङ्गलगीतों से कर रहे हैं। इस श्लोक के प्रथम तीन पदों में तीन सम्बोधन भगवान् के दिये गये हैं। एकार तो आलाप मात्र है। इस श्लोक का प्रथम सम्बोधन 'श्रितकमलाकुचमण्डल' है। 'श्रितं कमलायाः कुचमण्डलं येनाऽसौ तत्सम्बुद्धौ श्रितकमलाकुचमण्डल'। यह इस पद का विग्रह है। अर्थात् श्रीलक्ष्मीजी के स्तनमण्डल का सेवन करने वाले हे भगवन्! इस पद के द्वारा इस अर्थ को सूचित किया गया है कि श्रीभगवान् लक्ष्मीजी के प्रिय हैं तथा श्रीलक्ष्मीजी उनकी प्रियतमा।

श्रीभगवान् के अनेक आभूषणों में कुण्डल का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। मकराकृत कुण्डल से श्रीभगवान् के मुखकमल की शोभा बहुत ही बढ़ जाती है। श्रीभगवान् मनोहर वनमाला को धारण करते हैं। रसिकप्रियाकार का कहना है कि वन शब्द जल का वाचक है। जल से उत्पन्न होने वाले कमलपुष्पों की माला को यहाँ वनमाला कहा गया है। पैर पर्यन्त लटकने वाली माला को वनमाला कहते हैं। वनमाला पत्रों एवं पुष्पों से बनी हुई होती है, यह विश्वकोशकार कहते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'आपादलम्बिनी माला वनमालेति तां विदुः ।
'पत्रपुष्पमयी माला वनमाला प्रकीर्तिता' ।।

रसमञ्जरीकार इसी प्रकार की माला को वनमाला कहते हैं ।

उपर्युक्त तीनों विशेषणों से विशिष्ट दिव्यगुणों से युक्त हे श्रीहरे ! आपकी जय हो ! जय हो !! ।। १ ।।

दिनमणिमण्डलमण्डन,
भवखण्डन ए ।
मुनिजनमानसहंस,
जय जय देव हरे ।। २ ।।

अनुवाद—हे सूर्यमण्डल के अलङ्कारस्वरूप, भवबाधा को दूर करने वाले तथा मुनिजनों के मन में विचरण करने वाले हंस ! दिव्य गुण युक्त श्रीहरे ! आपकी जय हो ! जय हो !! ।। २ ।।

दिनमणीति अत्रालापो बोद्धव्यः । मुनिजनेति । हे दिनमणिमण्डलमण्डन भानुमण्डलालङ्करण ! सवितृमण्डलमध्यवर्तित्वात् । तस्य सम्बुद्धिः । हे भवखण्डन संसारच्छेदक । 'नन्दिग्रहि—' (पा० ३।१।१३४) इत्यादिना ल्युः । 'ए' इति गानपदम् । मुनिजनेत्यादि ध्रुवः । मुनिजनानां मानसानीव मानसानि तेषु हंस इव हंसः । अथ मुनीनां मानसे ध्येयत्वाद्धंसः परब्रह्म । मुनिमानस इति वक्तव्ये 'जन'ग्रहणं लोकपर्यायः । जनो लोक इति पर्यायेत्यभिधाने यावन्तो मुनय इति ।। २ ।।

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् का सूर्यमण्डल के भीतर अन्तर्यामी रूप से निवास है । इसलिए कहा गया है—

'ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती, नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः' ।

अर्थात् सूर्यमण्डल के भीतर अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाले, कमल के आसन पर बैठे हुए भगवान् नारायण का ध्यान करना चाहिए । इसी अर्थ को महाकवि 'दिनमणिमण्डलमण्डन' इस सम्बुद्धि पद के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं । इस पद का अर्थ है—सूर्यमण्डल को अलंकृत करने वाले भगवन् !

संसार एक बाधास्वरूप है । इस सांसारिक बन्धन को ही दूर करके जीव अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सकता है । जीव के वास्तविक स्वरूप को बतलाते हुए छान्दोग्य श्रुति में कहा गया है—'एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः' । अर्थात् यह आत्मा स्वभाव से कर्म के बन्धन से रहित, जरा, मृत्यु, शोक, भूख तथा प्यास से रहित सत्यकाम तथा सत्यसङ्कल्प है । किन्तु जब तक उसको संसार का बन्धन रहता है, तब तक उसके ये आठों गुण तिरोहित रहते हैं । संसार का बन्धन समाप्त हो जाने पर उसके ये आठों गुण आविर्भूत हो जाते हैं । श्रीभगवान् अपने भक्तों पर कृपा करके उनके संसार के बन्धन को दूर करते हैं । इसी अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए कवि ने उन्हें भवखण्डन कहा है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीभगवान् को जयदेव कवि ने इस श्लोक के तीसरे पाद में 'मुनिजनमानसहंस' कहा है। 'मुनिजनानां मानसानि इव मानसानि तेषु हंस इव हंसः' यह इस सम्बुद्धि पद का विग्रह है। इसका अभिप्राय यह है कि सुना जाता है कि मानसरोवर में विहार करने वाले हंसों के समान मुनियों का मन भी अत्यन्त स्वच्छ होने के कारण मान-सरोवर के समान है। मुनिजनों के मनरूपी मानसरोवर में श्रीभगवान् विचरण किया करते हैं। अर्थात् संसार की ओर से विरक्त पुरुष सर्वदा परमात्मा का चिन्तन अपने मन में किया करते हैं।

इस प्रकार के उपर्युक्त तीनों गुणों से विशिष्ट श्रीभगवान् दिव्य गुणों से सम्पन्न हैं। अतएव उन्हें देव शब्द से अभिहित किया जाता है। जयदेव कवि अत्यन्त आदर के साथ श्रीभगवान् का जय-जयकार मना रहे हैं। यहाँ पर आदरातिशय्य का द्योतन करने के लिए 'जय' इस क्रियापद की आवृत्ति की गयी है॥ २॥

कालियविषधरगञ्जन,
जनरञ्जन ए।
यदुकुलनलिनदिनेश,
जय जय देव हरे॥ ३॥

अनुवाद—हे कालिय नामक सर्प का दमन करने वाले, अपने जनों को आह्लादित करने वाले तथा यदुकुलरूपी कमल के विकासार्थ सूर्य के समान हे दिव्यगुणसम्पन्न श्रीहरे! आपकी जय हो॥ ३॥

कालियेति। अत्रालापः—यदुकुलेति। हे कालियाभिधसर्पदमन! तद्घातित्वाज्जन-रञ्जन! बालेन महाबालेन महाविषधरदमनाज्जनानामाह्लादोऽभूत्। हे यदुकुलनलिन-दिनेश! यदुकुलं नलिनमिव तत्प्रकाशकत्वात्सूर्य इव। अत्र पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरं प्रति हेतुभाव इति ध्रुवः॥ ३॥

भावप्रकाशिका—श्रीकृष्ण भगवान् ने कालियदह में रहने वाले कालिय नामक सौ फणाओं वाले महाविषधर सर्प का दमन किया। इस बात को जयदेव कवि ने 'कालियविषधरगञ्जन' इस सम्बुद्धि पद के द्वारा अभिव्यक्त किया है। 'जनरञ्जन' इस सम्बुद्धि पद का अभिप्राय यह है कि महाबलशाली बालक ने इस महाविषधर का दमन किया। इस बात को सोचकर भगवान् के अपने लोगों को बड़ी ही प्रसन्नता हुई।

'यदुकुलनलिनदिनेश' इस सम्बुद्धि पद का अभिप्राय यह है कि यदुवंश एक कमल के समान है। जिस प्रकार सूर्य के उदित हो जाने पर कमल विकसित हो जाता है, उसी प्रकार श्रीभगवान् के द्वारा इस वंश में अवतार ग्रहण करने के कारण इस वंश की बड़ी ही उन्नति हुई।

इस प्रकार के गुणों वाले भगवान् दिव्य गुणों से युक्त हैं। उन श्रीभगवान् की जय हो।

इस श्लोक के प्रथम विशेषण के द्वारा श्रीभगवान् को अत्यन्त बलशाली, द्वितीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेषण के द्वारा श्रीभगवान् को नायकोचित जनाह्लादगुणसम्पन्न तथा तृतीय विशेषण के द्वारा कुलीन बतलाया गया है ॥ ३ ॥

मधुमुरनरकविनाशन,
गरुडासन ए ।
सुरकुलकेलिनिदान,
जय जय देव हरे ॥ ४ ॥

अनुवाद—हे मधु, मुर तथा नरक नामक दैत्यों का विनाश करने वाले, गरुड-वाहन, देवसमूह की क्रीडा के आदिकारणस्वरूप, दिव्यगुणसम्पन्न भगवन् ! आपकी जय हो ! जय हो !! ॥ ४ ॥

मधुमुरेति । अत्रालापः—सुरेति । मधुमुरनरकान्विनाशयति यस्तस्य सम्बोधनं—हे सुरकुलकेलिनिदान ! असुरवधात्तत्कारणत्वम् । इति ध्रुवः ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् ने मधु, मुर तथा नरक नामक दैत्यों का विनाश किया। इस बात को इस श्लोक के प्रथम पद के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है तथा वे गरुडवाहन है यह 'गरुडासन' इस पद से कहा गया है। 'गरुडः आसनं यस्य तत्सम्बुद्धौ' यह गरुडासन पद का विग्रह है। भगवान् ने असुरों का विनाश किया, इसीलिए वे देवसमूह के केलि करने के आदिकारण हैं।

इन तीनों गुणों से विशिष्ट तथा दिव्यगुणसम्पन्न भगवन् ! आपकी जय हो ॥ ४ ॥

अमलकमलदललोचन,
भवमोचन ए ।
त्रिभुवनभुवननिधान,
जय जय देव हरे ॥ ५ ॥

अनुवाद—हे स्वच्छ कमलदल के समान नेत्र वाले ! भक्तजनरक्षक ! त्रैलोक्य की समुत्पत्ति आदि के कारणस्वरूप दिव्यगुणसम्पन्न भगवन् ! आपकी जय हो ! जय हो !! ॥ ५ ॥

अमलेति । आलापः—त्रिभुवनेति । अमलकमलदले इव लोचने यस्य स तथा तस्य सम्बुद्धिः । अपरं च—हे भवमोचन हे संसारमोचन ! अथवा—भवं जन्म तस्मान्मोचनरूप जीवत्रातः । हे त्रिभुवनभवननिदान हे त्रिलोकीसमुत्पत्त्यादिकारण ! इति ध्रुवः ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीभगवान् के नेत्रों की सदृशता स्वच्छ कमलदल से बतलाते हुए कवि कहते हैं—'अमलकमलदललोचन'। 'अमले ये कमलदले ते इव लोचने यस्याऽसौ तथाविधः तद् सम्बुद्धौ' यह 'अमलकमलदललोचन' पद का विग्रह है। 'भवमोचन' यह भगवान् का दूसरा विशेषण है। भव शब्द से यहाँ पर जन्म विवक्षित है। उससे जीवों की रक्षा करने के भाव की अभिव्यक्ति होती है। श्रीभग-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वान् को त्रैलोक्यव्यापक बतलाते हुए कवि कहते हैं— 'त्रिभुवनभुवननिधान' । अर्थात् हे त्रैलोक्य रूपी भवन के निधिस्वरूप भगवन् ! अथवा भवन शब्द को 'भवतीति भवनम्' इस विग्रह के अनुसार सृष्टि का वाचक मानकर उसे पालन तथा संहार का भी उपलक्षण मान लिया जाय तथा 'निधान' शब्द को कारण का वाचक माना जाय तो 'त्रिभुवनभवननिधान' शब्द का अर्थ होगा कि हे त्रैलोक्य की सृष्टि, स्थिति तथा संहार करने वाले दिव्यगुणसम्पन्न भगवन् ! आपकी जय हो ॥ ५ ॥

जनकसुताकृतभूषण,
जितदूषण ए ।
समरशमितदशकण्ठ,
जय जय देव हरे ॥ ६ ॥

अनुवाद—सीताजी को समलंकृत करने वाले, दूषण नामक राक्षस पर विजय प्राप्त करने वाले तथा संग्राम में रावण का वध करने वाले दिव्यगुण श्रीहरे ! आपकी जय हो ! जय हो !! ॥ ६ ॥

जनकेति । अत्रालापः—समरेति । हे जनकसुताकृतभूषण ! जनकसुतायाः कृतं भूषणं येन । जितो दूषणो राक्षसो येन इति पदम् । हे समरशमितदशकण्ठ ! संहारितो रावणो येन इति ध्रुवः ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक के प्रथम पाद में कवि कह रहे हैं कि श्रीभगवान् ने रामावतार धारण कर जनकराज की पुत्री को अपने हाथों से मुखालङ्कार आदि से अलंकृत किया । 'जनकसुतायाः=सीतायाः, कृतं भूषणम्=मकरिकापत्रादिकं येनाऽसौ तत्सम्बुद्धौ' यह 'जनकसुताकृतभूषण' पद का विग्रह है । वनवासकाल में चित्रकूट नामक पर्वत पर निवास करते समय श्रीभगवान् ने खर, दूषण तथा त्रिशिरा नामक राक्षसों का विनाश किया। उसी अर्थ को अभिव्यक्त करते हुए कवि कह रहे हैं— 'जितदूषण !' 'जितः दूषणो येनाऽसौ तत्सम्बुद्धौ' यह जितदूषण पद का विग्रह है। अर्थात् दूषण नामक राक्षस को मारने वाले भगवन् ! श्रीरामावतार का सबसे बड़ा प्रयोजन था— राक्षस-राज रावण का संग्राम में वध करना । इस बात को अभिव्यक्त करते हुए कवि कह रहे हैं—समरशमितदशकण्ठः' । 'समरे शमितः=विनाशितः, दशकण्ठः=रावणो येनाऽसौ तत्सम्बुद्धौ' यह 'समरशमितदशकण्ठ' पद का विग्रह है । अर्थात् लड़ाई के मैदान में रावण का वध करने वाले दिव्य गुणों से सम्पन्न भगवन् ! आपकी जय हो ! जय हो !! ॥ ६ ॥

अभिनवजलधरसुन्दर,
धृतमन्दर ए ।
श्रीमुखचन्द्रचकोर,
जय जय देव हरे ॥ ७ ॥

अनुवाद—हे सजल मेघ के समान सुन्दर शरीर वाले, मन्दराचल पर्वत को धारण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने वाले तथा श्रीलक्ष्मीजी के मुखरूपी चन्द्रमा को सस्पृह नेत्रों से चकोर के समान देखने वाले दिव्यगुणसम्पन्न श्रीहरे ! आपकी जय हो ! जय हो !! ॥ ७ ॥

अभिनवेति । अत्रालापः—हे अभिनवजलधरसुन्दर, हे धृतमन्दर ! निगदव्याख्यानम् । इति पदम् । हे श्रीमुखचन्द्रचकोर ! श्रीमुखं चन्द्र इव तत्र चकोर इव; तन्मुखाधरसुधापानकरत्वात् । इति ध्रुवः ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीभगवान् के विष्णुरूप का वर्णन कवि कर रहे हैं। श्रीभगवान् का दिव्यमङ्गलविग्रह सजल मेघ के समान मनोहर है। 'अभिनवो यो जलधरः तद्वत् सुन्दरो य असौ तत्सम्बुद्धौ' यह 'अभिनवजलधरसुन्दर' पद का विग्रह है। इस पद के द्वारा श्रीभगवान् के भव्यत्व गुण का वर्णन किया गया है। 'धृतः मन्दरो येनाऽसौ तत्सम्बुद्धौ' यह 'धृतमन्दर' पद का विग्रह है। अर्थात् क्षीरसागर के मन्थन की वेला में मन्दराचल पर्वत को धारण करने वाले भगवन् ! क्षीराब्धिमन्थन काल में जब मन्दराचल पर्वत रुक नहीं रहा था, उस समय श्रीभगवान् ने कमठरूप धारण करके उसे अपने पृष्ठ पर धारण किया तथा एक रूप से वे देवताओं के साथ मिलकर समुद्रमन्थन का कार्य कर रहे थे, इसी अर्थ को कवि ने 'धृतमन्दर' इस सम्बुद्धि पद से अभिव्यक्त किया है। 'श्रीमुखचन्द्रचकोर' इस सम्बुद्धि पद का अभिप्राय यह है कि श्रीलक्ष्मीजी का मुखमण्डल भगवान् विष्णु को सर्वदा आह्लादित करते रहने के कारण चन्द्रमा के समान है। जिस प्रकार चकोर चन्द्रमा की ओर सस्पृह नेत्रों से देखता रहता है, उसी प्रकार श्रीभगवान् भी सस्पृह नेत्रों से लक्ष्मीजी के मनोज्ञ मुख को देखकर हर्षातिरेक का अनुभव करते रहते हैं। इस तरह के दिव्यगुणसम्पन्न श्रीभगवान् की जयदेव कवि बार-बार जय-जयकार मनाते हैं ॥ ७ ॥

तव चरणं प्रणता,
वयमिति भावय ए ।
कुरु कुशलं प्रणतेषु,
जय जय देव हरे ॥ ८ ॥

अनुवाद—हे दिव्य गुणों से युक्त भगवन् श्रीहरे ! हम आपके चरणों के शरणागत है, यह आप अपने मन में सोचकर हम भक्तों का कल्याण करें ॥ ८ ॥

तव चरणे इति । उपसंहरति—हे उक्तस्वरूप श्रीकृष्ण ! वयं तव चरणे प्रणताः तव चरणे कृतनमस्कारा इति भावय चिन्तय । इति पदम् । प्रणतेष्वस्मासु कुशलं कुरु । जयेत्यादि ध्रुवः । 'भू शुद्धिचिन्तामिश्रणेषु' चुरादिः परस्मैपदी । तस्य प्रयोगो भावयेति ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—हे उपर्युक्त श्लोकों में वर्णित भगवन् ! श्रीकृष्ण ! हम आपके चरणों में प्रणत हैं। श्रीभगवान् को अपने प्रणामी भक्त ही प्रिय हैं। अतएव आप इस बात को अपने हृदय में सोचें और अपने शरणागत भक्तों का कल्याण करें। आप कल्याणगुणगणाकर होने के कारण देव शब्द से अभिहित किये जाते हैं। अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्तों के पाप तथा ताप के विनाशक होने से श्रीभगवान् हरि शब्द से अभिहित किये जाते हैं ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदं,
कुरुते मुदम् ए।
मङ्गलमुज्ज्वलगीतं,
जय जय देव हरे ॥ ९ ॥

अनुवाद—श्रीजयदेव कवि प्रणीत यह मनोहर मङ्गल नामक गीत श्रीभगवान् के लिए आनन्दप्रद है। हे दिव्यगुणयुक्त श्रीहरे ! आपकी जय हो ! जय हो !! ॥ ९ ॥

श्रीजयेति। अत्रालापः—मङ्गलेति। हे हरे ! इदं मङ्गलं नाम गीतं गीतविशेषो मुदं प्रीतिं कुरुते। कस्य ? ते तव। इति अनुप्रयुज्यमानस्यान्यापेक्षया। अथवा—इदं गीतं मे तव मुदं कुरु। कुरु ते इत्यर्थः। अथवा—इदं मङ्गलं मङ्गलगीतं जयदेवस्य मुदं कुरुते। अमुदं मुदं ददातीति मुदं वा। ते इति काकाक्षिगोलकन्यायेनोभयत्र सम्बध्यते। अथवा—इदं गीतं गायतां शृण्वतां मुदं कुरुते। अथ ते गीतं त्वत्सम्बन्धिगीतं गायतां शृण्वतां च मुदं कुर्वित्याशीः। तस्य श्रीजयदेवस्य कवेः। किम्भूतम् ? उज्ज्वलम्। रम्यगानाद्यखिलैर्गीतगुणैर्युक्तं भीतशङ्कितादिदोषरहितम्। श्रितकमलाकुचेत्यादि। मङ्गलं नाम छन्दः। तल्लक्षणम्—'मङ्गलं मङ्गलाख्येन छन्दसा तालसंयुतम्। विलम्बितलयोपेतमुत्सवे गीयते जनैः' ॥ 'एकारगणैः प्रतिपदगतैश्चैव। मङ्गलमाहुरिदं सुधियः खलु युक्तम्' ॥ तथा च सङ्गीतराजे—'छन्दसा मङ्गलाख्येन खननं गद्यपद्ययोः। आलापश्च प्रतिपदं नानागमकपेशलः ॥ ध्रुवः प्रतिपदं रागो ललितस्ताल उच्यते। आदितालः स्वरास्त्वेताः प्रबन्धे ते प्रतिष्ठिताः ॥ स हरिविजयाढ्यश्च मङ्गलाचार उच्यते'। इति हरिविजयमङ्गलाचारनामाष्टमः प्रबन्धः ॥ श्रितेत्यष्टपद्यां धीरललितो नायकः शृङ्गारी वा। लक्षणमुक्तं प्राक्। जयदेवस्य रतेर्भावः ॥ ९ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में जयदेव कवि श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे दिव्यगुणसम्पन्न श्रीहरे ! मुझ जयदेव कवि द्वारा प्रणीत मनोहर मङ्गल नामक गीत आपको आनन्दप्रद बने। यह मङ्गल नामक गीत मुझ जयदेव कवि को प्रहर्षित करता है। अथवा यह मङ्गल गीत गाने और सुनने वाले को कल्याणप्रद होता है।

'श्रितकमलाकुचमण्डल' से लेकर इस नवें श्लोक पर्यन्त नौ श्लोकों का मङ्गल छन्द है। कहा भी गया है कि—

'मङ्गलं मङ्गलाख्येन छन्दसा तालसंयुतम्।
विलम्बितलयोपेतमुत्सवे गीयते जनैः' ॥

अर्थात् मङ्गल नामक छन्द से युक्त, लयसंयुक्त एवं विलम्बित लय से युक्त मङ्गल गीत उत्सवों में गाया जाता है ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पद्मापयोधरतटीपरिरम्भलग्नकाश्मीरमुद्रितमुरो मधुसूदनस्य ।
व्यक्तानुरागमिव खेलदनङ्गखेदस्वेदाम्बुपूरमनुपूरयतु प्रियं वः ।। १० ।।

अनुवाद—श्रीलक्ष्मीजी के स्तनों के प्रान्तभाग के आलिङ्गन के कारण केशर द्रव के छाप से चिह्नित, प्रतीयमान अनुराग के समान, कामक्रीडा काल में जायमान परिश्रमजन्य स्वेदबिन्दुओं से परिपूर्ण भगवान् मधुसूदन का वक्षःस्थल आपके अभीष्ट अर्थ को पूर्ण करे ।। १० ।।

इदानीं श्रीकृष्णं क्रीडानिदानं वसन्तं दर्शयन्भक्तानभिनन्दति खड्गादिकेन पूर्णेन वसन्तरागेण—पद्मापयोधरतटीति—अनुपूरयतु पूर्ति नयतु । किम् ? प्रियं वाञ्छितम् । केषां ? वो युष्माकम् । किं कर्तृभूतम् ? उरो वक्षः । कस्य ? मधुसूदनस्य । किम्भूतम् ? पद्मायाः पयोधरौ तयोस्तटी भृगू तयोः परिरम्भेण लग्नं सक्तं काश्मीरं कुङ्कुमं तेन मुद्रितं कृतमुद्रम् । एतेन स्तनयोः शैलत्वात्तच्छिखरालिङ्गनेन तयोरतिशयालिङ्गनव्याजेन जाता मुद्रा यस्मिंस्तत् । अत एव व्यक्तानुरागमिव प्रतीयमानानुरागमिव । अस्यानुरागो माऽन्यस्यां स्यादिति लक्ष्म्या मुद्रा दत्ता । अथवा—नेदं कुङ्कुमं; किन्तु हृदिस्थोऽनुरागो बहिर्भूत इव । किम्भूतम् ? खेलन् अनङ्गखेदजातः सुरतश्रमजातः स्वेदाम्बुपूरो यत्र तत्तथा ।। अत्रेदमाकूतम्—अयमालिङ्गति मां परं त्वनुरागो राधायामेवेति मुद्रार्थः । तद-सूचि कविना—'राधामाधवयोः' इति पूर्वपद्ये । अत्र मुग्धा नायिका । कुशलो नायकः । वसन्ततिलका वृत्तम् । आशीर्वर्णानुप्रासालङ्कारौ उत्प्रेक्षा च । शृङ्गारो रसः । अत्र मधु-सूदनस्य परमप्रेमास्पदकान्तोरःस्थलोपगूहनेन व्यक्तानुरागरूपकाश्मीरसंवलितस्य परम-प्रीतिभाजनरसाद्यद्भक्तानां श्रियानुपूरणमाशीर्वचनमुक्तं ततः सुतरामौचित्यमावहति । यदुक्तम्—'पूर्णार्थदातुः काव्यस्य सन्तोषितमनीषिणः । उचिताशीर्नृपस्येव भवत्यभ्युदया-वहा' ।। इति ।। १० ।।

भावप्रकाशिका—इस दशवें श्लोक में श्रीजयदेव कवि क्रीड़ा के कारणभूत वसन्त-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण को निर्दिष्ट कर के वसन्त राग के द्वारा भक्तों को आनन्दित करते हुए कहते हैं—'पद्मापयोधरतटी' इत्यादि । श्रीभगवान् अपनी प्रियतमा का आलिङ्गन जब करते हैं तो उनके स्तनों तथा प्रान्तभाग में लगे हुए केशर-द्रव की छाप भगवान् के वक्षःस्थल में पड़ जाती है । पयोधरतटी पद का प्रयोग कर के कवि स्तनों के उन्नतत्व तथा उनके प्रान्तभाग को पर्वत की तलहटी के समान होना सूचित करते हैं । स्तनतटों में लेपित काश्मीर-द्रव से श्रीभगवान् के वक्षःस्थल के चिह्नित होना बतला कर महाकवि दीर्घकाल पर्यन्त किये गये आलिङ्गन को सूचित करते हैं । इसके कारण श्रीभगवान् का श्रीलक्ष्मीजी के प्रति स्नेहातिशय्य सूचित होता है ।

'व्यक्तानुरागमिव' पद के द्वारा यह सूचित किया गया है कि भगवान् के हृदय में जो काश्मीर-द्रव की छाप पड़ गयी है, लगता है कि उससे श्रीभगवान् के हृदय में श्रीलक्ष्मीजी के प्रति विद्यमान अनुराग ही अभिव्यक्त हो गया ।

किञ्च श्रीभगवान् का वक्षःस्थल दीर्घकाल तक कामक्रीड़ा करने के कारण श्रान्त होने से स्वेद जल से पूर्ण हो गया—इस प्रकार का वह समस्त पाठकों तथा श्रोताओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के अभिलषित अर्थ की पूर्ति करे। इस प्रकार कवि जयदेव इस काव्य के पाठकों तथा श्रोताओं के लिए मङ्गलकामना करते हैं।

इस श्लोक में प्रथम पाद में मुद्रित पद का प्रयोग कर के कवि ने इस भाव को मुद्रा की भंगिमा से अभिव्यक्त किया कि श्रीलक्ष्मीजी के मन में यह भावना बनी रहती है कि श्रीभगवान् आलिङ्गन तो मेरा करते हैं, किन्तु इनका स्नेह श्रीराधा के प्रति ही है।

इस श्लोक में वर्णित नायिका मुग्धा, कुशल नायक, वसन्ततिलका वृत्त, आशीः, उत्प्रेक्षा तथा अनुप्रास अलङ्कार एवं शृङ्गार रस हैं॥ १०॥

वसन्ते वासन्तीकुसुमसुकुमारैरवयवै-
भ्रमन्तीं कान्तारे बहुविहितकृष्णानुसरणाम्।
अमन्दं कन्दर्पज्वरजनितचिन्ताकुलतया
चलद्बाधां राधां सरसमिदमूचे सहचरी॥ १॥

अनुवाद—अनेक वार श्रीकृष्ण का अन्वेषण करने के पश्चात् माधवीलता के पुष्पों के समान सुकुमार अङ्गों से महारण्य में भ्रमण करती हुई राधा से वसन्त ऋतु की वेला में किसी सखी ने कहा॥ १॥

इदानीं भणितेषु मरिचावचूर्णना सा (नूनं) कटुरपि स्पृहावहेति योगमाश्रित्य विप्रलम्भपूर्वको हि सम्भोगो रसिकजनरसनीयतामापद्यत इति कविना आद्यपद्ये कथाबीजत्वेन सम्भोगस्य यद्विप्रलम्भपूर्वकत्वं सूचितं यदेव प्रकटीकुर्वन्कृष्णोत्कण्ठितां राधां काप्युत्तम्भितमुखेन हरिकथया प्रोत्साहयन्त्याह—वसन्ते वासन्तीति। काचन सहचरी इदं वक्ष्यमाणं सरसं रसवत् राधामूचे उक्तवती। किम्भूताम्? वसन्ते ऋतौ अमन्दं यथा स्यात्तथा कन्दर्पहेतुज्वरजनितचिन्ताकुलतया चलद्बाधाम्। कन्दर्पहेतुज्वरजनितचिन्ताकुलत्वेन चलन्ती यातायातं कुर्वाणा बाधा यस्याः। चिन्ताकुले हि चेतसि बाधा यात्यायाति चेति प्रसिद्धम्। किम्भूताम्? बहु अनेकधा दूत्यादिना विहितकृष्णानुसरणां तदर्थमेव कान्तारे भ्रमन्तीम्। किम्भूताम्? वासन्तीकुसुमवन्माधवीलताकुसुमवत्सुकुमारैरवयवैरुपलक्षिताम्। वसन्ते हि माधवीकुसुममुद्रिक्तं भवति। अतः कामोद्रेकसौकुमार्ये च साम्यम्। अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। दक्षिणो नायकः। तल्लक्षणम्—'स्नेहलौल्यमवैषम्यवशतस्तुल्यतामिषम्। नायिकास्वप्यनेकासु दक्षिणः स स्मृतो यथा'॥ विरहोत्कण्ठिता नायिका। 'उत्का भवति सा यस्याः सङ्केतं नागतः प्रियः। तस्याऽनागमने हेतुं चिन्तयत्याकुला यथा'॥ (शृ० ति० १।७५) तस्या अभिलाषो नाम दशाविशेषो यथा—'व्यवसायो भवेद्यत्र बाढं तत्सङ्गमाशया। सङ्कल्पाकुलचित्तत्वात्सोऽभिलाषः स्मृतो यथा'॥ वासन्तीकुसुमसुकुमारैरित्यत्र लुप्तोपमालङ्कारः—'वादेर्लोपे समासे वा कर्माधारक्यचि क्यङि। कर्मकर्त्रोर्णमुली' इति। वृत्त्यनुप्रासः—'एकस्याप्यसकृत्परः' इति। शिखरिणीछन्दः—'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी'। वैदर्भी रीतिः। तस्या अत्रोपनागरिकेति संज्ञान्तरम्। यथा—'माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरुपनागरिकेष्यते' इति। 'चलद्-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाधाम्' इति पाठे 'वलङ् सृतिसंवरणयोः' इत्यात्मनेपदी। वलङः परस्मैपदत्वं चिन्त्यम् ।। १ ।।

भावप्रकाशिका---विप्रलम्भपूर्वक संभोग-शृङ्गार रसिक पुरुषों को अधिक रसपूर्ण प्रतीत होता है। इसीलिए महाकवि इस श्लोक में विरहोत्कण्ठिता नायिका राधा का वर्णन कर रहे हैं। यह श्लोक विप्रलम्भ-शृङ्गार वर्णन की भूमिकास्वरूप है। इस श्लोक में कवि कह रहे हैं कि वसन्त ऋतु के आ जाने पर, अतितीव्र कामज्वर से संतप्त हो जाने के कारण चिन्ता से व्याकुल तथा अनेक प्रकार की बाधाओं से युक्त एवं अनेक बार श्रीकृष्ण का अन्वेषण कर चुकने वाली, माधवीलता के समान सुकुमार अङ्गों वाली महारण्य में भ्रमण करती हुई राधा से किसी सहचरी ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा।

अन्य ऋतुओं की अपेक्षा वसन्त ऋतु में कामज्वर का संताप बढ़ जाता है—यह लोकप्रसिद्ध है। वसन्त पद के द्वारा यहाँ कालरूपी उद्दीपन विभाव को बतलाया गया है। कामज़्वरसंतप्त नायिका का नायक के न मिलने पर चिन्तित होना स्वाभाविक है। भगवान् श्रीकृष्ण के नहीं मिलने पर उनकी नित्य सहचरी श्रीराधा का चिन्तित होना स्वाभाविक है। उसमें भी कामज्वर की तीव्रता हो तो उस समय फिर क्या कहना। जिस समय मनुष्य चिन्ता से व्याकुल हो जाता है उस समय उसके मन में असह्य पीडा होने लगती है। अनेक प्रकार की बाधाएँ आने तथा जाने लगती हैं। इस अर्थ को 'चलद्बाधाम्' पद के द्वारा सूचित किया गया है। यह पद श्रीराधाजी का विशेषण है।

इस विशेषण पद के द्वारा सूचित होता है कि संकेतस्थान तथा काल पर भगवान् श्रीकृष्ण के नहीं आ सकने के कारण श्रीराधाजी अत्यन्त व्याकुल हो गयीं और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण का बार-बार उस महारण्य में अन्वेषण किया, इस आशय से कि शायद अब भगवान् यहाँ पर आएँ। ऐसा उन्होंने बार-बार किया। इसीलिए वे चिन्तामग्न होकर उस महारण्य (कान्तार) में भ्रमण कर रही थीं। उस समय उनके अङ्गों की शोभा और सौकुमार्य का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—'वासन्ती-कुसुमसुकुमारैरवयवैः'। माधवीलता का नाम वासन्ती लता है। वसन्त ऋतु में यह लता पूर्णतया विकसित हो जाती है। वासन्ती लता के पुष्प अत्यन्त मनोज्ञ तथा सुकुमार होते हैं। श्रीराधाजी के अङ्ग अत्यन्त मनोहर तथा सुकुमार थे—यह इस पद के द्वारा सूचित किया गया है।

श्रीराधाजी की विरहवेदना के आतिशय्य का अनुभव करने वाली उनकी सहचरी ने उन्हें सान्त्वना देते हुए सरस वाणी में निम्नांकित प्रकार से कहा।

इस श्लोक के 'वासन्तीकुसुमसुकुमारैः' पद में लुप्तोपमालङ्कार है। इस पद्य में वर्णित दक्षिण नायक हैं। दक्षिण नायक का अनुराग अनेक नायिकाओं में हुआ करता है। वह सभी नायिकाओं के साथ समान रूप से स्नेह करता है।

इस श्लोक में वर्णित नायिका श्रीराधा विरहोत्कण्ठिता नायिका है। (शृङ्गार-तिलक १।७५) में विरहोत्कण्ठिता नायिका का निम्नांकित लक्षण बतलाया गया है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'उत्का भवति सा यस्याः सङ्केतं नागतः प्रियः ।
तस्याऽनागमने हेतुं चिन्तयत्याकुला यथा' ॥

अर्थात् जिस नायिका का नायक संकेतकाल में संकेतस्थान पर नहीं आता है, वह नायिका विरहोत्कण्ठिता नायिका कहलाती है। वह अपने प्रियतम के नहीं आने के कारण सोच-सोचकर व्याकुल हो जाती है।

इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है। 'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' यह शिखरिणी छन्द का लक्षण है।

इस श्लोक में वैदर्भी रीति तथा उपनागरिका वृत्ति है ॥ १ ॥

वसन्तरागयतितालाभ्यां गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ ॥ ३ ॥

अनुवाद—यह तीसरा प्रबन्ध वसन्त राग तथा यति ताल से गाया जाता है।

भावप्रकाशिका—यति ताल का स्वरूप बतलाते हुए संजीवनीकार कहते हैं कि जिसमें लघु तथा द्रुत दोनों प्रकार के ताल होते हैं उसे यतिताल कहा जाता है। तथाहि—'लघुद्रुतौ यत्र तालौ यतितालः स कथ्यते'। वसन्त राग का स्वरूप बतलाते हुए पदद्योतनिकाकार कहते हैं—

'शिखण्डबर्होच्चयबद्धचूडः पुष्णन् पिकं चूतलताङ्कुरेण ।
भ्रमन् मुदा वासमनङ्गमूर्तिर्मत्तो मतङ्गस्य वसन्तरागः' ॥

अर्थात् वसन्तराग पुरुष का सिर मयूरपिच्छ से बँधा होता है, आम्रमञ्जरी तथा लताओं से वह कोयल-समूह को परिपुष्ट बनाता रहता है। सशरीर कामदेव के समान वह प्रसन्न मदमत्त गजराज के समान भ्रमण करता है।

ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे ।
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥ ध्रुवपदम् ॥ २ ॥

अनुवाद—सखि ! विरही जनों के लिए दुःखप्रद इस सरस वसन्त ऋतु में भगवान् श्रीकृष्ण युवतियों के साथ मनोज्ञ लवंगलता के सम्पर्क से मृदुल मलयाचल की वायु वाली भ्रमर-समूह के साथ कोयलों से कूजित कुञ्जकुटी में नृत्य कर रहे हैं ॥ २ ॥

अन्यत्रापि प्रयोगोऽप्यस्ति तथा। सावेवोत्तरत्रोदा दूणवान् पुनर्बलः (?)। केवलादिति। अमुमेवार्थं विशदयति झम्पातालेन द्रुतद्वयेन विरामान्तेन—ललितेति। विशेषणसौकर्यार्थं पूर्वं ध्रुवपदं व्याख्यायते—विहरतीति। इह राधासखी सबाधां राधां विनोदार्थं श्रीकृष्णं प्रति प्रेरयति—हे सखि राधे ! सर चल। यं हरिं त्वं विलोकयसे स हरिरिह वृन्दावने वसन्ते वसन्तसमये विहरति। क्व सति ? समं सशोभं साकं युवतिजने नृत्यति सति। किम्भूते वसन्ते ? चलनार्थहेतुगर्भं विशेषणम्। विरहिजनस्य दुरन्ते न इति न अपि तु दुरन्ते एवेति काक्वोभयदर्शनम्। अथवा—जनो जीवनं तेन समं दुरन्ते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवनं वसन्तश्चोभयं विरहिणां दुःखप्राप्यं तस्मिन्। अथवा—सरसवसन्त इति पदम्। सरसः साभिलाषः स चासौ वसन्तश्च तस्मिन्। विहरति युवतिजनेन समं नृत्यति च। चकारोऽध्याहार्यः। इति ध्रुवपदम्॥ ललितेति। ललितलवङ्गलतापरिशीलनेन कोमलो मलयमारुतो यत्र वसन्त इति। एतेन शीतो मन्दः सुरभिश्चेति वायोस्त्रैविध्यमुक्तम्। अत्र लवङ्गलतासमीरयोर्नायिकात्वनायकत्वेनोद्दीपनविभावत्वमुक्तम्। पुनः किम्भूते वसन्ते ? मधुकरनिकरेण करम्बितैर्मिश्रितैः कोकिलैः कूजितः शब्दितः कुञ्ज एव कुटीरोऽल्पा कुटी यत्र वसन्ते॥ २॥

भावप्रकाशिका—उपर्युक्त श्लोक में कहा गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल श्रीराधाजी को उनकी सखी ने सान्त्वनामयी वाणी में समझाया। इस श्लोक में उस सखी की वाणी का अनुवाद किया जा रहा है—'ललित' इत्यादि। सखी ने कहा कि इस वसन्त ऋतु में भगवान् श्रीकृष्ण युवतियों के साथ नृत्य कर रहे हैं। सखि पद के प्रयोग से उसके सुहृदत्व को सूचित किया गया है। नृत्य के काल को बतलाती हुई वह सखि कहती है कि यह सरस वसन्त की वेला है। सरस विशेषण के द्वारा वसन्त ऋतु की रसमयता तथा आस्वाद्यता को सूचित किया गया है। वसन्त ऋतु की दूसरी विशेषता 'विरहिजनस्य दुरन्ते' इस वाक्यांश से बतलायी गयी है। अर्थात् विरहीजनों के लिए वसन्तऋतु बड़े ही कष्ट से बिताये जाने के योग्य होती है। इस ऋतु को विरहीजन बड़े कष्ट के साथ बिता पाते हैं। अतएव तुम भगवान् श्रीकृष्ण से मिलकर उनके साथ विहार करो तथा नृत्य करो। यदि तुमने ऐसा नहीं किया तो यह ऋतु तुम्हारे लिए भी बड़ी कष्टकारक होगी।

भगवान् जहाँ युवतियों के साथ विहार तथा नृत्य कर रहे हैं उस स्थान के विषय में सखि बतला रही है—ललित० इत्यादि। 'ललितलवङ्गलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे'। अर्थात् मनोहर लवंगलताओं के संस्पर्श के कारण जहाँ की मलयवायु मृदुल बन गयी है। मलयाचल के वायु की शीतलता, मन्दता तथा सुगन्धि प्रख्यात है, किन्तु लवङ्गलताओं के संस्पर्श से वह और कोमल बन गयी है।

इस पद को रसिकप्रियाकार वसन्त ऋतु का विशेषण मानते हैं, किन्तु रसमंजरीकार इसे नृत्यस्थान का विशेषण मानते हैं। मेरे भी विचार से इसे नृत्यस्थान का ही विशेषण मानना चाहिए। इसे नृत्यस्थान का विशेषण मानने से उस स्थान के प्रति आकर्षण की भावना समृद्ध होती है।

नृत्यस्थान की दूसरी विशेषता बतलाते हुए श्रीजयदेव कवि कहते हैं—'मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकुञ्जितकुञ्जकुटीरे'। अर्थात् भ्रमर-समूह के साथ कोकिलाओं से कूजित कुञ्ज की कुटी में भगवान् युवतियों के साथ विहार तथा नृत्य कर रहे हैं। 'मधुकराणां यो हि निकरस्तेन करम्बिताः=मिश्रिताः ये कोकिलास्तैः कूजितः यः कुञ्जकुटीरः तत्र'। यह इस पद का विग्रह है।

इस श्लोक में शृङ्गार के उद्दीपन विभावों का वर्णन है। इससे विप्रलम्भ-शृङ्गार की पुष्टि होती है॥ २॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे ।
अलिकुलसङ्कुलकुसुमसमूहनिराकुलबकुलकलापे ॥ विहरति० ॥ ३ ॥

अनुवाद—हर्ष तथा काम के उद्भूत हो जाने के कारण जिसमें विरहिणियाँ अपने पति का विप्रयोग अनुभव करके विलाप करती हैं और बकुल पुष्प पर भ्रमर-समूह व्याप्त हो गये हैं उस वसन्त ऋतु में भगवान् श्रीकृष्ण युवतियों के साथ विहार तथा नृत्य कर रहे हैं ॥ ३ ॥

उन्मदमदनेति । किम्भूते वसन्ते ? उद्गतौ मदमदनौ हर्षकामौ यत्र । पूर्वं भूतो मनोरथो यस्य पथिकवधूजनस्य स तथा तेन जनितो विलापो यत्र वसन्ते । उद्रिक्तस्मर-जनितमनोरथपथिकवधूजनस्य जनितो विलापो येन । अथवा उत्सुकमदनमनोरथेन पथिकवधूनां जनितो विलापो यत्र वसन्ते । अलिकुलव्याप्तकुसुमसमूहेन निराकुलो बकुलानां कलापः संहतिर्यत्र । बकुला एव कलापस्तूणीरो वा स्मरशरधिः । 'कलापो बर्हतूणयोः' इत्यमरः ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखि पुनः वसन्त ऋतु की दुरन्तता वर्णन करती हुई श्रीराधाजी को भगवान् के सन्निकट पहुँचा कर विहार तथा नृत्य करने के लिए प्रोत्साहित करती हुई कहती हैं—

वसन्तकाल की उन्मादकता का वर्णन करती हुई सखी श्रीराधाजी से कहती है कि इस समय तो मद तथा काम आविर्भूत हो जाते हैं। जिसके कारण नाना प्रकार का मनोरथ करके वे नायिकाएँ अपने प्रियतम के विप्रयोग का अनुभव करके रोने लग जाती हैं। देखो बकुल वृक्ष के पुष्पों पर भ्रमर मँडराने लग गये हैं। अतएव यह काल अत्यन्त उन्मादक है। तुम भी भगवान् श्रीकृष्ण से मिलकर विहार तथा नृत्य करो ॥ ३ ॥

मृगमदसौरभरभसवशंवदनवदलमालतमाले ।
युवजनहृदयविदारणमनसिजनखरुचिकिंशुकजाले ॥ विहरति० ॥ ४ ॥

अनुवाद—कस्तूरी के समान सुगन्धवाले तमालवृक्ष के पत्र-समूह से युक्त तथा युवकों के हृदय को विदीर्ण करने वाले कामदेव के नख की कान्ति के समान कान्ति वाले पलाशपुष्पों से परिपूर्ण इस सरस वसन्त में भगवान् श्रीकृष्ण युवतियों के साथ विहार और नृत्य कर रहे हैं ॥ ४ ॥

मृगमदसौरभेति । मृगमदसौरभस्य रभसेन सहसा वशंवदा अनुकारिणी तद्गन्धा नवदलानां माला येषां तादृशास्तमाला यत्र वसन्ते । वा तदामोदानि नवदलानि मालन्ते धारयन्तीति । युवजनेति । युवजनस्य हृदयविदारणाय मनसिजस्य नखस्य रुचिरिव रुचिर्येषां ते तादृशाः किंशुकानां जालानि कोरका यत्र वसन्ते । अत्र कामस्य नखरायुधत्वं कविसमयेऽप्रसिद्धम् ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—वसन्त ऋतु के दुरन्तत्व का वर्णन करती हुई सखि कह रही है कि—इस तमाल के वृक्षों में नवीन पत्ते निकल आये हैं। उनकी सुगन्धि भी कस्तूरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की सुगन्धि के समान है। अतएव सम्पूर्ण कुञ्जकुटीर कस्तूरी की सुगन्धि से परिपूर्ण हो गया है। इस समय पलाश के वृक्ष भी कुड्मलों तथा पुष्पों से भर गये हैं। इनकी वक्रता तथा लालिमा को देखकर लगता है कि ये युवकों तथा युवतियों के हृदय को विदीर्ण करने के साधनभूत नखरूपी आयुध-विशेष हैं। अतएव यह काल अत्यन्त कठोर है। इसको विरहिणियों के लिए बिता पाना अत्यन्त कठिन है॥ ४॥

मदनमहीपतिकनकदण्डरुचिकेशरकुसुमविकासे ।
मिलितशिलीमुखपाटलपटलकृतस्मरतूणविलासे ॥ विहरति० ॥ ५ ॥

अनुवाद—कामदेव रूपी राजा के सुवर्णदण्ड युक्त छत्र के समान सुवर्ण चम्पा के पुष्प विकसित हो गये हैं तथा भ्रमर-समूहों से परिपूर्ण पाटल पुष्प-समूह बाण भरे कामदेव के तुणीर के समान लगते हैं॥ ५॥

मदनमहीपतीति। अत्रालापः। कामराजस्य हेमदण्डच्छत्रसन्निभं बकुलकेसरपुष्पं तस्य विकासो यत्र। अत्र केवलकनकदण्डस्य छत्रेऽवाचकत्वान्महीपतिशब्दसाहचर्याद-विरोधः। अथवा हेमदण्डरुचीनि केसराणीति योज्यम्। महीपतेरग्रे कनकवेत्रधारिणो भवन्ति। मिलितेति। सङ्गतशिलीमुखैः पाटलपटलैः पाटलाकुसुमसमूहैः। अथवा पाट-लिपटलेति पाठः। कृतः स्मरशरधिविलासोऽनुकारो यत्र। शिलीमुखा भ्रमरा बाणाश्च। 'अलिबाणौ शिलीमुखौ' इत्यभिधानात्॥ ५॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधाजी को सान्त्वनामयी वाणी में पुनः भगवान् के विहार में सम्मिलित होने के लिए उत्साहित करती हुई सखी कहती है कि इस समय सुवर्ण चम्पा के विकसित पुष्प देखने में ऐसे लगते हैं जिस प्रकार कामदेव नाम के राजा के सुवर्णदण्ड से युक्त छत्र हों। रक्तवर्ण के पाटलपुष्पों के समूह पर बैठे हुए भौंरों को देखकर ऐसा लगता है कि ये बाणों से भरे हुए कामदेव के तुणीर हो। अतएव यह अत्यन्त विलासमय काल है। इस समय तुम्हारा यहाँ रहना ठीक नहीं। तुम भी भगवान् श्रीकृष्ण से मिलकर विहार एवं नृत्य करो॥ ५॥

विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणकरुणकृताहासे ।
विरहिनिकृन्तनकुन्तमुखाकृतिकेतकदन्तुरिताशे ॥ विहरति० ॥ ६ ॥

अनुवाद—लज्जा रहित जगत् को देखकर युवक करुण वृक्ष मानो हँस रहे हैं, विरहीजनों का विदारण करने वाले भाले की नोंक के समान आकार वाले केतकी पुष्पों से सभी दिशाएँ भर गयी हैं॥ ६॥

विगलितेति। लज्जैव लज्जितम्। भावे क्तः। गतलज्जजगदवलोकनेन तरुणैः करुणैः कृतः कुसुमविकासव्याजेन हासो यत्र। विरहिनिकृन्तनकुन्तमुखाकारैः केतकै-र्दन्तुरिता विषमीकृता आशा दिशो यत्र। निकृन्तनमिति चिन्त्यम्॥ ६॥

भावप्रकाशिका—सखी श्रीराधाजी से कह रही है कि इस समय सम्पूर्ण विरहीजन अपनी लज्जा का त्याग करके अपने प्रियतम के वियोग में रोने लगे हैं। यह स्थिति सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हो गयी हैं। जगत् की इस स्थिति को देखकर करुण वृक्षों ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानों हँसना प्रारम्भ कर दिया है। इसीलिए तो करुण वृक्षों में उजले-उजले पुष्प निकल आये हैं। निरपत्रप होकर प्रियतम के विप्रयोग में रोने लगना नीरस पुरुष के लिए एक हास का विषय है। करुण वृक्ष भी नीरस पुरुष के ही समान हैं। उसने भी विरहव्याकुल जगत् को देखा और देखकर अट्टहास करने लगा। उसी का परिणाम है कि करुण वृक्षों में उजले-उजले पुष्प निकल आये हैं। इसका भी स्वरूप कविप्रसिद्धि के अनुसार उजला है।

अथवा लज्जा छोड़कर प्रियतम के वियोग में रोते हुए विरहीजनों को देखकर जो प्रिय व्यक्ति के साथ संयोगप्राप्त लोग हैं, उनको करुणा तथा हँसी दोनों आ गयी। करुणा इसलिए कि अपने कण्ठाश्लेष प्रणयिजन के वियोग में इनकी बड़ी दीन दशा है—यह सोचकर तथा विरहीजनों की अधीरता को देखकर हँसी भी आयी, अतएव वे हँसने लग गये हैं।

इस समय केतकी पुष्प भी चारों तरफ विकसित हो गये हैं। इनके नुकीले अग्रभाग को देखकर लगता है कि ये विरहीजनों के हृदय को विदीर्ण करने वाले भाले हों। अतएव इस भयङ्कर काल में तुम अवश्य भगवान् श्रीकृष्ण के पास जाकर विहार तथा नृत्य करो ॥ ६ ॥

माधविकापरिमलललिते नवमालिकयातिसुगन्धौ।
मुनिमनसामपि मोहनकारिणी तरुणाकारणबन्धौ ॥ विह० ॥ ७ ॥

अनुवाद—वासन्ती लता के पराग से मनोहर तथा नवमल्लिका की सुगन्धि से सुगन्धित, मुनियों के भी मन में विकार उत्पन्न करने वाले और युवकों के अकारण बन्धु इस मनोहर वसन्त में श्रीहरि युवतियों के साथ विहार एवं नृत्य कर रहे हैं।

माधविकापरिमलेति। किम्भूते वसन्ते ? वासन्त्याः परिमलेन गन्धविशेषेणल लिते मनोहरे। पुनः किम्भूते ? नवमालिकया जात्यातिसुगन्धौ। पुनः किम्भूते ? मुनिमनसामपि मोहनकारिणि व्यामोहकारके तरुणानां का कथेति। सुरतार्थं प्रेरके वा। पुनः किम्भूते ? तरुणानामकारणबन्धौ निसर्गमित्रे। वसन्ते हि कामिन्यः स्वयमेव मानं त्यजन्ति ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में भी सखी श्रीराधाजी को भगवान् श्रीकृष्ण के साथ मिलकर विहार करने तथा नृत्य करने के लिए प्रोत्साहित करती हुई मनोज्ञ वसन्त की विरहिणियों के लिए दुरन्तता का प्रतिपादन का करती हुई कहती है कि इस समय माधवीलता विकसित हो गयी। माधवीलता के पुष्पों के पराग से यह वसन्त ऋतु मनोहर बन गया है तथा नवमल्लिका की सुगन्धि से समस्त वातावरण सुगन्धिमय हो गया है। इस समय जबकि सांसारिक विषयों से विरक्त होकर सतत परमात्म-चिन्तन करने वाले मुनियों के भी मन में कामजन्य विकार उत्पन्न हो जाया करता है तब सामान्य लोगों की बात ही क्या है ? यह समय युवकों तथा युवतियों के लिए अकारण बन्धु है, क्योंकि यह उनका अकारण ही उपकार करता रहता है। मानवती नायिकाएँ भी अपने मान का त्याग करके स्वयम् अपने प्रियतम के पास चली जाती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। अतएव तुम भी मान का त्याग करो और भगवान् श्रीकृष्ण के साथ मिलकर कुञ्जकुटीर में विहार तथा नृत्य करो ॥ ७ ॥

स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भणमुकुलितपुलकितचूते ।
वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते ॥ विह० ॥ ८ ॥

अनुवाद—चञ्चल वासन्ती लता के आलिङ्गन से युक्त पुष्पित तथा रोमाञ्चित आम्रवृक्षों से युक्त, वृन्दावन के सन्निकट बहने वाली यमुना के जल से पवित्र वन में श्रीहरि युवतियों के साथ विहार तथा क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ८ ॥

स्फुरदतिमुक्तलतेति। किम्भूते वसन्ते ? स्फुरन्त्याश्चलन्त्या अतिमुक्तलताया वासन्त्याः परिरम्भणेन मुकुलितः पुष्पितः पुलकितः जातरोमाञ्चश्च चूतः। अत्र पुष्पाणि रोमाञ्चेनोपमीयन्ते। अनेन सात्त्विकभावो दर्शितः। वृन्दावनेति। अत्र पूर्वं ध्रुवपदे इह वने हरिर्विहरतीत्यष्टपद्या एकवाक्यत्वात् विहारार्थेयत्वे वृन्दावनशब्दो व्याख्यातः। सम्प्रति वसन्तविशेषणत्वेन व्याक्रियते। किम्भूते वसन्ते ? वृन्दावनविपिने। वृन्दमवतीति वृन्दावनं तद्विपिनं यस्मिन्स तथा तस्मिन् परिसरे पर्यन्तभुवि परिगतं यद्यमुनाजलं तेन पूते ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में भी सखी श्रीराधाजी को समझाती हुई कह रही है कि यह ऐसा समय है कि चेतन की क्या बात जड पदार्थ भी काम के विकारों से विकृत हो गये हैं। वायु के झोंके के साथ झूमती हुई अतिमुक्तलता (माधवीलता) का आम्रवृक्ष ने आलिङ्गन किया तो वह मुकुलित और रोमाञ्चित हो गया। उसमें आम्र की मञ्जरी निकल आयी। इस प्रकार के काल में श्रीभगवान् वृन्दावन में केलि कर रहे हैं। समीप में बहने वाली यमुना के जल से पवित्र वृन्दावन के विपिन में श्रीभगवान् युवतियों के साथ केलि कर रहे हैं। अतएव तुम भी जाकर भगवान् के साथ मिलकर केलि करो ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमुदयति हरिचरणस्मृतिसारम् ।
सरसवसन्तसमयवनवर्णनमनुगतमदनविकारम् ॥ विह० ॥ ९ ॥

अनुवाद—जिसमें श्रीभगवान् के चरणों का स्मरण ही प्रधान है, वैसा यह श्रीजयदेव कवि प्रणीत मङ्गलगीत सर्वोत्कृष्ट है। इसमें कामविकारों से अनुस्यूत सरस वसन्त काल का वर्णन है ॥ ९ ॥

श्रीजयदेवभणितमिति। तेनेति मङ्गलवाचकम्। ततः पाटावाद्यक्षरोत्तरः। ततः स्वरः षड्जादिः। इदं श्रीजयदेवभणितं सरसवसन्तसमयवर्णनमुदयति उदयं प्राप्नोति सर्वोत्कृष्टत्वेन वर्तते। सरसं शृङ्गाररसयुक्तं वसन्तकालीनवनवर्णनं यत्र। सर्वोत्कृष्टत्वे हेतुमाह। हरिचरणस्मृतिरेव सारं यत्र। वा हरिचरणस्मृत्या हेतुभूतया सारम्। अथवा हरिचरणयोः स्मृतिश्चिन्तनं सारमुत्कृष्टं यत्र। सरसवसन्तत्वे हेतुमाह। अनुगतो मदनविकारो यत्र येन वा अनुगतोऽनुस्यूतः॥ अस्यामष्टपद्यां जातिरलङ्कारः। मध्या नायिका। गुर्जरीरागेण ऋषभादिना। दक्षिणो नायकः। तल्लक्षणं प्रागुक्तम्। विप्रलम्भा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ख्यः शृङ्गारो रसः। लयो नाम छन्दः। तल्लक्षणम्—'मुनियगणैर्लयमामनन्ति तज्ज्ञाः' इति। तदुक्तं छन्दश्चूडामणौ चलय इति। विप्रलम्भविभावप्रसङ्गाद्वायुं वर्णयति—'रचितो गद्यपद्याद्यैर्वसन्ते पार्थिवोत्सवे। वसन्तरागे झम्पाख्यताले मध्यलयाञ्चिते॥ गमकालप्तिभूयिष्ठः पूर्णकल्पः प्रकीर्तितः। पूतौ पुनस्तेन पाटस्वराञ्चितविराजितः॥ माधवोत्सवः कमलाकरनामा प्रबन्धराट्' ॥ ९ ॥

इति माधवोत्सवकमलाकरनामा तृतीयः प्रबन्धः।

भावप्रकाशिका—इस मङ्गलगीत का प्रणयन श्रीजयदेव कवि ने किया है। यह मङ्गलगीत सर्वोत्कृष्ट इसलिए है कि इसमें श्रीभगवान् के चरणों के स्मरण की ही प्रधानता दी गयी है। इस मङ्गलगीत में कामविकारों से अनुगत रसमय वसन्त काल का वर्णन किया गया है। कामविकार से अनुस्यूत होने पर भी इस मङ्गलगीत की सर्वोत्कृष्टता में हेतु को उपन्यस्त करते हुए कवि ने कहा कि अन्य मङ्गलगीतों में श्रीभगवान् के चरणों की स्मृति की प्रधानता होती है, किन्तु इसमें तो भगवान् के चरणों का स्मरण ही प्रधान है।

इस अष्टपदी में जाति नामक अलङ्कार है। इसमें वर्णित श्रीराधा मध्या नायिका हैं। इसके दक्षिण नायक भगवान् श्रीकृष्ण हैं और इस मङ्गलगीत का रस विप्रलम्भ शृंगार है। इस अष्टपदी में प्रयुक्त छन्द का नाम लय है। 'मुनियगणैर्लयमामनन्ति तज्ज्ञाः'। यह लय छन्द का लक्षण है।

इस तृतीय प्रबन्ध का नाम माधवोत्सवकमलाकर है॥ ९ ॥

दरविदलितमल्लीवल्लिचञ्चत्परागप्रकटितपटवासैर्वासयन्काननानि।
इह हि दहति चेतः केतकीगन्धबन्धुः
प्रसरदसमबाणप्राणवद्गन्धवाहः॥ १० ॥

अनुवाद—थोड़ी-सी विकसित मल्लिका लता के प्रसृमर पराग रूपी पटवास के द्वारा वनों को सुगन्धित बनाते हुए केतकी के सुगन्ध से युक्त तथा चारों ओर बढ़ते हुए कामदेव के प्राण के समान वायु इस वसन्त ऋतु में विरहीजनों को जलाने का कार्य कर रहा है॥ १० ॥

दरेति। इह वने वसन्ते वा गन्धवाहो वायुश्चेतो दहति। अर्थाद् विरहिणाम्। किम्भूतं चेतः? प्रसरत्, अर्थान्मनोरथं प्रति। पुनः किम्भूतम्? असमबाणप्राणवत्कामस्य जीवितमिव। अथवा प्रसरदसमबाणप्राणवद्गन्धवाह इति पदम्। प्रसरता असमबाणेन प्राणवांश्चासौ गन्धवाहः। वा प्रसरन्योऽसावसमबाणः तस्य प्राणवज्जीवितमिव। प्राणवतो वा। किम्भूतो वायुः? केतकीगन्धसहचरः। किं कुर्वन्? काननानि वासयन्। कैः? ईषद्विकसितमल्लीनां जातीलतानां चञ्चन्तो गच्छन्तो ये परागास्तैः प्रकटिता ये पटवासाः वासचूर्णानि तैः। 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति मालिनीछन्दः। अत्र समासोक्तिवर्णानुप्रासोपमालङ्काराः। विप्रलम्भाख्यः शृङ्गारो रसः। पाञ्चाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रीतिः। अत्र विरहिहृदयविदारणपटीयसः पवनस्य त्रैविध्येन चेतोवाहकत्वोपन्यासेन युवतिजनस्य आत्मसात्कर्तृत्वेन यत्स्मरप्राणवत्त्वमुदितं तदौचित्यसंरणिसागरप्लवनतरणित्वमातनोतितराम्। यदभाणि क्षेमेन्द्रेण (औ० वि० ११)—'तिलकं बिभ्रती सूक्तिर्भात्येकमुचितं पदम्। चन्द्राननेव कस्तूरीकृतं श्यामेव चान्दनम्' ॥ इति ॥ १० ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी श्रीराधाजी के समक्ष वसन्त काल में चलने वाली वायु की उद्दीपकता का वर्णन करती हुई कहती है कि इस समय मल्लिका लता विकसित हो गयी है। उसके उड़ते हुए परागपुञ्ज ही पटवास का काम करते हैं। उस पटवास (परिमलचूर्ण) के द्वारा वायु भी सुगन्धित हो गयी है और सम्पूर्ण वन को सुगन्धित बना रही है। इस वसन्त ऋतु में चलने वाली वायु केतकी पुष्प की सुगन्धि से परिपूर्ण है। ऐसा लग रहा है कि इस समय चारों ओर कामदेव का जो प्रभाव बढ़ रहा है, यह वासन्ती वायु उस कामदेव की मानो प्राणवायु हो। जिस प्रकार कामदेव विरहीजनों को सन्तप्त करने का काम करता है, उसी प्रकार यह वायु भी विरहीजनों को सन्तप्त कर रही है।

इस श्लोक में मालिनी छन्द है। 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः'। यह मालिनी छन्द का लक्षण है। इस श्लोक में समासोक्ति तथा वर्णानुप्रास इन दो अलङ्कारों की संसृष्टि है।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि इस वसन्त ऋतु में चलने वाली वायु शीतल, मन्द तथा सुगन्ध से युक्त है। इस प्रकार की वायु भी विरहीजनों के लिए दाहक है तथा युवतियों को आत्मसात् करने वाला है, अतएव वह कामदेव के प्राण के समान है। यह वर्णन औचित्यातिशयसम्पन्न है। औचित्य के द्वारा ही काव्य में रस की पुष्टि है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा नामक ग्रन्थ में औचित्यविन्यास का काव्य में बड़ा ही महत्त्व बतलाया है। उन्होंने कहा है कि वाक्य का एक ही उचित पद उस सूक्ति के तिलक के समान सुशोभित होता है। यह उसी प्रकार सुशोभित होता है, जिस प्रकार किसी नायिका ने अपने चन्द्रमा के समान आह्लादक मुख के ऊपर कस्तूरी का तिलक लगा लिया हो। तथाहि—

'तिलकं बिभ्रती सूक्तिर्भात्येकमुचितं पदम्।
चन्द्राननेव कस्तूरी कृतं श्यामेव चान्दनम्' ॥ (औ० वि० ११)

उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूतचूताङ्कुर-
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलरवैरुद्गीर्णकर्णज्वराः।
नीयन्ते पथिकैः कथङ्कथमपि ध्यानावधानक्षण-
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरमी वासराः ॥ ११ ॥

अनुवाद—निकलते हुए पुष्पपराग के सुगन्ध के लोभी भ्रमरों से आन्दोलित आम्रमञ्जरी पर क्रीड़ा करती हुई कोयलों की जो मधुर ध्वनि के कोलाहल से कर्णज्वर उत्पन्न हो जाने के कारण इस वसन्त ऋतु के दिन प्रियतमा के चिन्तनकाल में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनके समागमजन्य आनन्द के आविर्भूत हो जाने से प्रवासी पुरुषों द्वारा बड़े ही कष्ट में ये दिन बिताये जाते हैं ॥ ११ ॥

उन्मीलदिति । पथिकैरमी वसन्तसमयवासराः कथङ्कथमिव महता कष्टेन नीयन्ते । कैः कृत्वा ? ध्यानावधानक्षणे प्रियानुचिन्तनैकाग्रताप्रस्तावे प्राप्तो यः प्राणसमासमागम-रसोऽनुरागस्तस्य प्रकटीभावैः । अथवा रसस्योल्लासो येष्विति पथिकविशेषणम् । किम्भूता वासराः ? उन्मीलन्योऽसो मधुगन्धः पुष्परसगन्धस्तत्र लुब्धा ये मधुपा भ्रमरास्तैर्व्याधूता आन्दोलिता ये चूताङ्कुरास्तेषु क्रीडन्तो ये कोकिलास्तेषां काकल्युपलक्षित-कलरवैरुद्गीर्णं उत्पादितः कर्णज्वरो यैस्ते तथा । कोकिलो वसन्तमासे पञ्चमं वदतीति स्थितिः । अत्र च चूतधूननेन मधुपे रोषावेशान्निषादकाकलीमुक्तवानित्याशयः । अथवा कथङ्कथमपीति ध्यानेनेत्यादिना योज्यम् । ततो विरहिणो ह्यनवस्थितचित्तत्वाद् ध्यातुमपि न शक्नुवन्ति । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः । गौडीया रीतिः । विप्रलम्भाख्यशृङ्गारो रसः । अत्र कामोद्दीपनविभावैः कोकिलकाकलीकलरवाद्यैः सञ्जनितकर्णज्वरत्वेन प्राणसमसमागमाकाङ्क्षित्वेन विरहासहिष्णुत्वापेक्षया यद्वासराणां कर्मगतं बहुत्वमापादितं तत्सुतरामौचित्यकोटिमाटीकते ॥ ११ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी राधिकाजी से बतलाती है कि ये वसन्त ऋतु के दिन विरहीजनों के लिए अत्यन्त कष्टकारक हैं । विरही पुरुष इन दिनों को बड़े ही कष्ट से बिता पाते हैं । वसन्त ऋतु के दिनों की विशेषता को बतलाती हुई सखी कहती है कि इन दिनों सम्पूर्ण वन में पुष्पों के विकसित हो जाने से चारों ओर से मानों मधु की धारा निस्स्यन्दित हो रही है । चारों ओर से पराग की सुगन्धि आ रही है । उस पराग की सुगन्धि के लोभी भौंरें उड़-उड़कर आम की जिन मञ्जरियों को हिला देते हैं, उन पर खेलती हुई कोयल की मधुर ध्वनि की आवाज आ रही है । उन आवाजों को सुनकर प्रवासी पुरुषों को कर्णज्वर उत्पन्न हो जा रहा है ।

वसन्त के महीने में कोयल पञ्चम राग में गाती है ।

वे प्रवासी जन कोयल की आवाज को सुनकर जब उदास होकर अपनी प्रियतमा का स्मरण करते हैं तो उन्हें लगता है कि जैसे प्रियतमा का समागम हो गया हो । उस समय उनके मन में अनुराग का भाव उदीर्ण हो जाता है । इस प्रकार वे पथिक जन वसन्तराज के इन दिनों को बड़े ही कष्ट के साथ बिताते हैं । इन दिनों को बिता पाना उनके लिए मुश्किल हो जाता है ।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है । इसमें काव्यलिङ्ग नामक अलङ्कार, गौडीया रीति तथा विप्रलम्भ-शृङ्गार रस है ।

'वासरा' पद में बहुवचन का प्रयोग औचित्ययुक्त है ॥ ११ ॥

अनेकनारीपरिरम्भसम्भ्रमस्फुरन्मनोहारिविलासलालसम् ।
मुरारिमारादुपदर्शयन्त्यसौ सखी समक्षं पुनराह राधिकाम् ॥ १ ॥

यहाँ से चतुर्थ प्रबन्ध प्रारम्भ होता है ।

अनुवाद—अनेक नारियों के आलिङ्गन में आदरयुक्त होने के कारण मनोज्ञ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विलास की लालसा से युक्त श्रीकृष्ण को समीप में दिखलाती हुई वह सखी पुनः श्रीराधाजी से बोली ॥ १ ॥

अनेकेति । असौ सखी राधां पुनर्वक्ष्यमाणमाह । किं कुर्वंती ? आरात्समीपे समक्षं प्रत्यक्षं यथा स्यात्तथा मुरारिं दर्शयन्ती दृष्टिपथमवतारयन्ती । अनेकनारीणां परिरम्भ-सम्भ्रमेण त्वरया स्फुरन्तो मनोहारिणो ये विलासास्तेषु लालसा यस्य, तेषु लालस उत्सुको वा । 'वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ' इति वर्णसाम्यमनुप्रासः । दक्षिणो नायकः ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—इस चतुर्थ प्रबन्ध का प्रारम्भ करते हुए श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि पुनः वही सखी जो इससे पहले के प्रबन्ध में श्रीराधाजी को सान्त्वना दे रही थी, पुनः दूर से श्रीकृष्ण भगवान् को दिखलाती हुई आगे के श्लोक में कही जाने वाली बातें कहने लगी ।

उस समय भगवान् श्रीकृष्ण अनेक स्त्रियों के आलिङ्गन के विषय में आदरातिशय युक्त थे । उस समय वे अनेक प्रकार के मनोंहर विलास की लालसा से युक्त थे ।

इस श्लोक में 'वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ' इस लक्षण के अनुसार वंशस्थ-विला छन्द, अनुप्रास अलङ्कार तथा दक्षिण नायक हैं ॥ १ ॥

रामकरीरागयतितालाभ्यां गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ ॥ ४ ॥

अनुवाद—इस चतुर्थ प्रबन्ध के आगे के श्लोक रामकरी राग तथा यति ताल से गाये जाते हैं ।

चन्दनचर्चितनीलकलेवरपीतवसनवनमाली ।
केलिचंलन्मणिकुण्डलमण्डितगण्डयुगस्मितशाली ॥ २ ॥
हरिरिह मुग्धवधूनिकरे विलासिनि विलसति केलिपरे ॥ ध्रुव० ॥

अनुवाद—हे विलासिनी श्रीराधाजी ! चन्दन से लिप्त नीलवर्ण के शरीर वाले, पीतवस्त्रधारी, वनमाला धारण करने वाले, क्रीड़ाकाल में चञ्चल मणिकुण्डल से मण्डित कपोल वाले तथा मन्द मुस्कान करते हुए श्रीहरि यह मुग्धा नायिकाओं के क्रीड़ापरायण तथा विलासयुक्त समूह में विलास कर रहे हैं ॥ २ ॥

तदेव गीतेन दर्शयति झम्पातालेन—चन्दनचर्चितेति । पदानां बाहुल्यात्पूर्वं ध्रुव-पदं व्याक्रियते—हरिरिति । हे राधे हे विलासिनि ! इह मुग्धवधूनिकरे हरिर्विलसति । कीदृशे निकरे ? केलिपरे । पुनः कीदृशे ? विलासिनि विलासो विद्यते यस्य । एकस्यै-वोभयविशेषणत्वम् । इति ध्रुवः । अथ पदानि । चन्दनेत्यादि । चन्दनेन चर्चितमनु-लिप्तम् । चर्चिस्तु यद्यप्यध्ययने वर्तते तथापि धातूनामनन्तार्थत्वादनुलेपे वर्तत इति । तथा चोक्तम्—'क्रियावाचि समाख्यातुं प्रसिद्धार्थप्रदर्शनः । प्रयोगतोऽनुमन्तव्या अनेकार्था हि धातवः' ॥ इति । नीलं कलेवरं शरीरं यस्य, पीतं वसनं यस्य, वनमाला विद्यते यस्य, ततः कर्मधारयः । अथवा चन्दनेन चर्चिते नीलकलेवरे पीतवसने वनमालाश्च विद्यन्ते यस्यासौ तथा । चन्दनेन चर्चिते ये नीलकलेवरपीतवसने तयोर्वनं संसक्तिरचना-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विशेषस्तं मलते धारयतीति स तथा। केल्या चलन्ती ये मणिकुण्डले ताभ्यां मण्डितं गण्डयुगं यस्य स तथा। तथा स्मितशाली स्मिताढ्यः ईषद्धसितयुक्त इति द्वे पदे। अथवा द्वे पदे कृत्वा कर्मधारयः। अथवा ईदृशं गण्डयुगं च स्मितं च ताभ्यामाढ्यः। अथवा गण्डयुगे स्मिताढ्य इति तन्मात्रेणैवानुमेयं स्मितं नास्य प्रसारणेन ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—जहाँ पर श्रीराधाजी अपनी सखी के साथ विद्यमान थी उससे कुछ दूरी पर श्रीभगवान् अनेक नायिकाओं के साथ विहार कर रहे थे। उनकी उस क्रीड़ा को दिखलाती हुई सखी श्रीराधाजी से कहती है कि हे सखी! इस समय देखो, श्रीभगवान् केलिपरायण तथा विलासयुक्त नायिकाओं के समूह में विलास कर रहे हैं। मुग्ध शब्द मुग्धा नायिका के भेद तथा सुन्दर दोनों का वाचक है। यहाँ पर मुग्ध शब्द के ये दोनों अर्थ अभिप्रेत हैं। श्रीभगवान् जिन रमणियों के साथ विलास कर रहे हैं वे मुग्धा हैं तथा सुन्दर भी हैं।

विलास एक हाव-विशेष का नाम है। इसका स्वरूप बतलाते हुए भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में कहा है कि बैठने, चलने तथा यात्रा करने के समय नेत्र एवं मुख आदि की क्रिया के द्वारा जो विशेष प्रकार की मनोहर चेष्टा की जाती है, उसे विलास शब्द से अभिहित किया जाता है—

'स्थाने यानासने वापि नेत्रवक्त्रादिकर्मणा।
उत्पाद्यते विशेषो यः स विलासः प्रकीर्तितः' ॥

इस विलास की वेला में श्रीभगवान् के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई वह सखी कहती है कि इस समय श्रीभगवान् का श्यामवर्ण का शरीर चन्दन से चर्चित हैं। वे पीला वस्त्र पहने हुए हैं तथा वनमाला धारण किये हुए हैं। क्रीड़ा में परायण होने के कारण चञ्चल दोनों मणिकुण्डलों के द्वारा उनके दोनों कपोल समलंकृत हो रहे हैं तथा श्रीभगवान् स्मित कर रहे हैं। ईषद् हास को स्मित कहते हैं। इसी को मन्द मुसकान भी कहा जाता है। इस मुसकराने की क्रिया में स्मित करने वाले पुरुष के दाँत दिखलायी नहीं पड़ते। इसमें मनोहर कटाक्षों के द्वारा कपोल थोड़ा विकसित अवश्य हो जाते हैं। भरत मुनि के शब्दों में—

'ईषद्विकसितैर्गण्डैः कटाक्षैः सौष्ठवान्वितैः।
अलक्षितद्विजं धीरमुत्तमानां स्मितं भवेत्' ॥

इस गीत का राग रामकरी तथा झम्पा ताल है। रसमञ्जरीकार इस गीत में रूपक ताल मानते हैं ॥ २ ॥

पीनपयोधरभारभरेण हरिं परिरभ्य सरागम्।
गोपवधूरनुगायति काचिदुदञ्चितपञ्चमरागम् ॥ हरि० ॥ ३ ॥

अनुवाद—कोई गोपी विपुल स्तनभार के साथ स्नेहयुक्त तथा पञ्चम राग से गाने वाले श्रीहरि का आलिङ्गन करके उनके पीछे गाती है ॥ ३ ॥

अथ परस्परं गोपिकानां केलिचेष्टितमाह—पीनपयोधरेति। काचिद् गोपवधूर्हरिं गायन्तं हरिमनुगायति अंशकृत्येन गायति। किं कृत्वा? सरागं साभिलाषं तमेव हरिं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिरभ्य। किम्भूता ? पीनपयोधरभारभरेणोपलक्षिता। अथवा विपुलस्तनभारातिशयेन परिरभ्य। किम्भूतं हरिम् ? सरागं तदालिङ्गनसाभिलाषम्। पुनः किम्भूतम् ? उदञ्चित आ तारावध्यूर्ध्वं नीतः पञ्चमरागो येन वा, उदञ्चितः पञ्चमस्वरोपलक्षितो रागो येन वा, उदञ्चितः पञ्चमरागोऽनुरागो येन; अथवा उदञ्चितपञ्चमरागं यथा स्यात्तथेति गानक्रियाविशेषणम्। शृङ्गारे हि पञ्चमभूयिष्ठस्य गानस्य प्राधान्यात्, अथवा उदञ्चितहृद्यरागं यथा स्यात्तथा ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी श्रीराधाजी से गोपियों की आपस में की जाने वाली चेष्टाओं का वर्णन करती हुई कह रही है कि कोई गोपी विपुल स्तन-गौरवातिशयं के द्वारा अनुराग युक्त श्रीहरि का आलिङ्गन करके पञ्चम राग में गाने वाले श्रीहरि के गाने के पीछे-पीछे गान कर रही है। अर्थात् आगे-आगे श्रीहरि पञ्चम राग में गान करते हैं और गोपी उनके गाने के बाद उसी प्रकार से गा रही है। यहाँ पर गोपी को पीनपयोधरभारवती बतलाकर उसके सौन्दर्यातिशय को सूचित किया गया है।

इस वर्णन में श्रीकृष्ण की अनिपुणता भी वर्णित है। अतएव उनके द्वारा आलिङ्गन का प्रयास किये बिना ही गोपी उनका आलिङ्गन कर रही है। परस्पर आलिङ्गन किये जाने पर शृङ्गार रस ही परिपुष्ट होता है और शृङ्गार रस में पञ्चम राग का ही प्रायः गान किया जाता है। भरत मुनि ने कहा भी है—'पञ्चमं मध्यभूयिष्ठं हास्यशृङ्गारयोर्भवेत्'। अर्थात् हास्य तथा शृङ्गार रस में मध्यताल-प्रचुर पञ्चम राग ही गाया जाता है ॥ ३ ॥

कापि विलासविलोलविलोचनखेलनजनितमनोजम्।
ध्यायति मुग्धवधूरधिकं मधुसूदनवदनसरोजम् ॥ हरि० ॥ ४ ॥

अनुवाद—कोई मुग्धा नायिका अत्यधिक आनन्द का अनुभव करती हुई विलास-पूर्वक चञ्चल नेत्रों के इशारे से काम को उत्पन्न करने वाले श्रीभगवान् के मुखकमल का ध्यान करती है ॥ ४ ॥

कापि विलासेति। कापि मुग्धवधूरधिकं सातिशयं यथा स्यात्तथा मधुसूदनवदन-सरोजं ध्यायति। अधिकं सुखमधिकृत्य वा। किम्भूतम् ? विलासेन चेष्टाविशेषेण विलोले चञ्चले ये विलोचने तयोः खेलनेनावर्तनेन जनित उत्पादितो मनोजो येन। अत्र सरोजे योजितो मधुसूदनशब्द औचितीमावहति। 'षूद क्षरणे' इति मुखसरोजान्मधु स्रवतीत्यतिशयाधानम् ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी किसी मुग्धा नायिका की चेष्टाओं का वर्णन कर रही है। मुग्धा नायिका में लज्जा का प्राचूर्य होता है, अतएव उसकी शृंङ्गारिक चेष्टाएँ बड़ी ही मर्यादित होती हैं। अतएव वह नायिका श्रीभगवान् के मुखकमल का ध्यान कर रही है, क्योंकि श्रीभगवान् ने चेष्टा-विशेष के द्वारा अपने चञ्चल नेत्रों के इशारे से उसके हृदय में काम की भावना उत्पन्न कर दी है और वह अत्यधिक आनन्द का अनुभव मन ही मन कर रही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस श्लोक में मधुसूदन के वदन में सरोजत्व का आरोप करके औचित्य का आधान कर दिया है, क्योंकि कमल से मधु अधिक स्यन्दित होता है ॥ ४ ॥

कापि कपोलतले मिलिता लपितुं किमपि श्रुतिमूले ।
चारु चुचुम्ब नितम्बवती दयितं पुलकैरनुकूले ॥ हरि० ॥ ५ ॥

अनुवाद—किसी गोपी ने किसी कार्य को कान में बतलाने के बहाने रोमाञ्चित श्रीभगवान् के कपोलों का अच्छी तरह से चुम्बन किया ॥ ५ ॥

कापि कपोलतले इति । कापि नितम्बवती दयितं श्रीकृष्णं कपोलतले गण्डप्रदेशे चारु मनोहरं यथा स्यात्तथा चुचुम्ब । किम्भूता ? सखीषु चातुर्यात्किमपि कार्यान्तरं लपितुं श्रुतिमूले लग्ना । किम्भूते श्रुतिमूले ? अनुकूलेऽभिमुखमानीते । किम्भूते कपोलतले ? रोमाञ्चोपलक्षिते । हरेः सात्त्विकभावेन रोमाञ्चोद्गमः । अत्रानुगन्तुमशक्ता कार्यान्तरकथनव्याजेन हरिं स्थापयतीति नितम्बवतीत्युचितम् । सखीषु दयितचुम्बनं लज्जाकरमिति कार्यान्तरव्याजौचिती । अत्र प्रौढा नायिका । अनुकूलो नायकः ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी किसी प्रौढ़ा नायिका की चेष्टाओं का वर्णन कर रही है । प्रौढ़ा नायिका नायक के साथ श्रृङ्गारिक चेष्टाओं को करने में निपुण होती हैं । सखी कहती है कि कोई नितम्बिनी गोपी अपनी चतुरता के कारण किसी कार्यान्तर को श्रीभगवान् के कानों में बतलाने के बहाने भगवान् के कानों के सन्निकट अपने मुख का सटा दी । उसके उस प्रकार से किये हुए मुखड़े को देखकर श्रीभगवान् के भी मन में सात्त्विक भाव उमड़ आया । उनके भी कपोल रोमाञ्च से अञ्चित हो गये । इसे देखकर उस नायिका ने श्रीभगवान् के गालों का अच्छी तरह से चुम्बन किया ।

'नितम्बवती' पद के द्वारा नायिका के सौन्दर्यातिरेक को सूचित किया गया है । सखियों के बीच में श्रीभगवान् का चुम्बन करना अनुचित है, अतएव उसने कार्यान्तर-बोधन का बहाना बनाया और श्रीभगवान् के कपोलों का चुम्बन किया । इस प्रकार इस नायिका के श्रृङ्गार-वैदग्ध्य को सूचित किया गया है । इस श्लोक में वर्णित नायक भगवान् श्रीकृष्ण अनुकूल नायक हैं ॥ ५ ॥

केलिकलाकुतुकेन च काचिदमुं यमुनाजलकूले ।
मञ्जुलवञ्जुलकुञ्जगतं विचकर्ष करेण दुकूले ॥ हरि० ॥ ६ ॥

अनुवाद—मनोहर वञ्जुलकुञ्ज में गये हुए भगवान् श्रीकृष्ण का किसी नायिका ने क्रीडाकलाकौतूहलवशात् वस्त्र पकड़कर यमुना-जल के किनारे खींच लिया ॥ ६ ॥

केलिकलेति । काचिद् गोपी केलिकलाकुतुकेन क्रीडाविज्ञानकौतुकेनामुं कृष्णं करेण दुकूले विचकर्ष । किम्भूतम् ? यमुनावनकूले मञ्जुलमनोहरवञ्जुलबकुलकुञ्जगतम्, वेतसकुञ्जं वा यमुनाया विपिनोपलक्षिततीर इत्यर्थः । अत्र चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तेन परिहासाद्युच्चीयते । 'यमुनाजलतीरे' इति पाठः । अत्र यमुनातीर इति वक्तव्ये 'जल'ग्रहणं शैत्यपावनत्वसन्निकर्षादिद्योतनार्थम् ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका——इस श्लोक में किसी अधीरा नायिका का वर्णन करती हुई सखी श्रीराधा से कहती है कि जब भगवान् श्रीकृष्ण मनोहर वेतसलताकुञ्ज में गये हुए थे, उस समय वहाँ पर किसी अधीरा नायिका ने भगवान् श्रीकृष्ण का कपड़ा पकड़ कर उन्हें यमुना तट में उस स्थान पर ले गयी जहाँ पर शैत्यपावनत्वातिशय विद्यमान था। उस गोपी के द्वारा ऐसा करने का कारण यह था कि वह केलिकला के कौतूहल से आविष्ट हो गयी थी । 'चकार' के द्वारा यह सूचित किया गया है कि उसने एकान्त में भगवान् को पाकर अनेक प्रकार का परिहास किया ।

'यमुनातीरे' न कहकर 'यमुनाजलतीरे' कहने का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार का शैत्यपावनत्व यमुना के जल में होता है, उसी प्रकार का शैत्यपावनत्व उस यमुना तट में भी था, जिस स्थान पर वह नायिका भगवान् श्रीकृष्ण को ले गयी ।

किसी अन्य नायिका में अनुरक्त भगवान् श्रीकृष्ण का वस्त्र पकड़कर उनका आकर्षण किया जाना नायिका की अधीरता को अभिव्यक्त करता है ।। ६ ॥

करतलतालतरलवलयावलिकलितकलस्वनवंशे ।
रासरसे सहनृत्यपरा हरिणा युवतिः प्रशशंसे ॥ हरि० ॥ ७ ॥

अनुवाद—हाथों की ताली के ताल के कारण चंचल कंगन-समूह से अनुगत वंशी-वादन से युक्त रास के आनन्द में साथ-साथ नृत्य करने के कारण किसी युवति की श्रीभगवान् ने प्रशंसा की ॥ ७ ॥

करतलेति । हरिणा कृष्णेन कापि युवतिः प्रशशंसे स्तुता । किम्भूता ? रासरसे गोपीनां क्रीडानुरागे सहनृत्यपरा कृष्णेन सह तुल्यकालं नृत्यन्ती । किम्भूते रासरसे ? करतलयोस्तालस्तालिका तया तरला या वलयावलिर्हस्तकटकश्रेणिस्तया कलितोऽनुगतः कलस्वनो वंशो यत्र यस्मिंस्तथा । अथवा—'अङ्गनामङ्गनामन्तरे माधवः' इममर्थं प्रकटयति ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी श्रीराधाजी से कहती है कि रास के आनन्द में कोई गोपी सम्मिलित हुई । उस रास के आनन्द का स्वरूप बतलाती हुई सखी कहती है कि हाथों की ताली बजाने के कारण जो चंचल कंगनों की पंक्ति है, उसी के साथ भगवान् उस रास में वंशी बजाया करते थे । उसने श्रीभगवान् के साथ नृत्य किया । उससे प्रसन्न होकर भगवान् ने उस युवति की प्रशंसा की । हारावलिकार कहते हैं कि ग्वालों के द्वारा की जाने वाली क्रीड़ा का नाम रास है । 'रासस्तु गोदुहां क्रीडा' । इसलिए लगता है कि श्रीभगवान् प्रायः इस क्रीडा को किया करते थे । रास में एक स्त्री के पश्चात् एक पुरुष हुआ करता है तथा दोनों गीत गा-गाकर आपस में तालियाँ एक-दूसरे की ताली के साथ बजाया करते हैं । इस रास-क्रीडा में अनेक लोगों का मण्डलाकार समूह हुआ करता है । इस प्रकार की क्रीड़ा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में जो युवति अपनी अच्छी कला दिखलाती थी भगवान् श्रीकृष्ण उसकी प्रशंसा किया करते थे ॥ ७ ॥

श्लिष्यति काममपि चुम्बति काममपि काममपि रमयति रामाम् ।
पश्यति स स्मितचारुतरामपरामनुगच्छति वामाम् ॥ हरि० ॥ ८ ॥

अनुवाद—भगवान् किसी रमणी का आलिंगन करते हैं, किसी का चुम्बन करते हैं तथा किसी के साथ रमण करते हैं। किसी मुस्कुराती हुई सुन्दरी को देखते हैं तथा किसी नारी के पीछे-पीछे चलते हैं ॥ ८ ॥

एकस्यैव हरेः प्राकाम्यसिद्धया सर्वाभिः सहैककालं क्रीडनमाह—श्लिष्यतीति । स हरिः रासरसे क्वचित्काममपि अन्ययाऽन्यया सह उक्तरीत्या क्रीडति । रामेति रमणशीला तां रमयति। स्मितचारुतरेति रसदृष्टेरुपलक्षणम्। स्मिते हि रतिभाव उल्बणो भवतीति। 'वामाम्' इत्यनुनयेऽपि पराङ्मुखीत्वम्। तामनुगमनेन साधयतीति चातुर्यम्। अथवा—नानारूपाणि विधाय तया तया सह तया तयावस्थया क्रीडितवान्। अथवा—सममेवैकामाश्लिष्य तामाश्लिष्यन्नेव परां चुम्बति। तत्कुर्वन्नेवान्यां रमयति। चेष्टाविशेषेण तदैवान्यां पश्यति। अन्यामनुगच्छतीत्यनुकरोतीति योज्यम्। श्लिष्यतीत्यादिषु क्रमेण शठधृष्टदक्षिणानुकूलधूर्ता नायकाः। नायिकास्तु अभिसारिका एव ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् गोपियों के साथ रासक्रीड़ा करने की वेला में अनेक रूप बना लेते हैं तथा उस क्रीड़ा में सम्मिलित होने वाली तत्-तत् नायिकाओं के साथ तत्-तत् प्रकार की श्रृङ्गारिक चेष्टाओं को किया करते हैं। श्रीभगवान् की उन्हीं चेष्टाओं का वर्णन करती हुई सखी श्रीराधाजी से कहती है कि श्रीभगवान् किसी गोपी का तो आलिंगन करते हैं, किन्तु उसी समय में वे किसी दूसरी गोपी का चुम्बन करते हैं। समकाल में ही वे किसी अन्य गोपी के साथ रमण करते हैं। यही नहीं, उस काल में ही वे किसी दूसरी गोपी, जो मुस्कुराती हुई मनोहर लग रही है, जिसके मधुर मुसकान को देखकर रति की भावना तीव्र होती है; उसको चेष्टाविशेष के साथ देखते हैं। साथ ही वे किसी-किसी दूसरी गोपी का अनुगमन करते हैं, जो रतिपराङ्मुख है, अनुनय करने की भी परवाह नहीं करती है; उसको मनाने के लिए उसके पीछे-पीछे चलते हैं।

इस श्लोक में श्रीभगवान् का वर्णन शठ, धृष्ट, दक्षिण, अनुकूल तथा धूर्त नायक के रूप में किया गया है। इस श्लोक में वर्णित सभी नायिकाएँ अभिसारिका नायिकाएँ हैं। शृङ्गारतिलक नामक ग्रन्थ में धृष्ट तथा शठ नायकों के लक्षण निम्न प्रकार से बतलाये गये हैं—

'अभिव्यक्तान्यतरुणी भोगलक्ष्मापि निर्भयः ।
मिथ्यावचनदक्षश्च धृष्टोऽयं खलु कथ्यते' ॥

(शृ० ति० १।१७)

अर्थात् अन्य तरुणी के साथ सम्भोग करने के चिह्नों के स्पष्ट रहने पर भी बिना भय के निपुणता के साथ जो झूठ बोलता है, उसे धृष्ट नायक कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'प्रियं वक्ति पुरोऽन्यत्र विप्रियं कुरुते भृशम्।
निगूढमपराद्धं च शठोऽयं कथितो बुधैः' ॥
(शृ० ति० १।२८)

अर्थात् विद्वानों ने उस नायक को शठ नायक कहा है जो अपने अपराध को छिपाये रहता है, किसी दूसरी नायिका के प्रति आसक्त रहता है और अपनी नायिका के समक्ष मिठी-मिठी बातें करता है ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमद्भुतकेशवकेलिरहस्यम् ।
वृन्दावनविपिने ललितं वितनोतु शुभानि यशस्यम् ॥ हरि० ॥ ९ ॥

अनुवाद—श्रीवृन्दावन के विपिन में भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा की गयी अद्‌भुत कामक्रीड़ा के रहस्यों से सम्बद्ध ज़यदेव कवि के द्वारा गाया गया ललित गीत कल्याण-प्रद होए तथा पढने एवं सुनने वालों के यश का विस्तार करें ॥ ९ ॥

उपसंहरति—श्रीजयदेवेति। अत्र स्वरा ऋषभाद्याः पाटाः। श्रीजयदेवकवेरिदमद्‌भुतकेशवकेलिरहस्यम् अद्‌भुतं च तत्केशवकेलिरहस्यं च तच्चरितं शुभानि वितनोतु। अर्थाद् गायतां शृण्वतां च। किम्भूतम्? यशस्यं यशस्करम्। क्व? वृन्दावनविपिने। अत्रैकेनानेकासामुपरञ्जनादद्‌भुतत्वम्। लयो नाम छन्दः। तल्लक्षणम्—'मुनियगणं-लंयमामनन्ति तज्ज्ञाः'। तदुक्तं छन्दश्चूडामणौ 'चिलय' इति ॥ ९ ॥

भावप्रकाशिका—इस गीत का उपसंहार करते हुए कवि कहते हैं कि श्रीजयदेव कवि ने श्रीभगवान् ने जिन अद्‌भुत कामक्रीड़ाओं को श्रीवृन्दावन के विपिन में किया उनका रहस्य इस गीत में बतला रहे हैं। श्रीभगवान् की यह कामक्रीड़ा इसलिए अद्‌भुत है कि एक ही श्रीभगवान् ने अनेक गोपांगनाओं की कामनाओं की पूर्ति की तथा उनके साथ क्रीड़ा की। ताल एवं राग में आबद्ध होने के कारण यह ललित गीत है। इसके लालित्य का सबसे बड़ा कारण यह है कि इसमें श्रीभगवान् की केलि का रहस्य वर्णित है। यह गीत पढ़ने और सुनने वाले भक्तजनों का कल्याण करे और यश को बढ़ाये ॥ ९ ॥

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर-
श्रेणीश्यामलकोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम् ।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
शृङ्गारः सखि! मूर्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीडति ॥ १० ॥

अनुवाद—हे सखि! नीलकमल-समूह के समान श्यामवर्ण के कोमल अङ्गों के द्वारा कामोत्सव को उपस्थापित करते हुए, अनुराग के द्वारा सबों को आनन्दित करते हुए, स्वच्छन्दतापूर्वक व्रजसुन्दरियों के द्वारा प्रत्येक अङ्गों से आलिङ्गित मूर्तिमान् शृङ्गार के समान श्रीहरि इस वसन्त ऋतु में क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ १० ॥

इदानीं काचित्सखी राधां प्रति कृष्णस्यातिशयशृङ्गारशालितादर्शनव्याजेन तदुन्मुखीकर्तुमाह—विश्वेषामिति। हे सखि राधे! मधौ वसन्ते मुग्धः सुन्दरो हरिः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्रीडति। क इव? मूर्तिमान् शृङ्गाररस इव। 'पुरुषः प्रमदायुक्तः शृङ्गार इति संज्ञितः'। किं कुर्वन्? अनुरञ्जनेनानुरागेण विश्वेषां सर्वेषाम् आनन्दं जनयन् हरिः शृङ्गारश्च। पुनश्च किं कुर्वन्? अङ्गैरनङ्गोत्सवमुपनयन्नुपस्थापयन्। किम्भूतैरङ्गैः? इन्दीवरपङ्क्तिश्यामलकोमलैर्नीलोत्पलराजिवच्छ्यामलसुकुमारैः। पुनः किम्भूतः? व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः प्रतिप्रतीकमाश्लिष्टः। अभितः सर्वतः। कथम्? स्वच्छन्दं यथा स्यात्तथा। अथवा यद्यदङ्गं यया यया समासादितं तत्तया तया समालिङ्गितमिति प्रतिप्रतीकशब्दार्थः। अत्र दीपकमलङ्कारः। वैदर्भी रीतिः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः। शृङ्गारो रसः। वाक्यौचित्यं च 'चन्दनचर्चिते'त्यत्र उत्कण्ठिता नायिका। तल्लक्षणम्—'प्रिये कृतव्यलीकेऽपि विरहोत्कण्ठितोन्मनाः' ॥ १० ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी राधाजी को भगवान् की श्रृंङ्गारिक चेष्टाएँ दिखलाती हुई उन्हें श्रीभगवान् के पास चलने के लिए प्रेरित करती है कि हे सखि! इस वसन्त ऋतु में श्रीभगवान् साक्षात् शृङ्गार रस के समान क्रीड़ा कर रहे हैं। श्रीभगवान् को मूर्तिमान् शृङ्गार रस के समान बतलाकर सखी उनके प्रमदासङ्गतत्व को सूचित करती है। 'पुरुषः प्रमदायुक्तः शृङ्गार इति संज्ञितः'। अर्थात् प्रमदासंगत पुरुष शृङ्गार कहलाता है। इस समय भगवान् अनुराग के द्वारा सम्पूर्ण जीवों को आनन्दित कर रहे हैं। श्रीभगवान् के अङ्गों के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई सखी कहती है कि श्रीभगवान् के अङ्ग नीलकमल-समूह के समान श्यामवर्ण के तथा कोमल हैं। कमल स्वभावतः कोमल होता है, किन्तु नीलकमल की कोमलता स्वेतर समस्त प्रकार के कमलों की अपेक्षा अधिक होती है। अपने इन कोमलतम अङ्गों के द्वारा श्रीभगवान् कामोत्सव मना रहे हैं। व्रज की सुन्दरियाँ विना किसी अवरोध के स्वच्छन्दतापूर्वक उनके तत्-तत् अङ्गों का आलिङ्गन की हुई हैं। अतएव इस समय तुम्हें श्रीभगवान् के इस मदन-महोत्सव में अवश्य सम्मिलित हो जाना चाहिए, उनसे पृथक् नहीं रहना चाहिए।

इस श्लोक में दीपकालङ्कार है, वैदर्भी रीति है, शार्दूलविक्रीडित छन्द है, शृंगार रस है तथा वाक्यौचित्य है। इस सम्पूर्ण गीत की नायिका श्रीराधाजी उत्कण्ठिता नायिका है। नायक के द्वारा विपरीत आचरण किये जाने पर भी विरहोत्कण्ठित तथा उदास रहने वाली नायिका उत्कण्ठिता नायिका कहलाती है। यथा—

'प्रिये कृतव्यलीकेऽपि विरहोत्कण्ठितोन्मनाः' ॥ १० ॥

नित्योत्सङ्गवसद्भुजङ्गकवलक्लेशादिवेशाचलं
प्रालेयप्लवनेच्छयानुसरति श्रीखण्डशैलानिलः।
किं च स्निग्धरसालमौलिमुकुलान्यालोक्य हर्षोदया-
दुन्मीलन्ति कुहूः कुहूरिति कलोत्तालाः पिकानां गिरः ॥ ११ ॥

अनुवाद—सर्वदा अपने अङ्क में रहने वाले सर्पों के दंश से उत्पन्न संताप को शान्त करने के लिए हिमावगाहन की इच्छा से मलयाचल की वायु हिमाद्रि की ओर जा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रही है। किञ्च मनोहर आम्रमञ्जरियों को देखकर हर्षोत्फुल्ल कुहू-कुहू करती हुई कोयल जोर-जोर से बोलने लगी है ॥ ११ ॥

श्रीखण्डशैलानिलो मलयाचलपवनः ईशाचलं हिमाद्रिमनुसरति याति। ईशश्चासावचलश्चेति। अथवा—ईशायाः पार्वत्याः गुरुरचलः, मध्यमपदलोपाद् टाब्विधानाद् वा ईशोपलक्षिताचल इति। अथवा—ईशाचलं कैलासमनु लक्ष्यीकृत्य सरति। कया? प्रालेयप्लवनेच्छया हिमावगाहनेच्छया। अत्रोत्प्रेक्षितं हेतुमाह—नित्येति। नित्यमुत्सङ्गे वसन्तो ये भुजङ्गा एव भुजङ्गकास्तेषां यद्वलनं तस्मात्, तत्र वा यः क्लेशः तस्मादिव। अथ भुजङ्गकाद्यद्वलनं तेन यो जायमानः क्लेशः तस्मादिव। अथवा—कवलनं कवलो दशनं तस्मात्। सर्पदष्टो हि तत्तापोपशान्तये शीतलेच्छुर्भवति। किं चेति विभावान्तरमाह। पिकानां कोकिलानां कुहूः इति गिर उन्मीलन्ति प्रादुर्भवन्ति। किम्भूताः? कलोत्तालाः कलाश्च ता उत्ताला उदीर्णाः। कुतः? हर्षोदयात्। किं कृत्वा? स्निग्धानि यानि रसालमौलिषु मुकुलानि चूतशिरःसु कुड्मलास्तानालोक्य। अथवा—स्निग्धानि रसालानां मौलिमुकुलानि चूतशिरांसि अशोकानां च मुकुलानीत्यालोक्य। हर्षोदयादिति क्रिययोरेककर्तृकत्वात्पूर्वकालता। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। अत्र वर्णानुप्रासोपमाहेतवोऽलङ्काराः। वैदर्भी रीतिः। अत्र विप्रलम्भाख्यभृङ्गारसूचको रत्याख्यः स्थायीभावः। अत्र विरहिमनःशरीरकर्तनकुशलानां स्निग्धरसालमौलिमुकुलानामालोकनेन जातहर्षाणां पिकानां गिरां तद्वैरीन्दुविलुण्टाककुहूरूपेण यदुन्मीलनलक्षणं यथा क्रियास्वरूपनिरूपणमकारि तन्नितरामौचित्यकोटिमालम्बते। उक्तं च–'सगुणत्वं सुवृत्तत्वं साधुता च विराजते। काव्यस्य सुजनस्येव यद्यौचित्यवती क्रिया ॥' इति ॥ ११ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी ने शृंगार रस के दो प्रकार के विभावों का वर्णन किया है। उसने कहा कि इस वसन्त ऋतु में मलयाचल की वायु हिमालय की ओर जा रही है। उसके हिमालय की ओर जाने का कारण यह है कि मलयाचल पर चन्दन के वृक्षों पर विषैले सर्प निवास करते रहते हैं। उनके दंश के कारण मलयाचल को मानो संताप उत्पन्न हो गया हो। लगता है कि अपने उस संताप के कारण हिमालय की बर्फिली हवा का सेवन करने के लिए वह हिमालय पर जा रही है। किञ्च इस समय आम्रवृक्षों पर मञ्जरी निकल आयी है। आम्रमञ्जरियों को देखकर कोयलों का समूह हर्षोन्मत्त होकर जोर-जोर से कुहू-कुहू की आवाज करने लगा है। इस तरह की मादक वेला में तुम्हारा भगवान् श्रीकृष्ण से दूर रहना ठीक नहीं है।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द, वर्णानुप्रास तथा उपमा अलङ्कार, वैदर्भी रीति तथा विप्रलम्भ-शृङ्गार का सूचक रति नामक स्थायिभाव है ॥ ११ ॥

रासोल्लासभरेण विभ्रमभृतामाभीरवामभ्रुवा-
मभ्यर्णं परिरभ्य निर्भरमुरः प्रेमान्धया राधया।
साधु त्वद्वदनं सुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुति-
व्याजादुद्भटचुम्बितः स्मितमनोहारी हरिः पातु वः ॥ १२ ॥

इति श्रीजयदेवकृतौ गीतगोविन्दे सामोददामोदरो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद—प्रेम में अन्धी राधा के द्वारा रासोत्सव से परिपूर्ण विलासयुक्त गोपाङ्गनाओं के सन्निकट श्रीभगवान् के हृदय का गाढ़ालिङ्गन करके 'तुम्हारा मुख अमृत के समान है' यह कहकर गीतस्तुति के बहाने अत्यधिक चुम्बित तथा मुस्कराने से मनोहर लगने वाले श्रीहरि आप सबों की रक्षा करें ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीजयदेव कवि प्रणीत गीतगोविन्द का सामोद-
दामोदर नामक प्रथम सर्ग सम्पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

इदानीं सर्गान्ते कविराशिषमाशास्ते—रासोल्लासेति । हरिर्वो युष्मान्पातु । किम्भूतो हरिः ? राधया गीतस्तुतिव्याजात् अमृतमयमुखनिर्गतत्वात् इदं गीतममृतमेवेति मिषेण व्याहृत्य उत्कटं यथा स्यात्तथा चुम्बितः । इतीति किम्-? साधु युक्तमेतत् यद्गीतममृतकल्पम् । यतस्त्वद्वदनं सुधामयम् । अत्र विकारे मयट् । अत्रान्यनारीसन्निधौ चुम्बनमयुक्तमिति गीतस्तुतिव्याजोक्तिः । किं कृत्वा ? निर्भरं गाढं यथा स्यात्तथोरः परिरभ्य । क्व ? आभीरवामभ्रुवां गोपाङ्गनानामभ्यर्णं समीपे । किम्भूतानां वामभ्रुवाम् ? रासो गोपक्रीडा तस्योल्लासः संहर्षप्रादुर्भावस्तस्य भरेण विलासवतीनाम् । किम्भूतो हरिः ? स्मितेनान्यनारीणां मनो हर्तुं शीलं यस्य स तथा । अथवा—अन्यनारीसमीपे आलिङ्गनं लज्जावहमिति तत्परिजिहीर्षया राधाया हेतुगर्भं विशेषणमाह—प्रेमान्धयेति । 'कामान्धः किञ्चिन्न पश्यति' इति वचनादतिप्रेम्णा व्याकुलयेत्यर्थः । अत्र विप्रलम्भः शृङ्गारः । आशीरप्रस्तुतप्रशंसाव्याजोक्त्याक्षेपहेतवोऽलङ्काराः । प्रगल्भा नायिकाः । मुग्धो नायकः । अत्र 'तरुमिव कमितारं चुम्बनार्ताधिरोढुं यदभिलषति नारी तच्च वृक्षाधिरूढम् ॥' इति कृत्वा वृक्षाधिरूढमाश्लेषः । 'आभीरजाश्चुम्बनहार्यचित्ताः' इति, 'नमितकमिदमाहुर्योषितो यद्बलेन प्रियमुखमभिवक्त्रं न्यस्य तिष्ठन्त्युदास्याः' इति रतिरहस्यात् नमितकं नाम चुम्बनविशेषः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । अत्र राधाया वीरायितेनोत्साहात्मकस्य वीररसस्याविर्भावात्तदुपयोगिनी आरभटी वृत्तिः । द्वित्रिपदे तु पाञ्चाली रीतिः । अर्धमागधी गीतिश्चेति । स्थितलयं गानम् ॥ १२ ॥

यत्सर्गं संविधातुं नृपतिगुणनिधिं सर्गकर्तुर्निसर्गा-
च्छिक्षाभूत्सर्गवर्गः सकलकलितृणां स्वर्गिणामग्रिणां च ।
राज्ञा कुम्भेन तेन व्यरचि विवरणं नव्यसर्गे विसर्गे-
ऽरीणां दक्षेण सर्गे प्रथमपरिमिते गीतगोविन्दसर्गे ॥

यत्र स्याद् गुर्जरी रागस्तालो झम्पेति भागशः ।
यथाशोभं प्रयोगोऽपि गद्यपद्याश्रितान्तरः ॥
आभोगान्ते स्वराः पाटाः पुनः पद्यानि कानिचित् ।
सामोददामोदराद्यः प्रबन्धो भ्रमरः पदम् ॥

इति सामोददामोदरभ्रमरपदनामा चतुर्थः प्रबन्धः ॥

पातिव्रत्यपरामपि प्रियतमां वीक्ष्यानुरागावहं
चेतस्यामपि सूक्तिभिः समभवं मानादिरक्षापरः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नो जाने कतमैः पुनर्निजगुणैस्तस्याः सपत्नीव मे
कान्ताया रसमञ्जरीयमधुना चेतः समाकर्षति ॥

इति श्रीमेदपाटसमुद्रसम्भवेन रोहिणीरमणेन कुम्भकर्णेन विरचिते
गीतगोविन्दविवरणे सामोददामोदरनामा प्रथमः सर्गः ॥१॥

भावप्रकाशिका—यह प्रथम सर्ग का अन्तिम श्लोक है। इस सर्ग का नाम सामोददामोदर है। इस सर्ग में श्रीभगवान् का वर्णन आनन्दमग्न रूप से किया गया है। वसन्त ऋतु में श्रीभगवान् कामोत्सवमग्न हैं। श्रीराधिकाजी पहले तो विरहोत्कण्ठिता थीं, किन्तु सखी के द्वारा आश्वस्त किये जाने पर आकर उन्होंने श्रीभगवान् का आलिङ्गन तथा चुम्बन किया और रासक्रीड़ा में सम्मिलित हो गयीं। उनके मन में उस समय रास का उत्साह भर गया था। अन्य व्रजसुन्दरियाँ भी श्रीभगवान् के सन्निकट विद्यमान थी, किन्तु श्रीराधाजी ने भगवान् को आलिङ्गित करने का बहाना बनाया। उन्होंने आकर श्रीभगवान् से कहा कि तुम्हारे द्वारा गाया जाने वाला यह गीत सुनने में अमृत के समान लगता है। यही कहने के बहाने सभी व्रजयुवतियों के समक्ष ही श्रीभगवान् के वक्षःस्थल का गाढ़ आलिङ्गन किया और अच्छी तरह से उनका चुम्बन भी।

श्रीराधाजी को ऐसा करते समय थोड़ी-सी भी झिझक नहीं थी। उन्होंने यह सोचा भी नहीं कि ये व्रजयुवतियाँ मुझे क्या कहेंगी, क्योंकि वे श्रीभगवान् के प्रेम में अन्धी हो गयी थीं। उन्हें श्रीभगवान् के सिवा कोई दूसरा दिख ही नहीं रहा था। अतएव उन्होंने निःसङ्कोच श्रीभगवान् का आलिङ्गन और चुम्बन किया। सङ्कोच तो तब सम्भव होता जब कोई दूसरा उन्हें भगवान् के सिवा दिखलायी दे।

श्रीराधाजी के द्वारा किये जाने वाले इस कार्य का अनुभव करके श्रीभगवान् मुस्कुराने लगे। उस समय श्रीभगवान् का रूप और भी मनोहर हो गया था।

श्रीजयदेव कवि कह रहे हैं कि इस प्रकार के भगवान् श्रीकृष्ण आप सभी श्रोताओं एवं पाठकों का कल्याण करें।

इस श्लोक में आशीः, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजोक्ति आदि अलङ्कार हैं। प्रगल्भा नायिका है, मुग्ध नायक है तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ १२ ॥

इस प्रकार शिवप्रसाद द्विवेदी कृत गीतगोविन्द काव्य के सामोददामोदर
नामक प्रथम सर्ग की भावप्रकाशिका व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीयः सर्गः

(अक्लेशकेशवः)

विहरति वने राधा साधारणप्रणये हरौ
विगलितनिजोत्कर्षादीर्ष्यावशेन गताऽन्यतः ।
क्वचिदपि लताकुञ्जे गुञ्जन्मधुव्रतमण्डली-
मुखरशिखरे लीना दीनाप्युवाच रहः सखीम् ॥ १ ॥

अनुवाद—सभी गोपिकाओं के समान स्नेह युक्त श्रीहरि को वृन्दावन में विहार करते हुए देखकर अन्य गोपिकाओं की अपेक्षा अपनी विशेषता न होने से ईर्ष्या युक्त राधा किसी दूसरे लताकुञ्ज में छिप गयी, जहाँ भ्रमर-समूह गुञ्जार कर रहा था और दुःखी होकर वह गोप्य बातों को भी सखी से कहने लगी ॥ १ ॥

धन्नासीरागेण गीयते ॥

भुवनेशपादकमलं प्रणम्य कुम्भो नृपतिरतिविमलम् ।
जयदेवरचितमातुं युनक्ति युक्तेन धातुना गातुम् ॥

इदानीं हरेरभिलाषेर्ष्यारूपदोलारूढचित्ता राधा सखीमाह । पूर्वसर्गेऽभिलाषचिन्तारूपं दशाद्वयं निरूप्य स्मरणलक्षणदशाप्रदर्शनार्थं द्वितीयसर्गारम्भः ॥ विहरतीति । राधा सखीं रहोऽपि गोप्यमप्युवाच । यद्यपि लताकुञ्जे स्वरहस्यं वक्तुं नोचितं तथापि स्मरपारवश्यविह्वलतया गोप्यागोप्यं नाज्ञासीत् । क्व सति ? साधारणप्रणये सकलगोपिकासु समानस्नेहे हरौ वने वृन्दावने विहरति सति । किम्भूता राधा ? विगलितनिजोत्कर्षादन्यस्त्रीभ्यो निजातिरेकापगमादीर्ष्यावशेनासहिष्णुतयान्यतो गता । यत्र स्थिता अन्याभिः क्रीडन्तं न पश्यतीति । अत्रार्थे पुनर्विशेषमाह—गत्वापि क्वचिदपि कुञ्जे लीना । किम्भूते कुञ्जे ? झङ्कारपरभ्रमरश्रेण्या वाचालाग्रभागे । अत एव दीना; अत्रापि तैरधिककामोद्दीपनात् । अत्र 'रसयुगहयैर्न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी तदा' इति हरिणी छन्दः । विरहासहिष्णुतालक्षणो विप्रलम्भो रसः । रतेरेवात्युद्रेकाद्रसवदलङ्कारता । वर्णसाम्येनानुप्रासश्च । प्रौढा नायिका । अत्र गलितनिजोत्कर्षवशाद् दीनस्य वचनाशक्तेर्यत्सखीं प्रति रहस्यकथनम् 'अपि'शब्देन द्योत्यते तन्नितरामौचित्यचमत्काराय । यदाह—'उचितस्थानविन्यस्तैर्निपातैरर्थसङ्गतिः । उपादेयैर्भवत्येव सचिवैरिव निश्चला ॥' इति श्लोकोक्तमेवार्थं विशिनष्टि वर्णयति । तालेन—'लघुश्चैको द्रुतद्वयम्' इति ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—इस सर्ग का नाम अक्लेशकेशव है । इसका अभिप्राय यह है कि श्रीभगवान् सर्वदा क्लेशरहित हैं । उनसे क्लेश का संश्लेष ही नहीं होता है । श्रीभगवान् के दो प्रकार के असाधारण चिह्न बतलाये गये हैं । अखिलहेयप्रत्यनीकत्व एवं अखिलकल्याणगुणाकरत्व । अखिलहेयप्रत्यनीकत्व का अभिप्राय यह है कि श्रीभगवान् से किसी प्रकार के क्लेश-कर्मविपाक आदि दोषों का संस्पर्श नहीं होता है । किसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी प्राकृतिक गुण से उनका संस्पर्श नहीं है। वे सभी दोषों के प्रत्यनीक हैं अर्थात् प्रबल शत्रु हैं। जिस प्रकार सूर्य का अन्धकार से संश्लेष नहीं होता है, उसी प्रकार श्रीभगवान् का दोषों से संश्लेष नहीं होता है। योगसूत्रकार ने भी साधनपाद में कहा है—'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'। अर्थात् क्लेश, कर्म, उनके परिणाम तथा वासना आदि दोषों के संस्पर्श से रहित पुरुष-विशेष को ईश्वर शब्द से अभिहित किया जाता है। इन्हीं अर्थों को हृदय में रखकर इस सर्ग का नाम अक्लेशकेशव रखा है।

प्रथम सर्ग में बतलाया गया है कि मानवती राधा को अनेक प्रकार से सखी ने समझाया कि इस वसन्त ऋतु में जब कि श्रीभगवान् मदनोत्सव में व्यापृत होकर गोपियों के साथ विहार कर रहे हैं, तुम्हें उनसे अलग रहना ठीक नहीं। सखी की बात मानकर श्रीराधाजी श्रीभगवान् के मदनमहोत्सवविहार में सम्मिलित हो गयीं। श्रीभगवान् के प्रेम में अन्धी-सी होकर उन्होंने सबों के समक्ष श्रीभगवान् का आलिङ्गन और चुम्बन किया, श्रीभगवान् मुस्कुरा रहे थे।

इस सर्ग के आरम्भ में 'विहरति वने०' इत्यादि श्लोक से बतलाया जा रहा है कि श्रीभगवान् अपनी समस्त नायिकाओं के साथ समान रूप से स्नेह करते हुए वृन्दावन में विहार कर रहे थे। किन्तु श्रीराधाजी को इस बात का गर्व था कि मैं श्रीभगवान् की अन्य वल्लभाओं की अपेक्षा उत्कृष्ट हूँ। उनकी नित्य सहचरी हूँ। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीराधाजी की इस भावना पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने श्रीराधाजी के प्रति अन्य नायिकाओं की अपेक्षा अधिक स्नेह नहीं प्रदर्शित किया। श्रीभगवान् के इस प्रकार के व्यवहार को देखकर श्रीराधाजी का मर्म आहत हो गया। वे ईर्ष्याकषायित हो गयीं और अपनी सखी के साथ श्रीभगवान् से दूर हटकर किसी दूसरे कुञ्जलता में छिपकर बैठ गयीं। किन्तु वहाँ भी उनके मन को शान्ति नहीं मिली। पुष्पों के ऊपर मँडराते हुए भ्रमर गुञ्जन कर रहे थे। यह देखकर उनका मन व्यग्र हो उठा और वे अपने मन की रहस्यात्मक जिन बातों को सबके समक्ष नहीं कहा जाता है उन बातों को भी अपने सखी से कहने लगी।

इस श्लोक में हरिणी छन्द है। 'रसयुगहयैः न्सौ म्रौ स्लौ गो यदा हरिणी'। यह हरिणी छन्द का लक्षण है। रतिभाव के उद्रेकातिशय के कारण रसवदलङ्कार तथा अनुप्रासालङ्कार हैं एवं प्रौढा नायिका है।

स्वोत्कर्षाभाव का अनुभव कर हीन बनी राधा कुछ बोल नहीं सकती थी, फिर भी वे अपनी सखी से रहस्य की बातें बतलाने लगीं—यह 'अपि' शब्द के द्वारा द्योतित किया गया है। इसीलिए 'अपि' शब्द चमत्कारातिशययुक्त है॥ १॥

गुर्जरीरागेण यतितालेन गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ ५ ॥

(इससे पहले के सर्ग में चार प्रबन्ध बीत चुके हैं। पाँचवाँ प्रबन्ध प्रथम श्लोक से प्रारम्भ होता है। पहला श्लोक इस पञ्चम श्लोक की पुष्पिका रूप है। दूसरे श्लोक से इसका समुचित रूप से प्रारम्भ होता है।)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद—यह प्रबन्ध गुर्जरी राग तथा यति ताल से गाया जाता है ।

सञ्चरदधरसुधामधुरध्वनिमुखरितमोहनवंशम् ।
चलितदृगञ्चलचञ्चलमौलिकपोलविलोलवतंसम् ।
रासे हरिमिह विहितविलासम्
स्मरति मनो मम कृतपरिहासम् ॥ ध्रुवपदम् ॥ २ ॥

अनुवाद—हे सखी ! मेरा मन इस क्रीड़ावनरास के समय अधरसुधा से संक्रान्त होने के कारण मधुर ध्वनि करने वाली मुखर मुरली वाले तथा चञ्चल नेत्रप्रान्तों एवं शिर के कारण कपोलों पर लटकने वाले कुण्डलों से युक्त विहार करने वाले और काम-क्रीडा करने वाले श्रीहरि का स्मरण करता है ॥ २ ॥

सञ्चरदिति । तत्र पूर्वं ध्रुवपदं व्याक्रियते—रासेति । हे सखि ! मे मनो हरिं स्मरति स्मरतीति स्मृतेः पूर्वानुभूतार्थविषयत्वाद् दृष्टचरस्य हरेश्चरितं साक्षात्करोति । इह क्रीडावने रासे गोपक्रीडायां विहितो विलासो विभ्रमो येन स तं तथा । कथं ? यथा भवति कृतपरिहासं कृतनर्मकेलि यथा स्यात्तथेति ध्रुवः । अथ पदानि । तत्राद्यं पदम्—सञ्चरदिति । सञ्चरन्त्या सङ्क्रममाणयाऽधरसुधया मधुरो ध्वनिर्यत्र तद्यथा स्यात्तथा मुखरितो मोहनो मोहकारी तन्नामा वंशो येन । अत एव चलितदृगञ्चलं नेत्रप्रान्तं यथा स्यात्तथा चञ्चलो यो मौलिः शेखरः शिरो वा तेन कपोलयोर्विलोलौ वतंसौ यस्य स तथा । किमुक्तं भवति ? शिरःकम्पदोषं विना शेखरकुण्डलचालने वादकवैचित्री । अथवा—वंशश्रवणाच्चलितदृगञ्चला या गोप्यस्तासु चञ्चलो यो मौलिस्तेन कपोल-विलोलवतंसम् । अत्राधरसुधापानेन तदाननस्य चन्द्रादप्यानन्दकत्वं द्योतितम् ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद में श्रीराधाजी सखी से कह रही हैं कि मेरा मन श्रीकृष्ण भगवान् का स्मरण कर रहा है । इससे श्रीराधाजी का यह भाव स्पष्ट हो रहा है कि मैंने श्रीहरि की जिस नर्मकेलि का अनुभव किया है तथा उनके विलासों का अनुभव किया है, उन सबों की मुझे यहाँ आकर याद आ रही है । ये ही वे केलिवन हैं जिनमें मेरे साथ श्रीभगवान् ने विलास और केलि किया था ।

विलास काल में होने वाले श्रीभगवान् की विशेषताओं का वर्णन करती हुई सखी कह रही है कि उस समय वे अधरसुधा से संक्रान्त मधुर ध्वनि करने वाली मुखर मुरली को बजा रहे थे । वह मुरली जो अत्यन्त क्रिया करने वाली है । श्रीभगवान् की मुरली का मोहनकारित्व प्रख्यात है । उसकी मधुर ध्वनि से समस्त चराचर जगत् मन्त्रमुग्ध हो जाया करता था । इस बात को श्रीराधाजी ने 'सञ्चरदधरसुधामधुरध्वनि-मुखरितमोहनवंशम्' पद से कही है । 'सञ्चरन्त्या अधरसुधया मधुरो ध्वनिर्यत्र तद् यथा स्यात् तथा मुखरितो मोहनो वंशो येन तम्' यह उपर्युक्त पद का विग्रह है । 'चलितदृगञ्चलचञ्चलमौलिकपोलविलोलवतंसम्' । यह विलासकालीन श्रीभगवान् की दूसरी विशेषता है । अर्थात् जिस समय श्रीभगवान् मुरली बजाने का कार्य कर रहे थे, उस समय उनके नेत्रप्रान्त चञ्चल होते थे । उनका शिर चञ्चल होता था तथा गालों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर लटकते हुए मणिकुण्डल उनके कपोलों की शोभा बढाया करते थे। इस प्रकार के श्रीहार का मैं स्मरण कर रहा हूँ। यह श्रीराधाजी अपनी सहचरी से कहती हैं ॥ २॥

चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकमण्डलवलयितकेशम् ।
प्रचुरपुरन्दरधनुरनुरञ्जितमेदुरमुदिरसुवेशम् ॥ रासे० ॥ ३ ॥

अनुवाद—चन्द्रक के द्वारा मनोहर बने मयूरों के पिच्छों से वेष्टित केशवाले तथा अनेक इन्द्रधनुषों से समलंकृत मेघ के समान मनोहर वेश वाले श्रीहरि को मैं इस रासोत्सव की वेला में याद कर रही हूँ॥ ३॥

चन्द्रकेति। चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकानां मण्डले सङ्गते वलयाकारेण वेष्टिताः केशा यस्य। तथा प्रचुरं धनं पुरन्दरधनुषानुरञ्जितो मेदुरः सान्द्रस्निग्धो मुदिरो मेघस्तद्वत्सुवेशो दर्शनीयस्तम् ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—मयूर के पिच्छों के अन्तिम भाग में बने हुए वृत्तांकार मण्डल को चन्द्रक शब्द से अभिहित किया जाता है, क्योंकि यह भी चन्द्रमा के ही समान आह्लादक होता है। इस प्रकार के मनोहर मयूरपिच्छों से श्रीभगवान् का केशपाश वलयित है। अर्थात् श्रीभगवान् मयूरपिच्छों से ही अपने केशपाशों को नियन्त्रित कर रखे हैं। अतएव श्रीभगवान् का श्याम वर्ण का शरीर ऐसा लग रहा है, जैसे कोई सजल मेघ अनेक इन्द्रधनुषों से समलंकृत हो। इस प्रकार के मनोहर श्रीभगवान् के कमनीय दिव्यमङ्गल विग्रह का मैं स्मरण कर रही हूँ॥ ३॥

गोपकदम्बनितम्बवतीमुखचुम्बनलम्भितलोभम् ।
बन्धुजीवमधुराधरपल्लवमुल्लसितस्मितशोभम् ॥ रासे० ॥ ४ ॥

अनुवाद—गोपों की सुन्दरियों का मुखचुम्बन करने के लिए अपने मुख को झुकाये हुए दुपहरिया के पुष्प के समान लाल-लाल ओठों से मुस्कुराते हुए श्रीहरि की याद इस रासोत्सव के समय मैं कर रही हूँ॥ ४॥

गोपेति। गोपसमूहस्य नितम्बवतीनां पृथुनितम्बानां मुखचुम्बनेन लम्भितः प्रापितो लोभो येन। अर्थान्मुखस्य। अथवा—गोपाङ्गनानां मुखचुम्बनेन लम्भितो लोभो येन; अथवा—गोपवधूचुम्बने लम्बितो लम्बीकृतो लोभो येनेति पाठान्तरं युक्तम्। अपि च—बन्धुजीववत् मधुरो मनोहरोऽधरपल्लवो यस्य। अपि च—उल्लसिता स्मितेन शोभा यस्य तम् ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीभगवान् की शोभा का वर्णन करती हुई श्रीराधाजी अपनी सखी से कह रही हैं कि गोपसुन्दरियों के मुख का चुम्बन करके लोभ को धारण करने वाले श्रीभगवान् की याद मुझे आ रही है। अर्थात् श्रीहरि जिस समय नर्मक्रीडाव्यापृत रहते हैं, उस समय गोपियों के मुख का बार-बार चुम्बन करने का लोभ उनका बढ़ जाता है। श्रीभगवान् के मुखकमल के ओष्ठ बन्धुजीव अर्थात् दुपहरिया के पुष्प के समान लाल-लाल हैं। जब वे मुस्कुराते हैं उस समय उनकी शोभा और बढ़ जाती हैं॥ ४॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विपुलपुलकभुजपल्लववलयितबल्लवयुवतिसहस्रम् ।
करचरणोरसि मणिगणभूषणकिरणविभिन्नतमिस्रम् ॥ रासे० ॥ ५ ॥

अनुवाद—विपुल रोमाञ्च से युक्त भुजारूपी पल्लव के द्वारा हजारों गोपियों को आवेष्टित करने वाले एवं हाथ-पैर तथा वक्षःस्थल में ग्रथित मणियों के आभूषणों के द्वारा अन्धकार को दूर करने वाले श्रीहरि को मैं इस रासोत्सव में याद कर रही हूँ ॥ ५ ॥

विपुलेति । विपुलपुलकौ पृथुरोमाञ्चौ यौ भुजौ तौ पल्लवाविव ताभ्यां वलयितं वलयीकृतं बल्लवयुवतीनां गोपाङ्गनानां सहस्रं येन । पुनश्च करौ च चरणौ च उरश्च तेषां समाहारः करचरणोरः । प्राण्यङ्गत्वात्समाहारः । 'अमूर्धमस्तकात्स्वाङ्गादकामे' (पा० ६।३।१२) इति सप्तम्या अलुक्समासः । तत्र स्थितानां मणिगणभूषाणां किरणैर्विभिन्नं तमिस्रं येन स तथा ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीराधाजी सखी से कह रही हैं कि मुझे याद आ रही हैं श्रीभगवान् के उन पल्लव के समान कोमल हाथों की जो प्रभूत रोमाञ्च से पुलकित तथा अत्यन्त कोमल हैं। जिनके द्वारा वे गोपाङ्गनाओं को आवेष्टित करके आलिङ्गन किया करते हैं। श्रीभगवान् के हाथ-पैर तथा वक्षःस्थल पर मणियों के आभूषण ग्रथित हैं। उन आभूषणों के द्वारा वे अन्धकार को दूर करते हैं ॥ ५ ॥

जलदपटलचलदिन्दुविनिन्दकचन्दनतिलकललाटम् ।
पीनपयोधरपरिसरमर्दननिर्दयहृदयकपाटम् ॥ रासे० ॥ ६ ॥

अनुवाद—मेघमाला के भीतर विद्यमान चञ्चल चन्द्रमा की शोभा को भी उनके ललाट का तिलक तिरस्कृत करता है। जिन मोटे स्तनों के प्रान्तों को मर्दन करने में निर्दय हृदयकपाट वाले श्रीहरि की मुझे इस समय याद आ रही है ॥ ६ ॥

जलदेति । जलदपटलं घनसमूहः तं वलतः सम्भजमानस्येन्दोश्चन्द्रस्य विनिन्दकश्चन्दनतिलको ललाटे यस्य, वर्तुल इति यावत् । केचिच्चलदिति पठन्ति, तत्र जलदपटलं गच्छत इति व्याख्येयम् । तत्पक्षे वंशे वाद्यमाने मूर्ध्नः कम्पेन ललाटे तिलकं चलदिव दृश्यते । अत्र ललाटस्य श्यामत्वात्तिलकस्य गौरत्वान्मेघचन्द्राभ्यामुपमानोपमेयभावः । अपि च—पीनौ घनौ यौ स्तनौ तन्मण्डलमर्दने निर्दयं हृदयकपाटं यस्य । चलदित्यत्रापि तथैव ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधाजी इस श्लोक में अपनी सखी से कह रही हैं कि जिस प्रकार सजल बादलों के बीच में विद्यमान चन्द्रमा चञ्चल लगता है। काले-काले मेघों के ही चलने पर लगता है कि चन्द्रमा ही चल रहा है। उस समय उस चन्द्रमा की शोभा अत्यधिक प्रेक्षणीय होती है। श्रीभगवान् के श्यामवर्ण का विस्तृत ललाट-पट्ट ही सजल मेघ के तुल्य है तथा उस पर श्वेत वर्ण का चन्दन तिलक चन्द्रमा के समान गोल तथा आह्लादक है। श्रीभगवान् के विस्तृत ललाट पर लगा चन्दन का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तिलक काले बादलों के बीच चन्द्रमा की शोभा से भी अधिक मनोहर है। श्रीभगवान् रतिकाल में युवतियों के स्तनों को अपने विशाल वक्षःस्थल से बड़ी ही निर्दयतापूर्वक मर्दन करते हैं। अतएव मुझे श्रीभगवान् की यहाँ याद आ रही है ॥ ६ ॥

मणिमयमकरमनोहरकुण्डलमण्डितगण्डमुदारम् ।
पीतवसनमनुगंतमुनिमनुजसुरासुरवरपरिवारम् ॥ रासे० ॥ ७ ॥

अनुवाद—मणिमय मकराकृत कुण्डल से जिनके कपोलयुगल मनोहर हैं तथा जो दक्षिण नायक हैं। पीताम्बरधारी श्रीभगवान् के आश्रित रहने वाले जो मुनि, मनुष्य, देवता तथा राक्षस हैं, वे ही उनके श्रेष्ठ परिवार हैं ॥ ७ ॥

मणिमयेति। मणिमये मकराकारे मनोहरे ये कुण्डले ताभ्यां मण्डितोऽलङ्कृतो गण्डो यस्य। अपि च—उदारं दक्षिणम्। किञ्च पीते वसने यस्य। किञ्च अनुगत आश्रितो मुनिमनुजसुरासुरलक्षणो वरपरिवारो यस्य तम् ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीराधाजी अपनी सखी से कहती हैं कि श्रीभगवान् के कानों में लटकने वाले जो मणिमय कुण्डल हैं, वे मकराकृति वाले हैं। उनसे उनके दोनों कपोल समलंकृत हैं। श्रीभगवान् पीताम्बर धारण करने वाले हैं। वे एक दक्षिण नायक हैं। उनके आश्रित रहने वाले जो नारदादि देवर्षि, भीष्मादि मनुष्य, प्रह्लादादि असुर तथा इन्द्रादि देवता हैं, वे ही उनके श्रेष्ठ परिवार हैं। इस प्रकार के श्रीभगवान् की मुझे इस समय याद आ रही है ॥ ७ ॥

विशदकदम्बतले मिलितं कलिकलुषभयं शमयन्तम् ।
मामपि किमपि तरलतरङ्गदनङ्गदृशा मनसा रमयन्तम् ॥ रासे० ॥८॥

अनुवाद—विशाल कदम्ब वृक्ष के नीचे मुनि आदि जनों से मिलने वाले, कलि के पापजन्य भय को दूर करने वाले तथा सरस दृष्टि मन से मुझको भी आनन्दित करने वाले श्रीभगवान् को मैं याद करती हूँ ॥ ८ ॥

विशदेति। विशदकदम्बतले मिलितम्। अर्थान्मुन्यादिभिरुपस्थितम्। अत एव कलिकलुषभयं शमयन्तं पापं नाशयन्तम्। पुनः किं कुर्वन्तम्? मनसा करणभूतेन तरलतरङ्गदनङ्गदृशा तरला चासौ तरङ्गादनङ्गा च, तरङ्गान्सम्मूर्च्छन्ननङ्गो यत्र तथाविधया दृष्ट्या मामपि रमयन्तम्। अपीति गोपीश्च। अत एव कलिकलुषभयं कलहकालुष्यभयं शमयन्तम्। अत्र तरङ्गदनङ्गेति सरसदृष्टिरुक्ता ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में भी श्रीराधाजी अपनी सखी से कह रही हैं कि मुझे उन श्रीभगवान् की याद आ रही है, जो श्रीभगवान् विशाल कदम्ब वृक्ष की छाया में अपने आश्रित मुनि आदि जनों से मिलते हैं। उनके मुनियों आदि से मिलने का स्थान उस विशाल कदम्ब वृक्ष का अधोभाग है। श्रीभगवान् कलियुग के पापों को प्रणष्ट करने वाले हैं। अतएव भगवद्भक्तों को उन पापों का भय नहीं रह जाता है। श्रीभगवान अपने सरस मन तथा अपनी सरस दृष्टि के द्वारा मुझको भी कुछ आनन्दित करते रहते हैं। अर्थात् जिस समय वे मुनि आदि से मिलते हैं उस समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीभगवान् के साथ मैं भी वहाँ रहा करती हूँ। वे बीच-बीच में अपने स्नेह युक्त मन तथा अनुरागपूर्ण दृष्टि से मुझे भी देख लिया करते हैं।

इस श्लोक का रसमंजरीकार ने इस अर्थ से भिन्न प्रकार का ही बड़ा मनोहर अर्थ किया है, जो निम्नांकित प्रकार का है—

'विशदकदम्बतले मिलितम्'—इस अंश की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि श्रीराधाजी कहती हैं कि—मैं जिस विशाल कदम्ब को अपने मिलने का संकेतस्थान बतलाती हूँ, वे मुझसे पहले ही आकर उस विशाल कदम्ब के अधोभाग में आकर छिप जाते हैं। जिससे कि मैं उनको देख न सकूँ। ऐसा वे मुझको चिढ़ाने के लिए करते हैं। जब बाद में आकर मैं उनसे प्रणयकलह करती हूँ तो वे मेरे उस कलह को यह कहकर शान्त करते हैं कि मैं तो यहाँ पहले से ही आया हुआ हूँ। तुम ही अब तक नहीं आयी। अतएव तुम्हारा ही दोष है और तुम ही नाराज होती हो। ऐसे श्रीभगवान् मुझको भी अपनी सरस दृष्टि तथा सानुराग मन से आनन्दित करते हैं। 'मामपि' पद के द्वारा श्रीराधाजी का यह भाव अभिव्यक्त होता है कि मैं तो विश्व में अद्वितीय सुन्दरी हूँ, अतएव मुझको देखकर श्रीभगवान् का आनन्दित होना तो स्वाभाविक ही है। मुझको आनन्दित करने का सामर्थ्य किसी सामान्य नायक में नहीं हो सकता, किन्तु श्रीभगवान् की चेष्टाएँ इतनी मनोज्ञ है कि उनको देखकर मैं भी हर्षप्रकर्ष का अनुभव करती हूँ॥ ८॥

श्रीजयदेवभणितमतिसुन्दरमोहनमधुरिपुरूपम् ।
हरिचरणस्मरणं प्रति सम्प्रति पुण्यवतामनुरूपम्॥ रासे०॥ ९॥

अनुवाद—श्रीजयदेव कवि ने सम्प्रति श्रीहरि के चरणों का स्मरण करने के लिए पुण्यवान् पुरुषों के अनुकूल श्रीभगवान् के अतिमनोहर रूप का वर्णन किया॥ ९॥

श्रीजयदेवेति। अत्रालापस्तेन पाठः। हरिचरणस्मरणं प्रति हरेः कृष्णस्य चरणं रासक्रीडाद्याचरणं तस्य स्मरणं प्रति इदं श्रीजयदेवभणितम्। राधया अष्टपद्यादौ स्मरति मनो ममेत्यादि भणितम्। सम्प्रति इदानीमपि पुण्यवतामनुरूपं योग्यम्। सतां हरिचरणस्मरणे हेतुर्भवतीति यावत्। किम्भूतम्? अतीव सुन्दरम्। तथा मोहनमधुरिपो रूपं यत्र तत्तथा। अत्र 'मुनियगणैर्लयमामनन्ति' इति लयो नाम छन्दः। अत्र सर्वा अपि जातयो रासा भवन्तीति केचित्। यदाह—'सयलाउ जाईउ एत्थावसेण एत्थ वत्तंति। रासा बंधो रसायणं विट्टगोट्ठीसु'॥ ९॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीजयदेव कवि पंचम प्रबन्ध का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि इस प्रबन्ध का प्रणयन पुण्यवान् पुरुषों के द्वारा श्रीभगवान् के चरणों का स्मरण करने के लिए किया है। चरण शब्द का एक अर्थ रसिकप्रियाकार ने रासलीला आदि का आचरण बतलाया है। श्रीभगवान् के द्वारा की गयी यह रास-लीला पुण्यवान् सज्जनों के लिए आज भी अनुकूल है। वही श्रीभगवान् के चरण-कमलों के स्मरण का साधन है। वह भगवान् की लीला अतीव सुन्दर है, जिस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लीला के समय श्रीभगवान् का रूप अत्यन्त लुभावना है। इसीलिए श्रीराधाजी का मन उसको भूल नहीं पाता, वह सदा स्मरण किया करता है।

इस अष्टपदी के आठों श्लोकों में लय नाम का छन्द है। 'मुनियंगणैर्लयमामनन्ति।' यह लय छन्द का लक्षण है। इस पाँचवें प्रबन्ध का नाम मधुरिपुरत्नकण्ठिका है ॥ ९ ॥

गणयति गुणग्रामं भ्रामं भ्रमादपि नेहते
वहति च परितोषं दोषं विमुञ्चति दूरतः।
युवतिषु वलत्तृष्णे कृष्णे विहारिणि मां विना
पुनरपि मनो वामं कामं करोति करोमि किम् ॥ १ ॥

अनुवाद—हे सखि! गोपियों में समृद्ध तृष्णा वाले मेरे बिना भी विहार करने वाले श्रीकृष्ण में मेरा विरोधी मन गुणों की गणना करता है, उनके प्रति इसे भ्रम से भी क्रोध नहीं होता, उनके दोषों को देखे बिना ही सन्तोष का अनुभव करता है; उनको बार-बार चाहता है, मैं क्या करूँ ॥ १ ॥

इदानीं राधा तदेव रहस्यं भङ्ग्यन्तरेणाह—'रागो धन्यासिको यत्र तालो वर्णयति स्मृतः। चम्पूबन्धप्रयोगान्ते गमकानेकविस्तरः॥ तदन्ते स्युः स्वरास्तेनाः पाठः शुचिरसाञ्चिताः। प्रबन्धोऽयं मुररिपोः पुरस्ताद्रत्नकण्ठिका॥' इति। स चायं मधुरिपुरत्नकण्ठिका नाम पञ्चमः प्रबन्धो भैरवरागेण गीयते। गणयतीति। हे सखि! मम चित्तमद्यापि पुनरपि कृष्णे कामं करोति। तर्हि वद किं करोमि। किं विशिष्टे? युवतिषु गोपीषु वलत्तृष्णे। वलन्ती सम्भजमाना तृष्णा स्पृहा यस्य तस्मिन्। अपि च मां विना विहारिण्यपि क्रीडाशीलेऽपि। अत्र 'अपि'शब्दः पुनर्योज्यते। किं विशिष्टं चेतः? वामं मयि विपरीतचरितम्। विपरीतत्वे हेतुमाह—यतः कृष्णस्य सापराधस्यापि गुणसमूहं गणयति कृतानप्यपराधांस्त्यक्त्वा; अपि च—भ्रमादपि भ्रान्तिं प्राप्यापि कोपं नेहते न चेष्टते। पुनरसन्तोषकाले परितोषं वहति। अपि च—सन्तमपि दोषं दूरतो विमुञ्चति। नीरागजने सानुरागम्। अत एव वामम्। इयमुत्कण्ठिता नायिका। तल्लक्षणम्—'उद्दाममन्मथमहाज्वरवेपमानां रोमाञ्चकण्टकितमङ्गकमावहन्तीम्। संवेदवेपथुघनोत्कलिकाकुलाङ्गीमुत्कण्ठितां वदति तां भरतः कवीन्द्रः'॥ 'उत्का भवति सा यस्या वासके नागतः प्रियः। तस्यानागमने हेतुं चिन्तयन्त्याकुला यथा'॥ अत्र हरिणीवृत्तम्। यमकं शब्दालङ्कारः। संशयदीपकार्थालङ्कारौ क्रियौचित्यं च ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—इस षष्ठ प्रबन्ध के प्रारम्भ में श्रीराधा अपनी रहस्यवार्ता को पुनः प्रकारान्तर से प्रस्तुत करती हैं। वह अपने मन को ही अपना विरोधी बतलाती हुई कहती हैं। श्रीराधाजी कहती हैं कि श्रीकृष्ण का अनुराग अन्य गोपियों के प्रति बढ़ा हुआ है। वे मेरे बिना भी अन्य गोपियों के साथ विहार करने के स्वभाव वाले हो गये हैं। अतएव मैं उनको याद करना नहीं चाहती हूँ। फिर भी मेरा मन ही मेरा विरोधी बना हुआ है। मेरे नहीं चाहने पर भी वह उनको याद करता रहता है। उनके गुणसमूह को याद करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'भ्रामं भ्रमादपि नेहते' इस वाक्यांश का भ्राम शब्द क्रोध का वाचक है। इस वाक्यांश के द्वारा श्रीराधाजी कहती हैं कि मेरा मन भूल से भी भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति क्रोध करना नहीं चाहता है। वह उनके परनायिकासक्तत्व, मदुपेक्षाकारित्व आदि दोषों की ओर देखना भी नहीं चाहता है और वह सर्वदा श्रीभगवान् के विषय में पूर्णरूप से सन्तोष का अनुभव किया करता है। वह बार-बार श्रीकृष्ण को प्राप्त करने की कामना करता है। अतएव तुम ही बतलाओ कि मैं क्या करूँ?

इस श्लोक की नायिका श्रीराधाजी उत्कण्ठिता नायिका हैं। जिस नायिका की शय्या पर नायक नहीं आता है, वह अपने प्रियतम के नहीं आने के कारण के विषय में व्याकुल होकर सोचने वाली नायिका उत्कण्ठिता नायिका कहलाती है।

'उत्का भवति सा यस्या वासके नागतः प्रियः।
तस्या नागमने हेतुं चिन्तयत्याकुला यथा'॥

यह उत्कण्ठिता नायिका का लक्षण बतलाया गया है।

इस श्लोक में हरिणी नामक छन्द, यमक नामक शब्दालंकार तथा संशय एवं दीपक नामक अर्थालंकार एवं क्रियौचित्य है॥ १॥

मालवगौडरागेण एकतालीतालेन च गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ ६ ॥

अनुवाद—मालव राग तथा एकताली ताल से यह षष्ठ प्रबन्ध गाया जाता है।

भावप्रकाशिका—वस्तुतः 'गणयति गुणग्रामम्' इत्यादि प्रथम श्लोक से ही यह गीतगोविन्द काव्य का षष्ठ प्रबन्ध प्रारम्भ होता है, किन्तु वह श्लोक इस प्रबन्ध की पुष्पिका मात्र का काम करता है। अष्टपदी का प्रारम्भ तो 'निभृतनिकुञ्ज' इत्यादि द्वितीय श्लोक से ही होता है। यह अष्टपदी मालवगौड राग तथा एकताली ताल से गाया जाता है।

निभृतनिकुञ्जगृहं गतया निशि रहसि निलीय वसन्तम्।
चकितविलोकितसकलदिशा रतिरभसभरेण हसन्तम्।
सखि! हे केशिमथनमुदारम्
रमय मया सह मदनमनोरथभावितया सविकारम्॥ ध्रुवपदम्॥ २॥

अनुवाद—एकान्त में लतागृह में गयी हुई मेरे साथ रात्रि एकान्त में छिपकर रहने वाले, घबराकर सभी ओर देखने वाली मुझको देखकर रति के उत्साह से हँसने वाले, कामकेलि की इच्छा से परिपूर्ण अन्तःकरण वाली तथा रतिचेष्टाएँ करने वाली मेरे साथ महान् तथा केशी नामक दैत्य का वध करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण का रमण कराओ॥ २॥

इदानीं कामज्वरसन्तप्तहृदया राधा सख्यां दूतीत्वमारोप्य कृष्णेन सहानुसन्धानमभिलषन्ती आह वर्णयति तालेन—निभृतेति। पूर्वं ध्रुवपदं व्याक्रियते—सखि हे इति। हे सखि! मया सह केशिमथनं कृष्णं रमय कामकेलीः कारय। किम्भूतम्? उदारं महान्तम्। किम्भूतया मया? सविकारं नानाविकारसहितम्, विकारः कामजो भावः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुचोदरादिप्रकटनम्; तदुक्तं रसिकसर्वस्वे—'नाभीमूलकुचोदरप्रकटनव्याजेन यद्योषितां साकाङ्क्षं मुहुरीक्षणं स्खलितता नीवीनिबन्धस्य च। केशभ्रंशनसंयमौ चकमितुर्मित्रादिसन्दर्शनैः सौभाग्यादिगुणप्रशस्तिकथनैस्तत्सानुरागेङ्गितम् ॥' इति। रतिचेष्टासहितं यथा स्यात्तथा मदनमनोरथभावितया कामकेलीच्छाभावितान्तःकरणया। अथवा—कथोपलक्षितं रमयेति कृष्णविशेषणत्वेनाह—मदनमनोरथानां भावो विद्यते यस्मिन् स भावी तस्य भावो भाविता तया। किमुक्तं भवति ? यथाऽहं तस्मिन्नभिलाषवती तथा सोऽपि मयि स्यादिति भावः। एवं शृङ्गाररसः सम्पन्नो भवति। तथा चोक्तम्—'चेष्टा भवति पुन्नार्यो रत्युत्थानातिसक्तयोः। सम्भोगो विप्रलम्भश्च स शृङ्गारो द्विधा मतः' ॥ अथवा—किम्भूतं हरिम् ? सविकारम्। मानसभावसहितमिति कृष्णविशेषणम्। इति ध्रुवः। अथ पदानि। निभृतेति। तमेवोभयनिष्ठं भावं सूचयन्त्याह—किम्भूतया मया ? निभृतनिकुञ्जगृहं गतया विविधकुञ्जगेहं गतया। 'वश्यः प्रणेयो निभृतविनीतप्रश्रिताः समाः' इत्युक्तत्वात्तथाप्यवसरोचितं व्याख्यातव्यम्। एतेनाभिसारस्थानमुक्तम्। तदुक्तं भरतेन—'विवाहे तीर्थयात्रादौ बन्धनोत्सवके तथा। नटनृत्ये तथा केलौ जागरोद्यानसङ्गतौ। असतीसङ्गमकुले रत्युत्पाताद्युपप्लवे। चौरिकयाभिसारः स्यात्स्वदारानिह रक्षयेत्' ॥ निशि रात्रौ। अपि च किम्भूतम् ? रहसि गुप्तस्थाने निलीय तिरोभूय वसन्तम्। अपि च किम्भूतया ? चकितेन विलोकिताः सकला दिशो यया सा। 'कुत्र कृष्णो वसति' इति गवेषितुमभिसरन्तीं 'सख्यो मां मा द्राक्षुरि'ति लज्जया त्रासोत्कम्पेनेति। अपि किम्भूतम् ? रत्युत्साहवशेन हसन्तम् ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में कामज्वरसंतप्त हृदय वाली श्रीराधाजी अपनी सखी को दूती बनाकर कह रही हैं कि हे सखि ! तुम केशी नामक दैत्य को मारने वाले महान् भगवान् श्रीकृष्ण का रमण कराओ। अर्थात् ऐसा उपाय करो कि वे मेरे साथ कामकेलि करें। 'सविकारम्' पद के द्वारा श्रीराधाजी बतला रही है कि मुझमें काम के विकार उत्पन्न हो गये हैं। कामजन्य विकार मन में उत्पन्न होने पर नारियाँ व्याजान्तर से अपने प्रियतम को नाभि, स्तन आदि दिखा देती हैं। गीतगोविन्द की रसिकसर्वस्व नामक व्याख्या में कहा गया है कि—

'नाभीमूलकुचोदरप्रकटनव्याजेन यद्योषितां
साकाङ्क्षं मुहुरीक्षणं स्खलितता नीवीनिबन्धस्य च।
केशभ्रंशनसंयमौ चकमितुर्मित्रादिसन्दर्शनैः,
सौभाग्यादिगुणप्रशस्तिकथनैः तत्सानुरागेङ्गितम्' ॥

अर्थात् स्त्रियाँ जो किसी माध्यम से अपनी नाभी, स्तन तथा उदर दिखलाती हैं, बार-बार अपने प्रेमी को साकांक्ष दृष्टि से देखती हैं, उनका जो बार-बार नीवीबन्ध खुल जाता है, बाल को खोलती और बाँधती हैं, अपने प्रियतम के मित्रों को अच्छी तरह से देखती हैं, उनके साथ अपने प्रियतम के सौभाग्य तथा गुणों की प्रशंसा करती हैं—ये सभी उनकी अनुरागपूर्ण चेष्टाएँ हैं। इस प्रकार की रतिचेष्टा करने वाली मेरे साथ श्रीभगवान् को मिला दो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'मदनमनोरथभावितया' पद के द्वारा श्रीराधाजी कहती हैं कि कामजन्य कामनाओं से मेरा अन्तःकरण परिपूर्ण हो गया है।

किञ्च जिस प्रकार मेरी अभिलाषा भगवान् श्रीकृष्ण में है उसी प्रकार मुझमें अभिलाषा रखने वाले भगवान् श्रीकृष्ण को मुझ से मिला दो। इस प्रकार यहाँ पर शृङ्गार रस की संपूर्ति होती है। कहा भी गया है—

'चेष्टा भवति पुन्नार्यो रत्युत्थानातिसक्तयोः।
सम्भोगो विप्रलम्भश्च स शृङ्गारो द्विधा मतः' ॥

अर्थात् जहाँ पर रति के उद्दीपन क्रिया में अत्यन्त आसक्त स्त्री तथा पुरुष शृङ्गारिक चेष्टाएँ किया करते हैं वहाँ पर दो प्रकार का शृङ्गार होता है—सम्भोग तथा विप्रलम्भ।

राधाजी श्रीभगवान् की दूसरी विशेषताएँ बतलाती हुई कहती हैं कि 'निभृत' इत्यादि। अभिसार स्थान के रूप में निश्चित रात्रि में जब मैं लतागृह में गयी थी तो भगवान् ने मेरे साथ वहाँ छिपकर निवास किया।

श्रीभगवान् यदि कभी छिप जाते थे तो आश्चर्यचकित होकर मैं चारों ओर देखने लग जाती थी कि श्रीभगवान् कहाँ गये। उसी समय प्रकट होकर श्रीभगवान् रति के उत्साह से युक्त होकर हँसने लग जाते हैं। हे सखि! उन्हीं श्रीकृष्ण भगवान् से मुझे मिलाओ ॥ २ ॥

प्रथमसमागमलज्जितया पटुचाटुशतैरनुकूलम्।
मृदुमधुरस्मितभाषितया शिथिलीकृतजघनदुकूलम् ॥ सखि० ॥ ३ ॥

अनुवाद—प्रथम समागम के समान लज्जित होनेवाली मुझे चाटुकारितापूर्ण बातों से अपने अनुकूल बनाने वाले, तदनन्तर कोमल तथा मधुर मुस्कानपूर्वक बोलने पर मेरी जाँघ का वस्त्र हटाने वाले भगवान् श्रीकृष्ण से मुझे मिलाओ ॥ ३ ॥

अपि च—प्रथमेति। उपभुक्तचरेऽपि हरौ प्रथमसमागम इव लज्जितया तत्कालीनाश्चेष्टाः कुर्वन्त्या वा। बहुकालान्तरितमिलितेन प्रथमसमागमता अपि। किम्भूतम्? पटुचाटुशतैरनुकूलं सान्त्वनक्षमप्रियवचनशतैरनुनयपरम्। एतदुक्तं भवति—'प्रथममिह हि देयं पूगपुष्पादिकं स्यान्मृदुमधुरवचोभिर्योजयेत्सन्निधाने। करतलमथ गात्रे भ्रामयन्नाश्वसस्याद्घृरितमुदरपृष्ठे मन्दमाश्लिष्य दद्यात् ॥' प्रथमसमागमे कामिन्यो लज्जन्त्यो मानमावहन्ति। तथा च—'श्लिष्टः कण्ठे किमिति न मया मूढया प्राणनाथश्चुम्बत्यस्मिन्वदनविकृतिः किं कृता किं न दृष्टः। नोक्तः कस्मादिति नववधूचेष्टितं चिन्तयन्ती पश्चात्तापं वहति तरुणी प्रेम्णि जाते रसज्ञा ॥' इति भरतः ॥ अपि किम्भूतया? अत एव मृदु मधुरं यथा स्यात्तथा स्मितपूर्वं भाषणं यस्याः सा तया। अपि किम्भूतम्? शिथिलीकृतजघनदुकूलं श्लथीकृतं जघनस्थितं पट्टवस्त्रं वा। अन्तर्भावितणिजर्थत्वात् श्लथीकरणे सङ्गमस्य हेतुत्वम्। सङ्गमादेव श्लथमभवदिति। तदुक्तं भरतेन—'कान्ते तल्पमुपागते शिथिलिता नीवी स्वयं बन्धनाद्वासो विश्लथमेखलागुणधृतं किञ्चिन्नितम्बस्थितम्। एतावत्सखि! वेद्मि केवलमहं तस्याङ्गसङ्गे पुनः कोऽसौ कास्मि रतं च कीदृशमिति स्वल्पापि मे न स्मृतिः ॥' ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावप्रकाशिका—इस पद में श्रीराधाजी अपनी सखी से कहती हैं कि यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण से यह मेरा प्रथम समागम नहीं था, फिर भी मैं श्रीभगवान् के समक्ष उसी प्रकार की चेष्टा करती थी, जिस प्रकार कोई नायिका प्रथम समागमकाल में अपने प्रियतम के समक्ष बहुत अधिक लज्जित होती है। उस समय श्रीभगवान् अपनी चाटुकारितापूर्ण बातों के द्वारा मुझे अपने मनोनुकूल बनाते थे। श्रीभगवान् की चाटुकारितापूर्ण बातों को सुनकर मैं प्रसन्न होती थी और मधुर मुस्कान करती हुई उनसे कोमल-कोमल बातें करने लग जाती थी। उस समय श्रीभगवान् मुझे अपने मनोनुकूल जानकर मेरी जाङ्घों के वस्त्रो को हटा देते थे। मैं उन्हीं श्रीकृष्ण भगवान् के साथ रनण करना चाहती हूँ, मुझसे उन्हें मिलाओ ॥ ३ ॥

किसलयशयननिवेशितया चिरमुरसि ममैव शयानम्।
कृतपरिरम्भणचुम्बनया परिरभ्य कृताधरपानम् ॥ सखि० ॥ ४ ॥

अनुवाद—कोमल पत्रों की शय्या पर श्रीभगवान् के द्वारा सुलायी गयी मेरे ही हृदय पर शयन करने वाले तथा मेरे द्वारा आलिङ्गन एवं चुम्बन कर लेने पर मेरा आलिङ्गन करके अधरपान करने वाले श्रीभगवान् को मुझसे मिलाओ ॥ ४ ॥

अपि च—किसलयेति। किसलयरचिते शयने निवेशितया। 'सङ्केततल्पेऽभिमुखोपविष्टां गाढं पतिः श्लिष्यति, सापि कान्तम्। अन्योन्यगात्रे विशतीव रागाद् द्वन्द्वं तदाकृष्टजलाभिधानम् ॥' अपि च—ममैवोरसि चिरं शयानम्। एतच्चालिङ्गनभेदापेक्षयोक्तम्। तथा च कोकोक्तम्—'असकृदतनुगाढाश्लेषलीलां वितन्वञ्जनितजघनबाहुव्यत्ययं स्पर्धते तम्। मिथुनमथ मिथोऽङ्गे लीयते निस्तरङ्गं निगदति तिलपूर्वं तण्डुलं तन्मुनीन्द्रः' ॥ अपि च—कृते परिरम्भणचुम्बने यया सा। एतदप्यालिङ्गनभेदापेक्षयोक्तम् ॥ 'जघनकलितकान्तश्रोणिरथ्योपरिष्टाद्व्रजति यदिह नारी स्रस्तकेशोत्तरीया। करजरदनकृत्यं चुम्बनं वा विधित्सुः कलयति जघनोपश्लेषणं तन्मुनीन्द्रः' ॥ अपि च—आश्लिष्य कृतमधरपानं येन। अत्रायं भावः—'अधरदशनजिह्वापानमालिङ्ग्य कुर्यान्नयनवदनपादंश्चेति जिह्वाप्रवारम्। ग्रहणमथ विदध्याद्वस्त्रकेशस्तनोरःकुचयुगभगदेशे मर्दनं चोरुयुग्मे' ॥ इति ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीराधाजी अपनी सखी से कह रही हैं कि उस संकेतस्थान में श्रीभगवान् मुझे कोमल पल्लवों से रचित शय्या पर सुला देते थे। इसके पश्चात् श्रीभगवान् मेरी ही छाती पर दीर्घकाल तक सोते रहते थे। इस प्रकार के आलिङ्गन को रसमञ्जरीकार ने क्षीरनीर नामक आलिङ्गन बतलाया है और अपने कथन में पञ्चसायक नामक ग्रन्थ का प्रमाण दिया है। किन्तु रसिकप्रियाकार ने इस प्रकार के आलिङ्गन को तिलतण्डुल नामक आलिङ्गन माना है और अपने कोकशास्त्र का प्रमाण दिया है।

इसके पश्चात् 'कृतपरिरम्भण०' इत्यादि वाक्य के द्वारा श्रीराधाजी कहती हैं कि जब मैं श्रीभगवान् का आलिङ्गन करके उनका चुम्बन कर लेती थी उस समय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीभगवान् मेरा आलिङ्गन न करके मेरा अधरपान करते थे। हे सखि ! उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण से मेरा मिलन कराओ ॥ ४ ॥

अलसनिमीलितलोचनया पुलकावलिललितकपोलम् ।
श्रमजलसकलकलेवरया वरमदनमदादतिलोलम् ॥ सखि० ॥ ५ ॥

अनुवाद—आलस्य युक्त श्रीभगवान् के नेत्रों को जब मैं ढंक देती थी उस समय श्रीभगवान् के गाल रोमाञ्च युक्त होने के कारण मनोज्ञ हो जाते थे। कामचिन्ता-जन्य श्रम के कारण निकले हुए स्वेदबिन्दुओं के कारण मनोज्ञ शरीर वाली मुझे देखकर हर्षातिशय के कारण चञ्चल बने हुए श्रीभगवान् को मुझसे मिलाओ ॥ ५ ॥

अपि च—अलसेति। अलसे च ते निमीलिते च तादृशे लोचने यस्याः सा। एतेनालिङ्ग(ङ्गि)ककामविकारः सूचितः। तथा च नायिकालक्षणे—'यत्र मूर्धानमारभ्य पादपर्यन्ततः क्रियाः। अङ्गेन विहिता यस्मात्तस्मादाङ्गिकमुच्यते' ॥ अपि च—पुलकावल्या रोमाञ्चपङ्क्त्या सुन्दरकपोलम्। अनेन सात्त्विकविकाराविर्भावः सूचितः। यदुक्तं भरतेन—'स्मरणे सङ्गमे चैव प्रियस्यालोकने तथा। हेतुत्रयं समासाद्य सात्त्विकः सम्प्रवर्तते ॥ स्वेदः कम्पोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः। वैवर्ण्यमश्रुप्रलयावित्यष्टौ सात्त्विका मताः' ॥ अपि च श्रमजलेन गमनायासजनितेन स्वेदेन सकलं सशोभं शरीरं यस्याः सा। 'श्रमजलसिक्तम्' इति वा पाठः। श्रमजलशकलानि स्वेदबिन्दवः कलेवरे यस्या इति वा। 'सकल'शब्दः सम्पूर्णपर्यायो वा। अपि च—उत्तमकाममदादतिलोलम् अतिसतृष्णम् ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीराधाजी अपनी सखी से कहती हैं कि हे सखि ! जब श्रान्त श्रीभगवान् के नेत्र आलस्य युक्त हो जाते थे उस समय मैं अपने हाथों से उनके नेत्रों को ढंककर उनका चुम्बन करने लग जाती थी। मेरी इस क्रिया को देखकर श्रीभगवान् में सात्त्विक भाव आविर्भूत हो जाते थे और उनके गाल रोमाञ्च युक्त होकर अत्यन्त मनोहर लगने लग जाते थे। जब मैं श्रीभगवद्विषयक काम की चिन्ता करने लग जाती थी उस समय मेरा सारा शरीर स्वेदजलबिन्दुओं के कारण सिक्त हो जाता था और मुझे ऐसा देखकर श्रीभगवान् में कामोद्रेकजन्य हर्षातिशय हो जाता था तथा श्रीभगवान् अति चञ्चल हो जाते थे। उन्हीं से मुझे मिलाओ।

यह अर्थ रसमञ्जरी के अनुसार है। रसिकप्रियाकार के अनुसार इस पद्य का अर्थ इस प्रकार है—राधाजी कहती हैं कि आलस्य के कारण मैं अपने नेत्रों को मुंद लेती थी, किञ्च श्रीभगवान् का चिन्तन करने के कारण मेरे कपोल रोमाञ्च युक्त होने से सुन्दर लगने लग जाते थे। चलने के श्रम के कारण मेरा शरीर स्वेदबिन्दुओं से मनोहर लगने लग जाता था, उसके कारण श्रेष्ठ कामजन्य विकार के कारण श्रीभगवान् अत्यन्त चञ्चल हो उठते थे। इस अर्थ के लगाने में अधिक कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है तथा यह अर्थ कुछ अस्वाभाविक भी लगता है।

सञ्जीवनीकार ने इस पद्य के तीसरे पाद का बहुत सुन्दर अर्थ किया है। उनके अनुसार—श्रीराधाजी कहती हैं कि सुरतानन्द के कारण मेरा सारा शरीर लथ-पथ हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाता था और इस कथन से श्रीराधाजी ने अपने पूर्वानुभूत सुरतानन्द की सम्पूर्ति को बतलाया है ॥ ५ ॥

कोकिलकलरवकूजितया जितमनसिजतन्त्रविचारम् ।
श्लथकुसुमाकुलकुन्तलया नखलिखितघनस्तनभारम् ॥ सखि० ॥ ६ ॥

अनुवाद—कोमल तथा पारावत के समान सुरतकाल में आवाज करने वाली तथा शिथिल एवं कुसुमव्याप्त कुन्तलों वाली मुझे देखकर कामशास्त्रीय विचार को तिरस्कृत करने वाले, मेरे स्तनों पर नखक्षत करने वाले श्रीभगवान् को मुझसे मिलाओ ॥ ६ ॥

अपि च—कोकिलेति । कोकिलकलरवयोः कूजितमिव कूजितं यस्याः । 'कलरव'-शब्दः पारावतपर्यायः । एतदपि सुरताधिकारायोक्तम् । तदुक्तं रसिकसर्वस्वे—'दात्यूहलावकमयूरकपोतहंसपारावतादिरुतवद् ध्वनितं रतान्ते । तन्मिश्रनिःश्वसितसीत्कृत-हानिनादैः संयोजयेन्मदनचुम्बनमैथुनादौ' ॥ इति । अपि च—जितो त्यक्तकृतः काम-शास्त्रविचारो येन । वात्स्यायनादिभ्योऽपि कुशल इत्यर्थः । अपि च—श्लथकुसुमा आकुला व्यस्ताः कुन्तला यस्याः सा । अपि च—नखैर्विलिखितोऽङ्कितो निबिडः स्तनभारो येन । एतेन बाह्यरतमुक्तम् । तदुक्तं भरतेन—'आश्लेषचुम्बननखक्षत-ताडनानि सम्मर्दनं प्रसरणं खलु शिक्षितानि । जिह्वाप्रवेशरसनग्रहणं तु नाभीक्षोभं रतं वदति बाह्यरतानि तज्ज्ञः' ॥ इति ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीराधाजी श्रीभगवान् के साथ अनुभूत बाह्य रति का वर्णन कर रही हैं । वे कहती हैं कि बाह्य रतिकाल में मैं कोयल तथा पारावत के समान आवाज करती थी । रसिकसर्वस्वकार के अनुसार रतिकाल के समय नायक के द्वारा चुम्बन इत्यादि किये जाने के समय नायिका कोयल, पारावत आदि के समान सीत्कार की आवाज करती है । उस समय मेरे कुन्तल शिथिल तथा पुष्पों से परिपूर्ण होते थे । क्योंकि श्रीभगवान् मेरे बालों को पकड़कर मेरा चुम्बन करते थे तथा मेरे अधरों का पान करते थे । इस प्रकार अत्यन्त सुन्दरी नायिका मुझे देखकर श्रीभगवान् कामशास्त्रीय विचारों की परवाह न करके रतिक्रीडा में प्रवृत्त होने के कारण मेरे पीन तथा सघन स्तनों पर नखक्षत करते थे । उन्हीं श्रीभगवान् से मुझे मिलाओ ॥६॥

चरणरणितमणिनूपुरया परिपूरितसुरतवितानम् ।
मुखरविशृङ्खलमेखलया सकचग्रहचुम्बनदानम् ॥ सखि० ॥ ७ ॥

अनुवाद—चरणों में बजते हुए मणिखचित नूपुर वाली, मुखर तथा टूटी हुई करधनी वाली मेरे साथ सुरतक्रीडा का परिपूर्ण विस्तार करने वाले तथा केश पकड़कर चुम्बन करने वाले श्रीकृष्ण के साथ मुझे मिलाओ ॥ ७ ॥

अपि च—चरणेति । चरणयोः रणितौ शब्दितौ मणिनूपुरौ यस्याः । ग्राम्याख्य-बन्धसूचनायोक्तमिदम् । तदुक्तं रसिकसर्वस्वे—'उत्तानितायाः सुरते यदोरू स्त्री-शीर्षकान्तोरुगतौ भवेताम् । ग्राम्यं तदा स्यात्कटितो यदास्या बहिर्भवेतः किल नागरा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्यम् ॥' परिपूरितः सम्पूर्णतां नीतः सुरतवितानः सुखावसरां प्रस्तावो वा येन । अपि च—मुखरा वाचाला विश्रृङ्खला काञ्ची यस्याः । अथवा 'सुखदविश्रृङ्खलमेखलया' इति पाठः । अपि च—सकचग्रहं केशग्रहणेन सहितं चुम्बनदानं यस्य ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीराधाजी पूर्वानुभूत रतिसुख का वर्णन करते हुए सखी से कह रही हैं कि जिस समय श्रीभगवान् मेरे साथ परिपूर्ण रूप से रतिक्रीड़ा का विस्तार करते थे उस समय मेरे पैरों के मणिपूरित नूपुर बज उठते थे। उस समय पहले तो मेरे कमर की करधनी आवाज करती थी किन्तु बाद में वह टूट जाने के कारण निःशब्द हो जाती थी। उस समय श्रीभगवान् मेरे बालों को पकड़कर मेरा चुम्बन करते थे। सखि ! मुझे उन्हीं श्रीकृष्ण भगवान् से मिलाओ ॥ ७ ॥

रतिसुखसमयरसालसया दरमुकुलितनयनसरोजम् ।
निःसहनिपतिततनुलतया मधुसूदनमुदितमनोजम् ॥ सखि० ॥ ८ ॥

अनुवाद—रतिजन्य सुखानुभव काल के आनन्द से अलसायी हुई मेरे साथ ही अपने नेत्रकमलों को थोड़ा-सा बन्द किये हुए, सामर्थ्य रहित होकर किसलय की शय्या पर पड़े हुए शरीर वाली मेरे साथ जिनका काम विजृम्भित हो जाता था, उन मधुसूदन श्रीकृष्ण भगवान् को मेरे साथ रमण कराओ ॥ ८ ॥

अपि च—रतिसुखेति। रतिसुखसमये द्वयोरेककालं रेतःकणक्षरणसमये यो रसः तदेकाग्रीभावस्तेन अलसा मन्थरा। एतेन च्युतिसुखसान्निध्यं सूचितम्। उक्तं च रसिकसर्वस्वे—'मुहुश्च स्वजनाश्लेषः सीत्कारो वीतलज्जता। अङ्गावधूननं नार्याश्च्युतिसान्निध्यसूचकम्' ॥ अपि च—दरमुकुलिते ईषन्निमीलिते—नयनसरोजे यस्य येन वा। एतच्च च्युतिकालसूचकम्। उक्तं च भरतेन—'मूर्च्छना मीलनं चाक्ष्णोश्च्युतिकालस्य सूचकम्। सर्वमेतत्परिज्ञाय साधयेच्च स्वयं ततः ॥' अपि च निःसहा असमर्था निपतिता शयन एव तनुलता यस्याः। एतेन विपरीतसुरतं सूचितम्। तदुक्तं कोकेन—'स्वेच्छया मिलितवल्लभोऽथवा योषिदाचरति पुरुषायितम्। आदितो घटितयन्त्रमेव वा तं निपात्य नरवद्विचेष्टते ॥ चक्रवद्भ्रमति कुञ्चितत्रिका भ्रामयेच्च जघनेऽथ तद्गते। सर्वतः कटितटभ्रमो यदि प्रेङ्खपूर्वमिवमुक्तमुन्नतम्' ॥ एतेन च्युतिकालोत्तरावस्था सूचिता। तदुक्तं भरतेन—'अङ्गे स्वेदः श्लथत्वं च केशवस्त्राविसंवृतिः। जाते च्युतिसुखे नार्या विरामेच्छा च गम्यते' ॥ अपि च—मधुसूदनं मधुविनाशिनम्। उदितमनोजमभ्युदितकामम् ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में राधाजी सखी से कह रही हैं कि जब रतिकाल में हम दोनों का समकाल में ही रेतःकण क्षरण होता था उस समय रतिजन्य सुख के अनुभवजन्य आनन्द के कारण मैं अलसा-सी जाती थी और श्रीभगवान् अपने नेत्रकमलों को थोड़ा बन्द-सा कर लेते थे। अर्थात् वे भी आलस्य युक्त हो जाते थे। उस समय बल की न्यूनता के कारण मेरी शरीरलता उस किसलयरचित शय्या पर पड़ जाती थी। इस अवस्था में पड़ी हुई मुझे देखकर श्रीभगवान् मधुसूदन का काम पुनः जाग्रत हो जाता था। उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण को मेरे साथ रमण कराओ ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीजयदेवभणितमिदमतिशयमधुरिपुनिधुवनशीलम् ।
सुखमुत्कण्ठितगोपवधूकथितं वितनोतु सलीलम् ॥ सखि० ॥ ९ ॥

अनुवाद—उत्कण्ठिता नायिका श्रीराधाजी के द्वारा कहा गया तथा श्रीजयदेव कवि के द्वारा वर्णित मधुसूदन श्रीकृष्ण भगवान् का अतिशय सुरतवृत्तान्त पढ़ने और सुनने वालों को सुख प्रदान करे ॥ ९ ॥

अपि च—श्रीजयदेवेति । इदं गीतप्रतिपादितप्रमेयकव्युत्तम्मितवक्तृत्वेनोत्कण्ठितगोपवधूकथितं राधाकथितं सुखं वितनोतु । अर्थात् गायतां शृण्वतां च । किं विशिष्टम् ? श्रीजयदेवेन भणितम् । जयदेवभणितरूपमित्यर्थः । श्रीजयदेवेति सर्वत्र श्रियः पद्मावत्या आराधको जयदेवः श्रीजयदेव इति मध्यमपदलोपी समासः । पुनः किम्भूतम् ? अतिशयेन मधुरिपोर्निधुवनशीलं सुरतचरितं यत्र तत्तथेति । उत्कण्ठितेत्यादि । उत्कण्ठिता नायिका । विप्रलम्भः शृङ्गारः । अत्र लयश्छन्दः ॥ ९ ॥

भावप्रकाशिका—इस गीत का उपसंहार करते हुए जयदेव कवि कहते हैं कि यह तो मेरी कवितास्वरूप है, किन्तु इस गीत में वर्णित समस्त प्रमेयों का वर्णन श्रीराधाजी ने अपनी सखी के समक्ष किया है। उस गीत के प्रमेयों का वर्णन करने वाली श्रीराधाजी एक उत्कण्ठिता नायिका हैं और इस गीत में श्रीभगवान् के कामक्रीड़ा-विषयक चरित्रों का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। यह गीत पढ़ने तथा सुनने वालों को सुख प्रदान करे।

इस सम्पूर्ण गीत की नायिका उत्कण्ठिता नायिका है, विप्रलम्भ शृङ्गार रस है तथा लय छन्द है ॥ ९ ॥

हस्तस्रस्तविलासवंशमनृजुभ्रूवल्लिमद्बल्लवी-
वृन्दोत्सारिदृगन्तवीक्षितमतिस्वेदार्द्रगण्डस्थलम् ।
मामुद्वीक्ष्य विलज्जितं स्मितसुधामुग्धाननं कानने
गोविन्दं व्रजसुन्दरीगणवृतं पश्यामि हृष्यामि च ॥ १० ॥

अनुवाद—हे सखि ! मुझको देखकर ललित एवं हाथ से गिरी हुई मुरली वाले, अत्यन्त पसीने के कारण भिगे हुए गण्डस्थल वाले, अत्यन्त मनोहर मुसकान रूपी अमृत के कारण मनोहर मुखवाले, कुटिल भौंहों वाली गोपियों को नेत्र के इशारे से दूर हटाने वाले तथा व्रज की सुन्दरियों से समूह से घिरे हुए गोविन्द को देखकर मैं कब प्रसन्नता अनुभव करूँगी ॥ १० ॥

इदानीं मनसा भावितं परमेश्वरं दृष्ट्वा सखेदमाह—हस्तस्रस्तेति । हे सखि ! 'बत' इति खेदे (?) । अहं कानने वृन्दावने गोविन्दं पश्यामि व्यलीकं हृष्यामि च । किं विशिष्टं गोविन्दम् ? व्रजसुन्दरीगणवृतं गोपाङ्गनासमूहयुक्तम् । पुनः किम्भूतम् ? स्मितसुधामधुरमाननं यस्य तम् । पुनः किम्भूतम् ? मामुद्वीक्ष्य मां दृष्ट्वा हस्तात्स्रस्तः पतितो विलासवंशः केलिवेणुर्यस्य । अत एव विलज्जितं विह्वलीभूतम् । पुनः किम्भूतम् ? अतिस्वेदेनार्द्रं गण्डस्थलं यस्य । 'गण्डस्थलाम्' इति पाठे मामित्यस्य विशेषणम् । सञ्जात-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सात्त्विकभावां मां दृष्ट्वा सोऽपि सञ्जातसात्त्विकभाव इति हस्तस्रस्तेति युक्तम् ? पुनः किम्भूतम् ? अनृजुभ्रूवल्लिमद्बल्लवीवृन्दोत्सारिदृगन्तवीक्षितम् । कुटिलभ्रूवल्लियुतानां बल्लवीनां वृन्दे उत्सारि ऊर्ध्वप्रसरणशीलं दृगन्तवीक्षितं कटाक्षेक्षणं यस्य । अथवा— अनृजुभ्रूवल्लिमद्बल्लवीवृन्देन उत्सारिणा दृगन्तेन वीक्षितम् । एतावता राधां प्रति तस्य स्वभावावलोकनं दृष्ट्वाऽन्याभिरपसृतम् । अत्र शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । तथा दीपकमलङ्कारः । विप्रलम्भशृङ्गारो रसः । अत्र व्रजसुन्दरीपरिवृतत्वेऽपि यत् आत्मौपाधिकदर्शनस्य लज्जिताहेतुत्वेन हर्षदर्शनकर्म अतोऽपादानमौचितीमावहति । पाञ्चाली रीतिः । लाटानुप्रासश्च । दक्षिणो नायकः । अन्यत्सर्वं समानम् ॥ १० ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीराधाजी अपनी सखी से पूछती हैं कि मैं कितना जल्दी व्रज की सुन्दरियों से घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर प्रसन्नता का अनुभव करूँगी ! इस पर सखी ने राधाजी से पूछा कि अपनी सपत्नीभूत गोपियों से घिरे हुए श्रीकृष्ण को देखकर तुम कैसे प्रसन्नता का अनुभव करोगी ? इस पर श्रीराधाजी कहती हैं—'मामुद्वीक्ष्य विलज्जितम्' । अर्थात् व्रजसुन्दरियों से घिरे हुए श्रीभगवान् मुझको देखेंगे तो वे बहुत अधिक लज्जित हो जायेंगे । लज्जा के मारे वे पसीने-पसीने हो जायेंगे, उनके कपोल भी पसीने से भिग जायेंगे । मुझमें आविर्भूत सात्त्विक भाव के कारण उनमें भी सात्त्विक भाव आविर्भूत हो जायेगा और लज्जा के कारण उनके हाथों से वह मुरली छूट जायेगी, जो उनकी क्रीड़ा का साधन है । किञ्च वे कुटिल भौंहों वाली गोपियों के समूह को दूर करने वाले अपने कटाक्षों से युक्त होंगे अर्थात् अपने नेत्रों के इशारे से वे मनोहर भौंहों वाली गोपियों को अपने पास से हटा देंगे और उस समय श्रीभगवान् का मुखमण्डल मुसकान रूपी अमृत से मनोहर होगा । इस प्रकार के श्रीभगवान् को मैं इस कानन में देखकर कब प्रसन्न होऊँगी ?

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा दीपकालङ्कार है । इस श्लोक में विप्रलम्भ शृंगार रस, पाञ्चाली रीति, लाटानुप्रासालङ्कार तथा दक्षिण नायक हैं ।

दुरालोकस्तोकस्तबकनवकाशोकलतिका-
विकासः कासारोपवनपवनोऽपि व्यथयति ।
अपि भ्राम्यद्भृङ्गीरणितरमणीया न मुकुल-
प्रसूतिश्चूतानां सखि ! शिखरिणीयं सुखयति ॥ ११ ॥

अनुवाद—कठिनाई से देखे जाने योग्य छोटे-छोटे गुच्छों वाली अशोकलता को विकसित करने वाली सरोवर के उपवनों से होकर आने वाली वायु भी मुझे दुःख देती है । किञ्च चारों ओर मँडराती हुई भ्रमरियों के गुञ्जन से मनोज्ञ बनी हुई वृक्षाग्रभाग में निकली हुई यह आम्रमंजरी भी मुझे सुखी नहीं बनाती है ॥ ११ ॥

इदानीं पुनरेव विप्रलम्भविभावानाह—दुरालोक इति । हे सखि ! दुरालोकः स्तोकस्तबकनवकाशोकलतिकाविकासः मां व्यथयति । दुःखेनालोक्यते विरहिभिरिति दुरालोकः । दुरालोकः स्तोकोऽल्पकः स्तबको गुच्छो यस्याः सा । अशोकलतिकायाः विकासः अशोकलतिकाविकासः । नव एव नवकः । प्रशंसायां कः । नवकश्चासाव-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शोकलतिकाविकासश्च। दुरालोकस्तोकस्तबकश्चासौ नवकाशोकलतिकाविकासश्च सः। अपि च—अयं कासारोपवनपवनो व्यथयति। न केवलं सः पवनोऽपीति। 'कासारः सरसी सरः'। अथवा 'दुरालोक' इत्यादिपवनविशेषणत्वेन योजनीयम्। दुरालोकस्तोकस्तबका चासौ नवकाशोकलतिका चेति तां विकासयति स इति कर्मण्यण्। अथवा—अशोकतलिकाया विकासो यस्मादिति। एतेन वायोस्त्रैविध्यमुक्तम्। अपि च—न केवलं पवनः, अपि तु चूतानां मुकुलप्रसूतिरपि नं सुखयति। कीदृशी मुकुलप्रसूतिः? शिखरिणी साग्रा। पुनः कीदृशी? भ्राम्यद्भृङ्गीरणितरमणीया। भ्राम्यन्त्यः परितः स्फुरन्त्यो या भृङ्ग्यो भृङ्गाङ्गनास्तासां रणितेन शब्दितेन रमणीया। अत्र मधुलिडङ्गनाग्रहणं पुरुषान्तराभिलाषनिवृत्त्या औचितीमावहति। अत्र शिखरिणी वृत्तम्। समुच्चयोऽलङ्कारः। लाटानुप्रासः शब्दालङ्कारश्च। क्रियौचित्यं च। विप्रलम्भः शृङ्गारो रसः। सर्वत्र स्थितिलया गीतिः। मागधी गौडीया च रीतिः॥ ११॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में पुनः श्रीराधाजी विप्रलम्भ-शृंगार के विभावों का वर्णन करती हुई सखी से कह रही हैं कि—इस वसन्त की वेला में अशोक वृक्षों को देखना कठिन हो गया है। उसकी नवीन पत्तियाँ विरहाग्नि को उद्दीप्त कर रही हैं। 'दुरालोक' पद का विग्रह इस प्रकार है—'दुःखेन आलोकः=अवलोकनं यस्याऽसौ'। छोटे-छोटे गुच्छों वाली जो अशोक लताएँ हैं, उसको यह वासन्तिक वायु विकसित करने वाली है, तथा यह वायु सरोवरों के उपवनों से होकर आ रही है। अतएव शीतल, मन्द तथा सुगन्धि लेकर चलने वाली यह वायु भी मुझे दुःख देती है।

किञ्च आम्रवृक्ष के अग्रभाग में जो आम्रमञ्जरी निकल रही है। उसके चारों ओर मँडराती हुई भ्रमरियाँ गुञ्जार कर रही हैं। उसके कारण वह आम्रमञ्जरी अत्यन्त मनोहर लग रही है, किन्तु यह आम्रमञ्जरी भी मुझे सुखी न बनाकर दुःखी ही बना रही है।

रसिकप्रियाकार का कहना है कि 'भ्राम्यद्भृङ्गी' पद में भ्रमरियों का निर्देश करके श्रीराधाजी पुरुषान्तराभिलाष की निवृत्ति कर रही है। उनकी दृष्टि में एकमात्र कमनीय पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। वह भ्रमर-पुरुषों का नाम भी नहीं लेना चाहती है।

इस श्लोक में शिखरिणी वृत्त है—'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी'। यह शिखरिणी वृत्त का लक्षण है। समुच्चयालङ्कार, लाटानुप्रासालङ्कार, क्रियौचित्य, विप्रलम्भ-शृङ्गार रस तथा मागधी एवं गौडीया रीति इस श्लोक की विशेपताएँ हैं।

साकूतस्मितमाकुलाकुलगलद्धम्मिल्लमुल्लासित-
भ्रूवल्लीकमलीकदर्शितभुजामूलोर्ध्वहस्तस्तनम्।
गोपीनां निभृतं निरीक्ष्य गमिताकाङ्क्षश्चिरं चिन्तय-
न्नन्तर्मुग्धमनोहरं हरतु वः क्लेशं नवः केशवः॥ १२॥

इति जयदेवकृतौ गीतगोविन्दे अक्लेशकेशवो नाम द्वितीयः सर्गः॥ २॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद—मूर्खों के मन को आकर्षित करने वाले गोपियों के सव्याज मुस्कान, कामोद्रेक के कारण रोमाञ्च आदि हो जाने से विस्रस्त केशबन्ध, ऊपर उठी हुई भ्रूलताओं तथा मूलभूत एवं उठाये हुए हाथों के कारण व्यर्थ ही दिखलाये गये दोनों स्तनों का अच्छी तरह से अपने हृदय में विचार करके उनकी आकांक्षाओं को विनष्ट करने वाले तरुण केशव ! आप सबों के क्लेशों को विनष्ट करें ॥ १२ ॥

इस प्रकार जयदेव कवि प्रणीत गीतगोविन्द का अक्लेश-
केशव नामक द्वितीय सर्ग पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

इदानीं सर्गान्ते कविर्भक्तजनानाशास्ते—साकूतेति। केशवो हरिर्वो युष्माकं क्लेशं हरतु। किं लक्षणः ? गमिताकाङ्क्षः गमिता नाशं नीता आकाङ्क्षाऽभिलाषो येन स तथा। अर्थात् गोपीषु। किं कुर्वन् ? चिरं निभृतं यथा स्यात्तथा निरीक्ष्यान्तर्हृदये चिन्तयन्। किं निरीक्ष्येत्यपेक्षायामाह—साकूतस्मितं साभिप्रायमीषद्धसितम्। पुनः किम् ? आकुलाकुलगलद्धम्मिल्लम्। आकुलकुलं कामोद्रेकाद्रोमाञ्चोद्गमादिहेतुना गलद्धम्मिल्लं विगलत्केशबन्धम्। पुनः किम् ? उल्लासितभ्रूवल्लीकमुत्क्षिप्तभ्रूवल्लीकम्। पुनः किम् ? अलीकदर्शितभुजामूलोर्ध्वहस्तस्तनम्। भुजायाः मूलं भुजामूलं, भुजामूले ऊर्ध्वौ यौ हस्तौ भुजामूलोर्ध्वहस्तौ। अलीकं दर्शितौ भुजामूलोर्ध्वहस्ताभ्यां स्तनौ यत्र कर्मणि तत्। कासामित्यपेक्षायामाह—गोपीनाम्। तच्चतुष्टयं हेतुगर्भत्वेन विशिनष्टि—मुग्धमनोहरमिति। मुग्धानां मूर्खाणां मनो हरतीति न मत्सदृशस्येति गमिताकाङ्क्षत्वे हेतुः। तद्रेवाग्रिमे सर्गे प्रकटयिष्यति। 'राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः' इत्यादिना। अत एव नवः सकलपुमपेक्षया चरितविशेषेण नवोऽन्यादृश इव 'सुभाषितेन गीतेन युवतीनां च लीलया। चेतो न भिद्यते यस्य स वै मुक्तोऽथ वा पशुः॥' इति वचनात्। अथवा—नूयते स्तूयते इति नवः। अथवा—नवस्तरुणः। तरुणं दृष्ट्वा कामिनीनां कामचेष्टा जायत एव। अथवा—तस्मिन्पक्षे गोपीनां निभृतं भावं निरीक्ष्येति व्याख्येयम्; तदा साकूतस्मितेत्यादि चतुर्णामपि पदानां भावविशेषणपक्षे निक्षेपः। मुग्धमनोहरमिति क्रियाविशेषणम्। अत्र विदग्धो नायकः। समुच्चयाशिषावलङ्कृती। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। परिकरोऽलङ्कारश्च। अत्र यत्सकलकामिनीकामपूरकस्य कामजनकस्य विलासवतीविलासादिभिरगृह्यस्य यन्नवत्वविशेषणेनान्यादृशत्वमुपपादितं तद्विचार्यमाणमौचित्यचारुतामाचरति। यदाहुः—'विशेषणैः समुचितैर्विशेष्यार्थः प्रकाश्यते। गुणाधिकैर्गुणोदारः सुहृद्भिरिव सज्जनः॥' इति ॥ १२ ॥

शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयभणिदावुद्गीतगोविन्दके
प्रत्यर्थिप्रभुगर्वपर्वतसुपर्वाधीशशोभांभृता ।
श्रीपुम्माणनरेशवंशविशदक्ष्माभृद्वतंसायित-
श्रीमत्कुम्भधराधिपेन विवृतः वर्गे द्वितीयेऽन्वयः ॥

तथा च सङ्गीतराजे—

'गीतो भैरवरागेण ताले वर्णयतो यथा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आभोगान्तस्थितैः पाटैः स्वरैः पद्याञ्चितस्ततः ।
अक्लेशकेशवादिश्च कुञ्जरस्तिलकाभिधः ॥'

इति अक्लेशकेशवकुञ्जरतिलकनामा षष्ठः प्रबन्धः ॥ ६ ॥

इति श्रीराजाधिराजहम्मीरवीरवंशकरीरेण श्रीकुम्भकर्णमहीमहेन्द्रेण विरचिते गीतगोविन्दविवरणे अक्लेशकेशवनामा द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—द्वितीय सर्ग के इस अन्तिम श्लोक के द्वारा कवि जयदेव भक्तजनों को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि श्रीभगवान् ने गोपियों की चार प्रकार की उन चेष्टाओं का अपने हृदय में विचार किया, जिन चेष्टाओं को देखकर कोई भी अविवेकी पुरुष आकृष्ट हो जाया करते हैं। उन चेष्टाओं का वर्णन करते हुए जयदेव कवि कहते हैं—

साकूतस्मितम्—गोपियाँ मुस्कुरा रही थीं, किन्तु उनका वह मुस्कान स्वाभाविक नहीं था अपितु साभिप्राय था। इनके उस मुस्कान में कामवासना का पुट था। वे तरुण केशव भगवान् को देखकर काम की भावनाओं से अभिभूत हो गयी थी। तरुण पुरुष को देखकर कामिनियों की कामचेष्टाओं का विजृम्भण स्वाभाविक भी है।

(२) आकुलाकुललगद्धम्मिलम्—कामोद्रेक के कारण रोमाञ्च इत्यादि हो जाने से उन गोपियों के केशबन्ध विस्रस्त हो गये थे।

(३) श्रीभगवान् को देखकर उनकी टेढी भौंहें ऊपर की ओर उठ गयी थीं। 'अलीकदर्शितभुजामूलोर्ध्वहस्तस्तनम्' अर्थात् यद्यपि उनके अपने भुजामूलों तथा हाथों को ऊपर उठाने का कोई भी कारण नहीं था, फिर भी वे जम्भाई आदि के बहाने से हाथों को ऊपर उठाकर उन्नत स्तनों को श्रीभगवान् को दिखला रही थीं। गोपियों की ये चारों प्रकार की चेष्टाएँ ऐसी थीं कि उस प्रकार की चेष्टाओं को देखकर अविवेकी पुरुषों का मन सद्यः आकृष्ट हो जाया करता है। किन्तु श्रीभगवान् तो परम विवेकी हैं। उन्होंने गोपियों की इन सारी चेष्टाओं का अच्छी तरह से अपने हृदय में विचार किया तथा उनकी कामुक चेष्टाओं को व्यर्थ बना दिया। इस प्रकार अपने भक्तों के द्वारा स्तुति किये जाने वाले केशव भगवान् आप समस्त भक्तों के क्लेशों को दूर करें।

समुच्चय, आशीः तथा परिकर नामक अलङ्कार एवं शार्दूलविक्रीडित वृत्त इस श्लोक की विशेषताएँ हैं ॥ १२ ॥

इस प्रकार शिवप्रसाद द्विवेदी कृत गीतगोविन्द काव्य के अक्लेशकेशव नामक द्वितीय सर्ग की भावप्रकाशिका व्याख्या पूर्ण हुई ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीयः सर्गः

(मुग्धमधुसूदनः)

कंसारिरपि संसारवासनाबन्धशृङ्खलाम् ।
राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः ॥ १ ॥

अनुवाद—कंस के शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण ने भी अपने हृदय में संसार की वासना के बन्धन की शृङ्खला रूपी श्रीराधा को हृदय में रखकर व्रज की सुन्दरियों का परित्याग कर दिया ॥ १ ॥

गेयानुगुणैरधिकैरधिगतं तनुते धातुं बुधसम्मतम् ।
नत्वा विधिमिह सुरवरनतं कुम्भनरेशोऽलङ्कृतियुतम् ॥

इदानीं राधायाः कृष्णेऽनुरागं निरूप्य कृष्णस्यापि राधायामनुरागं दर्शयन्नाह गौड-कृतिरागेण—कंसारिरिति । कंसारिरपि व्रजसुन्दरीस्तत्याज । न केवलं राधैव कृष्णसक्ता बभूव, किन्तु कृष्णोऽपि राधासक्तो बभूवेत्यपिशब्दार्थः । किं कृत्वा ? राधां हृदये आधायारोप्य । किम्भूतां राधाम् ? संसारवासनाबन्धे शृङ्खलेव शृङ्खला । अत्र 'तक्वजोजं' इति पथ्या छन्दः ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—विगत प्रबन्धों में श्रीराधिका का कृष्ण के प्रति अनुराग का निरूपण करके गीतगोविन्दकार अब श्रीभगवान् का राधिका के प्रति अनुराग का वर्णन प्रारम्भ करते हुए कह रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने हार्दिक संताप के कारण व्रज की सुन्दरियों का परित्याग कर दिया। हार्दिक संताप का कारण बतलाते हुए कवि कहते हैं कि श्रीराधाजी श्रीभगवान् के संसार की वासना के बन्धन की शृंखला के समान थीं। उन श्रीराधाजी को अपने हृदय में रखने के कारण सामने श्रीराधाजी के न होने से श्रीभगवान् के हृदय में राधा के विरह के कारण संताप उत्पन्न हुआ। उसी संताप से संतप्त होने के कारण उन्होंने व्रजसुन्दरियों का परित्याग कर दिया।

गीतगोविन्द की दीपिकाकार ने 'संसारवासनाबन्धशृङ्खलाम्' पद की बड़ी ही अच्छी व्याख्या की है। सम्यक् सार इस विग्रह के अनुसार संसार पद आनन्दमय तथा ज्ञानमय मधुररस का वाचक है। मधुररसविषयिणी सतत प्रवृत्त रहने वाली वृत्ति ही संसारवासना है। वही श्रीराधाजी श्रीभगवान् को अपने वश में बनाये रखने के लिए शृंखला के समान थीं। कंसारि पद की भी व्याख्या करते हुए वे कहते हैं— 'कं सुखं सारयति विस्तारयतीति कंसारिः' अर्थात् सुख का विस्तार करने वाले श्रीभगवान् ही यहाँ कंसारि शब्द से कहे गये हैं। किञ्च कंस नामक राक्षसराज का शत्रु होने के कारण भी श्रीभगवान् को कंसारि कहा गया है।

पदद्योतनिकाकार के अनुसार 'व्रजसुन्दरीः' पद में बहुवचनान्त प्रयोग के द्वारा कवि ने इस अर्थ को अभिव्यक्त किया है कि सौन्दर्य-सम्पन्न तथा अनेक युवतियों का श्रीभगवान्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ने एक राधा के वियोग में परित्याग कर दिया। इससे श्रीभगवान् का राधा में अनुरागातिशय सूचित होता है।

इस पद्य में पथ्या वृत्त है ॥ १ ॥

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिकामनङ्गबाणव्रणखिन्नमानसः।
कृतानुतापः स कलिन्दनन्दिनीतटान्तकुञ्जे विषसाद माधवः ॥ २ ॥

अनुवाद—यमुना तट के कुञ्जों में उस राधिका का अन्वेषण करके काम के बाणों से विक्षत होकर खिन्न मन से अपने किये हुए कार्य के विषय में पश्चात्ताप करते हुए विषाद करने लगे ॥ २ ॥

इदानीं कृष्णस्य विरहावस्थाचेष्टितमाह—इतस्तत इति। स माधवोऽनङ्गबाणव्रणखिन्नमानसः सन् विषसाद विषादं चकार। किं कृत्वा? कलिन्दनन्दिनीतटान्तकुञ्जे इतस्ततस्तां राधामनुसृत्यान्विष्य। किं विशिष्टः? कृतानुतापः पूर्वमेव मया कथं नानुनीतेति कृतपश्चात्तापः। अत्र कुञ्जेष्विति वक्तव्ये बहुष्वपि परिभ्रमन् तदार्तिवशादेकमेवाज्ञासीदित्येकवचनम्। वंशस्थवृत्तम् ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् राधिका के विरह में कामबाणों से विक्षत हो गये थे, अतएव वे उन व्रजसुन्दरियों के समुपस्थित रहने पर भी उदास हो गये; क्योंकि उनकी मनःकान्ता श्रीराधाजी वहाँ उपस्थित नहीं थीं। उन्होंने सोचा कि चूँकि मैंने आज श्रीराधा का समादर नहीं किया अतएव संभव है वह यमुना तट के कुञ्जों में चली गयी हों। अतएव श्रीभगवान् ने यमुना के उन तटीय कुञ्जों में श्रीराधाजी का अन्वेषण किया, किन्तु जब वे नहीं मिली तो उन्हें अपने किये हुए पर पश्चात्ताप होने लगा। यदि मैं पहले ही श्रीराधा को अनुनीत कर लिया होता तो हो सकता था वे वहाँ से नहीं जातीं। अतएव वे विषाद करने लगे।

रसमञ्जरीकार के अनुसार 'माधव' यह श्रीभगवान् का नाम साभिप्राय है। लक्ष्मीपति माधव शब्द का शब्दार्थ है। लक्ष्मीपति श्रीभगवान् भी जिस राधा के विरह में व्याकुल हो गये। इस प्रकार इस पद के द्वारा श्रीराधा का सौभाग्यातिशय्य ध्वनित होता है।

इस श्लोक में वंशस्थविला नामक वृत्त है। 'वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ'। यह वंशस्थविला वृत्त का लक्षण है ॥ २ ॥

गुर्जरीरागयतितालाभ्यां गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ ७ ॥

अनुवाद—यह सातवाँ प्रबन्ध गुर्जरी राग तथा यति ताल से गाया जाता है।

भावप्रकाशिका—इस काव्य के प्रत्येक सर्ग में अनेक प्रबन्ध हैं। प्रत्येक प्रबन्ध की पुष्पिका रूप से कवि एक-दो श्लोकों को लिखते हैं। उसके पश्चात् गीत-विशेष के द्वारा उस प्रबन्ध को गाया जाता है। प्रत्येक गीतों के अपने-अपने राग और ताल हैं। इस गीत के भी गुर्जरी राग और यति ताल हैं। यह गीत इस गीतगोविन्द काव्य के प्रारम्भ से लेकर सातवाँ तथा इस सर्ग का पहला प्रबन्ध है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मामियं चलिता विलोक्य वृतं वधूनिचयेन ।
सापराधतया मयापि न वारिताऽतिभयेन ।
हरि हरि हतादरतया गता सा कुपितेव ।। ध्रुवपदम् ।। ३ ।।

अनुवाद—मुझे सुन्दरियों से घिरा हुआ देखकर वह चली गयी । अपराधी होने से अत्यन्त भय के कारण मैं भी इसे रोक न सका । अरे ! वह आदृत न होने से क्रुद्ध-सी होकर चली गयी ।। ३ ।।

उक्तमर्थं गीतेन स्पष्टयति—तत्र पूर्वं ध्रुवपदम् । हरीति । हरि हरीति खेदे । सा राधा कुपितेव गता । कया ? हतादरतया । हतो विनाशित आदरो बहुमानस्तस्य भावस्तया । इति ध्रुवः । अथ पदानि । मामियमिति । मां वधूनिचयेन वृतं विलोक्य गतेति ध्रुवपदेनैकवाक्यत्वात्सम्बन्धः । किम्भूता ? तादृशी मया चलितापि सापराधतया न वारिता न निषिद्धा । इह साकूतम् । तस्या गमने हेतुं जानन्नपि सापराधोऽस्मि । कथमेतस्या अग्रे मयातिभयेन वक्तुं पार्यत इति बुद्धया अतिशयितं भयं यस्येति मयेत्यस्य विशेषणम् । करणे तृतीया । अतिक्रान्तं भयमिति वधूनिचयविशेषणं वा । अथवा—मामेवं विलोक्य सा चलितापि मया न वारिता । हरि हरि गतेति विषादाभिनयेन योज्यम् ।। ३ ।।

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीभगवान् अपने विषाद की अभिव्यक्ति करते हुए कह रहे हैं कि यह मुझे व्रजसुन्दरी-समूह से घिरा हुआ देखकर जिस राधा के विषय में मैं चिन्ता रहा हूँ, जो मेरे हृदय में प्रेयसी के रूप में विराजमान है, वह चली गयी ।

श्रीराधा जैसी परम सुन्दरी नायिका के रहते मैं इन व्रजसुन्दरियों से आवृत्त हूँ, यह मेरा उसके प्रति किया जाने वाला अपराध है । अतएव अपराधी होने के कारण मैं उसके समक्ष अत्यन्त भयभीत हो गया और उस जाती हुई राधा को रोक नहीं सका । राधा ने मेरे द्वारा किये जाने वाले इस आचार को अपना अनादर समझा और वह कुपित-सी होकर यहाँ से चली गयी—यह बड़े ही खेद की बात है ।। ३ ।।

किं करिष्यति किं वदिष्यति सा चिरं विरहेण ।
किं धनेन जनेन किं मम जीवितेन गृहेण ।। हरि हरि० ।। ४ ।।

अनुवाद—दीर्घकाल पर्यन्त विरह का अनुभव करती हुई वह न जाने क्या करेगी तथा क्या कहेगी ? उसके अभाव में मुझे धन, जन, जीवन तथा परिवार से क्या लाभ ? अरे वह निरादृत होने के कारण कुपित होकर चली गयी ।। ४ ।।

किमिति । इदानीं मदपराधं मन्निमित्तमेव सा विषादं भुङ्क्ते इति आत्मसमत्वेन तामपि गणयन्नाह—सा किं करिष्यतीति । मयि मिलिते कोपेर्ष्यादिकं कथं विधास्यतीत्यर्धोक्त्या । तदनु कृतापराधं मां चरणपतितं दृष्ट्वा किं वदिष्यतीत्यपि चार्धोक्त्या । अहमुत्तरं दास्यामीत्याह—किं जनेनेति । गोपीजनेन । किं धनेनेति । धनमप्यकिञ्चित्करं कृत्वा जीवितं निन्दति । जीवितफलं किम् ? सुखमपि त्वदृते नान्यदिति वाक्यशेषः । किं विशिष्टा सा ? विरहेण उपलक्षिता । अथवा—मम विरहेणाक्रान्ता सा किं वदिष्यतीत्यादि । ममापि तां विना किं धनादिनेति योजनीयम् ।। ४ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीभगवान् यह अनुभव कर रहे हैं कि जिस प्रकार श्रीराधा के वियोग में मैं व्याकुल हूँ उसी प्रकार वह भी मेरे वियोग में व्याकुलता का अनुभव कर रही होगी। किन्तु उसके द्वारा इस वियोगजन्य दुःखानुभव किये जाने का कारण मेरा अपराध ही है। वह मेरे कारण ही कष्ट का अनुभव कर रही है। इसके पश्चात् मैं जब कभी उससे मिलूँगा तो न जाने वह कोप तथा ईर्ष्या आदि की अभिव्यक्ति कैसे करेगी? यदि अपने अपराधों को क्षमा करने के लिए उसके चरणों में मैं पड़ जाऊँगा तो भी न जाने वह मुझे क्या कहेगी? इसके पश्चात् मैं कहूँगा कि श्रीराधे! तुम्हारे बिना न तो मुझे धन से कोई प्रयोजन है, न तो इन गोपीजनों से; अधिक क्या कहें; न तो अपने प्राणों से ही मेरा कोई प्रयोजन है और न तो घर से। तुम्हारे बिना संसार के सारे सुखसाधन तुच्छ हैं॥ ४॥

चिन्तयामि तदाननं कुटिलभ्रु कोपभरेण।
शोणपद्ममिवोपरिभ्रमताकुलं भ्रमरेण॥ हरि हरि०॥ ५॥

अनुवाद—मँडराते हुए काले भँवरे से व्याकुल लालकमल के समान कोपभार से परिपूर्ण टेढी भौंहों से युक्त उसके मुख की मुझे इस समय याद आ रही है। अरे! वह अनादृत राधा कुपित-सी होकर यहाँ से चली गयी॥ ५॥

चिन्तयामीति। अहं तदाननं चिन्तयामि। किम्भूतमाननम्? कोपभरेणार्थान्मयि कुटिलभ्रु। कुटिले कुञ्चिते भ्रुवौ यत्र। किमिव? शोणपद्ममिव। उपरिभ्रमता भ्रमरेणाकुलम्। अत्र कोपारक्तमुखं पद्मेनोपमीयते। भ्रमरेण कुटिले कोपावेशपरिस्फुरमाणे भ्रुवाविति। अत्र वाक्यार्थोपमालङ्कारः। तथा च—'तदाननमधीराक्षमाविद्धं शतधीधिति। भ्रमद्भृङ्गमिवालक्ष्य केसरं भाति पङ्कजम्॥' इति॥ ५॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीभगवान् कह रह हैं कि सम्प्रति मुझे राधिका के उस मुखकमल की याद आ रही है, जो क्रोध के कारण उसकी भौंहें और अधिक कुटिल हो गयी होंगी। क्रोध से तमतमाया हुआ श्रीराधा का गोरा तथा लाल-लाल मुखड़ा कुटिल काली भौंहों से उसी प्रकार सुशोभित होता होगा, जैसे लाल कमल के ऊपर मँड़राते हुए काले-काले भ्रमरों की पंक्ति व्याप्त हो गयी हो।

यहाँ पर क्रोध से तमतमाये मुखड़े की सदृशता लाल कमल से तथा कुटिल काली भौंहों की सदृशता काले भ्रमरों की पंक्ति से बतलाये जाने के कारण इस श्लोक में वाक्यार्थी उपमा है॥ ५॥

तामहं हृदि सङ्गतामनिशं भृशं रमयामि।
किं वनेऽनुसरामि तामिह किं वृथा विलपामि॥ हरि हरि०॥ ६॥

अनुवाद—सर्वदा हृदय में विद्यमान रहने वाली उस राधा को सर्वदा मैं अत्यधिक रमण करता हूँ। मैं इस वन में क्यों उसे खोजता हूँ तथा व्यर्थ ही क्यों विलाप करता हूँ॥ ६॥

तामहमिति। अहम् अनिशमनवरतं हृदि सङ्गतां हृदये मिलितां तां भृशमत्यर्थं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रमयामि। इत्युक्त्वा पुनः प्रबुद्धयाह — इष्टशून्यप्रदेशे वृथा किं विलपामि, तां वनेऽनुसरामि ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् श्रीराधा की वियोगावस्था से व्याकुल से हो गये हैं, वे कह रहे हैं कि श्रीराधा तो सर्वदा मेरे हृदय में निवास करनेवाली मेरी प्रियतमा प्रेयसी है और उस हृदयस्थिता राधा को मैं सर्वदा अत्यधिक रमण करता रहता हूँ। वह तो मुझसे कभी वियुक्त होती ही नहीं। इस वन में जहाँ वह है ही नहीं, उसमें उसको खोजने से क्या लाभ है ? और बैठकर जो मैं विलाप कर रहा हूँ वह भी व्यर्थ ही है ॥ ६ ॥

तन्वि ! खिन्नमसूयया हृदयं तवाकलयामि।
तन्न वेद्मि कुतो गतासि न तेन तेऽनुनयामि ॥ हरि हरि० ॥ ७ ॥

अनुवाद—हे तन्वि ! लगता है कि मेरे प्रति असूयायुक्त होने से तुम्हारा हृदय खिन्न हो गया है। चूँकि मैं नहीं जानता कि तुम कहाँ चली गयी अतएव मैं तुमको नहीं मना पा रहा हूँ ॥ ७ ॥

तन्वीति। हे तन्वि ! तव हृदयम् असूयया खिन्नं खेदयुक्तं भविष्यतीत्याकलयामि। तत्तस्मादहं कुतो गतासीति न वेद्मि, अपि तु असूयात एव गतासीति वेद्मि। अतो हेतोर्दर्शनाभावात्। ते तव सम्बन्धिना नतेन नमस्कारेणानुनयामि। अथवा — तव हृदयं असूयया खिन्नम्। तेन कारणेन ते तव हृदयं नानुनयामि। 'प्रतप्तस्येव सहसा सर्पिषस्तोयबिन्दवः' इति न्यायापातादिति भावः। अथवा—तत्कुतो न वेद्मि ? अपि तु वेद्मि। अथवा—त्वं गतासि यातासि। तव हृदयं नते नमस्कृतो न अनुनयामि ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में कवि श्रीराधाजी के वियोग में व्याकुल श्रीभगवान् की उद्वेगावस्था का वर्णन कर रहे हैं। श्रीभगवान् उद्विग्न हैं। वे अपने समक्ष ही विद्यमान-सी राधा को मानकर श्रीराधा को 'तन्वि' पद के द्वारा सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि श्रीराधे ! लग रहा है कि मेरे प्रति तुम्हारा असूया का भाव होने के कारण तुम्हारा हृदय खेद युक्त हो गया होगा। क्योंकि तुम यहाँ से कहीं अन्यत्र चली गयी हो। यदि ऐसा नहीं होता तो तुम क्यों चली जाती ? किन्तु मैं तो यह भी नहीं जानता हूँ कि तुम कहाँ गयी; अतएव मना भी नहीं पा रहा हूँ। यदि मैं जानता कि तुम कहाँ गयी हो तो मैं तुम्हारे पैर छूकर तुम्हें मना लेता। यह अर्थ 'न तेन' को 'नतेन' पढ़ने से सहज ही ज्ञात हो जाता है।

इस पद्य का अनेक प्रकार से तोड़-मरोड़कर रसिकप्रियाकार ने अनेक प्रकार के अर्थों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। अतएव उन समस्त अर्थों को रसिकप्रिया में ही देखना चाहिए ॥ ७ ॥

दृश्यसे पुरतो गतागतमेव मे विदधासि।
किं पुरेव ससम्भ्रमं परिरम्भणं न ददासि ? ॥ हरि हरि० ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद—हे प्रिय ! मेरे समक्ष आती-जाती-सी हुई तो तुम दिखलायी देती हो, क्या कारण है कि पहले के ही समान तुम सहसा मेरा आलिङ्गन नहीं करती हो ? ॥

दृश्यस इति । हे तन्वि ! मे पुरतो गतागतमेव विदधासि यातायातमेव करोषीति दृश्यते । अपरं, पुरेव ससम्भ्रमं यथा स्यात्तथा परिरम्भणं न ददासि । विरहिणो हि चित्तानुषङ्गात्सर्वतस्तामेव पश्यन्ति । तथा चोक्तम्—'प्रासादे सा पथि पथि च सा पृष्ठतः सा पुरः सा पर्यङ्के सा दिशि दिशि च सा तद्वियोगातुरस्य । हंहो चेतः प्रकृतिरपरा नास्ति ते कापि सा सा सा सा सा सा जगति सकले कोऽयमद्वैतवादः' ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—विरही पुरुष की उद्विग्नावस्था जब चरम काष्ठा को छू लेती है उस समय उसकी भावना इतनी प्रबल हो जाती है कि उसे लगता है कि उसका प्रेमास्पद उसके सामने विद्यमान हो । ठीक यही स्थिति सम्प्रति श्रीभगवान् की हो गयी है । वे श्रीराधा के विप्रयोग के कारण इतने व्याकुल हो गये हैं कि उनकी भावना साक्षात्कृतावस्था को पहुँच गयी है । उन्हें लगता है कि श्रीराधाजी उनके आँखों के समक्ष हों । वे कहते हैं—श्रीराधे ! मैं देख रहा हूँ कि तुम मेरे सामने से ही आती-जाती हो, किन्तु केवल तुम आती-जाती ही हो । पहले तो ऐसा नहीं करती थी । पहले तो तुम आते ही जल्दी से मुझसे लिपट जाती थी । क्या कारण है कि आज तुम ऐसा नहीं कर रही हो ? तुम मेरा आलिङ्गन क्यों नहीं करती ॥ ८ ॥

क्षम्यतामपरं कदापि तवेदृशं न करोमि ।
देहि सुन्दरि ! दर्शनं मम मन्मथेन दुनोमि ॥ हरि हरि० ॥ ९ ॥

अनुवाद—हे सुन्दरि ! क्षमा करो । अब कभी भी ऐसा कार्य नहीं करूँगा । मुझे दर्शन दो । मैं काम से पीड़ित हो रहा हूँ ॥ ९ ॥

क्षम्यतामिति । हे तन्वि ! भवतु यत्किञ्चिन्मया अपराद्धं क्षम्यतां तत् । ईदृशमपरमप्रियं तव कदापि न करिष्यामि । हे सुन्दरि ! मम दर्शनं देहि । त्वद्विनाऽहं मन्मथेन दुनोमि । इतस्ततस्तामित्यादौ धीरललितो नायकः । परस्परानुरागजनितो विप्रलम्भ-शृङ्गारः ॥ ९ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में कवि श्रीभगवान् की उद्वेगावस्था की चरम सीमा का वर्णन कर रहे हैं । श्रीभगवान् की आँखों के समक्ष मानो श्रीराधा विद्यमान हों । उन्हें लग रहा है कि श्रीराधा उनके सामने से आ-जा रही है, किन्तु कुपित होने के कारण पहले के समान वे उनका आलिङ्गन नहीं कर रही हैं । अतएव वे अपनी गलती को स्वीकार करते हुए कहते हैं—श्रीराधे ! मुझे क्षमा करो । जो कुछ हो गया उसे भूल जाओ । भविष्य में मैं इस प्रकार का अपराध नहीं करूँगा । हे सुन्दरि ! तुम मुझे अपना दर्शन दो । मेरी आँखों से ओझल मत होओ । तुम्हारे वियोग में कामदेव मुझे दुःख दे रहा है ।

इस प्रकार गीत में वर्णित नायक भगवान् श्रीकृष्ण धीरललित नायक हैं तथा परस्परानुरागजनित विप्रलम्भ-शृङ्गार इस गीत का प्रधान रस है ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रवणेन।
किन्दुबिल्वसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन ॥ हरि हरि० ॥ १० ॥

अनुवाद—किन्दुबिल्व नामक ग्रामरूपी समुद्र से उत्पन्न भगवद्भक्त जयदेव नामक चन्द्रमा के द्वारा यह वर्णन किया गया ॥ १० ॥

वर्णितमिति। इदं पूर्वोक्तं जयदेवेन वर्णितम्। किम्भूतेन? हरेः प्रवणेन हरिपरायणेन। पुनः किम्भूतेन? ति(कि)न्दुबिल्वं तच्छासनं निवासो वा ग्रामः समुद्र इव तत्सम्भवरोहिणीरमणेनेव चन्द्रेणेव ॥ १० ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीजयदेव कवि कह रहे हैं कि इस पूर्व गीत का वर्णन भगवद्भक्तिपरायण किन्दुबिल्व ग्राम में उत्पन्न जयदेव कवि ने किया। यह ग्राम बहुत बड़ा है। अतएव उसमें समुद्रत्व का आरोप किया गया है। जिस प्रकार समुद्र से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ उसी प्रकार इस किन्दुबिल्व नामक ग्राम में जयदेव नामक कवि उत्पन्न हुए। इसीलिए श्रीजयदेव कवि का एक नाम पीयूषवर्ष है। पीयूषवर्ष भी चन्द्रमा का ही नाम है। रोहिणीरमण श्रीचन्द्रमा का ही नाम है। अपनी पीयूषवर्ष नामक उपाधि की ओर संकेत करते हुए कवि अपने को रोहिणीरमण बतला रहे हैं, ऐसा प्रतीत होता है ॥ १० ॥

हृदि बिसलताहारो नायं भुजङ्गमनायकः
कुवलयदलश्रेणी कण्ठे न सा गरलद्युतिः।
मलयजरजो नेदं भस्म प्रियारहिते मयि
प्रहर न हरभ्रान्त्याऽनङ्ग! क्रुधा किमु धावसि? ॥ ११ ॥

अनुवाद—हे कामदेव! भ्रम से मेरे ऊपर प्रहार न करो, क्यों क्रोध करके दौड़ रहे हो? मेरे हृदय पर सर्पराज नहीं, यह तो मृणालहार है, गले में विष की कान्ति नहीं अपितु नीलकमल की माला है, प्रियाविहीन मेरे शरीर पर यह भस्म नहीं चन्दन का रज है ॥ ११ ॥

इदानीं स्मरशराहतिजर्जरचेता भ्रान्तः सन् काममपि भ्रान्तं विवक्षन्नाह—हृदीति। हे अनङ्ग! हरभ्रान्त्या प्रियारहिते मयि न प्रहर प्रहारं मा कार्षीः। एभिश्चिह्नैर्हरोऽयमिति चेत्तदप्यन्यथयति। हृदये भुजङ्गमनायको न, अपि तु बिसलताहारः। बिसलताहार इति रूपकालङ्कारः। शुभ्रत्वात् हृद्यवस्थानाच्च मृणाले वासुकिभ्रमः। अपि च—कण्ठे इयं कुवलयदलश्रेणी, न प्रसिद्धा गरलद्युतिः। इयमपि विरहातुरस्य मम गरलद्युतिरिव विद्यते। परं यद्भ्रान्त्या मयि प्रहरसि सा प्रसिद्धा ईश्वरसम्बन्धिनी न। इदं मलयजरजोऽङ्गतापाच्छुष्कं चन्दनं विद्यते, न भस्म। 'किमु' इति वितर्के। सत्यम्, क्रुधा कोपेन धावसि। लोकोक्तिः। हरिणीवृत्तम्। 'प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत्साध्यते सा त्वपह्नुतिः' (का० प्र० १०।९६) इत्यपह्नुतिरलङ्कारः। विप्रलम्भशृङ्गारो रसः ॥ ११ ॥

भावप्रकाशिका—प्रियतमा राधा के विरह में काम के बाणों से श्रीभगवान् का अन्तःकरण विद्ध हो गया है। उन्हें लग रहा है कि यह कामदेव मुझे ही शङ्कर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझ लिया है, अतएव मुझ पर बाणों का प्रहार कर रहा है। भगवान् शङ्कर ने अपने तृतीय नेत्र की अग्नि से कामदेव को जला दिया था, तब से उसका नाम अनङ्ग हो गया। श्रीभगवान् कह रहे हैं कि हे कामदेव! भगवान् शङ्कर तो सर्वदा प्रियतमा के साथ रहते हैं, मैं अपनी प्रियतमा श्रीराधा से रहित हो गया हूँ। अतएव शङ्करजी के भ्रम से अपना वैर साधने के लिए प्रहार न करो। क्यों व्यर्थ ही क्रोध करके मेरे ऊपर प्रहार करने के लिए दौड़ रहे हो? मेरे हृदय पर यह सर्पराज वासुकि नहीं है, अपितु यह मृणालदण्ड का हार है, जिससे कि प्रियतमा के विप्रयोग से उत्पन्न संताप शान्त हो सके। मेरे गले में यह नीलकमलों की पंक्ति है, विषपान करने से उत्पन्न वह विष की नीली कान्ति नहीं है कि मुझे शङ्कर समझ रहे हो। मैं प्रियतमा के विप्रयोगजन्य संताप को दूर करने के लिए अपने शरीर पर चन्दन लगा रखा हूँ, जो सुखकर चन्दन के रूप में परिणत हो गया है; यह भस्म नहीं है कि मुझे शङ्कर समझ रहे हो।

हरिणी वृत्त, अपह्नुति अलङ्कार तथा विप्रलम्भ-शृङ्गार.इस श्लोक की विशेषताएँ हैं। किन्तु रसमञ्जरीकार के अनुसार इस श्लोक में भ्रान्तिमान् अलङ्कार है ॥ ११ ॥

पाणौ मा कुरु चूतसायकममुं मा चापमारोपय
क्रीडानिर्जितविश्व ! मूर्च्छितजनाघातेन किं पौरुषम् ।
तस्या एव मृगीदृशो मनसिज ! प्रेङ्खत्कटाक्षाशुग-
श्रेणीजर्जरितं मनागपि मनो नाद्यापि सन्धुक्षते ॥ १२ ॥

अनुवाद—खेल-खेल में ही सम्पूर्ण विश्व को जीत लेने वाले कामदेव ! इस आम्रमञ्जरी रूपी बाण को हाथ में मत लो और न तो अपने धनुष पर इसे चढाओ। हे कामदेव ! उस राधा के ही प्रसृमर कटाक्षों से जर्जरित मेरा मन अभी तक नहीं स्वस्थ हो पा रहा है, अतएव मूर्च्छित मनुष्य के ऊपर प्रहार करने में तुम्हारा कौन-सा पराक्रम है ? ॥ १२ ॥

इदानीं स्मरमुपालभते—पाणाविति। हे क्रीडानिर्जितविश्व काम! पाणौ अमुं चूतसायकं मा कुरु। चापमपि माऽऽरोपय मा सज्जं कुरु। यतः क्रीडयैव निर्जितविश्वस्य केयं सामग्री नाम? अथ चेत्सामग्री तर्हि कस्योपरीत्याह—मूर्च्छितजनाघातेन किं पौरुषं कोऽयं पराक्रमः? अथवा—कुत्सितं पौरुषं किम्पौरुषम्। तर्हि किं क्रियतामित्याह—यदर्थं मां प्रहिणोषि तस्या एव मृगीदृशो मनोऽद्यापि मनागपि न सन्धुक्षते, अपि तु सन्धुक्षतां नाम। किं विशिष्टं मनः? प्रेङ्खत्कटाक्षानलज्वालाजर्जरितम्। प्रेङ्खन्तो वलन्तो ये कटाक्षा अर्थात्सपत्नीनां त एव अनलोऽग्निस्तस्य ज्वालास्ताभिर्जर्जरितम्। अथवा—हे मनसिज! तस्या एव मृगीदृशः प्रेङ्खत्कटाक्षानलज्वालाजर्जरितं मनः, अर्थान्ममैवाद्यापि न दीप्यते। अतो मृतमारणं कथं युक्तम्? शार्दूलविक्रीडितं छन्दः। आक्षेपोऽलङ्कारः। अत्र मनसिजशरा मनो विध्यन्ति इति कर्मत्वे विवक्षिते यत्कर्तृत्वमुपन्यस्तं तदौचित्य-चमत्कारितामाविष्करोति। यथा 'सान्वयं शोभते वाक्यमुचितैरेव कारकैः। कुलाभरण-मैश्वर्यमौदार्यं चरितैरिव' ॥ इति ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में भी श्रीभगवान् कामदेव को उपालम्भित करते हुए कह रहे हैं कि हे कामदेव ! तुम आम्र की मञ्जरी रूपी बाण को अपने हाथ में ग्रहण न करो। कामदेव के पांच प्रकार के पुष्पमय बाण माने जाते हैं। उनमें एक प्रकार का बाण आम्रमञ्जरी भी है। वसन्त ऋतु होने के कारण आम्रमञ्जरी वृक्षों के अग्रभाग में निकल आयी है। श्रीभगवान् सोच रहे हैं कि कामदेव इस आम्र-मञ्जरी को ही अपना बाण बनाकर श्रीराधा के वियोग में व्याकुल मेरे ऊपर प्रहार करेगा। अतएव उसे रोकते हुए श्रीभगवान् यह कह रहे हैं कि इस रसालमञ्जरी रूपी बाण को तुम अपने हाथ में ग्रहण न करो।

मा चापमारोपय—और यदि तुमने हाथ में इसे ले ही लिया हो तो भी इसे अपने धनुष पर बाण के रूप में मत चढ़ाओ। क्योंकि तुम तो क्रीड़ानिर्जित विश्व हो। खेल ही खेल में सम्पूर्ण विश्व को जीत लेने वाले हो। अतएव तुम अत्यन्त यशस्वी हो। एक विश्वविजयी को इस प्रकार का घृणित काम करना ठीक नहीं। इससे तो तुम्हारी अपकीर्ति मात्र होगी। क्योंकि मैं तो एक मूर्च्छित व्यक्ति हूँ। श्रीराधा के वियोग से मैं मूर्च्छित हो गया हूँ, अतएव मृततुल्य हो गया हूँ और तुम्हारे जैसा वीर किसी मरे को मारने लगे तो यह तुम्हारा अपयश होगा। मुझे मारने में कौन-सा पराक्रम होगा तुम्हारा ?

'मनसिज' इस सम्बुद्धि पद से श्रीभगवान् कह रहे हैं कि तुम तो मेरे ही मन से उत्पन्न हुए हो। जो जिससे उत्पन्न हो और उसी को मारने लग जाय यह उचित कर्म नहीं है। जिस श्रीराधा के लिए तुम मेरे ऊपर बाणों का प्रहार करना चाह रहे हो उसी श्रीराधा के प्रसृमर कटाक्षपात रूपी बाणों से मेरा मन क्षुब्ध हो गया है और अभी भी स्वस्थ नहीं हो पा रहा है। वह तो स्वयं श्रीराधा के काटाक्षबाणों से घायल है। उस घायल को और घायल करना ठीक नहीं है।

शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा आक्षेपालङ्कार इस श्लोक की विशेषताएँ हैं ॥ १२ ॥

भ्रूपल्लवं धनुरपाङ्गतरङ्गितानि
बाणा गुणः श्रवणपालिरिति स्मरेण।
तस्यामनङ्गजयजङ्गमदेवताया-
मस्त्राणि निर्जितजगन्ति किमर्पितानि ॥ १३ ॥

अनुवाद—भ्रूपल्लवरूपी धनुष, कटाक्षपात तरङ्ग रूपी बाण तथा कर्णपालि रूपी मौर्वी—इन सम्पूर्ण अस्त्रविद्या के साधन रूपी उपकरणों को कामदेव ने सम्पूर्ण विश्व का विजय करके अपने विजय के जङ्गम देवता राधा में ही स्थापित कर दिया है क्या ? ॥ १३ ॥

इदानीं राधायामेव स्मरशरावलित्वमारोपयन्नाह—भ्रूपल्लवमिति। स्मरेण तस्याम् इति अस्त्राण्यर्पितानि। किम्भूतानि ? निर्जितजगन्ति। निर्जितानि जगन्ति यैस्तानि। किम्भूतायां तस्याम् ? अनङ्गजयजङ्गमदेवतायाम्। अनङ्गस्य जयाय जङ्गमदेवतेव तस्याम्। इतीति किम् ? भ्रूपल्लवं धनुः। अपाङ्गतरङ्गितानि कटाक्षा बाणाः। 'अपाङ्ग-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तरङ्गित'शब्देन कटाक्ष उच्यते। तथा चोक्तम्—'यद्गतागतविश्रान्तिवैचित्र्येण निवर्तनम्। तारकायाः कलाभिज्ञास्तं कटाक्षं प्रचक्षते' ॥ इति। श्रवणपालिः गुण इति। अत्र 'अस्त्र'-शब्देनास्त्रविद्यासाधनस्योपकरणान्युच्यन्ते। भ्रूपल्लवं धनुरित्यत्र रूपकोत्प्रेक्षे अलङ्कृती ॥ यथा—'मुखपङ्कजरङ्गेऽस्मिन्भ्रूलता नर्तकी नवा। लीलानृत्यं करोतीति रम्यं रूपक-रूपकम्' ॥ अत्र क्वापि क्वाप्यलङ्कारद्वयत्रयसद्भावेऽपि संसृष्टिसङ्करनिरूपणं ग्रन्थविस्तर-त्रस्तचित्ततया न क्रियते। तद्गतिस्तु पूर्वपदे दर्शितप्रायेति ॥ १३ ॥

भावप्रकाशिका—अब भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधा में कामबाण-समूह का आरोप करते हुए कहते हैं कि कामदेव ने संसार को जीत लेने वाले अस्त्रों का उस श्रीराधा में ही विक्षेप कर दिया है क्या। तत् शब्द यहाँ पर पूर्वानुभूतत्व का वाचक है। अर्थात् जिस राधा के विप्रयोग में मैं व्याकुल हूँ, जो राधा मेरी मनःकान्ता है, उसी राधा में कामदेव ने जगद्विजय के साधनोपकरणभूत अस्त्रों को निक्षिप्त कर दिया है क्या ? यह 'तस्याम्' पद के द्वारा सूचित किया गया है। श्रीराधा की दूसरी विशेषता यह बतलायी गयी है कि वे अनङ्गजय जङ्गम देवता है। अर्थात् कामदेव जगद्-विजय प्रदान करने वाले चलते-फिरते देवता हैं। उसी राधा रूपी देवता से अस्त्रों को प्राप्त करके कामदेव ने जगत् का विजय किया, पुनः उद्देश्य की पूर्ति हो जाने के पश्चात् उसने उसी देवता को उन अस्त्रों को समर्पित कर दिया।

कामदेव के उन जगद्विजय के साधनभूत अस्त्रों का निर्देश करते हुए श्रीभगवान् कहते हैं—'भ्रूपल्लवं धनुः'। श्रीराधा के काले-काले भ्रूपल्लव ही कामदेव का धनुष है। भौंहों के नीले तथा स्निग्ध होने के कारण उनमें पल्लवत्व का तथा उसमें टेढ़ापन होने के कारण धनुष का आरोप किया गया है। श्रीराधा के अपाङ्गतरङ्ग ही कामदेव के बाण हैं। अर्थात् कटाक्षपात ही बाण का काम करते हैं। जिस प्रकार बाण लक्ष्य के भेदक होते हैं उसी प्रकार ये श्रीराधा के अपाङ्गतरंग भी मेरे मन का भेदन करने में समर्थ हैं तथा श्रीराधा की श्रवणपालि ही कामदेव के धनुष की डोरी है। इस प्रकार श्रीभगवान् श्रीराधा के तत्-तत् कामाविष्कारसमर्थ अवयवों में कामदेव के तत्-तत् अस्त्रविद्यासाधनोपकरणों की उत्प्रेक्षा कर रहे हैं।

इस श्लोक में 'ज्ञेया वसन्ततिलका तभजा जगौ गः'। इस लक्षण के अनुसार वसन्ततिलका वृत्त तथा उत्प्रेक्षा एवं रूपक अलंकारों की संसृष्टि है ॥ १३ ॥

भ्रूचापे निहितः कटाक्षविशिखो निर्मातु मर्मव्यथां
श्यामात्मा कुटिलः करोतु कबरीभारोऽपि मारोद्यमम्।
मोहं तावदयं च तन्वि! तनुतां बिम्बाधरो रागवान्
सद्वृत्तः स्तनमण्डलस्तव कथं प्राणैर्मम क्रीडति ? ॥ १४ ॥

अनुवाद—भ्रुकुटि रूपी धनुष पर आरोपित कटाक्षपातरूपी बाण मेरे हृदय को व्यथित करे, काले-काले घुंघराले ये तुम्हारे केशपाश मुझे मारने का प्रयास करें तथा तुम्हारे बिम्बफल के समान लाल-लाल ओष्ठ मुझे मोहित भी करें, किन्तु तुम्हारे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सद्वृत्त (वर्तुलाकार) स्तनमण्डल मेरे प्राणों के साथ क्यों खिलवाड़ कर रहा है ? ।। १४ ।।

इदानीं ध्यानमिलितां राधां सम्भावयन्नाह—भ्रूचाप इति । हे तन्वि ! भ्रूचापे निहित आरोपितः कटाक्ष एव विशिखो बाणो मर्मव्यथां निर्मातु । यतश्चापारोपितबाणस्य मर्मवेधो युक्त एव । अपि च—कबरीभारोऽपि मारोद्यमं मारायोद्यमं करोतु नाम । यतः श्यामात्मा कुटिलश्च । श्यामात्मनामन्तर्मलिनचित्तानां च मारणं स्वभाव एव । अपि च—अयं रागवान्बिम्बाधरो मोहं तनुताम् । अस्यांप्येवंविधस्य मोहविधाने औचिती; परं तु तव सद्वृत्तः स्तनमण्डलः स मम प्राणैः कथं क्रीडति ? इयमस्यानौचिती । यतः सदाचारवतां परप्राणविशसनं न क्वापि दृष्टमिति भावः । अत्र विरोधालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ।। १४ ।।

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीभगवान् ध्यान में श्रीराधा का समादर करते हुए कहते हैं—हे श्रीराधे ! ये तुम्हारी भौंहें ही धनुष हैं तथा उनसे सम्बद्ध तुम्हारे कटाक्षपात उस धनुष पर आरोपित बाण है । बाणों का यह काम ही है कि वे परमर्म का पीड़न करते हैं । उसमें धनुष पर आरोपित बाणों का एकमात्र यही लक्ष्य ही होता है । अतएव तुम्हारे ये कटाक्षपात यदि मेरे अन्तःकरण को प्रपीड़ित करते हैं तो उनका ऐसा करना उचित ही है ।

ये तुम्हारे काले तथा घुंघराले केशपाश भी यदि मुझे मारने का प्रयास करते हैं तो यह भी उचित ही है, क्योंकि जिसका हृदय काला होता है तथा जो कुटिल होते हैं वे दूसरों को मारने का प्रयास स्वभावतः करते हैं । यह जो तुम्हारा राग युक्त अधर है वह भी मुझे मोहित करें, यह कोई अनुचित नहीं है, क्योंकि जो रागवान् अर्थात् मात्सर्य युक्त होता है, वह दूसरों को मोहित करने का काम स्वभावतः करता है । किन्तु तुम्हारा यह जो सद्वृत्त (वर्तुलाकार) स्तनमण्डल है, वह मेरे प्राणों से खिलवाड़ क्यों कर रहा है ? क्योंकि जो सद्वृत्त होता है वह दूसरों के प्राणों के साथ खेलवाड़ नहीं करता । अतएव तुम्हारे उन स्तनों का व्यवहार उचित नहीं है ।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीड़ित वृत्त तथा विरोधालङ्कार है ।। १४ ।।

तानि स्पर्शसुखानि ते च तरलाः स्निग्धा दृशोर्विभ्रमा-
स्तद्वक्त्राम्बुजसौरभं स च सुधास्यन्दी गिरां वक्रिमा ।
सा बिम्बाधरमाधुरीति विषयासङ्गेऽपि चेन्मानसं
तस्यां लग्नसमाधि, हन्त विरहव्याधिः कथं वर्धते ।। १५ ।।

अनुवाद—मैं श्रीराधा के पूर्वानुभूत स्पर्शजन्य सुख का अनुभव कर रहा हूँ, उसके चञ्चल तथा प्रेमार्द्र नेत्रों के विभ्रम पूर्वानुभूत ही हैं, उसके मुखकमल की पूर्वानुभूत ही सुगन्धि है तथा उसकी वाणी के पूर्वानुभूत ही अमृतस्रावी वक्रिमा है और उसके बिम्बाफल के समान लाल-लाल ओठों का वही सौकुमार्य मैं अनुभव कर रहा हूँ । इस प्रकार श्रीराधा में समाधिस्थ मेरे मन के रहने के कारण विषयों का सम्बन्ध बना ही हुआ है तो फिर मुझमें विरहजन्य व्याधि कैसे बढ़ रही है ? ।। १५ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदानीं वक्रोक्त्या स्वगतत्वेन विरहवामतां वदति—तानीति । 'हन्त' इति खेदे । विषयासङ्गेऽपि मानसं चेत्तस्यां लग्नसमाधि तर्हि विरहव्याधिः कथं वर्धते ? समाधौ व्याधेरनुद्भवात्, प्रियासङ्गे विरहानुपपत्तेश्च । इतीति किम् ? तानि स्पर्शसुखानि सन्ति । अप्रत्यक्षायामपि तस्यां ध्यानवशादनुभूयमानानीव; एवं सर्वत्र । अपि च—तरलाश्चलाः स्निग्धाः प्रेमार्द्रा दृशोर्विभ्रमा विलासास्त एव; वक्त्राम्बुजसौरभं तदेव; अपि च—सुधास्यन्द्यमृतस्रावी गिरां वक्रिमा वैदग्ध्यविशेषः स एव; अपि च—बिम्बाधरमाधुरी बिम्बाधरसौकुमार्यं तदेव; यत्पूर्वानुभूतं तदेवेति विषयलाभेऽपि विरहो वर्धत इति तस्य वामता । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । समुच्चयोऽलङ्कारः । रसादि प्रसिद्धम् ॥ १५ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीभगवान् अपनी भावना के प्राबल्य के कारण श्रीराधा को अपने समक्ष स्थित मानकर अपने भीतर बढ़ती हुई विरहव्याधि की प्रतिकूलता का वर्णन करते हुए श्रीभगवान् कह रहे हैं कि मेरा मन श्रीराधा में समाधिस्थ हो गया है। उसी के कारण लग रहा है कि मैं श्रीराधा के स्पर्शजन्य सुख का पूर्वानुभूत सुख का ही अनुभव कर रहा हूँ। मैं श्रीराधा के पूर्वानुभूत ही चञ्चल तथा प्रेमार्द्र नेत्रों के विभ्रम को देख रहा हूँ। समाधि में प्रत्यक्षायमाणा श्रीराधा के मुखकमल की पूर्वानुभूत ही सुगन्धि है। श्रीराधा की वाणी की पूर्वानुभूत ही अमृतस्राविणी वक्रिमा है तथा बिम्बाधर की वही पूर्वानुभूत माधुरी है। इस प्रकार मेरे मन का सम्बन्ध पूर्वानुभूत विषयों से ही बना हुआ है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्द—इन पाँचों प्रकार के विषयों का सम्बन्ध मेरे साथ बना हुआ है। ऐसी स्थिति में न जाने किस प्रकार से विरहजन्य व्याधि बढ़ रही है।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित वृत्त, समुच्चयालङ्कार तथा विप्रलम्भ शृङ्गार हैं।

तिर्यक्कण्ठविलोलमौलितरलोत्तंसस्य वंशोच्चर-
द्दीप्तिस्थानकृतावधानललनालक्षैर्न संलक्षिताः ।
सम्मुग्धे मधुसूदनस्य मधुरे राधामुखेन्दौ सुधा-
सारे कन्दलिताश्चिरं ददतु वः क्षेमं कटाक्षोर्मयः ॥ १६ ॥

इति श्रीजयदेवकृतौ श्रीगीतगोविन्दे मुग्धमधुसूदनो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

अनुवाद—जो स्नेहातिरेक के कारण श्रीराधाजी के मनोहर तथा अमृतमय मुखचन्द्र पर स्थिर हो गयी थीं, बाँसुरी के दीप्त उच्चारणस्थान पर ध्यान लगाये रखने के कारण जिन्हें लाखों गोपियाँ देख भी नहीं पायीं, उन तिरछे कण्ठ वाले तथा चञ्चल मुकुट एवं कुण्डल वाले भगवान् श्रीकृष्ण के कटाक्षपात की ऊर्मियाँ आप सभी का कल्याण करें ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीजयदेव कवि प्रणीत गीतगोविन्द काव्य में
मुग्धमधुसूदन नामक तृतीय सर्ग पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदानीं सर्गार्थसंवरणव्याजेनाशिषमाशास्ते—तिर्यक्कण्ठेति। मधुसूदनस्य कटाक्षोर्मयो वो युष्मभ्यं क्षेमं ददतु। ऊर्मयो वेगा लेखा वा। कटाक्षाणामूर्मयः कटाक्षोर्मयः। 'ऊर्मिः पीडालवोत्कण्ठाभङ्गिप्राकाश्यवीचिषु। वस्त्रसङ्कोचलेखायाम्' इति। किं लक्षणाः? राधामुखेन्दौ प्रेम्णा कन्दलिता उपरागं गमिताः। 'कन्दलं तु नवाङ्कुरे। कलध्वनावुपरागे च' इति। किं विशिष्टे मुखेन्दौ? सम्मुग्धे मधुरे। सम्यक् मुग्धं सम्मुग्धं, सम्मुग्धं च तन्मधुरं च तत्तस्मिन्। रम्ये नवप्रिये। 'मुग्धं मूर्खे तथा रम्ये' इति। 'मधुरस्तु प्रिये स्वादौ' इति। पुनः किम्भूते? सुधाकरे सुधादीनां सारे, सुधायाः सारे वा। पुनः किम्भूताः? वंशोच्चरद्दीप्तिस्थानकृतावधानललनालक्षैर्न संलक्षिताः। वंशे उच्चरद्दीप्तिस्थानं तारस्वरस्थानं तत्र कृतावधानं याभिस्तास्तथा, ताश्च ता ललनाश्च तासां लक्षाणि तैः। चतुर्ष्वपि स्वस्थानेषु रागालप्तौ क्रियमाणायां क्रमेण दीप्तिस्थानारोहे कोऽप्यतिशयो जायत एव। तत्र दत्तावधानत्वात् वल्गुस्वने प्रियकटाक्षादपि प्रियत्वादित्यर्थः। किम्भूतस्य मधुसूदनस्य? तिर्यक्कण्ठविलोलमौलितरलोत्तंसस्य, तिर्यक् कण्ठो यस्यासौ तिर्यक्कण्ठः, विलोलश्चासौ मौलिश्च, विलोलमौलिना तरलावुत्तंसौ कर्णभूषणे यस्य स तथा, तिर्यक्कण्ठश्चासौ विलोलमौलितरलोत्तंसश्च स तस्य। अत्र 'मौलि'शब्दस्य शिरःकिरीटयोः समानवाचकत्वेऽपि वेणुवादकस्य शिरःकम्पितादिदोषपरिजिहीर्षया किरीटे पर्यवसानम्। शीर्ष्णि अकम्पिते किरीटकम्पनं वैचित्र्यायेति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। रूपकमलङ्कारः॥ १६॥

रागो गौडाकृतिर्यत्र प्रतिमण्ठपुरस्कृतः।
आभोगान्ते तथा पाटस्वरैः पद्मगणाञ्चितः॥
शृङ्गाररससम्पूर्णकृष्णकेलिविराजितः।
मुग्धमधुसूदनाख्यो हंसक्रीडननामतः॥
श्रीगोविन्दपदारविन्दमकरन्दास्वादचञ्चद्द्विरे-
फेण श्रीनृपसिंहमोकलकुलाम्भोजप्रकाशेन्दुना।
श्रीमत्कुम्भनृपेण क्लृप्तविवृतौ श्रीगीतगोविन्दके
सङ्गीतक्रमदीपिकास्वसुरयं सर्गस्तृतीयो गतः॥

इति मुग्धमधुसूदनहंसक्रीडननामा सप्तमः प्रबन्धः॥ ७॥

इति श्रीगुर्जरधरित्रीपरिवृढपराजयप्रसरत्प्रतापशोषिताशेषयवनपल्वलेन
राजाधिराजश्रीकुम्भकर्णेन विरचिते गीतगोविन्दविवरणे
मुग्धमधुसूदनो नाम तृतीयः सर्गः॥ ३॥

भावप्रकाशिका—यह गीतगोविन्द काव्य के तीसरे सर्ग का अन्तिम श्लोक है। इस श्लोक में जयदेव कवि पाठकों तथा श्रोताओं को आशीष प्रदान करते हुए कह रहे हैं कि श्रीभगवान् के कटाक्षपात की वे ऊर्मियाँ जो स्नेहातिशय्य के कारण श्रीराधाजी के मनोहर तथा अमृतमय मुखचन्द्र पर स्थिर हो गयीं, वे आप सबों का कल्याण करें। श्रीराधाजी के मुखड़े के मनोज्ञत्वातिशय्य को बतलाने के कारण उसे संमुग्ध

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्द से विशेषित बतलाया गया है। मधुर पद के द्वारा श्रीराधाजी के मुखमण्डल को अमृतादि से भी अधिक मधुर बतलाया गया है। अथवा 'सम्मुग्धे' तथा 'मधुरे' इन दोनों पदों के द्वारा श्रीराधाजी के मुखमण्डल के मोहकत्वातिशय्य तथा माधुर्यातिशय को बतलाया गया है, जिसके कारण श्रीभगवान् भी उनके मुखमण्डल को बड़े ही चाव से देखते हैं। 'सुधासारे' इस विशेषण के द्वारा श्रीराधाजी के मुख को अमृतमय बतलाया गया है। जिस प्रकार चन्द्रमा आह्लादक होता है उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण को आह्लादित करने के कारण उसमें चन्द्र का अध्यारोप किया गया है।

यद्यपि श्रीभगवान् श्रीराधाजी के मुखमण्डल को एकटक देख रहे थे, किन्तु गोपियाँ श्रीभगवान् की इस क्रिया को नहीं देख सकीं। क्योंकि उस समय श्रीभगवान् अपनी बाँसुरी के दीप्तस्थान से सूर बजा रहे थे और सभी गोपियाँ, जो श्रीभगवान् को आवृत किये हुई थी, उन सबों का ध्यान श्रीभगवान् के उसी बाँसुरी के तान पर लगा था। वे उसके ही श्रवणजन्य आनन्द में मग्न थीं।

उस समय श्रीभगवान् की मुखमुद्रा का वर्णन करते हुए श्रीजयदेव कवि कहते हैं—'तिर्यक्कण्ठविलोलमौलितरलोत्तंसस्य' अर्थात् उस समय श्रीभगवान् अपनी ग्रीवा को तिरछा किये हुए थे। उनके मुकुट तथा कर्णाभरण चञ्चल हो रहें थे। यद्यपि मौलि शब्द मुकुट तथा शिर दोनों का वाचक है, किन्तु मुरली बजाते समय शिर का न हिलना ही मुरलीवादक की दक्षता मानी जाती है। शिर का हिलना मुरलीवादक का दोष है। श्रीभगवान् मुरलीवादन की क्रिया में परम निपुण थे, अतएव उनका शिर तो नहीं हिल रहा था, किन्तु उनके मुकुट और कर्णाभरण चञ्चल हो गये थे।

शार्दूलविक्रीडित वृत्त तथा रूपकालङ्कार—ये दोनों इस श्लोक की विशेषताएँ हैं।

इस प्रकार श्रीशिवप्रसाद द्विवेदी कृत गीतगोविन्द काव्य के मुग्धमधुसूदन नामक तृतीय सर्ग की भावप्रकाशिका व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्थः सर्गः

(स्निग्धमधुसूदनः)

(इस गीतगोविन्द नामक काव्य के बारह सर्ग हैं और प्रत्येक सर्गों का श्रीजयदेव कवि ने अलग-अलग नाम रखा है। ये सभी नाम अन्वर्थसंज्ञक हैं। प्रथम सर्ग में श्रीराधा और कृष्ण दोनों संप्रयुक्त हैं। दोनों की परस्पर रत्यभिलाष परिपूर्ण हैं। श्रीराधा के साथ रात्रि की वेला में रमण करते हुए श्रीभगवान् में प्रमोद का अपार-पारावार उद्वेलित हो रहा है, अतएव इस सर्ग का नाम सामोददामोदर है। द्वितीय सर्ग का नाम अक्लेशकेशव है, क्योंकि इस सर्ग में श्रीभगवान् व्रजयुवतियों के साथ विहार करते हैं। तीसरे सर्ग का नाम मुग्धमधुसूदन है। इस सर्ग में श्रीराधा का विप्रयोग अनुभव करते हुए श्रीभगवान् यमुना के तटीय कुञ्जों में श्रीराधा का अन्वेषण करके भी उन्हें न पाकर उदास हो जाते हैं और अनेक प्रकार से कष्ट का अनुभव कर रहे हैं। इस चतुर्थ सर्ग में श्रीराधाजी की सखी श्रीभगवान् से मिलकर उनकी सन्निधि में श्रीराधा के विरह का वर्णन करती हुई कहती है कि श्रीभगवान् से विप्रयुक्त होकर श्रीराधा विरहाग्नि की ज्वाला से सन्तप्त हैं, अतएव श्रीभगवान् को उन पर कृपा करना चाहिए।)

यमुनातीरवानीरनिकुञ्जे मन्दमास्थितम् ।
प्राह प्रेमभरोद्भ्रान्तं माधवं राधिकासखी ॥ १ ॥

अनुवाद—यमुना के तट पर वेतसी निकुञ्ज में स्नेहोद्रेक के कारण उद्विग्नचित्त तथा निरुत्साह बैठे हुए श्रीभगवान् से श्रीराधाजी की सखी ने कहा ॥ १ ॥

मधुमथनं हृदि कृत्वा परं जयदेवीये मातौ वरम् ।
तनुते धातुं श्रुतिसुखकरं कुम्भो नृपशतवन्द्यश्रिरम् ॥

इदानीं तयोः पृथक्कामावस्थां निरूप्य संयोजयितुमिच्छुर्दूतीयोगं निरूपयति—यमुनातीरवानीरेति। राधिकासखी माधवं प्राह—किं विशिष्टं माधवम् ? प्रेमभरेण स्नेहोद्रेकेणोद्भ्रान्तमुद्विग्नचित्तम्। पुनः किम्भूतम् ? यमुनातीरस्थे वानीरनिकुञ्जे वेतसनिकुञ्जे मन्दं निरुत्साहं यथा स्यात्तथा आस्थितमासीनम्। अथवा, अमन्दमिति वचनविशेषणम्। अतिशयव्याकुलां राधां दृष्ट्वा अमन्दं सवेगमाह। पथ्यावक्त्रं छन्दः—'युजोर्जेन स' इति। पूर्वोक्तमेव स्पष्टयति—अत्र गीते विरहोत्कण्ठिता नायिका वर्णनीया 'नायिका लक्षणैर्युक्ता गीतकाव्येषु दर्शिता। एकैव नायिका वापि हरमूर्तिरिवाष्टधा। वासकसज्जा समुत्कण्ठा स्वाधीनभर्तृका तथा। कलहान्तरिता वापि विप्रलब्धाभिसारिका। खण्डिता प्रोषिता चैव नायिकाश्चाष्ट सम्मताः।' तत्र समुत्कण्ठितालक्षणमुक्तं भरतेन—'यस्याः समुचितेऽप्यह्नि प्रवासी नैति वल्लभः। सा स्मरानलसन्तप्ता विरहोत्कण्ठिता मता' ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावप्रकाशिका—तृतीय सर्ग में श्रीराधाजी ने अपनी सखी से कहा कि सखि ! मुझे श्रीकृष्ण भगवान् से मिलाओ। अतएव वह सखी श्रीकृष्ण भगवान् के सन्निकट आयी। उस समय श्रीभगवान् का चित्त श्रीराधा के प्रति स्नेह से उद्रिक्त हो जाने के कारण उद्विग्न हो गया था। इसीलिए श्रीराधा का अन्वेषण करने के बाद भी जब वे उन्हें नहीं पाये तो यमुना के तट में विद्यमान वेतसी-निकुञ्ज में उदास होकर बैठ गये थे। इस प्रकार श्रीभगवान् माधव को देखकर श्रीराधाजी की सखी ने कहा ।। १ ।।

कर्णाटरागैकतालीतालाभ्यां गीयते ।। प्रबन्धः ।। ८ ।।

अनुवाद—यह आठवाँ प्रबन्ध कर्णाटराग तथा एकताली ताल से गाया जाता है।

निन्दति चन्दनमिन्दुकिरणमनु विन्दति खेदमधीरम्।
व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम्।
माधव ! मनसिजविशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना।
सा विरहे तव दीना ।। ध्रुवपदम् ।। २ ।।

अनुवाद—हे माधव ! वह राधा आप से वियुक्त होकर चन्दन की निन्दा करती है, चन्द्रकिरणों को देखकर अत्यधिक कष्ट का अनुभव करती है, सर्पों की फुत्कार वायुमिश्रित होने से मलयानिल को विष के समान समझती है तथा कामदेव के बाणों से भयभीत-सी वह आपका ध्यान करती हुई-सी आप में ही लीन हो गयी है। इस प्रकार वह अत्यन्त दुःखी है ।। २ ।।

निन्दतीति। पूर्वं ध्रुवपदं व्याक्रियते—सा विरहे इति। हे माधव ! सा राधा भावनया त्वयि लीना त्वद्ध्यानेन त्वन्मयत्वं प्राप्ता इति बुद्ध्या त्वयि लीनेति। त्वामन्तरा स्थिता। उत्प्रेक्षते—कामशरभीत्येव। यथा त्वामन्तरा स्थितायां ते कामशरास्त्वय्येव पतन्ति, न तस्यामिति बुद्ध्येति भावः। किं विशिष्टा सा ? तव विरहे सति दीना दैन्यमाप्ता। इति ध्रुवः ।। अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः। किं किं करोति तत्कर्माह—चन्दनं निन्दति चन्दनस्य निन्दां करोति। स्मराह्लावकत्वाद्विपक्षपक्षमाश्रितमिवाभातीति। तत एव इन्दुकिरणमनु खेदं विन्दति लभते। कथम् ? अधीरं यथा भवति तथा। अधीरमिति चन्दनविशेषणं वा। अधिकम् ईरयति प्रेरयति कामशरानिति निन्दार्थः। अपि च—मलयानां व्यालनिवासानां समीरं गरलमिव कलयति। केन हेतुना ? व्यालनिलयमिलनेन व्यालनिलयानां व्यालनिवासानां चन्दनानां मिलनेन सङ्गात्। अत्र रूपकोत्प्रेक्षाविरोधालङ्काराः ।। २ ।।

भावप्रकाशिका—इस प्रबन्ध में श्रीराधाजी की सखी भगवान् श्रीकृष्ण के सन्निकट आकर उनसे श्रीराधा की विरहवेदना सुनाती है। वह कहती है कि भगवन् ! मेरी सखी राधा आपके विरह में अत्यन्त दुःखी है। सम्प्रति वह काम के बाणों से अत्यन्त भयभीत है। जिस प्रकार किसी के बाणों से भयभीत प्राणी अपनी रक्षा के लिए दूसरे के शरण में चला जाता है, उसी प्रकार श्रीराधा भी इस समय केवल आपका ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्यान कर रही है और वह आपके भीतर लीन-सी हो गयी है। 'मनसिजविशिख-भयादिव' पद में उत्प्रेक्षाऽलङ्कार है। श्रीराधा की विरहव्यथा से दुःखी श्रीराधा की चेष्टाओं का वर्णन करती हुई सखी कहती है कि वह चन्दन की निन्दा करती है। अर्थात् चन्दन उनके लिए सुखद नहीं अपितु दुःखद प्रतीत होता है, क्योंकि चन्दन तो कामाग्नि को बढ़ाता ही है। अतएव चन्द्रमा की चन्द्रिका को देखकर वह बहुत अधिक कष्ट का अनुभव करती है, क्योंकि चन्द्रिका भी कामाग्नि को उद्दीपित करने का ही काम करती है। मलयाचल के चन्दन की सुगन्धि लिये हुए आती हुई शीतल वायु को वह विष के समान समझती है। मलय पर्वत के चन्दनवृक्षों में लिपटे हुए विषैले सर्पों की फुत्कार वायु से उसे लगता है कि मलय समीर भी उन सर्पों के विष से मिश्रित हो गयी है।

इस पद्य में रूपक, उत्प्रेक्षा तथा विरोधालङ्कारों की संसृष्टि है ॥ २ ॥

अविरलनिपतितमदनशरादिव भवदवनाय विशालम् ।
स्वहृदयमर्मणि वर्म करोति सजलनलिनीदलजालम् ॥ सा वि० ३ ॥

अनुवाद—वह राधा सर्वदा गिरते हुए कामबाणों से मानो आपकी रक्षा करने हेतु बड़े-बड़े जलयुक्त कमलपत्र-समूह को अपने हृदय के मर्मस्थल का कवच बना रही है ॥ ३ ॥

ध्यानादेकतामापन्नत्वं प्रकटयति—अविरलेति । सा सजलनलिनीदलजालं स्वहृदयमर्मणि वर्म करोति । किम्भूतं तत् ? विशालम् । उत्प्रेक्षते—अविरलनिपतितमदनशराद्भवदवनायेव । अविरलं निपतितं निपातो येषां ते च ते मदनशराश्च । जातावेकबद्भावादेकवचनम् । त्वय्यासक्ततया 'त्वयि मृतेऽहमेव मृता' इति हृदयमर्मत्वं त्वय्येव विधाय भवदवनायेति युक्तम् । स्वहृदयमर्मणि भवदवनाय भवद्रक्षणाय सजलनलिनीदलजालं पिधानमिव करोति हृदयान्मा निरगाबिति बुद्ध्येति युक्तिलेशः । उत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—विरहवेदना से व्यथित श्रीराधा आपकी एकात्मता को प्राप्त हो गयी—इसी अर्थ का समर्थन करती हुई सखी कहती है कि आप उसके हृदय के भीतर विद्यमान हैं, क्योंकि वह सर्वदा आपका ध्यान कर रही है। कामदेव अपने बाणों को निरन्तर छोड़ रहा है। वे बाण उसके हृदय में विद्यमान आपको कहीं कष्ट न पहुँचायें इसीलिए वह अपने हृदय के मर्मस्थल को जलमिश्रित बड़े-बड़े कमलदल-समूह से आच्छादित कर रही है। इन जलमिश्रित कमलदल-समूह को ही वह कवच समझती है और आपको ही अपने हृदय का मर्मस्थल। उस मर्मस्थल रूपी आपकी रक्षा के लिए इन सारे उपायों को कर रही है। अथवा नलिनीदलजाल को अपने हृदय पर वह इसलिए बिछा रही है कि उसके हृदय में विद्यमान आप उसके हृदय से कहीं निकल न जायें ॥ ३ ॥

कुसुमविशिखशरतल्पमनल्पविलासकलाकमनीयम् ।
व्रतमिव तव परिरम्भसुखाय करोति कुसुमशयनीयम् ॥ सा वि० ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद--वह आपके आलिङ्गनजन्य सुख की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार की विलासकलाओं में अभिलषित काम के बाणों की शय्याव्रत के समान वह पुष्पों की शय्या बनाती रहती है ।। ४ ।।

कुसुमेति । सा कुसुमशयनीयं कुसुमशय्यां करोति । किम्भूतं कुसुमशयनीयम् ? अनल्पविलासकलाकमनीयं बहुतरविलासरमणीयम् । किमिव ? कुसुमविशिखशरतल्पं व्रतमिव । किमर्थम् ? तव परिरम्भसुखाय । अन्योऽपि सुखैषी व्रतमाचरति । दुर्लभभवदाश्लेषावाप्त्यै स्मरेण दूयमाना सा दुष्करं तस्यैव शरशय्याव्रतमाचरतीत्यर्थः । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका---इस पद्य में सखी श्रीभगवान् से कह रही हैं कि आपके वियोग में दु:खी श्रीराधाजी अनेक प्रकार के विलासों में अभिलषित कामदेव के बाणों की शय्या के समान पुष्प की शय्या बना रही हैं। जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी बड़े सुख की प्राप्ति के लिए कोई व्रत करता है, उसी प्रकार श्रीराधाजी भी कामबाणों की शय्या की रचना कर रही हैं। श्रीराधाजी के इस शरशय्याव्रत का उद्देश्य क्या है ? तो इसके उत्तर में सखी कहती है—'तव परिरम्भसुखाय' अर्थात् आपके आलिङ्गनजन्य सुख को वह प्राप्त कर सके, इसीलिए वे ऐसा व्रत कर रही है। इस पद्य में उत्प्रेक्षाऽलङ्कार है ।। ४ ।।

वहति च चलितविलोचनजलभरमाननकमलमुदारम् ।
विधुमिव विकटविधुन्तुददन्तदलनगलितामृतधारम् ।। सा वि० ५ ।।

अनुवाद—वह श्रीराधा भयंकर राहु के दाँतों से काटे जाने के कारण बहती हुई अमृतधारा से युक्त चन्द्रमा के समान अश्रुबिन्दुओं से परिपूर्ण चञ्चल नेत्रों वाले मनोज्ञ मुखकमल को धारण करती है ॥ ५ ॥

वहतीति । सा आननकमलं वहति । किम्भूतम् ? चलितविलोचनजलभरम् । चलितः सम्भक्तः विलोचनेन जलभरो यत्र । वा चलिते सम्भक्ते विलोचने जलभरेण यत्र । अथवा—चलितविलोचन एव जलधरो मेघो यत्रेति पाठः । किं विशिष्टम् आननकमलम् ? उदारं मनोहरम् । कमिव ? विधुमिव । किम्भूतं विधुम् ? विकटा विकराला विधुन्तुददन्तास्तैर्दलनेन पीडनेन गलितामृतधारा यस्मिन् । अनेन भवद्विरहेणानवरतं रुदत्या मुखमिन्दुकान्ति बिभर्तीत्याशयः, असितवर्णमभूदित्यर्थः । अत्रोपमालङ्कारः ।। ५ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में सखी श्रीभगवान् के समक्ष बतला रही है कि श्रीराधा का मुख कमल के समान तथा मनोज्ञ है। आपके वियोग में दु:खी श्रीराधा के चञ्चल तथा विस्तृत नेत्र से आँसू बह रहे हैं। इस प्रकार का श्रीराधा का मुख ऐसा लगता है कि जैसे भयङ्कर राहु ने अपने दाँतों से चन्द्रमा को काट लिया हो और उससे अमृत की धारा बह रही हो। इस तरह श्रीराधा का मुख चन्द्रमा के समान और आँखों से बहती अश्रुधारा अमृत की धारा के समान है। इस पद्य में उपमालङ्कार है ।। ५ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विलिखति रहसि कुरङ्गमदेन भवन्तमसमशरभूतम् ।
प्रणमति मकरमधो विनिधाय करे च शरं नवचूतम् ।। सा वि० ६ ।।

अनुवाद--वह एकान्त में कस्तूरी से हाथ में आम्रमञ्जरी रूपी बाण धारण किये हुए कामदेवस्वरूप आपका चित्र बनाती है तथा वाहन स्थान में घड़ियाल को बनाकर प्रणाम करती है ।। ६ ।।

अपि च—विलिखतीति । हे कृष्ण ! सा मत्सखी रहसि एकान्ते कुरङ्गमदेन भवन्तं विलिखति । किम्भूतं भवन्तम् ? असमशरभूतं कुसुमशरतामापन्नम् । त्वामेव दुर्लभत्वात् वाहकत्वेन कुसुमशरोऽयमिति बुद्धया । किम् कृत्वा विलिखति ? करे नवचूतशरं विनिधाय । अत्र चूतपुष्पधारणेन पूजोपयुक्ता । अनन्तरं प्रणाम उचित एव । पीडाकरे कामे स्वरक्षार्थमर्चनप्रणामयोरपि युक्तत्वमेव । अयं च विरहिणीव्यापार उक्तः । तदुक्तं भरतेन—'देवतापूजनं कुर्याद्दद्याद्बलिभुजे बलिम् । लिखेत्कान्तप्रतिकृतिं पाठयेच्छुकसारिकाः ।। गणयेच्चावधिदिनं गीतं गायेत्तदङ्कितम् । एवंविधविनोदेन नयेत्कालं वियोगिनी' ।। च पुनः अधः वाहनदेशे मकरं विनिधाय एवं साङ्गोपाङ्गकामरूपं भवन्तं विनिधाय मा दहेति प्रणमति । अत्र लिखित्वा प्रणमतीति वक्तव्ये विरहिणो हि कृत्याकृत्यज्ञा न भवन्तीति पौनःपुन्येन यत्र तत्र गच्छन्तीति द्योतनार्थम् । अत्रोपमालङ्कारः ।। ६ ।।

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी कहती है कि श्रीराधा एकान्त में बैठकर आपका चित्र कस्तूरी से बनाती है । क्योंकि आपको ही उसने कामदेवस्वरूप मान लिया है । आप ही उसकी कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं । उसने नवीन आम्रमञ्जरी रूपी कामवाण को आपके हाथों में पकड़ा रखा है और आपके वाहन के स्थान पर वह घड़ियाल का चित्र बनाती है । क्योंकि कामदेव को भी मकरवाहन कहा जाता है । इस प्रकार आपका चित्र वनाकर काम की पीड़ाओं से मुक्ति प्राप्त करने के लिए कामदेवस्वरूप आपको वह प्रणाम करती है । इस श्लोक में उपमालङ्कार है ।। ६ ।।

ध्यानलयेन पुरः परिकल्प्य भवन्तमतीव दुरापम् ।
विलपति हसति विषीदति रोदिति चञ्चति मुञ्चति तापम् ।। सा वि० ७।।

अनुवाद—श्रीराधा ध्यान में लीन होकर अत्यन्त दुष्प्राप्य आपकी अपने सामने विद्यमान रूप से परिकल्पना करके विलाप करती है, हँसती है, विषाद करती है, रोती है, एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाती है और अपने संताप का परित्याग करती है ।। ७ ।।

अपि च—ध्यानलयेनेति । हे कृष्ण ! सा मत्सखी भवन्तं विलिखति । किं विशिष्टं भवन्तम् ? अतीव दुरापं दूतीप्रेषणादिना दुरापं दुर्लभम् । किं कृत्वा विलिखति ? ध्यानलयेन ध्यानैकाग्रतया पुरोऽग्रे परिकल्प्य । लिखित्वा च दृष्टो मयेति हसति । आश्लेषादिकं न करोतीति विषीदति । तन्न कुरुतां नाम; प्रेम्णा दृष्टिमपि न प्रयच्छतीति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रोदिति। दृष्टायामपि नास्य सन्तोष इति चञ्चति स्थानात्स्थानान्तरं गच्छति। पुनरागत्य दृष्टश्चेत्स वश्यो भविष्यतीत्याशयेन तापं मुञ्चति इति। अत्र दीपकमलङ्कारः ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीराधाजी की सखी श्रीभगवान् से कहती है कि हे भगवन्! चूँकि आप दूतीप्रेषण आदि के द्वारा मेरी सखी श्रीराधा के लिए इस समय दुष्प्राप्य हो गये हैं, अतएव वह ध्यान में एकाग्र होकर आपका चित्र बनाती है। वह अपने मन में परिकल्पना कर लेती है कि श्रीकृष्ण हमारे समक्ष हैं और फिर आपका चित्र बनाती है। चित्रलिखित आपको देखकर मान लेती है कि मैंने श्रीकृष्ण को देख लिया, इसलिए हँसने लग जाती है। उसके मन में प्रसन्नता की एक लहर दौड़ जाती है। फिर उसके मन में होता है कि यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण मेरे समक्ष हैं, फिर भी वे मेरा आलिङ्गन इत्यादि नहीं कर रहे हैं, यह बड़े दुःख की बात है; यह सोचकर विषाद करने लग जाती है। उसके मन में चित्रलिखित आपको देखकर होता है कि भगवान् मेरा आलिङ्गन नहीं कर रहे हैं, ठीक है, किन्तु वे तो मेरी ओर देख भी नहीं रहे हैं। यह सोचकर वह रोने लग जाती है। मुझको देखकर भी श्रीभगवान् को कोई संतोष नहीं हो रहा है, इसलिए वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर चली जाती है। पुनः वह लौटकर उसी स्थान पर आती है और सोचती है कि यदि भगवान् मुझको देखेंगे तो वे मेरे वशवर्ती हो जायेंगे। यह सोचकर अपने मनस्ताप का परित्याग करती हैं।

इस पद्य में एक ही श्रीराधा को अनेक क्रियाओं की कर्त्रीरूप से वर्णित किया गया है, अतएव यहाँ पर दीपकालङ्कार है। 'सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम्'। यह दीपकालंकार का लक्षण है। अर्थात् जहाँ अनेक क्रिया में कारक की सकृद्वृत्ति होती है, तो वहाँ पर दीपकालङ्कार होता है।

रसिकप्रिया के अनुसार मूल पद्य का पहला पद 'विलपति' न होकर 'विलिखति' होना चाहिए। रसमञ्जरीकार के अनुसार यहाँ पर श्रीराधा नायिका के किलकिञ्चित् नामक भाव का वर्णन किया गया है। यह भी उन्माद की एक अवस्था-विशेष है ॥ ७ ॥

प्रतिपदमिदमपि निगदति माधव! तव चरणे पतिताहम्।
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनुदाहम् ॥ सा वि० ॥८॥

अनुवाद—हे माधव! प्रत्येक कदम पर वह यह भी कहती है कि मैं आपके चरणों पर पड़ती हूँ। आप ज्यों ही मुझसे विमुख हो जाते हैं? त्यों ही सुधाकर भी मेरे शरीर को संतप्त करने लगता है ॥ ८ ॥

प्रतिपदमिति। हे माधव! सा मत्सखी प्रतिपदं प्रतिचरणन्यासं प्रतिस्थानं वा इदमेव निगदति। अत्रापिरेवार्थे। इदमिति किम्? अहं तव चरणे निपतिता। सपदि मयि विषये त्वयि विमुखे सति सुधानिधिरपि सुधानिधानमपि तनुदाहं शरीरदाहं तनुते। अथवा, सुधानिधिश्चन्द्रोऽप्यतनुदाहं स्मरतापं तनोति। अतनु यथा स्यादिति च। अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावप्रकाशिका—श्रीराधाजी की सखी श्रीभगवान् से कहती है कि मेरी सखी श्रीराधा जहाँ कही भी जाती है वहीं प्रत्येक पग-पग पर कहती रहती है कि हे भगवन् ! मैं आपके चरणों पर पड़ती हूँ। आप मुझसे नाराज न होइये। जब कभी भी आप मुझसे नाराज हो जाते हैं उसी समय अमृत का खजाना और चन्द्रमा भी मेरे शरीर को सन्तप्त करने लगते हैं।

'माधव' इस संबुद्धि पद की अभिव्यञ्जना को स्पष्ट करते हुए रसमञ्जरीकार कहते हैं कि श्रीराधा कहती हैं कि आप 'मा' शब्द से कहे जाने वाले लक्ष्मी के धन अर्थात् पति हैं। आप जब मेरे सन्निकट रहते हैं तब तो मेरी सपत्नी लक्ष्मी भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ पाती हैं, किन्तु जब आप मुझसे पराङ्मुख होते हैं, उस समय लक्ष्मी का भाई चन्द्रमा मुझे अपनी बहन की सौत समझकर अत्यन्त सन्तप्त करता है।

रसिकप्रियाकार के अनुसार इस श्लोक में अतिशयोक्ति नामक अलङ्कार है, किन्तु रसमञ्जरीकार का कहना है कि सुधानिधि चन्द्रमा का कार्य शीतल करना है। वह अपने स्वभाव के विरुद्ध कार्य कर रहा है, अतएव यहाँ पर विरुद्ध नामक अलङ्कार है ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवभणितमिदमधिकं यदि मनसा नटनीयम् ।
हरिविरहाकुलबल्लवयुवतिसखीवचनं पठनीयम् ॥ सा वि० ॥ ९ ॥

अनुवाद—हे वैष्णवो ! जयदेव कवि प्रोक्त यह श्रीहरि के विरह में व्याकुल गोपी श्रीराधा की वाणी पठनीय तथा आस्वादनीय है ॥ ९ ॥

श्रीजयदेवेति। हे वैष्णवाः ! इदं श्रीजयदेवभणितं यदि मनसाधिकं नटनीयमभिनेतव्यम्। 'नट'शब्देनात्र नाट्यस्याभिनयप्राधान्यादभिनयो विवक्षितः। अथवा—नटनीयमित्यास्वादनीयम्, रसनीयमिति यावत्। 'नाट्यशब्दो रसे मुख्यः' इति भरतीये। किम्भूतमिदम् ? सखीमधिकृत्य वर्तमानम्। तर्हि हरिविरहाकुलबल्लवयुवत्या राधायाः सख्याः वचनं पठनीयम्। जयदेवभणितिष्विदमेव सारमित्यर्थः ॥ ९ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में गीतगोविन्दकार श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि हे वैष्णवो ! जयदेव कवि की यह उक्ति है। श्रीराधाजी श्रीभगवान् के विरह में व्याकुल युवति हैं। उनकी सखी ने श्रीभगवान् के सन्निकट जाकर उनके प्रति अपनी सखी के प्रणय का निवेदन करते हुए यह कहा है। श्रीराधाजी की सखी की यह उक्ति मन से अभिनेतव्य है। नाट्य के अभिनय-प्रधान होने के कारण यहाँ पर नट शब्द से अभिनय विवक्षित है। नटनीय का अर्थ रसनीय अथवा आस्वादनीय भी है। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में कहा भी गया है—'नटशब्दो रसे मुख्यः'। अर्थात् नट शब्द का मुख्यार्थ रस है। 'श्रीजयदेवभणितमिदमधिकम्' इस वाक्यांश का अभिप्राय यह है कि श्रीजयदेव कवि की सम्पूर्ण उक्तियों में श्रीराधाजी की सखी की जो उक्ति है, वही सार है। अतएव इसका आस्वादन श्रीवैष्णवों को अवश्य करना चाहिए ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आवासो विपिनायते प्रियसखीमालापि जालायते
तापोऽपि श्वसितेन दावदहनज्वालाकलापायते ।
सापि त्वद्विरहेण हन्त हरिणीरूपायते हा कथं
कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयञ्शार्दूलविक्रीडितम् ॥ १० ॥

अनुवाद—मेरी सखी श्रीराधा के लिए उसका आवास वन का काम करता है। प्रियसखियों का समूह हरिणी का काम करता है। श्वास के साथ मिलकर शरीर का संताप भी दावाग्नि-समूह का काम करता है। कामदेव भी शार्दूलविक्रीडित करता हुआ उसके लिए यम का काम करता है। इस प्रकार मेरी सखी राधा आपके वियोग के कारण हरिणी के समान आचरण करती है॥ १० ॥

'प्रतिमण्ठकतालेनरागे देशाङ्कसंज्ञिते । पदास्तुर्याक्षरैर्युक्तः पदात्सङ्क्रमतस्तथा ॥ आकारोपचितालापगमकाकुलविग्रहः । आभोगात्तेनकैः पाटैः प्रचुरैरतिपेशलः ॥ हरिवल्लभपूर्वोऽयमशोकपल्लवः स्मृतः' ॥ इति हरिवल्लभाशोकपल्लवनामाष्टमः प्रबन्धः ॥ ८ ॥

किं बहुना, इदानीं मत्सख्यास्त्वद्वृते त्वयि विपरीते सर्वमेव विपरीतमित्याह—आवास इति । 'हन्त' इति खेदे । हे माधव ! सा मत्सखी त्वद्विरहेण हरिणीरूपायते मृगीरूपमिवाचरति । स्वभावतो विरहेण पाण्डुवर्णो भवत्येवेति तथाविधं रूपमधिकृत्य हरिणीरूपेणोपमीयत इत्युक्तम् । कथमिति प्रश्ने हरिणीविशेषणेनाह—आवासो विपिनायते । हरिण्यः किल वने वसन्ति, तस्या मे सख्या आवासो विपिनायते । अत्र 'आवास'शब्देन निलय उच्यते । प्रियसखीनां माला श्रेणिः जालायते; इतस्ततो गमनाय तद्रोधकत्वात् । अथवा—प्रियसखीदत्ता मालापि जालायते । हरिणीबन्धनार्थं जालं क्षिप्यते तद्वदाचरति । अपि च—तापोऽपि देहतापोऽपि श्वसितेन निःश्वसितेन दावाग्निज्वालावलीवाचरति । एवं तस्या हरिणीत्वं निरूप्य खेदमभिनयन्त्याह—'हा' इति कष्टे । सा मत्सखी कथं वर्तते ? यतः कामोऽपि शार्दूलविक्रीडितं विरचयन् यमायते यम इवाचरति । शार्दूलः किल हरिणीं हन्तीत्युक्तिः । अत्र च हरिणीवन्मत्सख्यास्त्वयि दृढानुरागोऽस्ति । निःस्नेहे स्नेहवत्तया पशुरूपत्वेन हरिणीरूपमौचितीमावहति । निःस्नेहेऽस्नेहवति सैवेत्यवधारणार्थः । वृत्तमपि शार्दूलविक्रीडितम् । अत्र लुप्तोपमा । विरोधाभासश्चालङ्कारः ॥ १० ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीराधाजी की सखी श्रीभगवान् के समक्ष श्रीराधा के दैन्य का निवेदन करती हुई कहती है कि हे भगवन् ! मेरी प्रियसखी श्रीराधा आपके विप्रयोग के कारण हरिणी के समान आचरण करती है। हरिणी वन में निवास करती है, श्रीराधा के लिए तो उनका भवन ही एक वन का कार्य कर रहा है। हरिणी यद्यपि चाहती है—इधर-उधर जाना, किन्तु सामने बिछा हुआ बहेलिए का जाल उसे कहीं भी नहीं जाने के लिए विवश कर देता है। उसी प्रकार श्रीराधा जब अपनी विरहव्यथा से घबराकर कहीं जाना चाहती हैं, उस समय उनकी प्रियसखियों का समूह उन्हें कहीं नहीं जाने देता है। प्रिय सखियाँ ही उनके लिए बहेलिए के जाल के समान बन्धनकारक बन रहा है। जिस प्रकार वन में लगी हुई अग्नि को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखकर हरिणी घबराकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती है, उसी प्रकार मेरी देह के संताप के साथ मिलकर दीर्घ निःश्वास दावाग्नि के समान मेरी सखी को संतप्त कर रहा है। जो कामदेव आपकी सन्निधि में मेरी प्रिय सखी के लिए अनुकूल बना रहता है, वहीं आपके दूर रहने पर इस समय शार्दूलविक्रीडित कर रहा है। जिस प्रकार हरिणी को सिंह मार डालता है, उसी प्रकार कामदेव भी मेरी प्रिय सखी को मानों मार डालना चाहता है। वह उसके लिए यमराज बन गया है।

श्रीराधाजी को हरिणी की उपमा देकर सखी यह कहना चाहती है कि कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति किसी स्नेहवान् व्यक्ति के साथ प्रेम करता है। श्रीराधा ने तो आपके साथ स्नेह किया है। उसके हृदय में आपके प्रति स्नेह का सागर लहरा रहा है और आप पूर्णतः स्नेह रहित हैं। अतएव इस प्रकार का एकतरफ़ा प्रेम तो कोई पशुजाति का ही जीव कर सकता है। उसमें भी हरिणी की हालत और विचित्र होती है। वह शरीर से दुर्बल और किंकर्तव्यविमूढ़ होती है। श्रीराधा भी निरीह हैं। उन्हें एक ओर तो आपका स्नेह सता रहा है तो दूसरी ओर काम अपना पराक्रम दिखलाता है। इस प्रकार स्नेह रहित व्यक्ति से स्नेह करने वाली तो वही बेचारी हो सकती है।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है। लुप्तोपमा तथा विरोधाभास अलङ्कारों की संसृष्टि है ॥ १० ॥

देशाखरागैकतालीतालाभ्यां गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ ९ ॥

अनुवाद—यहाँ से नवाँ प्रबन्ध प्रारम्भ होता है। यह गीत देशाखराग तथा एकताली ताल से गाया जाता है।

स्तनविनिहितमपि हारमुदारम् ।
सा मनुते कृशतनुरिव भारम् ।
राधिका तव विरहे केशव ! ॥ ध्रुवपदम् ॥ १ ॥

अनुवाद—केशव ! आप उस राधा पर अनुकम्पा करें। विरहातिशय्य के कारण शरीर के कृश हो जाने से स्तन पर रखे हुए उत्तम हार को भी भार के समान मानती है ॥ १ ॥

इदानीं राधासखी स्वसखीविरहचेष्टितं देवे विनिवेदयति—पूर्वं ध्रुवपदं व्याक्रियते। राधिकेति। हे केशव ! राधिका तव विरहे वर्तते। अनुकम्प्या राधा राधिका, तस्यां अनुकम्पां विधेहीत्यनुकम्पार्थेन द्योत्यते। इति ध्रुवः ॥ विरहे वर्तमाना राधा किं किं करोतीत्यपेक्षायां पदानामारम्भः। स्तनविनिहितमिति। हे केशव ! सा कृशतनुः स्तनविनिहितमप्युदारं मनोहरं हारं भारमिव मनुते विरहाधिक्यात्कृशतनोर्हारोऽपि भारोपमो भवति ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में भी श्रीराधाजी की सखी श्रीभगवान् की सन्निधि में अपनी सखी की विरहजनित चेष्टाओं का वर्णन करती है। वह कहती है कि हे केशव ! मेरी सखी राधा आपकी विरहव्यथा के कारण अत्यन्त क्षीण शरीर वाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो गयी है। अतएव आपको मेरी सखी के ऊपर अनुकम्पा करनी चाहिए। शारीरिक दुर्बलता के कारण वह पहने हुए अपने मनोहर हार को भी भार के समान मानती है।

केशव पद की व्यञ्जना को स्पष्ट करते हुए गीतगोविन्द के दीपिकाकार कहते हैं कि 'कम्' सुख का नाम है। उसके नियन्ता होने के कारण श्रीभगवान् को केशव कहते हैं। केश शब्द का अर्थ सभी को सुख प्रदान करने वाला है। केशव पद का 'व' शब्द युवतियों के जीवनस्वरूप अमृत का वाचक है। इस प्रकार श्रीभगवान् सबों को सुख प्रदान करने वाले तथा युवतियों के जीवनस्वरूप है, अतएव केशव कहे जाते हैं। इस प्रकार आपके साथ स्नेह करने वाली मेरी सखी दुःखी है, यह आपके लिए उचित नहीं है—इस अर्थ को सखी केशव पद के द्वारा अभिव्यक्त करना चाहती है ॥ १ ॥

सरसमसृणमपि मलयजपङ्कम् ।
पश्यति विषमिव वपुषि सशङ्कम् ॥ राधिका० ॥ २ ॥

अनुवाद—हे केशव ! आपके वियोग में राधा अपने शरीर पर विद्यमान सरस तथा कोमल चन्दन पङ्क को भी विष की शंका से देखती है ॥ २ ॥

अपि च—सरसेति। सा मत्सखी वपुषि वर्तमानं मलयजपङ्कं सशङ्कं यथा स्यात्तथा विषमिव पश्यति। किंविधम् ? सरसमसृणमपि सरसं च तन्मसृणं च सरसमसृणं द्रवरूपात्स्निग्धकोमलमपि ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—सखी कहती है कि भगवन् ! आपकी विरहव्यथा से मेरी प्रिय सखी इस तरह से व्याकुल हो गयी है कि यदि उसके शरीर पर कोमल तथा सरस चन्दनपङ्क का लेप भी किया जाता है तो उसे भी वह इस प्रकार से शङ्का की दृष्टि से देखती है, जिस तरह मानो वह विष हो। अर्थात् सम्प्रति चन्दनविलोपन से भी उसे सुख न मिलकर दुःख ही मिलता है ॥ २ ॥

श्वसितपवनमनुपमपरिणाहम् ।
मदनदहनमिव वहति सदाहम् ॥ राधिका० ॥ ३ ॥

अनुवाद—आपके विरह के कारण मेरी सखी का दीर्घ निःश्वास बहुत अधिक बढ़ गया है। वह उसको कामाग्नि के समान वहन करती है ॥ ३ ॥

अपि च—श्वसितेति। सा मत्सखी श्वसितपवनं मदनदहनमिव कामाग्निमिव वहति। किम्भूतम् ? सदाहं दाहसहितम्। विरहेणान्तस्तापो विद्यते तेन सहितम्। किम्भूतम् ? अनुपमपरिणाहम्; निःश्वासानामतिदीर्घत्वात् ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—सखी कहती है कि इस समय श्रीराधा के दीर्घ श्वासों की गति अत्यन्त बढ़ गयी है। आपके विप्रयोग के कारण उसके अन्तःकरण में संताप बढ़ गया है। अतएव उसके गर्म-गर्म श्वास इस प्रकार निकलते हैं, मानों वे कामाग्नि हों। उसके श्वासों में बहुत अधिक गर्मी है। इसीलिए आप उस पर अनुकम्पा करें ॥ ३ ॥

दिशि दिशि किरति सजलकणजालम् ।
नयननलिनमिव विगलितनालम् ॥ राधिका० ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखकर हरिणी घबराकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती है, उसी प्रकार मेरी देह के संताप के साथ मिलकर दीर्घ निःश्वास दावाग्नि के समान मेरी सखी को संतप्त कर रहा है। जो कामदेव आपकी सन्निधि में मेरी प्रिय सखी के लिए अनुकूल बना रहता है, वहीं आपके दूर रहने पर इस समय शार्दूलविक्रीडित कर रहा है। जिस प्रकार हरिणी को सिंह मार डालता है, उसी प्रकार कामदेव भी मेरी प्रिय सखी को मानों मार डालना चाहता है। वह उसके लिए यमराज बन गया है।

श्रीराधाजी को हरिणी की उपमा देकर सखी यह कहना चाहती है कि कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति किसी स्नेहवान् व्यक्ति के साथ प्रेम करता है। श्रीराधा ने तो आपके साथ स्नेह किया है। उसके हृदय में आपके प्रति स्नेह का सागर लहरा रहा है और आप पूर्णतः स्नेह रहित हैं। अतएव इस प्रकार का एकतरफ़ा प्रेम तो कोई पशुजाति का ही जीव कर सकता है। उसमें भी हरिणी की हालत और विचित्र होती है। वह शरीर से दुर्बल और किंकर्तव्यविमूढ़ होती है। श्रीराधा भी निरीह हैं। उन्हें एक ओर तो आपका स्नेह सता रहा है तो दूसरी ओर काम अपना पराक्रम दिखलाता है। इस प्रकार स्नेह रहित व्यक्ति से स्नेह करने वाली तो वही बेचारी हो सकती है।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है। लुप्तोपमा तथा विरोधाभास अलङ्कारों की संसृष्टि है ॥ १० ॥

देशाखरागैकतालीतालाभ्यां गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ ९ ॥

अनुवाद—यहाँ से नवाँ प्रबन्ध प्रारम्भ होता है। यह गीत देशाखराग तथा एकताली ताल से गाया जाता है।

स्तनविनिहितमपि हारमुदारम्।
सा मनुते कृशतनुरिव भारम्।
राधिका तव विरहे केशव ! ॥ ध्रुवपदम् ॥ १ ॥

अनुवाद—केशव ! आप उस राधा पर अनुकम्पा करें। विरहातिशय्य के कारण शरीर के कृश हो जाने से स्तन पर रखे हुए उत्तम हार को भी भार के समान मानती है ॥ १ ॥

इदानीं राधासखी स्वसखीविरहचेष्टितं देवे विनिवेदयति—पूर्वं ध्रुवपदं व्याक्रियते। राधिकेति। हे केशव ! राधिका तव विरहे वर्तते। अनुकम्प्या राधा राधिका, तस्यां अनुकम्पां विधेहीत्यनुकम्पार्थेन द्योत्यते। इति ध्रुवः ॥ विरहे वर्तमाना राधा किं किं करोतीत्यपेक्षायां पदानामारम्भः। स्तनविनिहितमिति। हे केशव ! सा कृशतनुः स्तनविनिहितमप्युदारं मनोहरं हारं भारमिव मनुते विरहाधिक्यात्कृशतनोर्हारोऽपि भारोपमो भवति ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में भी श्रीराधाजी की सखी श्रीभगवान् की सन्निधि में अपनी सखी की विरहजनित चेष्टाओं का वर्णन करती है। वह कहती है कि हे केशव ! मेरी सखी राधा आपकी विरहव्यथा के कारण अत्यन्त क्षीण शरीर वाली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो गयी है। अतएव आपको मेरी सखी के ऊपर अनुकम्पा करनी चाहिए। शारीरिक दुर्बलता के कारण वह पहने हुए अपने मनोहर हार को भी भार के समान मानती है।

केशव पद की व्यञ्जना को स्पष्ट करते हुए गीतगोविन्द के दीपिकाकार कहते हैं कि 'कम्' सुख का नाम है। उसके नियन्ता होने के कारण श्रीभगवान् को केशव कहते हैं। केश शब्द का अर्थ सभी को सुख प्रदान करने वाला है। केशव पद का 'व' शब्द युवतियों के जीवनस्वरूप अमृत का वाचक है। इस प्रकार श्रीभगवान् सबों को सुख प्रदान करने वाले तथा युवतियों के जीवनस्वरूप है, अतएव केशव कहे जाते हैं। इस प्रकार आपके साथ स्नेह करने वाली मेरी सखी दुःखी है, यह आपके लिए उचित नहीं है—इस अर्थ को सखी केशव पद के द्वारा अभिव्यक्त करना चाहती है ॥ १ ॥

सरसमसृणमपि मलयजपङ्कम् ।
पश्यति विषमिव वपुषि सशङ्कम् ॥ राधिका० ॥ २ ॥

अनुवाद—हे केशव ! आपके वियोग में राधा अपने शरीर पर विद्यमान सरस तथा कोमल चन्दन पङ्क को भी विष की शंका से देखती है ॥ २ ॥

अपि च—सरसेति। सा मत्सखी वपुषि वर्तमानं मलयजपङ्कं सशङ्कं यथा स्यात्तथा विषमिव पश्यति। किंविधम् ? सरसमसृणमपि सरसं च तन्मसृणं च सरसमसृणं द्रवरूपात्स्निग्धकोमलमपि ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—सखी कहती है कि भगवन् ! आपकी विरहव्यथा से मेरी प्रिय सखी इस तरह से व्याकुल हो गयी है कि यदि उसके शरीर पर कोमल तथा सरस चन्दनपङ्क का लेप भी किया जाता है तो उसे भी वह इस प्रकार से शङ्का की दृष्टि से देखती है, जिस तरह मानो वह विष हो। अर्थात् सम्प्रति चन्दनविलोपन से भी उसे सुख न मिलकर दुःख ही मिलता है ॥ २ ॥

श्वसितपवनमनुपमपरिणाहम् ।
मदनदहनमिव वहति सदाहम् ॥ राधिका० ॥ ३ ॥

अनुवाद—आपके विरह के कारण मेरी सखी का दीर्घ निःश्वास बहुत अधिक बढ़ गया है। वह उसको कामाग्नि के समान वहन करती है ॥ ३ ॥

अपि च—श्वसितेति। सा मत्सखी श्वसितपवनं मदनदहनमिव कामाग्निमिव वहति। किम्भूतम् ? सदाहं दाहसहितम्। विरहेणान्तस्तापो विद्यते तेन सहितम्। किम्भूतम् ? अनुपमपरिणाहम्; निःश्वासानामतिदीर्घत्वात् ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—सखी कहती है कि इस समय श्रीराधा के दीर्घ श्वासों की गति अत्यन्त बढ़ गयी है। आपके विप्रयोग के कारण उसके अन्तःकरण में संताप बढ़ गया है। अतएव उसके गर्म-गर्म श्वास इस प्रकार निकलते हैं, मानों वे कामाग्नि हों। उसके श्वासों में बहुत अधिक गर्मी है। इसीलिए आप उस पर अनुकम्पा करें ॥ ३ ॥

दिशि दिशि किरति सजलकणजालम् ।
नयननलिनमिव विगलितनालम् ॥ राधिका० ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद—वह आपके वियोग में नालरहित जलकण युक्त अपने नेत्रकमल को तत्-तत् दिशाओं में डाल रही है। अर्थात् वह चारों ओर देखती है ॥ ४ ॥

अपि च—दिशि दिशीति। सा राधा नयननलिनं दिशि दिशि किरति विक्षिपति। त्वद्दर्शनाकाङ्क्षयेति शेषः। सजलकणजालं जलकणसमूहेन सह वर्तमानम्। उत्प्रेक्षते—विगलितनालमिव विक्षिप्तं नयनं विनालेन नलिनेनोपमीयते। अथवाऽत्र उच्छूनत्वात्कज्जलरहितत्वाद्दीनत्वाच्च विनालेन कमलेनोपमीयते ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—सखी कहती है कि श्रीराधा के नेत्र नाल रहित कमल के समान हैं। अश्रुकणों से पूरित उसके नेत्र ऐसे मनोहर लगते हैं, जैसे जलकणों से युक्त नीलकमल हों। अपने उन मनोहर नेत्रों से श्रीराधा आपके दर्शन की आकांक्षा से चारों दिशाओं में देखती रहती है। शायद आप किसी दिशा से आते हुए दिखलायी पड़ जायें। यहाँ पर श्रीराधा के नेत्रों की उपमा नाल रहित कमल से दी गयी है। इस पद्य में उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलङ्कारों की संसृष्टि है ॥ ४ ॥

त्यजति न पाणितलेन कपोलम्।
बालशशिनमिव सायमलोलम् ॥ राधिका० ॥ ५ ॥

अनुवाद—आपके विरह में श्रीराधा सायंकाल में बालचन्द्र के समान अचञ्चल अपने गाल को हाथ पर रखकर चुपचाप बैठी रहती है ॥ ५ ॥

त्यजतीति। सा राधा पाणितलेन कपोलं न त्यजति; चिन्तावशात्। किम्भूतं कपोलम्? अलोलम्। क्व? सायम्। सायं हि विशेषविरहोद्रेको भवति। कमिव? बालशशिनमिव। अलोलमिति बालचन्द्रो हि पाण्डुर्निःश्रीकश्च भवति। कपोलस्य हस्तेनाच्छादितत्वाद्बालशशिनोपमा ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में भी सखी श्रीराधा की जड़तावस्था का वर्णन करती हुई कहती है कि श्रीराधा आपके विरह में किंकर्तव्यविमूढ़-सी चिन्तित रहती है। दिनभर तो वह किसी न किसी प्रकार से समय बिता लेती है, किन्तु शाम होते ही वह और अधिक चिन्तित हो जाती है कि दिन तो किसी तरह बीत गया लेकिन आने वाली रात कैसे बीतेगी? वह तो मेरे लिए एक युग के समान होगी। इसी चिन्ता से अपने कान्ति रहित शान्त मुखड़े को अपने हाथ पर रखकर चिन्तित हो जाती है। उसका क्षीणकान्ति, शान्त तथा हाथ से आधा ढँका हुआ मुखड़ा द्वितीया के चन्द्रमा के समान दिखता है। जिस प्रकार सायंकाल में चन्द्रमा निस्तेज और शान्त होता है उसी प्रकार आपके वियोग में श्रीराधा का मुखमण्डल भी निस्तेज और शान्त रहता है। इस पद्य में हस्ताच्छन्न अर्द्धदृश्यमान मुख की उपमा चन्द्रमा से दी गयी है ॥ ५ ॥

नयनविषयमपि किसलयतल्पम्।
कलयति विहितहुताशविकल्पम् ॥ राधिका० ॥ ६ ॥

अनुवाद—वह राधा सामने विद्यमान पल्लवरचित शय्या को भी अग्नि की शङ्का से देखती है ॥ ६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपि च—नयनेति। सा राधा किसलयतल्पं विहितहुताशविकल्पं कलयति हुताशमिव जानाति। किम्भूतं तल्पम्? नयनविषयमपि। अनुमितार्थे संसर्गे वा भ्रान्तिर्जायते। नयनविषयेऽपि भ्रमेर्निर्निमित्तत्वान्नयनयोस्त्वय्यारोपितत्वं द्योत्यते ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—सखी श्रीभगवान् से कहती है कि आपके वियोग में श्रीराधा उद्विग्न हो गयी है। वह सामने नवीन पल्लवों से रचित शय्या को भी देखकर डर जाती है कि कहीं यह आग न हो। यद्यपि वह उसे देखती है, फिर भी उसे उस शय्या को देखकर उसको उसमें अग्नित्व का भ्रम होता है।

यहाँ पर रसिकप्रियाकार कहते हैं कि प्रत्यक्ष के विषय में भी श्रीराधा को भ्रम हो रहा है। भ्रम तो वहाँ होता है जहाँ पर अनुमितार्थ का सम्बन्ध होता है। सामने विद्यमान विषय में भ्रम का कोई कारण नहीं है, फिर भी भ्रम होता है। इससे यह द्योतित होता है कि उसकी आँखें तो आप में लगी होती हैं।

किन्तु रसिकप्रियाकार का यह कथन युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता है। यह कोई नियम नहीं है कि अनुमितार्थ का सम्बन्ध होने पर ही भ्रम हो। भ्रम के लिए अनुमितार्थ का सम्बन्ध आवश्यक नहीं होता है, अपितु भ्रम के लिए दोष की उपस्थिति आवश्यक होती है।

जैसे चाकचिक्य दोष के कारण शुक्ति को देखकर रात का भ्रम होता है। अन्धकार रूपी दोष के कारण सामने विद्यमान रस्सी में सर्पादि का भ्रम होता है। नेत्रगत पीतदोष के कारण सामने विद्यमान उजला शंख भी पीला प्रतीत होने लगता है। तिमिरादि दोष के कारण एक ही चन्द्रमा दो दिखने लगता है, इत्यादि।

श्रीराधा में उद्विग्नता रूपी दोष तो विद्यमान है, अतएव उन्हें अग्नि के समान ताम्रवर्ण वाले नवपल्लवरचित शय्या में भी अग्नि का भ्रम होता है। इस बात को स्पष्ट करते हुए रसमञ्जरीकार की बात बड़ी अच्छी प्रतीत होती है—'अत्र किसलयेषु ताम्रत्वसन्तापकत्वादिसमानधर्मदर्शनादग्नित्वसंशयः'। अर्थात् सदृश वस्तु में ही सदृश वस्तु का संशय होता है। अग्नि ताम्रवर्ण का तथा संतापकारक होता है, किसलय भी ताम्रवर्ण का विरहियों के लिए संतापकारक होता है। अतएव किसलय की शय्या में अग्नि का संशय होता है ॥ ६ ॥

हरिरिति हरिरिति जपति सकामम्।
विरहविहितमरणेव निकामम् ॥ राधिका० ॥ ७ ॥

अनुवाद—विरह के कारण जिसका मरना निश्चित-सा हो गया है, वह श्रीराधा निरन्तर 'श्रीहरि श्रीहरि' इन नामों को आपकी प्राप्ति की कामना से जपती रहती है ॥ ७ ॥

अपि च—हरिरितीति। सा मत्सखी निकाममतिशयेन सकामं साभिलाषं यथा स्यात्तथा हरिरिति जपति त्वन्नाम गृह्णन्त्यास्ते। किम्भूता? विरहविहितमरणेव विरहेण विहितं मरणं यस्याः सा। अर्थात्त्वमेव। अन्योऽपि विहितमरणो हरिरिति हरिरिति जपत्येव ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावप्रकाशिका—सखी श्रीभगवान् से निवेदन करती है कि श्रीराधा यह समझती है कि श्रीभगवान् के वियोग में ही मेरा प्राणान्त होने वाला है। जिस प्रकार संसार से निराश तथा मुमूर्षु व्यक्ति सर्वदा श्रीभगवान् का नाम जपता रहता है, उसी प्रकार श्रीराधा भी आपकी प्राप्ति की अभिलाषा से सर्वदा श्रीहरि इस नाम को जपती रहती हैं। श्रीभगवान् प्रणतक्लेशनाशन हैं, अतएव वे श्रीहरि कहलाते हैं। इस जन्म में न सही, दूसरे जन्म में ही आप अवश्य पति के रूप में प्राप्त हों—इसी कामना से श्रीराधा आपके श्रीहरि इस नाम को निरन्तर जपती रहती हैं ।। ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमिति गीतम् ।
सुखयतु केशवपदमुपनीतम् ॥ राधिका० ॥ ८ ॥

अनुवाद—श्रीजयदेव कवि द्वारा वर्णित तथा श्रीवैष्णवों की सन्निधि में लाया गया यह गीत श्रीवैष्णवों को आनन्द प्रदान करे ॥ ८ ॥

अपि च—श्रीजयदेवेति। श्रीजयदेवभणितं वर्णितं हरेः कृष्णस्य गीतं सुखयतु। भक्तानित्यध्याहारः। किं विशिष्टं गीतम्? केशवपदमुपनीतं प्रापितम्। इदं श्रीजयदेव-भणितं हरिगीतं केशवपदं सुखयतु। केशवः पदं स्थानं यस्यासौ केशवपदः; तं केशवपदं वैष्णवं सुखयतु। किम्भूतं गीतम्? उपनीतम्; उप समीपं नीतं प्रापितमित्यर्थः। अत्र मात्राचतुष्पदी छन्दः। सर्वत्रोपमालङ्कारः ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीजयदेव कवि ने गीतगोविन्द काव्य के चतुर्थ सर्ग के नवें प्रबन्ध के रूप में श्रीहरि का यह गीत गाया है। यह गीत श्रीभगवान् के भक्तों को सुखी बनाये। इस गीत को कवि ने श्रीवैष्णवों के समक्ष लाया है। अतएव वह उनको आनन्द प्रदान करे। यहाँ पर केशव पद शब्द श्रीवैष्णवों का वाचक है। 'केशवः पदं =स्थानं यस्याऽसौ तं केशवपदम्'। अर्थात् श्रीभगवान् भी जिनके प्राप्य हैं वे श्रीवैष्णव ही केशवपदवाच्य हैं। इस सम्पूर्ण गीत में मालाचतुष्पदी नामक छन्द तथा उपमा अलङ्कार है ।। ८ ॥

सा रोमाञ्चति सीत्करोति विलपत्युत्कम्पते ताम्यति
ध्यायत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्याति मूर्च्छत्यपि ।
एतावत्यतनुज्वरे वरतनुर्जीवेन्न किं ते रसा-
त्स्वर्वैद्यप्रतिम! प्रसीदसि यदि त्यक्तोऽन्यथा हस्तकः ॥ ९ ॥

अनुवाद—हे स्वर्गलोक के वैद्य अश्विनीकुमारों के समान भगवन्! इस समय श्रीराधा रोमाञ्चित होती है, सीत्कार करती है, विलाप करती है, संतप्त होती है, तुम्हारा ध्यान करती है, क्रीड़ास्थलों में भ्रमण करती है, अपनी आँखों को बन्द कर लेती है, भूमि पर गिर पड़ती है, पुनः उठकर खड़ी होती है। इस प्रकार के महाज्वर (सन्निपातज्वर) में यदि आप प्रसन्न हो जायें तो वह सुन्दर शरीर वाली क्या नहीं जी जायेगी? अवश्य जी जायेगी। अन्यथा अब हाथों की चेष्टाएँ करना भी उसका समाप्त हो जायेगा अर्थात् वह मर जायेगी ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदानीं भक्त्याख्या भावितमरणशंसनमिषेण तन्मनः प्ररोचयति—सेति। हे स्ववैद्य-प्रतिम अश्विनीकुमारसदृशरूप! एतावत्यतनुज्वरे एतावतीमवस्थां प्राप्तवत्यतनुज्वरे। पक्षे—अतनुज्वरे महति ज्वरे सति यदि प्रसीदसि ततः सा वरतनुः तव रसात् शृङ्गारात्किं न जीवेत्? अपि तु जीवेदेव। अन्यथा चेन्न प्रसीदसि तदा अन्त एवान्तकः मरणमसि, मरणहेतुत्वात्त्वमेव मरणमिति। अथवा—हे स्ववैद्यप्रतिम अश्विनीकुमारतुल्य वैद्य! यदि प्रसीदसि ततस्ते रसात्पारदादिनिष्पन्नौषधात्सा वरतनुर्न जीवेत्? अपि तु जीवेदेव। अन्यथा अन्तको यमो नासि? अपि तु यम एव। 'वरतनुः' इति हेतुगर्भं विशेषणम्। तेन सा तनुरूपेति कृत्वाऽवश्यं जीवनीयेति तात्पर्यम्। सा राधा न केवलं बाह्यवृत्त्या त्वय्यनुरक्ता, किन्तु सात्त्विकभावेनापि त्वदायत्तजीवितेति दर्शयन्त्याह। तानेव सात्त्विकान्भावान्विवृणोति—सा रोमाञ्चतीति। 'स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वर-भङ्गोऽथ वेपथुः। वैवर्ण्यमश्रुप्रलयावित्यष्टौ सात्त्विका मताः'। सा राधा रोमाञ्चति। रोमाञ्चो विद्यते यस्य स रोमाञ्चः, रोमाञ्चित इत्यर्थः; तद्वदाचरति रोमाञ्चति। अकारोऽत्र मत्वर्थीयः। रोमाञ्चतीत्यादिना रोमाञ्च उक्तः। सीत्करोतीति वैवर्ण्यम्, विलपत्युद्यातिभ्यामश्रु, उद्यातीति निःसरति; उत्कम्पत्युद्भ्रमतिभ्यां वेपथुः, ताम्यतिना स्वेदः, ध्यायतिपततिभ्यां स्तम्भः, पततीति वैपरीत्येन तपतिर्वैवर्ण्ये योजनीयः। प्रमीलतिना स्वरभङ्गः, मूर्च्छतिना प्रलयः, इत्येवमष्टौ सात्त्विका भावाः प्रदर्शिता भवन्ति। सन्मनस्तत्प्रभवाः सात्त्विकाः। इदमाकूतम्—त्वय्यारोपितमनस्का त्वया जीवनीयेति; अन्यथा आश्रितत्यागलक्षणं दूषणमपीति भावः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। अत्र दीपकम-लङ्कारः। विप्रलम्भाख्यः शृङ्गारो रसः। अत्र पूर्वार्धेन स्थायिभावा उक्ताः। तदुक्तम्—'रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा। जुगुप्साविस्मयशमाः स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः'॥ इति। सात्त्विकाश्च पूर्वत एव उक्ताः। अहमित्याद्यनुकूलो नायको दक्षिणो वा। उत्कण्ठिता नायिका। सखी दूतीत्वेन सहायिनी। तल्लक्षणम्—'प्रवृत्ति-कुशला धीरा गूढमन्त्रदृढप्रिया। स्वतन्त्रा विधवा दासी दुष्टा प्रव्रजिता सखी। माला-कारादिनारी च कार्या दूतीष्टसिद्धये'॥ ९॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी बतलाती है कि श्रीराधा इस समय महाज्वर में पड़ी हुई है। उसे कामज्वर हो गया है। उसके कारण अनेक प्रकार की चेष्टाएँ, जो सात्त्विक भाव के नाम से प्रख्यात हैं, उनको कर रही हैं। सात्त्विक भाव निम्नांकित आठ हैं—

'स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलयावित्यष्टौ सात्त्विका मताः'॥

'रोमाञ्चति' पद के द्वारा उसके रोमाञ्च नामक सात्त्विक भाव को बतलाया गया है। 'रोमाञ्चति' पद की व्युत्पत्ति बतलाते हुए रसिकप्रियाकार कहते हैं—'रोमाञ्चो विद्यते यस्य स रोमाञ्चः। रोमाञ्चित इत्यर्थः। तद्वदाचरति रोमाञ्चति'। अर्थात् जिसको रोमाञ्च हो गया हो उसको रोमाञ्चित कहते हैं और रोमाञ्चित के समान आचरण करने की क्रिया को रोमाञ्चति कहा जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराधा सीत्कार करती है, क्योंकि उसको आपकी चिन्ता तथा स्मृति बनी रहती है। इसके द्वारा सखी श्रीराधा के वैवर्ण्य नामक सात्त्विक भाव को बतलाती है। आपके गुणों का स्मरण करके वह रोने लगती है, इसीलिए उसके अश्रु निकलते रहते हैं। यह सोचकर कि मैं श्रीकृष्ण के विप्रयोगजन्य दुःख को कैसे सहन कर पाऊँगी ? वह काँपने लगती है। इस पद के द्वारा वह श्रीराधा के वेपथु नामक सात्त्विक भाव को बतलाती है। श्रीराधा ग्लानि युक्त होकर पसीने-पसीने हो जाती है। इस पद के द्वारा स्वेद नामक सात्त्विक भाव को बतलाया गया है। वह आपका ध्यान करती है। इस पद के द्वारा श्रीराधा के स्तम्भ नामक सात्त्विक भाव को बतलाया गया है। 'उद्भ्रमति' पद के द्वारा सखी बतलाती है कि श्रीराधा क्रीड़ादि स्थलों में आपको प्राप्त करने की इच्छा से भ्रमण करती है। 'उद्भ्रमति' पद के द्वारा वेपथु नामक सात्त्विक भाव को निर्दिष्ट किया गया है। 'प्रमीलति' का अर्थ है कि श्रीराधा आपके आलिङ्गनादि का ध्यान करके अपनी आँखों को बन्द कर लेती हैं। वह कुछ बोल नहीं पाती हैं। इससे स्वरभङ्ग नामक सात्त्विक भाव को बतलाया गया है। 'पतति' पद का अभिप्राय यह है कि वह चलती हुई शरीर कार्श्य तथा दौर्बल्य के कारण गिर पड़ती है। रसिकप्रिया के अनुसार 'पतति' पद के द्वारा भी स्तम्भ नामक सात्त्विक भाव बतलाया गया है। 'उद्यति' पद के द्वारा बतलाया गया है कि वह गिरकर पुनः उठ खड़ी होती है और 'मूर्च्छति' पद के द्वारा प्रलय नामक सात्त्विक भाव को सखी निर्दिष्ट करती है।

श्रीराधा के इन सात्त्विक भावों का वर्णन करके सखी कहती है कि आप तो स्वर्वैद्य अश्विनीकुमारों के समान है। जिस प्रकार स्वर्वैद्य असाध्य रोग की भी चिकित्सा करने में समर्थ होते हैं, उसी प्रकार आप भी इस श्रीराधा के इस महाज्वर को ठीक कर दें। इसके लिए आप प्रसन्न हो जाइये। आप यदि प्रसन्न हो जायें तो वह मनोहर शरीर वाली श्रीराधा अवश्य जी जायेगी, अन्यथा वह मर जायेगी। क्योंकि वह इतनी दुर्बल हो गयी है कि अब केवल उसके हाथों की चेष्टाएँ ही अवशिष्ट रह गयी हैं। यदि वह जान जाय कि आप उसे नहीं मिलेंगे तो फिर उसके हाथों की चेष्टाएँ भी समाप्त हो जायेगी और वह मर जायेगी।

उसका मन आप में ही लगा हुआ है, अतः आपके द्वारा ही वह जिलायी जा सकती है। यदि आप उसे दर्शन देकर तथा प्रसन्न होकर नहीं जिलाते हैं तो फिर आपको आश्रित जन के परित्याग करने का पाप भी लगेगा।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित नामक छन्द है। दीपकालङ्कार है। विप्रलम्भ शृङ्गार नामक रस है। अनुकूल अथवा दक्षिण नायक श्रीभगवान् है। उत्कण्ठिता नायिका श्रीराधा हैं और सखी दूती है, जो श्रीराधा की सहायिका है ॥ ९ ॥

स्मरातुरां दैवतवैद्यहृद्य ! त्वदङ्गसङ्गामृतमात्रसाध्याम् ।
निवृत्तबाधां कुरुषे न राधामुपेन्द्र ! वज्रादपि दारुणोऽसि ॥ १० ॥

अनुवाद—देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमारों के समान सुन्दर भगवन् ! हे उपेन्द्र ! यदि आप अपने अङ्गसंयोग रूपी अमृत के द्वारा साध्य रोग वाली कामातुर श्रीराधा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को बाधा रहित नहीं बना देते हैं तो निश्चयपूर्वक ही आप वज्र से भी कठोर समझे जायेंगे ।। १० ।।

तदेव पूर्वसूचितदूषणमुद्भावयति—स्मरेति । हे उपेन्द्र ! दैवतवैद्यहृद्य अश्विनीसुतसुन्दर ! ततोऽप्यधिकचिकित्सक ! यदि त्वं पूर्वोक्तलक्षणां राधां निवृत्तबाधां निवृत्ता बाधा यस्यास्तां न कुरुषे तर्हि वज्रादपि दारुणोऽसि कठिनोऽसि । कठिनः खलु कथमपि न स्निह्यतीति । किं विशिष्टां राधाम् ? स्मरातुराम् । पुनः किम्भूताम् ? रोगिणां चिकित्सा भविष्यतीत्याशङ्क्याह—त्वदङ्गेति । त्वदङ्गसङ्ग एवामृतकल्पस्तन्मात्रसाध्याम् । अतोऽल्पप्रयासे बहुतरपुण्ये च प्रयोजने महान्तो नावसीदन्तीति । वृत्तमप्युपेन्द्रवज्रा ॥ १० ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीराधाजी की सखी श्रीभगवान् को दो विशेषणों से विशेषित करती है—'उपेन्द्र' तथा 'दैवतवैद्यहृद्य' । श्रीभगवान् दुःखी देवताओं का कल्याण करने के लिए माता अदिति के गर्भ से वामन भगवान् के रूप में अवतीर्ण हुए । चूंकि वे इन्द्र के छोटे भाई के रूप में उत्पन्न हुए अतएव वे उपेन्द्र कहलाये । इस विशेषण से सखी ने श्रीभगवान् के आश्रितजनतासंरक्षणैकव्रतित्व को निर्दिष्ट किया है । श्रीभगवान् की मनोज्ञता स्वर्गलोक के वैद्य अश्विनीकुमारों से भी बढ़कर है—इस बात को 'दैवतवैद्यहृद्य' पद से कहा गया है । सखी कहती है कि हे भगवन् ! श्रीराधा कामज्वर के कारण आतुर बनी हुई हैं । उसके इस असाध्य रोग की दवा एकमात्र आपका संयोग है । आपके अंगों का संस्पर्श उसके लिए अमृत के तुल्य हैं । अतएव श्रीराधा की चिकित्सा के लिए आपको कोई प्रयास भी नहीं करना है । यदि आप अपने अंगों का संग प्रदान करके श्रीराधा को कामज्वर की बाधा से रहित नहीं बना देते हैं तो निश्चय ही आप वज्र से भी कठोर माने जायेंगे । इस श्लोक का उपेन्द्रवज्रा वृत्त है ॥ १० ॥

कन्दर्पज्वरसञ्ज्वरातुरतनोराश्चर्यमस्याश्चिरं
चेतश्चन्दनचन्द्रमः कमलिनीचिन्तासु सन्ताम्यति ।
किन्तु क्लान्तिवशेन शीतलतनुं त्वामेकमेव प्रियं
ध्यायन्ती रहसि स्थिता कथमपि क्षीणा क्षणं प्राणिति ।। ११ ।।

अनुवाद—हे माधव ! कामज्वरजन्य संताप के कारण रुग्ण शरीर वाली श्रीराधा के मन में चन्दन, चन्द्रमा तथा कमलिनी आदि शीतोपचार के साधन का विचार आते ही संताप होने लगता है । यह आश्चर्य की बात है, किन्तु क्लान्ति के कारण दुर्बल शरीर वाली वह एकमात्र प्रिय तथा शीतल शरीर वाले आपका ही एकान्त में ध्यान करती हुई किसी प्रकार कुछ क्षणों के लिए जी रही है ।। ११ ॥

ईदृशीमवस्थां प्राप्तापि त्वत्सङ्गमाकाङ्क्षयैव प्राणितीत्याह—कन्दर्पेति । हे माधव ! अस्याश्चेतश्चिरं चन्दनचन्द्रमःकमलिनीचिन्तासु यत्सन्ताम्यति तदाश्चर्यम् । किं विशिष्टायाः ? कन्दर्पज्वरसञ्ज्वराकुलतनोर्मदनसन्तापाकुलशरीरायाः । तापे सति शीतवस्तुषु स्पृहा नास्तीत्याश्चर्यम्; किन्तु आश्चर्यान्तरमपि । क्लान्तिवशेन क्षीणा रहस्येकान्ते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थिता त्वामेवैकं प्रियं शीतलतनुं कथमपि ध्यायन्ती क्षणं क्षणमात्रं प्राणिति जीवति। अत्र शीतलेषु द्वेषः, शीतलादपि जीवतीति विरोधालङ्कारः। अद्भुतश्च रसः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ११ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीराधाजी की सखि श्रीभगवान् के सन्निकट कह रही है कि भगवन्! श्रीराधा आपके ही सङ्गम की आकांक्षा से जी रही है। वह कहती है कि श्रीराधा इस समय कामज्वरजन्य संताप से संतप्त होने के कारण रुग्ण हो गयी हैं, किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि जब कभी भी शीतलोपचार के साधनभूत चन्दन, चन्द्रमा तथा कमलिनी की चर्चा उसके सामने की जाती है, तो उसके हृदय में और संताप होने लगता है। क्योंकि ये सब यद्यपि शीतलोपचार के साधन हैं फिर भी इनसे विरहिणियों के मन में अशान्ति ही बढ़ती है, शान्ति नहीं।

यदि आप पूछें कि तो फिर वह कैसे जी रही है? तो उसका उत्तर यह है कि कामज्वर के कारण उसकी यद्यपि क्लान्ति बढ़ गयी है, फिर भी आप ही एकमात्र उसके प्रियतम हैं। अतएव क्षीण शरीर वाली वह एकान्त में रहकर वह आपका ध्यान करती रहती है। वह चाहती है कि आपका शीतल शरीर उसे स्पर्श करने के लिए प्राप्त हो जाय। इस प्रकार आपकी ही प्राप्ति की आशा में वह कुछ ही क्षणों तक जी रही है। यदि आपने उससे मिलने में शीघ्रता नहीं की तो हो सकता है कि वह आपको पुनः जीवित नहीं मिले।

इस श्लोक में विरोधालङ्कार है, अद्भुत रस है तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ ११ ॥

क्षणमपि विरहः पुरा न सेहे
नयननिमीलनखिन्नया यया ते।
श्वसिति कथमसौ रसालशाखां
चिरविरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम् ॥ १२ ॥

अनुवाद—नेत्रों की पलक गिरने से होने वाले आपके दर्शन के अन्तराय के कारण भी जो दुःखी होती थी, इस प्रकार की जिस राधा ने पहले कभी आपके क्षणभर के भी विरह को नहीं सहा वही राधा दीर्घकालिक विरहकाल में समक्ष पुष्पित आम्रवृक्ष को देखकर भी किस प्रकार जीवित है, मैं यह नहीं समझ पा रही हूँ ॥ १२ ॥

इदानीं त्वदागमनहेतुं मनसि स्थिरीकृत्य प्राणितीत्याह—क्षणमिति। हे माधव! यया राधया पुरा ते विरहः क्षणमपि न सेहे न सोढः। किम्भूतया? नयननिमीलनखिन्नया नयननिमीलनेनापि खिन्ना सा तया। भवद्दर्शनान्तरे निमिषेऽपि या दुःखं प्राप्नोति, असौ साम्प्रतं चिरविरहेऽपि रसालशाखां चूतशाखां विलोक्य, कथं श्वसिति प्राणिति तन्न जाने। किंविधां रसालशाखाम्? पुष्पिताग्रां पुष्पिताग्रभागाम्। अत्र पुष्पितया चूतशाखया वसन्तो लक्ष्यते। वसन्ते हि विरहिणो न जीवन्तीत्यत्राकूतम्। सा कथं श्वसितीति चिरविरहेऽपि रसालशाखां विलोक्य। रसालो रससमूहो भवान्, तस्य शाखाम् अन्तिकं समीपं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तां विलोक्य । किंविधां शाखाम् ? पुष्पिताग्रां पुष्पितं सञ्जातपुष्पमग्रमुत्तरकालो यस्याः सा ताम् । तवान्तिकं लप्स्ये इत्यभिकाङ्क्षया श्वसिति । अथवा—पुष्पिताग्रां चूतशाखां दृष्ट्वा श्वसितीति युक्तार्थः । एवंविधां चूतशाखां दृष्ट्वा स्मरशरजर्जरितशरीरः सोऽवश्यं मामेष्यतीति । वृत्तमपि पुष्पिताग्रा ॥ १२ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी बतला रही है कि श्रीराधा अब तब आपके ही आगमन की अभिलाषा में जीवित हैं। वह कहती है हे माधव ! श्रीराधा ने इससे पूर्व आपके क्षणभर के लिए भी होने वाले विप्रयोग को नहीं सहा है। वह सर्वदा आपके साथ रहती थी। जब उसके नेत्रों के पलक गिरते थे, उस समय भी उसको बड़ा कष्ट होता था कि ब्रह्मा ने न जाने क्यों यह पलक गिरने की प्रक्रिया बना दिया है। इससे तो श्रीभगवान् के निरन्तर मुखावलोकन में बाधा ही पड़ती है। वह राधा इस समय जब कि आपका दीर्घकाल से विप्रयोग हो गया है, फिर भी कैसे जी रही है, यह मैं नहीं समझ पाती हूँ। जब कि यह समय ऐसा है कि सामने आम्रवृक्ष की शाखा में मञ्जरी निकल आयी है। अर्थात् यह वसन्त ऋतु की वेला है। वसन्त काल में तो विरही को मृत्यु के तुल्य कष्ट होता है। अतएव आप श्रीराधा से शीघ्राति-शीघ्र अवश्य मिलने की कृपा करें।

श्रीराधा पुष्पिताग्रा चूतशाखा को देखकर यह भी अपने मन में सोचकर जी रही हैं कि जिस प्रकार मैं कामार्त हूँ उसी प्रकार श्रीभगवान् भी कामार्त होने के कारण मुझसे मिलने के लिए अवश्य आयेंगे।

इस श्लोक का छन्द भी पुष्पिताग्रा है ॥ १२ ॥

वृष्टिव्याकुलगोकुलावनरसादुद्धृत्य गोवर्धनं
बिभ्रद्वल्लववल्लभाभिरधिकानन्दाच्चिरं चुम्बितः ।
दर्पेणेव तदर्पिताधरतटीसिन्दूरमुद्राङ्कितो
बाहुर्गोपतनोस्तनोतु भवतां श्रेयांसि कंसद्विषः ॥ १३ ॥

इति श्रीजयदेवकृतौ श्रीगीतगोविन्दे स्निग्धमधुसूदनो
नाम चतुर्थः सर्गः ॥ १३ ॥

अनुवाद—वृष्टि से व्याकुल गोकुल की रक्षा करने की इच्छा से गोवर्धन पर्वत को उठाकर उसको धारण किये हुए, गोपियों के द्वारा दीर्घकाल पर्यन्त चुम्बित, अपने सौभाग्यमद से युक्त गोपियों द्वारा चुम्बनार्थ समर्पित अधर की लालिमा से युक्त गोपशरीरधारी तथा कंस के शत्रु श्रीभगवान् की भुजाएँ आप सभी का कल्याण करें ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीजयदेव कवि प्रणीत गीतगोविन्द काव्य में
स्निग्धमधुसूदन नामक चतुर्थ सर्ग पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदानीं 'मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते' इति न्यायमाचरन् कविराशिषमाह—वृष्टीतिं। कंसद्विषः कृष्णस्य बाहुर्भवतां श्रोतृणां श्रेयांसि तनोतु। किं कुर्वन्? उद्धृत्य गोवर्धनं गिरिं बिभ्रत्। कस्मात्? वृष्टिव्याकुलगोकुलावनरसात्। वृष्ट्या व्याकुलं यद्गोकुलं तस्य यदवनं पालनं तत्र रसो रागो वीर्यं वा तस्मात्। पुनः किम्भूतो बाहुः? बल्लववल्लभाभिर्गोपाङ्गनाभिरधिकानन्दाच्चिरं चुम्बितः। पुनः किम्भूतो बाहुः? तदर्पिताधरतटीसिन्दूरमुद्राङ्कितः। ताभिश्चुम्बनार्थमर्पिता या अधरतटी तस्याः सिन्दूरमुद्रयेव शोणितत्वेनाङ्कितः। उत्प्रेक्ष्यते—गोवर्धनोद्धरणलक्षणजातगर्वेणेव शोणित; किंविधस्य कंसद्विषः? गोपतनोः गोपस्य तनुरिव तनुर्यस्य सः; गोपवेषस्येत्यर्थः। अत्राद्भुतो रसः। उत्प्रेक्षोपमे अलङ्कृती। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्॥ १३॥

'मालवश्रीः स्मृतो रागस्तालो निःसारसंज्ञकः।
वाग्गेयकारनामाङ्कपदतस्तेन सन्ततिः॥
ततः पाटाः पदानि स्युः पञ्चषाणि रसोऽत्र यः।
शृङ्गारो वासुदेवस्य क्रीडनं रासकादिभिः॥
छन्दोऽपि रासको ज्ञेयं स्वेच्छया वा कृतं भवेत्।
स्निग्धमधुसूदनोऽयं रासावलयनामकः।
प्रबन्धः पृथिवीभर्त्रा प्रबद्धः प्रीतये हरेः॥

इति स्निग्धमधुसूदनरासावलयनामा नवमः प्रबन्धः'। इत्ययं नवमप्रबन्धस्य टीकांशो ज्ञेयः॥

एकस्तावदनूनधन्विविषयस्वीकारलक्ष्योऽपरः
स्फूर्जद्गुर्जरशूरनायकजयप्रोद्दामिताडम्बरः।
हृष्यन्मालवमूलकोषणविधौ सर्गस्तृतीयः कृत-
स्तुर्यः कुम्भमहीभृतात्र विवृतौ श्रीगीतगोविन्दतः॥

इति श्रीगयाविमुक्तिस्थलकल्पितपितृकुलविमुक्तिदेन श्रीचित्रकूटाधिपतिना विरचिते गीतगोविन्दविवरणे स्निग्धमधुसूदनो नाम चतुर्थः सर्गः॥

भावप्रकाशिका—जिस शास्त्र के आदि, मध्य तथा अन्त में मङ्गल होता है, उस शास्त्र का प्रचुर प्रचार होता है। इस नियम के अनुसार श्रीजयदेव कवि इस चतुर्थ सर्ग के अन्त में आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण करते हुए कहते हैं कि श्रीभगवान् जो कंस के शत्रु हैं तथा जिन्होंने श्रीकृष्णावतार में गोपशरीर को धारण किया है, उन श्रीभगवान् की भुजाएँ आप सभी पाठकों तथा सुनने वालों का कल्याण करें। उन श्रीभगवान् की विशेषता बतलाते हुए श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि—'वृष्टिव्याकुलगोकुलावनरसादुद्धृत्य गोवर्धनं बिभ्रत्।' अर्थात् क्रुद्ध होकर जब इन्द्र ने गोकुल को विनष्ट कर देने की इच्छा से पुष्कर तथा आवर्तक मेघों के माध्यम से भयंकर वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया, उस समय समस्त गोपमण्डली व्याकुल हो गयी। यह देखकर गोकुल की रक्षा करने की इच्छा से श्रीभगवान् का वीर्य विजृम्भित हो गया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एतदर्थ उन्होंने गोवर्धन पर्वत को उखाड़ कर अपने हाथ में रख लिया। उन श्रीभगवान् की भुजाएँ आप लोगों की रक्षा करें—यह कवि कहते हैं।

हाथ की विशेषता बतलाते हुए कवि कहते हैं कि श्रीभगवान् को अपने हाथ में गोवर्धन पर्वत को धारण किये हुए देखकर गोपियाँ अतिशय आनन्दमग्न होकर श्रीभगवान् की भुजा का चुम्बन करने लगीं। उन गोपियों के द्वारा चुम्बित श्रीभगवान् का हाथ आप सभी का कल्याण करें।

किञ्च श्रीभगवान् की भुजाओं के चुम्बनार्थ अपने लाल-लाल ओठों को जो श्रीभगवान् की भुजाओं से लगा दिया, अपने उस सौभाग्यमद से चिह्नित श्रीभगवान् की जो भुजा है, वह आप सभी का कल्याण करें।

इस श्लोक में अद्भुत रस, उपमा तथा उत्प्रेक्षालङ्कारों की संसृष्टि तथा शार्दूलविक्रीडित वृत्त है ॥ १३ ॥

इस प्रकार शिवप्रसाद द्विवेदी कृत गीतगोविन्द काव्य के स्निग्धमधुसूदन नामक चतुर्थ सर्ग की भावप्रकाशिका व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पञ्चमः सर्गः

(आकाङ्क्षपुण्डरीकाक्षः)

अहमिह निवसामि याहि राधा-
मनुनय मद्वचनेन चानयेथाः।
इति मधुरिपुणा सखी नियुक्ता
स्वयमिदमेत्य पुनर्जगाद राधाम् ॥ १ ॥

अनुवाद—मैं यहाँ पर हूँ, तुम श्रीराधा के पास जाओ, मेरी ओर से प्रार्थना करके तुम उसे ले आओ। इस प्रकार श्रीभगवान् के द्वारा नियुक्त होकर वह सखी श्रीराधाजी के पास आकर कहने लगी ॥ १ ॥

पुरीमिव पालयिताखिलभुवं कुम्भनरेशो नत्वा शिवम्।
गायति धातुं रसिकामृतं जयदेवोदितं मातौ वृतम् ॥

इदानीं सखीनिवेदितो माधवस्तदभिमुखीभूय तदानयनाय सखीं प्रहितवान्। अयमिति। सेत्यध्याहार्यम्। या पूर्वं प्रहिता राधया सखी सैव स्वयमेव पुना राधामेत्य वक्ष्यमाणं जगाद। किम्भूता सखी? मधुरिपुणा इति नियुक्ता इत्यादिष्टा। इतीति किम्? अहमिह यमुनाकुञ्जे निवसामि। 'यावदागमिष्यति तावत्प्रतीक्षां करिष्ये' इति। त्वं याहि, मद्वचनेन राधामनुनय, अनुनीय च आनयेथाः। पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—चतुर्थ सर्ग के दो प्रबन्धों में श्रीराधाजी की सखी ने श्रीभगवान् के सन्निकट श्रीराधा की वियोगव्यथा का विस्तृत वर्णन किया है। सखी की बातों को सुनकर श्रीभगवान् के मन में अपनी नित्य प्रेयसी श्रीराधाजी से मिलने की आकांक्षा उत्पन्न हो गयी। श्रीभगवान् ने सखी को आदेश दिया कि तुम मेरी ओर से जाकर श्रीराधा को प्रार्थना करो, प्रसन्न करो और प्रसन्न करके मेरे पास ले आओ। जब तक श्रीराधा नहीं आ रही हैं तब तक मैं उनके आने की प्रतीक्षा इस यमुना तट के निकुंज में करूँगा। श्रीभगवान् के इस आदेश को प्राप्तकर सखी श्रीराधाजी के पास आकर कहने लगी।

इस श्लोक में पुष्पिताग्रा वृत्त है।

चूँकि श्रीभगवान् के मन में अपनी नित्य प्रेयसी श्रीराधाजी से मिलने की आकांक्षा उत्पन्न हो गयी अतएव इस सर्ग का नाम साकांक्षपुण्डरीकाक्ष है। पुण्डरीकाक्ष पद श्रीभगवान् के मनोज्ञतम नेत्रों की ओर पाठकों के ध्यान को आकृष्ट करता है। उपनिषदों में भी श्रीभगवान् को पुण्डरीकाक्ष बतलाते हुए कहा गया है—'तस्य यथा पुण्डरीकमेवमेवाक्षिणी।' अर्थात् लाल कमल के समान मनोहर श्रीभगवान् के नेत्र हैं। यद्यपि 'पुण्डरीकम् सिताम्भोजः' इस अमरकोश-वाक्य के अनुसार पुण्डरीक शब्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उजले कमल का वाचक है, किन्तु श्रीभगवान् के नेत्र-वर्णन के प्रसङ्ग में पुण्डरीक शब्द को रक्तकमल का ही वाचक स्वीकार किया जाता है।

देशीवराडीरागेण रूपकतालेन गीयते ।। प्रबन्धः ।। १० ।।

अनुवाद—यह दसवाँ प्रबन्ध देशीवराड़ी राग से तथा रूपकताल से गाया जाता है।

वहति मलयसमीरे मदनमुपनिधाय।
स्फुटति कुसुमनिकरे विरहिहृदयदलनाय ।। १ ।।
तव विरहे वनमाली सखि! सीदति ।। ध्रुवपदम् ।।

अनुवाद—जब कि मलयानिल बह रहा है, विरहियों के हृदय को विदीर्ण करने के लिए पुष्प विकसित हो रहे हैं, इस समय काम की इच्छा से युक्त श्रीभगवान् तुम्हारे विरह से दुःखी हो रहे हैं ।। १ ।।

तदेव वक्ष्यमाणमाह—अत्राभिसारिका नायिका वर्णनीया; 'संस्कृतात्प्राकृतमिष्टं ततोऽपभ्रंशभाषणम्। ततः प्रियतरा वेश्या सर्वतश्चाभिसारिका' ।। इति भरतः। तल्लक्षणमुक्तं भरतेन—'लज्जां हित्वा समाकृष्टा यौवनेन व्रजेत्तु या। अभिसारगतं कान्तं कीर्तिता साऽभिसारिका ।।' अत्र पूर्वं 'तव विरहे' इति ध्रुवः। अथ पदानि। वहतीति। क्व सति? मदनमुपनिधाय मदनस्य स्पृहामुत्पाद्य मलयसमीरे वहति सति। पुनः क्व सति? विरहिहृदयदलनाय कुसुमनिकरे स्फुटति सति विकसति सति ।। १ ।।

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी श्रीराधाजी से कहती है कि हे सखी! यह वसन्त की वेला में मलयसमीर (मलयाचल की वायु) काम को उत्पन्न करता हुआ बह रहा है। साथ ही साथ विरही पुरुषों के हृदय को विदीर्ण कर देने में समर्थ पुष्प विकसित हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में तुम्हारे विरह में श्रीभगवान् अत्यन्त दुःखी हैं। अतएव तुम चलकर उनसे मिल लो ।। १ ।।

दहति शिशिरमयूखे मरणमनुकरोति।
पतति मदनविशिखे विलपति विकलतरोऽति। तव वि० ।। २ ।।

अनुवाद—चन्द्रमा उन्हें जलाये जा रहा है, अतएव वे मरे-मरे से हो गये हैं, काम के बाणों से विद्ध होकर वे अत्यन्त विकल हो रहे हैं ।। २ ।।

अपि च—दहतीति। शिशिरमयूखे हिमरश्मौ दहति सति मरणमनुकरोति मृतकल्पो भवति। तत एवं मदनविशिखे पतति सति विकलतरोऽतिशयेन विकलः सन्नत्यतीव विलपति ।। २ ।।

भावप्रकाशिका—तुम्हारे वियोग से दुःखी श्रीभगवान् को चन्द्रमा शीतल करने का काम नहीं करके जलाने का काम कर रहा है। अतएव इस समय तो वे मृतप्राय से हो गये हैं। मरता हुआ व्यक्ति जिस प्रकार मूर्च्छित होकर चेष्टाएँ करता है उसी प्रकार की वे चेष्टाएँ कर रहे हैं। काम का बाण उन्हें बेंधे जा रहा है। उससे दुःखी होकर वे बहुत अधिक विलाप भी करते हैं ।। २ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्वनति मधुपसमूहे श्रवणमपिदधाति।
मनसि कलितविरहे निशि निशि रुजमुपयाति। तव वि० ॥ ३ ॥

अनुवाद—भ्रमरों के गुञ्जन-स्वर को सुनकर वे अपने कानों को वन्द कर लेते हैं तथा मन के विरहव्याकुल होने के कारण वे प्रत्येक रात्रि में अधिक रोगी होते जा रहे हैं ॥ ३ ॥

अपि च—ध्वनतीति। मधुपसमूहे ध्वनति सति श्रवणमपिदधाति आच्छादयति। निशि निशि प्रतिरात्रौ मनसि कलितविरहे सति झटिति रुजं पीडामुपयाति प्राप्नोति ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—सखी विप्रलम्भ के उद्दीपन विभावों का वर्णन करती हुई कहती है कि यद्यपि भौंरें चारों तरफ पुष्पों पर मधुर गुञ्जन कर रहे हैं, किन्तु उसे सुनकर श्रीभगवान् को प्रसन्नता नहीं हो रही है। तुम्हारे विरह में भ्रमरों का गुञ्जन कर्णकटु प्रतीत हो रहा है। अतएव वे भ्रमरों की गुञ्जन-ध्वनि को सुनकर अपने कानों को बन्द कर लेते हैं। उनके मन में विरह की वेदना भर गयी है, अतएव प्रत्येक रात्रियों में उनकी पीड़ा बढ़ती ही जाती है। अतः उनसे तुम्हारा मिलना नितान्त आवश्यक है ॥ ३ ॥

वसति विपिनविताने त्यजति ललितधाम।
लुठति धरणिशयने बहु विलपति तव नाम। तव वि० ॥ ४ ॥

अनुवाद—अपने मनोहर धाम का त्याग करके वे वनों में निवास करते हैं और पृथिवी की शय्या पर लोटते हुए वे बार-बार तुम्हारा नाम लेते हैं ॥ ४ ॥

अपि च—वसतीति। विपिनविताने वनविस्तारे चण्डविषफल्पे वने वसति सन्तिष्ठते। त्वद्विरहेण ललितं मनोहरमपि धाम त्यजति। पुनः किं करोति ? धरणिशयने तव नाम कृत्वा परिदेवनं करोति ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—सखी कहती है कि श्रीराधे ! तुम्हारे वियोग में श्रीभगवान् ने अपने मनोहर धाम में रहना छोड़ दिया है। सम्प्रति वे वनों में निवास कर रहे हैं। वे शय्या पर न सोकर तुम्हारे विप्रयोग की पीड़ा में पृथिवी पर सोते हुए लोट-लोटकर रात बिताते हैं और वे अनेक बार तुम्हारा नाम पुकारते हैं ॥ ४ ॥

भणति कविजयदेवे विरहविलसितेन।
मनसि रभसविभवे हरिरुदयतु सुकृतेन। तव वि० ॥ ५ ॥

अनुवाद—जयदेव कवि की इस कविता को पढ़ने वालों के मन में विरह के विलाससम्पन्न मन में पाठकों के पुण्य से श्रीभगवान् आविर्भूत होएँ ॥ ५ ॥

अपि च—भणतीति। कविजयदेवे भणति सति विरहविलसितेन वियोगविलासेन रभसविभवे उत्साहसम्पन्ने मनसि। अर्थात्तव सुकृतेन हरिरुदयतु उदयं प्राप्नोतु तव मनसि हरेरनुरागो वसतु ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र वाक्यौचिती सङ्गीतराजे—'निःसारतालरचितो रागे केदारसंज्ञके। कविनामाङ्कितपदात्पाटैः स्वल्पतरैश्रितः॥ ततः पद्यं विलासं सोल्लासते जगतीपतेः। इत्थं हरिसमुदयागरुडपदसंज्ञकः॥ प्रबन्धः पृथिवीभर्त्रा हरिभक्तेन वर्णितः॥' इति हरिसमुदयागरुडपदनामा दशमः प्रबन्धः॥ १०॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीजयदेव कवि कह रहे हैं कि मेरी इस कविता के पढने वाले तथा सुनने वाले लोगों को बहुत पुण्य प्राप्त होगा। अतएव उन पाठकों तथा श्रवण करने वालों का मन श्रीहरि के विरहविलासजन्य उत्साह से सम्पन्न होगा। अतः उन मनों में भी श्रीभगवान् आविर्भूत होएँ॥ ५॥

पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धय-
स्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे पुनर्माधवः।
ध्यायंस्त्वामनिशं जपन्नपि तवैवालापमन्त्रावलीं
भूयस्त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति॥ २॥

अनुवाद—जिस निकुञ्जरूपी महातीर्थ में श्रीभगवान् ने पहले तुम्हारे साथ कामदेव की सिद्धियाँ प्राप्त की थीं, उसी महातीर्थ में पुनः वे तुम्हारा सदा ध्यान करते हुए तथा तुम्हारे साथ किये गये वार्तालापसमूहरूपी मन्त्र को जपते हुए तुम्हारे कुचकुम्भों के गाढ़ालिङ्गनरूपी अमृतमोक्ष को प्राप्त करना चाहते हैं॥ २॥

इदानीं त्वय्येव माधवमनोऽस्तीति तां राधां प्रगुणीकरोति—पूर्वं यत्रेति। हे राधे! माधवस्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे भूयो बाहुल्येन पुनरपि त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति। त्वत्कुचयोर्निर्भरो यः परिरम्भः स एवामृतमिव तत्तीर्थावमृतं जलम्। जलं हि कुम्भेनैव ग्राह्यं भवतीत्युक्तिलेशः। किं कुर्वन्? अनिशमनवरतं त्वां ध्यायंस्तवैवालापमन्त्रावलीं जपन्। एकान्तध्यानजपाभ्यां हि देवताप्रतो जाग्रतः पुरः स्फुरत्येव। तस्मिन्निति कस्मिन्? यत्र निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे कामतीर्थे पूर्वं रतिपतेः कामस्य त्वयोपलक्षितास्त्वय्येव प्रसन्नायां लभ्याः सिद्धयः समं समकालमविलम्बेनैव प्राप्ताः। 'रतिपतेः' इत्यत्र कामस्याभिलषितस्येति वक्तव्ये 'रति'ग्रहणं तस्यामतिशयितप्रीत्युपादानार्थम्। अथवा—रतिपतेः कामात्त्वया सहायभूतया समं सिद्धय आसादिताः। तदाप्तये पुनः सहायभूतां त्वामेव वाञ्छति। अथ च यत्र निकुञ्जादौ कामपूरकतीर्थे येन यस्मात्सिद्धिराप्ता स तमेव ध्यायञ्जपन् निर्भरपरीरम्भामृतं मोक्षं वाञ्छतीत्युक्तिलेशः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः॥ २॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी श्रीराधा को यह बतलाकर प्रसन्न करना चाह रही है कि श्रीभगवान् का मन तुममें ही लगा हुआ है। वह कहती है कि हे श्रीराधे! जिस निकुञ्जरूपी महातीर्थ में तुम्हारे साथ रहकर चुम्बन, आलिङ्गन आदि काम की महासिद्धियों को प्राप्त किया था, आज पुनः श्रीभगवान् उसी निकुञ्जरूप कामदेव के महातीर्थ में रहकर तुम्हारे स्वरूप का ध्यान कर रहे हैं, तुम्हारे साथ रहकर जिन-जिन वार्तालापों को उन्होंने किया था, वे वार्तालाप ही मानों उनके लिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन्त्रसमूह के समान हैं। वे उन्हीं मन्त्रों का जप कर रहे हैं। जिस प्रकार जिस तीर्थ में रहकर जिस देवता का ध्यान करके जिस मन्त्र का जप करके कोई जिस सिद्धि को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार श्रीभगवान् को जिस निकुञ्ज में काम की सिद्धि प्राप्त हुई थी उसी निकुञ्ज में वे हैं। उस निकुञ्ज की देवता भी तुम ही हो तथा काम की सिद्धि के लिए तुम्हारा वार्तालाप ही उनके लिए मन्त्र बन गया है। वे उस मन्त्र को जपते हुए पुनः तुम्हारे कुम्भ के समान उन्नत स्तनों का गाढ़ालिङ्गनरूपी अमृत को प्राप्त करना चाहते हैं॥ २॥

गुर्जरीरागेण एकतालीतालेन गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ ११ ॥

अनुवाद—यह ग्यारहवाँ प्रबन्ध गुर्जरी राग तथा एकताली ताल से गाया जाता है।

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेषम्।
न कुरु नितम्बिनि ! गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम् ॥ १ ॥

अनुवाद—मन्द-मन्द वायुवाले यमुना के तट पर वेतसीवन में वनमालाधारी, गोपियों के पीन स्तनों को मर्दन करने में चञ्चल दोनों हाथ वाले श्रीभगवान् विद्यमान हैं। अतएव प्रशस्त नितम्बों वाली श्रीराधे ! रतिजन्य सुख के सारस्वरूप संकेतस्थान में कामदेव के समान मनोहर वेषवाले अपने हृदयनाथ श्रीभगवान् के पास अभिसरण करो, विलम्ब न करो॥ १॥

साम्प्रतं तमभिमुखमभिसर्तुं राधां त्वरयति। तत्र पूर्वं ध्रुवपदं व्याक्रियते—धीरसमीर इति। इति पदार्थपाठः। कुत्रचिदस्ति। गोपीपीनपयोधरमर्दनचपलेन करयुगलेनाढ्य इत्यर्थः। 'आढ्यः शालिनि विख्यातः'। हे राधे ! यमुनातीरे वने। यमुनातीरविषये वने। अथवा—वेतसवने वनमाली श्रीकृष्णो वसति। किम्भूते वने ? धीरसमीरे मन्दवायुनि। एतेन वायोस्त्रैविध्यमुक्तम्। तस्याश्च स्थानेनोत्कण्ठा जनिता। इति ध्रुवः॥ रतिसुखेति। हे नितम्बिनि ! तं वनमालिनमनुसर। गमनविलम्बनमभिसाराय कालातिक्रमं न कुरु, नितम्बिनी हि बृहन्नितम्बत्वाच्चलितुं न शक्नोतीति तां त्वरयति। किम्भूतम् ? अभिसारे सङ्केतस्थाने गतम्। किम्भूतेऽभिसारे ? रतिसुखसारे रतिसौख्यप्रधाने। किम्भूतं तम् ? मदनवत्कामवन्मनोहरवेशम्। पुनः किम्भूतम् ? हृदयेशं मनस ईशम्। तव मनस्तदधीनमित्यर्थः। अथवा—हृदये वर्तमानं तं वनमालिनमिति योज्यम्। किम्भूतम् ? आयुर्वेदमितिवत्सुखहेतुत्वाच्छमेव॥ १॥

भावप्रकाशिका—इस समय भगवान् श्रीकृष्ण के पास अभिसरण करने के लिए श्रीराधा को प्रोत्साहित करती हुई उनकी सखी कह रही है कि हे प्रशस्त नितम्बों वाली श्रीराधे ! तुम भगवान् श्रीकृष्ण के पास पहुँचने में देर न करो। तुम शीघ्र ही संकेतस्थान में पहुँच जाओ, क्योंकि उस संकेतस्थान में रतिजन्य सुख की प्रधानता है। यहाँ पर तुम्हारे हृदय के स्वामी कामदेव से भी मनोहर वेषवाले श्रीभगवान् विद्यमान है॥ १॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संकेतस्थान का स्पष्टरूप से निर्देश करती हुई सखी कहती है कि यमुना के तट पर विद्यमान जो वेतसी का वन है, वहाँ पर धीरे-धीरे वायु चल रही है। यमुना के तट के वनों से होकर आनेवाली यह वायु शीतल, मन्द एवं सुगन्ध है। वहीं पर वनमाला धारण किये हुए गोपियों के पीन स्तनों का मर्दन करने में चञ्चल दोनों हाथों वाले, वनमाला धारण करने वाले श्रीभगवान् विद्यमान है। अतएव तुम शीघ्र ही वहाँ चली जाओ ॥ १ ॥

धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली।
गोपीपीनपयोधरमर्दनचञ्चलकरयुगशाली ॥ ध्रुवपदम् ॥
नामसमेतं कृतसङ्केतं वादयते मृदुवेणुम्।
बहु मनुतेऽतनु ते तनुसङ्गतपवनचलितमपि रेणुम् ॥ धीर० ॥ २ ॥

अनुवाद—श्रीराधे! वे तुम्हारे नाम का संकेत करते हुए कोमल वंशी बजा रहे हैं। तुम्हारे शरीर को छूकर चलने वाली वायु के साथ आयी हुयी बहुत अधिक धूलि को भी बहुत अच्छा जानते हैं ॥ २ ॥

अपि च—नामसमेतमिति। हे राधे! स हरिर्मृदुवेणुं कोमलवंशीं वादयते। मृद्विति क्रियाविशेषणं वा। कथम्? नामसमेतं यथा स्यात्तथा च नामाक्षरसंयुक्तं कृत-सङ्केतं यथा स्यात्तथा च। पुनस्ते तव तनुः शरीरं शरीरसङ्गतपवनचलितं रेणुमपि बहु मनुते। कथम्? अतनु अनल्पं यथा भवति तथा ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—सखी श्रीराधाजी से कहती है कि यदि तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास न हो तो वहाँ से आती हुई भगवान् श्रीकृष्ण की बंशी की ध्वनि को ही सुन लो। वे तुम्हारा नाम लेकर वंशी बजाते हुए तुम्हें मिलने का संकेत करते हैं। किञ्च वे तुम्हारे शरीर को संस्पर्श करके आती हुयी जो वायु है, उसके साथ उड़ी हुई धूल भी यदि उन पर गिर पड़ती है तो वे उसका बड़ा ही सम्मान करते हैं ॥ २ ॥

पतति पतत्रे विचलति पत्रे शङ्कितभवदुपयानम्।
रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पन्थानम् ॥ धीर० ॥ ३ ॥

अनुवाद—श्रीभगवान् शय्या का निर्माण करते हैं और जब किसी पक्षी के वृक्ष पर बैठने से पत्ते चञ्चल होते हैं तो वे घबराकर तुम्हारा रास्ता देखते हैं कि कहीं श्रीराधा तो नहीं आ रही हैं ॥ ३ ॥

अपि च—पततीति। हे राधे! हरिः शयनं रचयति। तव पन्थानं पश्यति। कथम्? सचकितनयनं यथा भवति तथा। किम्भूतं पन्थानम्? शङ्कितभवदुपयानम्। शङ्कितं भवत्या उपयानमागमो यस्मिंस्तत्। क्व सति? पतत्रे पक्षिपत्रे पतति सति। पुनः क्व सति? पत्रे वृक्षपत्रे विचलति सति ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—निकुञ्ज में निवास करते हुए श्रीभगवान् तुम्हारे आने की प्रतीक्षा में शय्या का निर्माण करते हैं और जब कभी कोई पक्षी वृक्ष पर बैठता है तो वृक्ष के पत्ते चञ्चल हो उठते हैं, उस समय पत्तों की मर्मर ध्वनि को सुनकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीभगवान् को यह शङ्का होने लगती है कि कहीं किसी ओर से श्रीराधा तो नहीं आ रही हैं। वे सहसा घबराकर तुम्हारा रास्ता देखने लगते हैं ॥ ३ ॥

मुखरमधीरं त्यज मञ्जीरं रिपुमिव केलिसुलोलम्।
चल सखि! कुञ्जं सतिमिरपुञ्जं शीलय नीलनिचोलम्। धीर० ॥ ४ ॥

अनुवाद—सखि! कुञ्ज में चलो, चञ्चल तथा केलि करने वाले मञ्जीर को शत्रु के समान त्याग दो, अन्धकार युक्त नीला वस्त्र पहन लो ॥ ४ ॥

अपि च—मुखरमिति। हे सखि राधे! कुञ्जं चल। अभिसारानुरूपां सामग्रीं शिक्षयति—मञ्जीरं नूपुरं त्यज। किम्भूतं मञ्जीरम्? अधीरमज्ञम्। अत एव मुखरं वाचालमभिसारोचितं न जानाति। अथवा—साध्वेतन्मञ्जीरस्य मुखरत्वं यतो निमित्तनैमित्तिकं, कुतो मञ्जीरध्वनावित्यत उत्पत्तेः। पुनः किम्भूतम्? केलौ क्रीडायां सुलोलमतिलोलम्। अत एव रिपुमिव। अपि च—नीलनिचोलं नीलं रक्तकृष्णं वस्त्रं शीलय परिधेहि। किम्भूतम्? कुञ्जे तिमिरपुञ्जेन सहितम्। अथवा—सतिमिरपुञ्जं यथा स्यात्तथा चल ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् से मिलने के लिए उत्कण्ठित श्रीराधा को देखकर सखि कहती है कि सखि! इस समय अन्धेरा हो गया है। अन्धेरे में ही अभिसारिकाएँ अपने पतियों से मिलने के लिए जाया करती हैं। तुम भी अन्धेरे में ही उस कुञ्ज में चली चलो, जहाँ पर भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसके लिए तुम अपने इस नूपुर को उतार दो, क्योंकि यह तुम्हारे लिए शत्रु के समान है। यह जड़ है, क्योंकि अवसर को जाने बिना सर्वदा आवाज किया करता है। अपनी चञ्चलता के कारण सदा केलि किया करता है। शत्रु भी मुखर, चञ्चल तथा केलि करने वाला होता है। अतएव इसका त्याग तो तुम उसी प्रकार कर दो जिस प्रकार कोई अपने शत्रु का परित्याग कर देता है। वहाँ पर चलने के लिए तुम नीला वस्त्र पहन लो। इससे तुम्हारे मार्ग का अन्धेरा और बढ़ जायेगा ॥ ४ ॥

उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलबलाके।
तडिदिव पीते! रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके। धीर० ॥ ५ ॥

अनुवाद—हे विद्युत् के समान पीतवर्ण वाली राधे! अपने पुण्य के परिणामस्वरूप विपरीत रतिकाल में श्रीभगवान् के हार से सुशोभित वक्षःस्थल के ऊपर ऐसे सुशोभित होओगी, जिस प्रकार मेघ के ऊपर चञ्चल बलाका सुशोभित हो रही हो ॥ ५ ॥

उरसीति। हे राधे! हे पीते पीतवर्णे गौरि! त्वं मुरारेरुरसि सुकृतविपाके पुण्यपरिणामे राजसि राजिष्यसि। वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवत्। किम्भूत उरसि? उपहित आरोपितो हारो यस्मिन्। का कस्मिन्निव? तरलबलाके चञ्चलपक्षिविशेषे घन इव मेघ इव। केव? तडिदिव। कदा? रतिविपरीते पुरुषायितरतिसमये। उपहितहारमुरस्तरलबलाकघनेनोपमीयते। सा पीता तडित्। तस्याः पुरुषायिते चञ्चलत्वम् ॥५॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधा की भगवान् से मिलने की उत्कण्ठा को और अधिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बढ़ाने के लिए सखी उनसे कहती है कि हे पीत वर्ण वाली गौराङ्गी राधे ! यहाँ से चलकर जब तुम श्रीभगवान् से मिलोगी तो उस समय रतिकेलि के प्रसङ्ग में विपरीत रतिकाल में श्रीभगवान् के वक्षःस्थल पर तुम उसी तरह से सुशोभित होओगी, जिस प्रकार किसी मेघ के ऊपर बलाका बैठी हो। श्रीभगवान् की श्याम वर्ण की शोभा जलभरे मेघ के समान है। उस पर विद्यमान उजला हार बलाका की शोभा से सम्पन्न होगा। पीतवर्ण वाली तुम तो अपने पुण्य के परिणामस्वरूप पुरुषायित रतिकाल में अपनी चञ्चलता के कारण उस प्रकार सुशोभित होओगी जिस प्रकार काले-काले मेघ के बीच में पीतवर्ण की बिजली चमकती है। अतएव यह तुम्हारे लिए बड़ी ही मनोहर वेला है, तुम सद्यः श्रीभगवान् से मिलो ॥ ५ ॥

विगलितवसनं परिहृतरसनं घटय जघनमपिधानम् ।
किसलयशयने पङ्कजनयने निधिमिव हर्षनिदानम् । धीर० ॥ ६ ॥

अनुवाद—हे कमल के सदृश नेत्रों वाली राधे ! नवपल्लवरचित शय्या पर तुम स्वयं विवस्त्र तथा करधनी रहित आनन्दकरस्वरूप अपने जाँघों को रखो ॥ ६ ॥

विगलितेति । हे राधे ! किसलयशयने शय्यायां वर्तमाने पङ्कजनयने पुण्डरीकाक्षे जघनं घटय । किम्भूतं जघनम् ? विगलितवसनम्, स्वयमेव ततः परिहृतरसनं त्यक्त-मेखलम् । अत एव वसनपिधानरहितम् । अत एव निधिना उपमीयते । कमिव ? निधिमिव । किम्भूतं निधिं जघनं च ? हर्षनिदानं हर्षस्यादिकारणम् ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—इससे पहले के पद्य द्वारा श्रीराधा में विपरीत रति की उत्कण्ठा को उत्पन्न करके पुनः नायक श्रीभगवान् के द्वारा की जाने वाली रतिक्रीड़ा के प्रति श्रीराधा की उत्कण्ठा को उत्पन्न करती हुयी सखी कहती है कि हे कमल के समान मनोहर नेत्रों वाली श्रीराधे ! कोटिकन्दर्पसुन्दर श्रीभगवान् की दिव्य शोभा को देखकर तुम्हारे जाँघों से वस्त्र तो स्वयम् खिसक जायेगा। तुम्हारी जाँघे विवस्त्र हो जायेंगीं, करधनी में लगी छोटी-छोटी घुँघरु हट जायेंगी। इस प्रकार के अपने विवस्त्र जाँघों को श्रीभगवान् के द्वारा अपने हाथों से रचित नवपल्लवों की शय्या पर रखना। अर्थात् उस शय्या पर तुम शयन करना। तुम्हारी ये जाँघें आनन्द के सागर के समान हैं। अर्थात् श्रीभगवान् को अनन्त आनन्द प्रदान करने में समर्थ हैं ॥ ६ ॥

हरिरभिमानी रजनिरिदानीमियमपि याति विरामम् ।
कुरु मम वचनं सत्वररचनं पूरय मधुरिपुकामम् । धीर० ॥ ७ ॥

अनुवाद—श्रीभगवान् मनस्वी हैं, यह रात भी बितने जा रही है, अतएव शीघ्र मेरी बातों को मानो और चलकर श्रीभगवान् की कामना को पूरा करो ॥ ७ ॥

हरिरभिमानीति । हे राधे ! सत्वररचनं शीघ्रसाधनं यथा स्यात्तथा मम वचनं कुरु । किम्भूतं वचनम् ? मधुरिपुकामं कृष्णवाञ्छां पूरय । न पूर्यते चेत् किं स्यात् ? हरिरभिमानी, त्वत्तो लाघवं न सहते, पश्चात्त्वां त्यक्ष्यति । पश्चादपि करिष्यसि चेदिदानी-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेव कुरु। अन्यथेदानीमियं रजनिरपि विरामं याति। अभिसारकालोऽपि यास्यति। वर्तमानसामीप्याद्वर्तमानवत् ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—सखी कहती है कि श्रीभगवान् भी मनस्वी हैं। अतएव सम्भव है कि वे अपने स्वाभिमान की सुरक्षा के लिए तुम्हारे पास तक नहीं आ सकें। हो सकता है कि वे तुम्हारा त्याग भी कर दें। अतएव जिस कार्य को तुम बाद में करने वाली हो उस काम को अभी ही क्यों नहीं कर लेती? यह रात बीतती जा रही है। अतः तुम मेरी मानो। तुम चलो श्रीभगवान् के पास और उनकी इच्छाओं को पूर्ण करो। रात के बीत जाने पर तो अभिसरण की वेला भी समाप्त हो जायेगी ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे भणति परमरमणीयम्।
प्रमुदितहृदयं हरिमतिसदयं नमत सुकृतकमनीयम् ॥ धीर० ॥ ८ ॥

अनुवाद—हे श्रीवैष्णवो! अत्यन्त मनोहर कविता करने वाले तथा श्रीहरि की सेवा करने वाले श्रीजयदेव कवि पर प्रसन्न रहने वाले तथा कृपा करने वाले पुण्य के समान कमनीय श्रीभगवान् को नमस्कार करो ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवेति। हे वैष्णवाः! हरिं नमत नमस्कुरुत। किम्भूतं हरिम्? जयदेवे अतिसदयम्। किम्भूते जयदेवे? परमरमणीयमिदं पूर्वोक्तं भणति। तत एव प्रमुदितहृदयम्। पुनः किम्भूते जयदेवे? कृतहरिसेवे। किम्भूतं हरिम्? सुकृतमिव कमनीयं मनोहरम् ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि हे श्रीवैष्णवो! जयदेव कवि अत्यन्त रमणीय कविता श्रीभगवान् के विषय में किया करते हैं। अतएव श्रीभगवान् उन पर हृदय से प्रसन्न रहा करते हैं, क्योंकि जयदेव कवि ने श्रीभगवान् की सेवा इस काव्यरचना के माध्यम से की है। श्रीभगवान् अत्यन्त दयालु हैं। वे उसी प्रकार मनोहर हैं जिस प्रकार पुण्य। उन श्रीभगवान् को आप लोग नमस्कार करें ॥ ८ ॥

विकिरति मुहुः श्वासानाशाः पुरो मुहुरीक्षते
प्रविशति मुहुः कुञ्जं गुञ्जन्मुहुर्बहु ताम्यति।
रचयति मुहुः शय्यां पर्याकुलं मुहुरीक्षते
मदनकदनक्लान्तः कान्ते! प्रियस्तव वर्तते ॥ ३ ॥

अनुवाद—प्रिये राधे! तुम्हारे पति कामजन्य संताप से संतप्त हैं। वे बार-बार दीर्घ श्वास लेते हुए दिशाओं में बार-बार देखते हैं। वे बार-बार अव्यक्त शब्द करते हुए लताकुञ्ज में प्रवेश करते हैं और दुःखी होते हैं। वे बार-बार शय्या का निर्माण करते हैं तथा घबरा कर बार-बार देखते हैं ॥ ३ ॥

इदानीं सत्वरागमनाय प्रोत्साहयति—विकिरतीति। हे कान्ते! तव प्रियो मदनकदनक्लान्तो वर्तते मदनेन क्लान्तिं प्राप्तो वर्तते। तथाविधः सन् किं करोतीत्याह—श्वासं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नागतैवेति कृत्वा मुहुः श्वासान्विकिरति निःश्वासधारां मुञ्चति। नागतैवेति कृत्वाग्रे मुहुर्वारंवारमाशा ईक्षते विलोकयति। व्याकुलतया कस्या दिशः समेष्यतीति सर्वा एककालमिवावलोकयति। तत्राप्यदृष्ट्वा भ्रान्तः सन्कुञ्जं प्रविष्टा भविष्यतीति मुहुर्वारंवारं कुञ्जं प्रविशति। मुहुर्मुहुरिति कोऽर्थः ? तत्राप्यदृष्ट्वा बहिर्निर्यातस्तत्रैव निह्नुत इव तिष्ठतीति मुहुर्मुहुः प्रविशतीति। मुहुर्मुहुर्वारंवारं 'कुतो नागता, किं केनचिन्निवारिता, उत कुतो भयाद्वा ?' इत्यादि तस्या अनागमनहेतुं विमृश्य मुहुर्वारंवारं बहु बहुविधं गुञ्जन् अव्यक्तशब्दं कुर्वन् ताम्यति ग्लायति। अथवा—वृथेदं विमर्शनम्, आगमिष्यत्येवेति मुहुः शय्यां रचयति। तथाप्यदृष्ट्वा पर्याकुलं यथा स्यात्तथा ममानुरागादागमिष्यत्येवेति मुहुरीक्षते इति 'कदन'शब्दतात्पर्यम्। हरिणी छन्दः। दीपकालङ्कारः॥ ३॥

भावप्रकाशिका—इस ग्यारहवें प्रबन्ध के प्रारम्भ होने से पूर्व दो श्लोक आ चुके हैं; अतएव यहाँ से इस प्रबन्ध के उपसंहार रूप में तीसरा श्लोक आया है।

इस श्लोक में सखी श्रीराधाजी को शीघ्र श्रीभगवान् के सन्निकट पहुँचने के लिए प्रेरित करती हुई कह रही है कि इस समय तुम्हारे प्रियतम श्रीभगवान् तुम्हारे विरह में कामजन्य कष्ट से दुःखी हैं। अतएव वे बारम्बार दीर्घ निःश्वास छोड़ते हैं। उन्हें यह सोच कर कष्ट होता है कि इतनी वेला बीत गयी और अभी तक तुम उनके पास नहीं पहुँची। तुम्हारे पहुँचने की ही प्रतीक्षा में वे बारम्बार चारों तरफ़ देखते हैं। तुम्हें किसी भी तरफ से नहीं आती हुई देखकर वे बार-बार लताकुञ्ज में प्रवेश करते हैं। बार-बार लताकुञ्ज में प्रवेश करने का अभिप्राय यह है कि उन्हें यह शंका होती है कि कहीं आकर राधा लताकुञ्ज में ही छिप न गयी हो, अतएव वे बार-बार जाकर देखते हैं कि श्रीराधा क्यों नहीं आयी ? उसके नहीं आने का क्या कारण है ? ऐसा सोचकर वे बार-बार कुछ अव्यक्त शब्द भी करते हैं और वे कष्ट का अनुभव भी करते हैं।

जब उनके मन में यह विचार आता है कि श्रीराधा अवश्य आयेगी। उसके नहीं आने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है, तो वे तुम्हारे लिए किसलय की शय्या का निर्माण करने लगते हैं तथा वे घबरा कर बार-बार देखते हैं।

इस श्लोक का हरिणी छन्द तथा दीपकालङ्कार है॥ ३॥

त्वद्वाम्येन समं समग्रमधुना तिग्मांशुरस्तं गतो
गोविन्दस्य मनोरथेन च समं प्राप्तं तमः सान्द्रताम्।
कोकानां करुणस्वनेन सदृशी दीर्घा मदभ्यर्थना
तन्मुग्धे ! विफलं विलम्बनमसौ रम्योऽभिसारक्षणः॥ ४॥

अनुवाद—हे मुग्धे ! तुम्हारी वक्रता के साथ ही साथ यह सम्पूर्ण सूर्य भी अस्त हो गया। श्रीभगवान् के तुम्हारे प्राप्त होने के मनोरथ के साथ ही अन्धकार घना हो गया। चक्रवाक पक्षी के करुण स्वर के समान मेरी सम्पूर्ण प्रार्थना व्यर्थ हो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गयी, अतएव अभिसरण की मनोहर वेला है। अब तुम्हारा विलम्ब करना व्यर्थ है ॥ ४ ॥

इदानीं साम्प्रतमेव गन्तुं साम्प्रतमिति हेतुमाह—त्वद्वाम्येनेति। हे मुग्धे! समग्रं यथा स्यात्तथाधुना त्वद्वाम्येन समं तव वक्रतया सहितं रविरस्तं गतः (रविः) तवाभिमानश्चोभयमेवाभिसारविलम्बकर्तृ गतमित्यर्थः। च पुनर्गोविन्दस्य मनोरथेन सह तमः सान्द्रतां प्राप्तम्। तिग्मांशावस्तं गते चन्द्रे चानुदिते तमः सान्द्रं भवत्येव। अयं कालोऽभिसारत्वरायै। अनु च सान्द्रे तमसि मत्प्रियाऽऽगमिष्यतीति गोविन्दस्य मनोरथो वृद्धिं प्राप्तः। अनु च मम प्रार्थना कोकानां करुणस्वनेन सदृशी दीर्घा जाता। सदृशीति विरहाधिक्यात्करुणनिवेदकस्वरत्वाच्च। तत्तस्मात्कारणाद्विलम्बनं विफलम्, अभिसरणक्षणातिपातो निरर्थकः। असावभिसारक्षणो रम्यो वर्तते। ईदृशी प्रियवादिनी प्रियसखी, सान्द्रान्धतमसं चानुकूलं, नीलनिचोलादि साधनं, प्रियतमस्त्वदेकतानः। एवं सति गमनविलम्बने 'मुग्धे' इति सम्बोधनमौचितीमावहति। सहोक्तिरलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी श्रीराधाजी को यह बतला रही है कि तुम्हारा इसी समय वहाँ चलना उचित है व्यर्थ में देर न करो। वह कहती है कि तुम मान करके अपने वाम स्वभाव के कारण अब तक बैठी रह गयी। अब तो तुम्हारा मान छूट चुका है। तुम्हारे मान के अस्त होने के साथ ही साथ सूर्य भी अस्त हो गया। अर्थात् तुम्हारा मान तथा सूर्य दोनों अस्त हो चुके हैं। अतएव तुम्हारे अभिसरण की क्रिया में किसी प्रकार की बाधा नहीं है। दिनभर तो श्रीभगवान् की तुम्हारे मिलने की आशा बनी थी, किन्तु सूर्य डूब गया तो जैसे-जैसे अन्धकार बढ़ रहा है, वैसे ही वैसे श्रीभगवान् की तुमसे मिलने की आशा भी बढ़ती जा रही है। सायंकाल में चकवा-चकवी दोनों एक-दूसरे से बिछुड़ कर विरहवेदना से दीर्घ करुण ध्वनि करने लगते हैं। उनकी दीर्घ करुण ध्वनि के ही समान मेरे द्वारा तुम्हारे समक्ष श्रीभगवान् से मिलने के लिए की गयी प्रार्थना भी व्यर्थ हो गयी। किन्तु यह सायंकाल की वेला, जब कि अन्धकार घना हो रहा है, मनोहर वेला है। यह तुम्हारे अभिसार के लायक वेला है। अतएव अब तुम्हारा विलम्ब करना बेकार है।

इस श्लोक में सहोक्ति अलङ्कार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ ४ ॥

आश्लेषादनु चुम्बनादनु नखोल्लेखादनु स्वान्तज-
प्रोद्बोधादनु सम्भ्रमादनु रतारम्भादनु प्रीतयोः।
अन्यार्थं गतयोर्भ्रमान्मिलितयोः सम्भाषणैर्जानतो-
र्दम्पत्योरिह को न को न तमसि व्रीडाविमिश्रो रसः ॥ ५ ॥

अनुवाद—इस अन्धकार में दूसरे नायक तथा दूसरी नायिका को प्राप्त करने के लिए गये हुए अन्य नायक तथा अन्य नायिका के भ्रम से मिले हुए बातचीत के पश्चात् एक-दूसरे को पहचानने वाले नायक तथा नायिका को एक-दूसरे के आलिङ्गन के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पश्चात् चुम्बन करने, उसके पश्चात् एक-दूसरे को नखक्षत करने, उसके पश्चात् कामोद्बोध होने, तत्पश्चात् शीघ्रतापूर्वक एक-दूसरे से मिलने, तदनन्तर सुरतक्रीड़ा प्रारम्भ होने, सुरतक्रीड़ा के पश्चात् दोनों को प्रसन्नता अनुभव करने के कारण इस अन्धकार में लज्जा से मिश्रित कौन-सा रस नहीं प्राप्त होता है ? ॥ ५ ॥

तत्रागतायास्ते बहुविधकामकौतुकं भविष्यतीति प्रलोभयति—आश्लेषादिति । इह तमसि वर्तमाने दम्पत्योर्व्रीडाविमिश्रः कः को रसो न इति न, अपि तु सर्व एव रसो भवतीति । व्रीडाविमिश्रत्वे हि सर्वमपि सर्वरसागमं भवतीति । किम्भूतयोर्दम्पत्योः ? अन्यार्थं गतयोः परस्त्रीपरपुरुषत्वेन प्राप्तयोः । पुनः किम्भूतयोः ? भ्रमान्मिलितयोः प्रतिकुञ्जमितस्ततः परिभ्रमणान्मिलितयोः । सान्द्रे तमसि परस्परालापैरेव जानतोः । अथवा—आलापैरित्यत्र सात्त्विकभावेन स्वरभङ्गादेवावगमात् । अथवा—अन्यमर्थं प्रयोजनमुद्दिश्य गतयोः । परस्त्रीपरपुरुषौ हि व्याजान्तरेणैव मिलतः । अन्येषां भ्रान्तिमुत्पाद्य मिलितयोः । तमेव रसमाह—आश्लेषादनु भयस्थायिभावो भयानकः प्रादुर्भावमासादयति । चुम्बनादनु मा मेति क्षामाक्षरोल्लापिनीं कान्तां कामलम्प्य कृतं हठवृत्त्येति शोकमिवानुभवन्करुणाकलितान्तःकरणो भवति । तदनु प्रोत्साहनार्थमुत्साहात्मा नखोल्लेखादनु वीरोऽवतरति । एवं साधने सम्मिलिते किमिदमपूर्वं सुखमन्वभवमिति भावान्तरं गमितयोर्विस्मयसहचरोऽद्भुत उद्भटतामाटीकते । एवं च कामोद्बोधे नानाविलासविलसितादनु हाससहावस्थानो हास्यः समुल्लसति । एवं कृतपरिकरसङ्करः सकलरसचक्रवर्ती आनन्दमधुसन्दोहमधुरो रतिसहचरः शृङ्गाररसः समुन्मिषति । तद्व्यतिकरादनु प्रीतयोरुक्तरसः सर्वोऽपि व्रीडासंवलितः शृङ्गारत्वे समुन्मिषति । अत्राश्लेषानन्तरं चुम्बनं, ततो नखक्षतं, ततः कामविकाराः, ततो मैथुनं, ततः प्रीतिः, ततो रसभावनेति क्रमोऽपि कामशास्त्रकथितः । तदुक्तं भरतेन—'आश्लेषचुम्बननखक्षतकामबोधशीघ्रत्वमैथुनमनन्तसुखप्रबोधम् । प्रीतिस्ततोऽपि रसभावनमेव कार्यमेवं नितान्तचतुराः सुचिरं रमन्ते ॥' शार्दूलविक्रीडितं छन्दः । दीपकमलङ्कारः समुच्चयो भ्रान्तिमांश्च ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी श्रीराधाजी को इस बात का प्रलोभन देती है कि श्रीभगवान् के सन्निकट पहुँचने पर तुमको अनेक प्रकार का कामकौतुक प्राप्त होगा ।

वह कहती है कि अन्धकार हो जाने पर अन्धेरे में नायक अन्य नायिका को तथा नायिका अन्य नायक को प्राप्त करने के लिए यदि निकले हों तथा वे दोनों एक-दूसरे को अन्य नायक तथा अन्य नायिका समझकर मिल जायें तो फिर वे एक-दूसरे का सहसा आलिङ्गन करते हैं, किन्तु उन दोनों को भय रहता है कि कहीं हम दोनों को मिलते हुए कोई दूसरा देख न ले, अतएव वहाँ पर भयानक नामक रस प्राप्त होता है । उसके पश्चात् नायिका के बार-बार मना करने पर नायक अपनी हठवृत्ति के कारण चुम्बन करता है, दन्तक्षत करता है । फिर उसे शोक होता है कि मैंने इसे व्यर्थ ही दन्तक्षत कर दिया । इसके लाख मना करने पर भी नहीं माना । इस प्रकार वहाँ पर उसे करुणरस प्राप्त होता है । पुनः काम को प्रोत्साहित करने के लिए एक-दूसरे को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नखक्षत करते हैं। इस प्रकार वहाँ पर उत्साह-प्रधान वीररस अनुभूत होता है। उसके पश्चात् परस्पर दोनों एक-दूसरे के साथ रतिक्रीड़ा करने के लिए उद्यत होते हैं। उस समय उनको विस्मय-प्रधान अद्‌भुत रस की प्राप्ति होती है। पुनः कामोद्रेक होने के कारण एक-दूसरे के साथ हास्य-प्रधान बातें करते हुए जब वे रतिक्रीड़ा में लिप्त होते हैं, उस समय उन दोनों को हास्य रस की अनुभूति होती है। पुनः एक-दूसरे से रतिक्रीड़ा करके परस्पर जब आनन्दानुभव करते हैं, उस समय उन्हें रसराज शृङ्गार का अनुभव होता है। इस प्रकार उन अन्धकार में मिलने वाले तथा पहले नहीं पहचानने वाले दोनों जब आपस में एक-दूसरे को पहचान जाते हैं तो उन दोनों को लज्जा होती है। वे जानते हैं कि इसने जान लिया कि हम दूसरी नायिका को प्राप्त करने के लिए आये थे अथवा हम दूसरे नायक को प्राप्त करने के लिए आये थे। किन्तु एक-दूसरे से परस्पर किसी पर दोषारोपण अथवा क्रोध इसलिए नहीं करते कि उस समय दोनों का दोष समान होता है। इस प्रकार उन नायक-नायिकाओं को अन्धकार में लज्जा-मिश्रित सम्पूर्ण रसों का अनुभव होता है।

यहाँ पर चौर्यरत के सम्पूर्ण क्रम को भी बतलाया गया है। भरत मुनि ने भी कहा है—

'आश्लेषचुम्बननखक्षतकामबोधशीघ्रत्वमैथुनमनन्तसुखप्रबोधम्।
प्रीतिस्ततोऽपि रसभावनमेव कार्यमेवं नितान्तचतुराः सुचिरं रमन्ते'॥

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द, दीपक, समुच्चय तथा भ्रान्तिमान् अलङ्कारों की संसृष्टि है।॥ ५॥

सभयचकितं विन्यस्यन्तीं दृशं तिमिरे पथि
प्रतितरु मुहुः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम्।
कथमपि रहःप्राप्तामङ्गैरनङ्गतरङ्गिभिः
सुमुखि! सुभगः पश्यन्स त्वामुपैतु कृतार्थताम्॥ ६॥

अनुवाद—ऐ सुन्दर मुखड़े वाली श्रीराधे! अन्धकारपूर्ण रास्ते पर भय तथा आश्चर्य से परिपूर्ण होकर देखती हुई, प्रत्येक पेड़ के सन्निकट खड़ी होकर धीरे-धीरे पैर को बढ़ाती हुई किसी तरह संकेतस्थान में पहुँची हुई तथा कामोद्रेक के द्वारा उपलक्षित तुमको देखकर सुभग श्रीभगवान् श्रीकृष्ण कृतकृत्य होएँ।॥ ६॥

इदानीं त्वत्प्राप्तिरेव श्रीकृष्णस्य सर्वस्वमिति दर्शयन्त्याह—सभयेति। हे सुमुखि राधे! स सुभगः श्रीकृष्णस्त्वां पश्यञ्जानन्कृतार्थतामुपैतु कृतकृत्यो भवतु। अत्र दृशि-ज्ञाने वर्तेते। किम्भूतां त्वाम्? तिमिरे तिमिरयति पथि मार्गे सभयचकितं यथा स्यात्तथा दृशं विन्यस्यन्तीम्। सभयचकितमिति भयविस्मयस्थायिभावौ भयानकाद्भुता-वुक्तौ भवतः। निबिडे हि तमसि भयं भवत्येव। तादृशी च भावितभयानके पथि सङ्केत-स्थानं यामीति विस्मयः। एवं प्रियस्यापि प्रियतमेन समं समागमो भविष्यति न वेति शङ्कावकाशोऽपि। किम्भूतां त्वाम्? प्रतितरु तरुं तरुं प्रति स्तननितम्बभारभरालस-तया मुहुर्वारंवारं स्थित्वा कोऽपि मां मा द्राक्षीदिति मन्दं पदानि वितन्वतीम्। प्रतितरु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अत्र वा स मे प्रियो भविष्यतीत्याशङ्कया मुहुः स्मित्वेति योजनीयम्। किम्भूताम्? कथमपि केनचित्प्रकारेण पूर्वोक्तसखीवचननीलनिचोलादिसाधनसम्पत्त्याऽभिमानपरित्यागेन मय्यनुकम्पा वा रहःप्राप्ताम्। पुनः किम्भूताम्? अनङ्गतरङ्गभिः कामकल्लोलकलैरङ्गैरुपलक्षिताम्। अत्र तमसो नैबिडयाद्दर्शनायोग्यत्वेऽङ्गस्पर्शनादेव ज्ञातेति कृत्वा दृशेर्ज्ञानार्थो व्याख्यात इत्याकूतम्। अत्र हरिणी वृत्तम्। अतिशयोक्तिरलङ्कारः॥ ६॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी श्रीराधाजी को यह बतला रही है कि तुम्हारी प्राप्ति श्रीभगवान् का सर्वस्व है। तुम यहाँ से जब जाओगी तो रास्ता अन्धकार पूर्ण होगा। उस अन्धेरे रास्ते में भय तथा आश्चर्यपूर्वक तुम देखते हुए चलोगी, क्योंकि घोर अन्धकारपूर्ण रास्ते में चलने पर भय का होना तो स्वाभाविक ही है तथा इस प्रकार के भयानक मार्ग से मैं संकेतस्थान में जा रही हूँ—यह सोचकर तुम्हें आश्चर्य भी होगा। इस प्रकार जाने पर भी मेरी प्रियतम श्रीकृष्ण से भेंट होगी कि नहीं—इस तरह की तुम्हें शङ्का भी होगी। स्तन तथा नितम्ब के भार से आलस्य युक्त होने के कारण प्रत्येक वृक्ष के नीचे ठहर-ठहर कर तथा इस प्रकार जाती हुई मुझको कोई देख न ले, इस शङ्का से अपने पैरों को धीरे-धीरे बढ़ाती हुई मेरी बातों को मानकर अभिमान का त्याग करके वस्त्रों को धारण किये हुए संकेतस्थान पर पहुँची हुई तथा कामजन्य विकारों से समलंकृत तुमको आयी हुई देखकर वे सुभग भगवान् श्रीकृष्ण कृतकृत्य हो जायेंगें। उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता की अनुभूति होगी।

इस श्लोक में हरिणी छन्द तथा अतिशयोक्ति नामक अलङ्कार है॥ ६॥

राधामुग्धमुखारविन्दमधुपस्त्रैलोक्यमौलिस्थली-
नेपथ्योचितनीलरत्नमवनीभारावतारान्तकः।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषोदयः
कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः॥ ७॥

इति श्रीजयदेवकृतौ श्रीगीतगोविन्देऽभिसारिकावर्णने
साकाङ्क्षपुण्डरीकाक्षो नाम पञ्चमः सर्गः॥ ५॥

अनुवाद—श्रीराधाजी के मुखारविन्द के मधुप के समान, त्रैलोक्य के सर्वोत्कृष्ट स्थान को समलंकृत करने वाले नीलरत्न के समान, पृथिवी का भार बढ़ाने के लिए अवतीर्ण होने वालों को विनष्ट करने वाले, व्रजसुन्दरियों के हृदयस्थ अभिलाषा को पूर्ण करने में अपार सायंकाल के समान तथा कंस के विनाश के लिए धूमकेतु नामक तारा-विशेष के समान देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण आप सबों की रक्षा करे॥ ७॥

इस प्रकार श्रीजयदेव कवि प्रणीत गीतगोविन्द काव्य के अभिसारिका
प्रसंग में साकांक्षपुण्डरीकाक्ष नामक पाँचवां सर्ग पूर्ण हुआ॥ ५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदानीं सम्भोगाख्यं शृङ्गारमवतारयंस्तत्रापातनिकाद्वारेण सर्गान्ताशिषमाह—राधामुग्धेति। देवकीनन्दनः श्रीकृष्णस्त्वामवतु रक्षतु। किम्भूतो देवकीनन्दनः? राधामुग्धमुखारविन्दमधुपः। मुखमरविन्दमिव मुखारविन्दं, मुग्धं च तत् मुखारविन्दं च मुग्धमुखारविन्दम्। राधाया मुग्धमुखारविन्दं तस्मिन्मधुप इव मधुपः। अनेन भावी सम्भोगो द्योतितः। पुनः किम्भूतो हरिः? त्रैलोक्यमौलिस्थलीनां किरीटदेशादीनां नेपथ्योचितं भूषणोचितं नीलरत्नमिव। पुनः किम्भूतो देवकीनन्दनः? अवन्या भूमेर्भारायावतारो जन्म येषां शिशुपालदन्तवक्त्रादीनां तेषामन्तक इवान्तकः। यमसदृशोऽभूदित्यर्थः। पुनः किम्भूतो देवकीनन्दनः? व्रजे सुन्दर्यः व्रजसुन्दर्यः। व्रजसुन्दरीणां जनस्तस्य मनस्तोषप्रदोषोदय इव। पुनः किम्भूतो हरिः? कंसध्वंसनधूमकेतुः कंसस्य ध्वंसनं विनाशस्तत्र धूमकेतुरिव विनाशसूचकस्ताराविशेष इव। जातमात्र एव कंसविनाशं सूचितवानित्यर्थः। अत्र कंसध्वंसने गोपीनां परमेश्वरादन्यत्र गतिविनाशे धूमकेतुर्बृहद्भानुरिव प्रकाशकत्वात्। प्रकाशे हि स्वेच्छाविहारभङ्गो जायते। अथवा—कसेः शातनार्थत्वाद्राधायाः कामेन यच्छातनं तत्र धूमकेतुरिव। स्वच्छन्दप्रदोषोदय इति यदा यदा प्रदोषोदयं वाञ्छति तदा तदा स एवेति। अथवा—प्रगतो दोषोदयो यस्मात्तेन सह क्रीडतीनां दोष एव नास्तीति। अथ च राधामुग्धमुखारविन्दे मधु माधुर्यं पाति रक्षतीति। चिरं विप्रलम्भे हि प्रियदर्शनान्माधुर्यमुपपद्यत एवेति पदानामौचिती। अत्र श्लेषलुप्तोपमापरिकरवर्णोपमालङ्काराः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। पाञ्चाली रीतिः। आरभटी वृत्तिः। गीत्यादि पूर्वोक्तमेव ॥ ७ ॥

प्रत्याहवं पञ्चतयारिसैन्यं यो योजयत्याहवकुम्भकर्णः।
स कुम्भकर्णो रसिकप्रियायाः समस्करोत्पञ्चतयात्र सर्गम् ॥

इति कुम्भकर्णेन विरचितायां गीतगोविन्दटीकायां
रसिकप्रियायां सर्गोऽगात्पञ्चमः ॥

भावप्रकाशिका—पञ्चम सर्ग के इस अन्तिम श्लोक में ग्रन्थकार पाठकों तथा श्रोताओं को आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहते हैं कि श्रीराधाजी का मुख कमल के समान है। जिस प्रकार भ्रमर कमल का सेवन करते हुए उसके पराग का पान करता है, उसी प्रकार श्रीभगवान् भी श्रीराधाजी के मुखकमल के माधुर्य का आस्वादन करते हैं। त्रैलोक्य के सबसे उत्कृष्ट स्थानों को भूषित करने वाले वे नीलमणि के समान हैं। शिशुपाल, दन्तवक्त्र तथा कंस आदि पृथिवी का भार बढ़ाने के लिए अवतीर्ण हुए थे, उन राक्षसों का विनाश करने के कारण श्रीभगवान् अवनीभारावतारान्तक कहे जाते हैं। चूंकि वे व्रज की गोपियों के मन को आनन्दित करने के लिए सायंकाल के समान हैं। सायंकाल होने पर चन्द्रमा उदित हो जाता है तथा कामिनी को अपने प्रेमियो से मिलने का अवसर प्राप्त होता है। अतएव सायंकाल की वेला कामिनियों के लिए अत्यन्त आह्लादक होती है। श्रीभगवान् भी व्रज की गोपियों के मन को स्वच्छन्दतापूर्वक आनन्द प्रदान कर उनकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं। अतएव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे व्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषोदय हैं। किञ्च श्रीभगवान् कंस नामक राक्षस के विनाश के सूचक धूमकेतु तारे के समान हैं। धूमकेतु तारा के उदित होने पर माना जाता है कि राजा का विनाश होने वाला है। श्रीभगवान् का अवतार ही कंस के विनाश का सूचक है। इस प्रकार के विशेषणों से विशिष्ट श्रीभगवान् आप सबों की रक्षा करें।

इस श्लोक में श्लेष, लुप्तोपमा, परिकर तथा वर्णोपमा नामक अलङ्कारों का समावेश है। इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा पाञ्चाली रीति है॥ ७॥

इस प्रकार शिवप्रसाद द्विवेदी कृत गीतगोविन्द काव्य के साकांक्षपुण्डरीकाक्ष नामक पञ्चम सर्ग की भावप्रकाशिका व्याख्या पूर्ण हुई॥ ५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षष्ठः सर्गः

(धन्यवैकुण्ठकुङ्कुमः)

अथ तां गन्तुमशक्तां चिरमनुरक्तां लतागृहे दृष्ट्वा ।
तच्चरितं गोविन्दे मनसिजमन्दे सखी प्राह ।। १ ।।

अनुवाद — इसके पश्चात् श्रीभगवान् के पास जाने में असमर्थ तथा दीर्घकाल से श्रीभगवान् में अनुरक्त श्रीराधा से लतागृह में मिलकर सखी ने कामार्त श्रीभगवान् से उस श्रीराधा की चेष्टाओं को कहा ।। १ ।।

इदानीं कुत्रचित्कुञ्जे राधां संस्थाप्य दूती तच्चेष्टितं कृष्णे विनिवेदयति—अथ तामिति । अथानन्तरं राधासखी तच्चरितं राधायाश्चरितं गोविन्दे निवेदयामास । किम्भूते गोविन्दे ? मनसिजमन्दे । किं कृत्वा ? तां राधां गन्तुमशक्तां ज्ञात्वा । शरीरान्तर्वर्तिन्याः शक्तेर्दर्शनाविषयत्वेन दृष्ट्वेति दृशिरत्र ज्ञानार्थः । किम्भूताम् ? तां चिरं गोविन्देऽनुरक्ताम् । अथवा—लतागृहे इति तस्याधिकरणत्वेन व्याख्येयम् । अत्रैव लतागृहे सङ्केतस्य कृतत्वात् । आर्याछन्दः ।। १ ।।

भावप्रकाशिका—अब सखी श्रीराधाजी को किसी कुंज में रखकर उनकी चेष्टाओं का वर्णन श्रीभगवान् के सन्निकट आकर करती है । इस समय श्रीभगवान् कामार्त हैं, अतएव उनकी गति मन्द पड़ गयी है । उधर श्रीराधाजी श्रीभगवान् के पास पहुँचने में असमर्थ हो गयी थीं, फिर भी उनका श्रीभगवान् में चिरकाल से अनुराग बना हुआ था ।। १ ।।

गुणकरीरागेण रूपकतालेन गीयते । प्रबन्धः ।। १२ ।।

अनुवाद — गुणकरी राग तथा रूपक ताल से यह बारहवाँ प्रबन्ध गाया जाता है ।

पश्यति दिशि दिशि रहसि भवन्तम् ।
तदधरमधुरमधूनि पिबन्तम् ।।
नाथ हरे ! सीदति राधाऽऽवासगृहे ।। ध्रुवपदम् ।। १ ।।

अनुवाद—हे नाथ ! हे हरे ! राधा अपने आवासगृह में दुःखी हो रही है । वह अपने अधर के मधुर मधु को पीने वाले (अपनी मधुर बातों को सुनने वाले) आपको प्रत्येक दिशा में देख रही है ।। १ ।।

पूर्वं ध्रुवपदं व्याक्रियते—नाथ हरे इति । हे नाथ ! आवासगृहे सङ्केतस्थाने राधा सीदति अवसादं प्राप्नोति ।। अथ पदानि—पश्यतीति । सा राधा रहसि रहोनिमित्तान्तरनिमित्तम् एकान्तनिमित्तं वा दिशि दिशि भवन्तं पश्यति । सर्वा दिशस्तस्यास्त्वन्मया एव जाता इत्यर्थः । त्वदद्वैतमभवदित्यर्थः । 'सङ्गमविरहविकल्पे वरमिव विरहो न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सङ्गमस्तस्याः । सङ्गे सापि तथैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे ।' किं कुर्वन्तम् ? तदधरमधुरमधूनि पिबन्तम् । तस्या राधाया एव अधरमधूनि पिबन्तम् एवमवस्यमेवेत्यर्थः । तदधरसंसर्गान्मधुराणि मधूनि यान्यक्षराणि तानि शृण्वन्तम् । अत्यादरं श्रवणं पानमुच्यते । तस्यादरश्रवणेन तस्यालीकत्वं द्योत्यते ।। प्रतिवञ्चनाभावात् ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—सखी श्रीराधाजी की चेष्टाओं का वर्णन करती हुई कहती है कि हे भगवन् ! श्रीराधा संकेतस्थान में दुःख का अनुभव कर रही है । एकान्त में बैठी हुई वह प्रत्येक दिशाओं में अपनी भावना के प्राबल्य के कारण आपको ही देख रही है । अर्थात् उसके लिए सारी दिशाएँ श्रीकृष्णमय हो गयी हैं । उसे प्रतीत हो रहा है कि आप उसके अधर रूपी मधुर मधु का मानों पान कर हैं । यहाँ पर रसिकप्रियाकार 'तदधरमधु' शब्द का अर्थ उसकी मीठी-मीठी बातें मानते हैं और पान शब्द का अर्थ प्रेमपूर्वक श्रवण मानते हैं । किन्तु मेरी दृष्टि में अपने अधर रूपी मधुर मधु का पान अर्थ करना अधिक उचित होगा ॥ १ ॥

त्वदभिसरणरभसेन वलन्ती ।
पतति पदानि कियन्ति चलन्ती ॥ नाथ हरे० ॥ २ ॥

अनुवाद—(वह राधा) अपने अभिसार के उत्साह से उत्साहित प्रसाधनादि कार्यों में व्यापृत होती हुई कुछ ही कदम चलकर गिर पड़ती है ॥ २ ॥

त्वदभिसरणेति । हे माधव ! सा राधा त्वदभिसरणे रभसेन वलन्ती सम्भजमाना । अर्थादभिसारवेगम् । कियन्ति पदानि चलन्ती सती पतति । तस्मात्स्थानादधिकं गन्तुमशक्तेत्यर्थः ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—आपके साथ अभिसरण करने हेतु प्रसाधन आदि कार्यों में लगी हुई वह ज्यों ही कुछ कदम चलती है, त्यों ही मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर जाती है । अतएव वह उस स्थान से अधिक दूर तक चल नहीं सकती है ॥ २ ॥

विहितविशदबिसकिसलयवलया ।
जीवति परमिह तव रतिकलया ॥ नाथ हरे० ॥ ३ ॥

अनुवाद—धवल मृणाल के अंकुर का कंगन पहनी हुई वह आपकी रतिकला से जी रही है ॥ ३ ॥

विहितेति । सा परं तव रतिकलया रतिविज्ञानेन रतिशिल्पेन परं जीवति, नान्य उपायः । किम्भूता सा ? कृतपाण्डुरमृणालाङ्कुरकटका ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधा अपने अंगों के कामजन्य सन्ताप के निवारणार्थ उजले मृणाल के अंकुर से बने कङ्कन को धारण की हुई है । इतना क्षीण तथा कमजोर होने पर भी वह केवल आपके रतिविज्ञान को प्राप्त करने की आशा से जी रही है ॥ ३ ॥

मुहुरवलोकितमण्डनलीला ।
मधुरिपुरहमिति भावनशीला ॥ नाथ हरे० ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद—'मैं ही मधुसूदन हूँ' इस प्रकार की भावना करती हुई वह बार-बार आपके अलङ्करण के साधनों को देखती है ।। ४ ।।

मुहुरिति। सा मुहुर्वारंवारमवलोकिता मण्डनानां लीला विलासो यया सा। इमानि तानि मण्डनानि तत्सुरतसमारम्भयोग्यानीति मुहुर्मुहुः कानिचित्परिदधाति। किम्भूता सती? अहं मधुरिपुरिति भावनशीला ध्यानस्वभावा। एतेन स्त्रीयोग्यानि मण्डनानि मुक्त्वा त्वद्विरहदुःखापनोदाय पुरुषायितसुरतयोग्यानि मण्डनानि दधाना स्वयमेव त्वद्रूपीभूय कालमतिवाहयतीत्यर्थः। अथवा त्वदलाभात्स्वयमेव त्वं च राधा च भूत्वा। 'स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेशः' इति त्वच्चेतोहराणि मण्डनानि आदधाना वर्तते ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—वह स्वयं में यह भावना करती है कि मैं श्रीराधा नहीं अपितु मधुसूदन हूँ। वह स्वयं में ही आपका आरोप कर लेती है और तत्पश्चात् 'ये मुकुट, कुण्डल, वनमाला आदि अलङ्कार श्रीराधा के साथ रमण करने के योग्य हैं' इस प्रकार से भावना करती है, पुनः उन अलङ्कारों को बार-बार धारण करती है। इस प्रकार अपने विरहजन्य दुःखों का अपनोदन करने के लिए स्वयं में पुरुषत्व का आधान कर लेती है तथा सुरतोपयोगी आभूषण को धारण करके वह समय बिताती है ।। ४ ॥

त्वरितमुपैति न कथमभिसारम्।
हरिरिति वदति सखीमनुवारम् ।। नाथ हरे० ।। ५ ।।

अनुवाद—वह बार-बार अपनी सखी से पूछती हैं कि हे सखि! श्रीहरि संकेत-स्थान में शीघ्र क्यों नहीं आते? ।। ५ ।।

त्वरितमिति। सा राधा अनुवारं वारंवारं सखीमिति वदति। इतीति किम्? हे सखि! हरिस्त्वरितं शीघ्रम् अभिसारं सङ्केतस्थानं कथं नोपैति कथं न याति? ।। ५ ॥

भावप्रकाशिका—सखि श्रीभगवान् से कहती है कि जब श्रीराधा मेरे सामने आती है तो यही पूछती है कि हे सखी! श्रीहरि तो प्रणतक्लेशनाशन हैं, अपने भक्तों की अभिलाषा को शीघ्र पूर्ण करने वाले हैं; फिर वे शीघ्र ही संकेतस्थल पर मुझसे मिलने क्यों नहीं आते हैं? ।। ५ ।।

श्लिष्यति चुम्बति जलधरकल्पम्।
हरिरुपगत इति तिमिरमनल्पम् ।। नाथ हरे० ।। ६ ।।

अनुवाद—मेघ के समान प्रतीत होने वाले घने अन्धकार को 'श्रीहरि आ गये' यह समझकर आलिङ्गन तथा चुम्बन करती है ।। ६ ।।

श्लिष्यतीति। हे हरे! सा हरिरुपगत इति कृत्वा स्निग्धनीलत्वसाम्यादनल्पं स्थूलं तिमिरमन्धकारं श्लिष्यति चुम्बति च। किम्भूतं तिमिरम्? किञ्चिज्जलधर-सदृशम् ॥ ६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावप्रकाशिका—हे नाथ ! हे श्रीहरे ! वह कुछ जलभरे मेघ के सदृश श्याम वर्ण वाले विपुल अन्धकार को जब देखती है तो उसे लगता है कि श्रीहरि मेरे पास आ गये हैं और उस विपुल अन्धकार को ही श्रीहरि समझकर उसका आलिङ्गन तथा चुम्बन करने लगती है ॥ ६ ॥

भवति विलम्बिनि विगलितलज्जा ।
विलपति रोदिति वासकसज्जा ॥ नाथ हरे० ॥ ७ ॥

अनुवाद—जब श्रीराधा को इस बात का ज्ञान होता है कि आप नहीं हैं, आप तो आने में विलम्ब कर रहे हैं तो वह लज्जित हो जाती है। वासकसज्जा नायिका वह रोती है, विलाप करती है ॥ ७ ॥

भवतीति। हे हरे ! सा वासकसज्जा नाम नायिका। भवति त्वयि विलम्बनकारिणि सति विलपति विलापान्करोति। रोदिति अश्रूणि विमुञ्चति। 'दूतीमहरहः प्रेष्य सज्जिते वासवेश्मनि। यस्या न मिलति प्रेयान्सा हि वासकसज्जिका ॥' इति ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधा एक वासकसज्जा नायिका है। जो नायिका सदा अपने नायक के पास दूती को प्रेषित करती है, किन्तु उसका नायक उसके गृह में आकर उससे नहीं मिलता है, वह नायिका वासकसज्जा नायिका कहलाती है। श्रीराधा भी ऐसी ही नायिका है। अतएव जब वह यह जान लेती है कि मैं जिसका आलिङ्गन और चुम्बन कर रही हूँ, वह मेरा नायक नहीं अपितु उसके सदृश रूप वाला अन्धकारवैपुल्य है तो वह अपने आचरण पर लज्जित हो जाती है तथा रोने एवं विलाप करने लग जाती है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितम् ।
रसिकजनं तनुतामतिमुदितम् ॥ नाथ हरे० ॥ ८ ॥

अनुवाद—श्रीजयदेव कवि प्रणीत यह गीत रसिकजनों को अत्यन्त आनन्दित करें ॥ ८ ॥

श्रीजयदेवेति। श्रीजयदेवकवेरिदमुदितं रसिकजनम् अतिमुदितं हृष्टतरं तनुताम्। अथवा—रसिकजने मुदितं हर्षं तनुताम् ॥ ८ ॥

तथा च सङ्गीतराजे—'मालवीयः स्मृतो गौडो रागस्तालोऽड्डतालकः। शृङ्गारो विप्रलम्भाख्यो रसो देवाविवर्णनम्। पदसन्ततितस्तेनाः पाटाः स्वरसमुच्चयः ॥ ततः पद्यानि यत्र स्युर्लयमध्यममानतः। स प्रबन्धवरो ज्ञेयो धन्यवैकुण्ठकुङ्कुमः ॥' इति धन्यवैकुण्ठकुङ्कुमनामा द्वादशः प्रबन्धः। शठो नायकः। गूढविप्रियकृच्छठः। चिन्तात्वरावती वासकसज्जा नायिका। तल्लक्षणं—'केलीगृहमथात्मानं मण्डयत्येष्यति प्रिये। सखी दूती·······समाप्ति समगाविति' (?) ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि मैंने जो सखी के द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीराधाजी की चेष्टानिवेदन-विषयक गीत गाया है, यह गीत रसिक भक्तों को अत्यन्त प्रहर्षित करें ॥ ८ ॥

विपुलपुलकपालिः स्फीतसीत्कारमन्त-
जंनितजडिम काकुव्याकुलं व्याहरन्ती ।
तव कितव ! विधायामन्दकन्दर्पचिन्तां
रसजलनिधिमग्ना ध्यानलग्ना मृगाक्षी ॥ १ ॥

अनुवाद—हे धूर्त ! विपुल रोमाञ्च से युक्त तथा अपने मन में उत्पन्न जाडय एवं काकु के द्वारा स्पष्ट रूप से सीत्कार करती हुई वह मृगनयनी श्रीराधा आपके विषय में अतिशय कामभावना करके ध्यानावस्थित होकर आनन्दसागर में निमग्न हो गयी है ॥ १ ॥

इदानीं तस्यास्तदेकपरत्वमाह—विपुलेति । हे कितव धूर्त ! सा मृगाक्षी तव अमन्द-कन्दर्पचिन्तामतिशयितकामचिन्तां कृत्वा विधाय ध्यानलग्ना सती स्मरजलनिधिमग्ना शृङ्गारसागरे लीना । किम्भूता सा ? विपुला महती रोमाञ्चपङ्क्तिर्यस्याः सा । अपि किम्भूता ? स्फीतसीत्कारं प्रवृद्धसीत्कारं यथा स्यात्तथा । अन्तः अर्थात् विरहेणैव जनिताभ्यां जडिमकाकुभ्यां व्याकुलं यथा स्यात्तथा । व्याहरन्ती भाषमाणा । 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति मालिनी छन्दः । रसवदलङ्कारः ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी कह रही है कि श्रीराधा इस समय भगवत्परायण हो गयी है । वह मृगनयनी श्रीराधा आपके विषय में अत्यधिक काम-विषयक चिन्तन करके बहुत अधिक रोमाञ्चित हो जाती है । आपके विरह के कारण उसके मन में जाडय एवं काकु उत्पन्न हो गये हैं । उन दोनों के कारण वह स्पष्ट रूप से अत्यधिक सीत्कार करती है । इस प्रकार वह सर्वदा आपका ध्यान करती हुई आनन्दसागर में निमग्न हो जाती है ।

'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इस लक्षण के अनुसार इस श्लोक में मालिनी छन्द तथा रसवदलङ्कार हैं ॥ १ ॥

अङ्गेष्वाभरणं करोति बहुशः पत्रेऽपि सञ्चारिणि
प्राप्तं त्वां परिशङ्कते वितनुते शय्यां चिरं ध्यायति ।
इत्याकल्पविकल्पतल्परचनासङ्कल्पलीलाशत-
व्यासक्तापि विना त्वया वरतनुर्नैषा निशां नेष्यति ॥ २ ॥

अनुवाद—श्रीराधा अनेक बार आपके मनोनुकूल आभरणों से अपने अङ्गों को सजाती हैं, पत्ते के भी खड़कने पर 'आप आ गये' इस प्रकार की शङ्का करती है, आपके लिए वह शय्या का निर्माण करती है और आपके नहीं आने पर दीर्घकाल तक दुःखी होती है । इस प्रकार अलङ्करण, वितर्क, शय्यानिर्माण, आपके आने के संकल्प आदि अनेक प्रकार की लीलाओं में आसक्त रहकर भी वह सुन्दरी आपके बिना रात्रि को नहीं बिता पा रही है ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदानीं सा राधा ध्यानादिना त्वया सह रममाणापि साक्षात्त्वामलभमाना न कथञ्चिन्निर्वृतिमेष्यतीत्याह—अङ्गेष्विति। हे माधव! एषा मत्सखी। एषेति एतत्पदप्रत्यक्षे व्यापाराद्बुद्धौ प्रत्यक्षीकृत्याह। एषा वरतनुरित्येवं क्रमेण आकल्पविकल्पतल्परचनासङ्कल्पलीलाशतव्यासक्तापि नेपथ्यवितर्ककिसलयशय्याविरचनत्वत्प्राप्त्युचितविलासशयनेष्वासक्तापि सती त्वया विना निशां न नेष्यति निशां नेतुं न शक्ता भविष्यतीति। इतीति किम्? तान्येव कानिचिदाह—अङ्गेषु अवयवेषु त्वच्चित्तापहारि आभरणं करोति। कथं? बहुशः। बहुश इति अननुरूपपरित्यागेन त्वच्चित्तप्रीतिकरपरिग्रहो द्योत्यते। अपि च—पत्रे वृक्षपत्रे पतत्रिपक्षेऽपि वा। 'अपि'शब्दात्तृणादिपरिस्पन्दो लभ्यते। तस्मिन्सञ्चारिणि सञ्चरणशीले त्वामेव प्राप्तं परिशङ्कते विचारयति।' अत्र एवकारं विनापि 'पार्थो धनुर्धरः' इतिवत्सर्वाणि वाक्यानि सावधारणान्येवेति कृत्वा एवकाराक्षेपः। अपि च अवश्यमागमिष्यतीति कृत्वा शय्यां वितनुते। ततस्त्वामपश्यन्ती चिरं त्वामेव ध्यायति। शय्यां विरचय्य तेन सह मयात्रैव कामकेलयः कर्तव्या इति चिरं ध्यायति। अन्योऽपि यः कश्चिन्मानसव्यथाभिभूतो रजन्यतिवाहनेऽसमर्थः स तदतिवाहनार्थं कार्यान्तरव्यासक्त्या चेतो रमयति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं, समुच्चयोऽलङ्कारः॥ २॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी श्रीभगवान् से कहती है कि श्रीराधा इस समय ध्यान आदि के माध्यम से आपके साथ रमण करती हुई भी आपके साक्षात् संयोग को नहीं प्राप्त कर सकने के कारण अशान्त है। श्रीराधाजी की चेष्टाओं का वर्णन करती हुई वह कहती है कि यह मेरी सुन्दरी सखी आपके आगमन की प्रत्याशा में आपके मनोनुकूल आभरणों को अपने अङ्गों पर सजाती है। यह सोचकर कि मेरे इन आभरणों को देखकर श्रीभगवान् प्रसन्न होंगे। उस संकेतस्थान में जब कभी भी वृक्ष का पत्ता खड़कता है तो उसे इस बात की शंका होती है कि श्रीभगवान् आ गये। पुनः उसके मन में यह संकल्प होता है कि श्रीभगवान् यहाँ अवश्य आयेंगे। अतएव वह आपके लिए किसलयों की शय्या का निर्माण करती है। इसके बाद आपकी राह देखती हुई वह आपका ही ध्यान करती है और आपके नहीं आने पर दुःखी भी होती है। इस प्रकार अलङ्कार-धारण, आपके आने की शङ्का, आपके अवश्य आने के सङ्कल्प से शय्या का निर्माण आदि अनेक प्रकार की लीलाओं में संलग्न रहकर भी वह आपके बिना रात्रि को बिता पाने में समर्थ नहीं है।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द और समुच्चय अलङ्कार है॥ २॥

किं विश्राम्यसि कृष्णभोगिभवने भाण्डीरभूमीरुहि
भ्रातर्यासि न दृष्टिगोचरमितः सानन्दनन्दास्पदम्।
राधाया वचनं तदध्वगमुखान्नन्दान्तिके गोपतो
गोविन्दस्य जयन्ति सायमतिथिप्राशस्त्यगर्भा गिरः॥ ३॥

इति श्रीगीतगोविन्दे वासकसज्जावर्णने धन्यवैकुण्ठो नाम षष्ठः सर्गः॥ ६॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद—हे भ्रातः ! कालसर्प के घर में वटवृक्ष के नीचे क्यों विश्राम करते हो ? सामने दिखने वाले आनन्दयुक्त नन्द के घर में चले जाओ। इस प्रकार नन्द के सन्निकट सायंकालिक अतिथि की प्रशंसापूर्ण श्रीराधा की बातों का गोपन करने वाली गोविन्द की वाणियों की जय हो ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीजयदेव कवि प्रणीत गीतगोविन्द काव्य के वासकसज्जा-वर्णन प्रसङ्ग में धन्यवैकुण्ठ नामक छठा सर्ग पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

इदानीमाशीर्व्याजेन सर्गान्तमाविष्करोति—किमिति। गोविंन्दस्य गिरो जयन्ति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते। भावगर्भतया वक्तुर्वैदग्ध्यख्यापनेन सर्वोत्कृष्टत्वम् । तत्त्वेन च नमस्कार्यत्वम् । किम्भूता गिरो वाचः ? सायमतिथिप्राशस्त्यगर्भाः। सायंकालेऽतिथयः सायमतिथयः तेषां प्राशस्त्यं स्वागतादिसम्भारेण प्रशंसा, तद्‌गर्भे यासां ताः। तथा— किंविशिष्टस्य गोविन्दस्य ? नन्दान्तिके नन्दसमीपे तत्तादृक्सङ्केतसूचनारूपमध्वगमुखा-न्निःसृतं राधाया वचनं गोपतः गोपायितुः। गां पालयतीति गोपः, गोपायतेः पचाद्यच् । 'आदायः—' इति तलोपे सार्वविभक्तिकस्तसिः। तस्य गोपतः। अत्र पितुः सङ्केता-शङ्का मा प्रासाङ्क्षीदिति गोपने तात्पर्यम् । अत्र तदपह्नवादपह्नुतिरलङ्कारः। प्रशंसा-छद्मना व्याजोक्तिरपि। पितुः समीपे तादृग्वचो लज्जावहमिति तदपाकरणार्थम् अप्रस्तुत-प्रशंसापि। तदिति किम् ? हे भ्रातः पथिक ! भाण्डीरभूमीरुहि इतः वटवृक्षे। किं विश्राम्यसि ? अत्र विश्रामं मा कृथाः। कुत इति हेतुगर्भविशेषणमाह। किंविशिष्टे वृक्षे ? कृष्णभोगिभवने। कृष्णश्चासौ भोगी च कृष्णभोगी, तस्य भवनं तस्मिन्। कृष्णसर्पावासे इत्यर्थः। अत्र 'भ्रातृ'पदेन भ्रातृव्यत्वम्। तेन च मत्सङ्केतस्थानमेत-दिति व्यज्यते। पक्षे—कृष्णश्चासौ भोगी भृङ्गारी च तस्य निवासः। अत्रार्थद्वयाश्लेषि-कृष्णशब्देन श्लेषोऽलङ्कारः। तर्हि किं कुर्वित्याशङ्क्याह—इतो वटात्सानन्दनन्दास्पदं न यासि अपि तु याहि इति लोडर्थलक्षणो लट्। सानन्दमृद्धिमच्च तन्नन्दास्पदं चेति। अनेनात्र अन्यपरित्यागेन यत्प्रार्थ्यते तत्सुलभमिति। तर्हि दूरे भविष्यतीत्याशङ्क्याह— दृष्टिगोचरम् आसन्नमेव। सानन्देति पथिकविशेषणं वा। साम्प्रतमानन्देऽपि सर्पदंशाद-कुशलतामाप्स्यसीति औचितीमाह। अत्र कृष्णवटाद्यैरालम्बनैर्विभावैस्तदपाकृतिनिषेधा-भिव्यक्तो रतिस्थायी विप्रलम्भाख्यः शृङ्गारो रसः। आशीरुत्तरे अलङ्कृती ॥

निसर्गचित्रोज्ज्वलयुक्तिसर्गं व्याचष्ट षष्ठं रसिकप्रियायाः।
सर्गं नृपग्रामकिरीटरत्नं श्रीकुम्भकर्णस्तृणितस्मरोऽत्र ॥ ३ ॥

इति श्रीमहाराजाधिराजाभिनवभरतश्रीकुम्भकर्णविरचिते श्रीकुम्भस्वामि-
मन्दरस्वादरे गीतगोविन्दविवरणे वासकसज्जावर्णने
धन्यवैकुण्ठो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—अब इस श्लोक के माध्यम से आशीर्वाद देते हुए इस सर्ग का गीतगोविन्दकार उपसंहार करते हैं—सायंकाल के अतिथि की प्रशंसा से युक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीभगवान् की वाणियों की जय हो। श्रीभगवान् की वाणियों की जय-जयकार मनाने से उनकी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध होती है तथा श्रीभगवान् की वे वाणियाँ प्रणम्य हैं, यह भी अर्थ सिद्ध हो जाता है। वे वाणियाँ क्या हैं? इस बात को बतलाते हुए कहते हैं—विश्राम्यसि० इत्यादि। हे भाई (पथिक)! यहाँ काले सर्प के घर में वटवृक्ष के नीचे क्यों विश्राम करते हो? यहाँ से सामने दिखने वाले, थोड़ी ही दूर पर विद्यमान आनन्दयुक्त नन्द के घर में चले जाओ। इस प्रकार नन्द के सन्निकट किसी पथिक के मुँह से निकली हुई राधा-विषयक बात को छिपाने वाली भगवान् श्रीकृष्ण की वाणियाँ ही सर्वोत्कृष्ट एवं प्रणम्य हैं। 'कृष्णभोगिभवने' पद में श्लेषालङ्कार है। इसका कृष्ण ही भोगी अर्थात्शृङ्गारी है, उनके भवनभूत वृक्ष के तले—ऐसा भी एक अर्थ है।

पथिक का कहना है कि हे श्रीराधे! इस समय सायंकाल की वेला में श्रीकृष्ण के साथ इस वृक्ष के तले विहार करना ठीक नहीं, अपने भवन में चली जाओ। चूँकि इस राधा-विषयक बात को छिपाने में तात्पर्य है, अतएव यहाँ पर अपह्नुति अलङ्कार है। यह बात प्रशंसा के बहाने कही गयी है, अतएव व्याजोक्ति अलङ्कार भी है।

चूँकि पिता श्रीनन्द के समीप स्पष्ट रूप से वैसी बात कहना लज्जास्पद था, उसको दूर करने के लिए यह बात कही गयी है, अतः यहाँ पर अप्रस्तुतप्रशंसा भी है।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द, विप्रलम्भ शृङ्गार रस तथा रीति स्थायी-भाव है ॥ ३ ॥

इस प्रकार शिवप्रसाद द्विवेदी कृत गीतगोविन्द काव्य के धन्यवैकुण्ठ नामक षष्ठ सर्ग की भावप्रकाशिका व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सप्तमः सर्गः

(नागरनारायणः)

अत्रान्तरे च कुलटाकुलवर्त्मघात-
सञ्जातपातक इव स्फुटलाञ्छनश्रीः ।
वृन्दावनान्तरमदीपयदंशुजालै-
र्दिक्सुन्दरीवदनचन्दनबिन्दुरिन्दुः ॥ १ ॥

अनुवाद—इसी बीच कुलटाओं के मार्ग में बाधा उत्पन्न करने के कारण उत्पन्न पाप के समान जिसके लाञ्छन की शोभा स्पष्ट रूप से प्रतीत हो रही थी, उस दिशा रूपी सुन्दरी के मुखड़े पर विराजमान चन्दनबिन्दु के समान चन्द्रमा ने अपनी किरणों से वृन्दावन को प्रकाशित किया ॥ १ ॥

नृपः कुम्भकर्णः श्रुतं वाचि धत्ते मनोऽधीश्वरासेवने सन्निधत्ते ।
हृषीशं परं वासुदेवं निधत्ते वरं गीतगोविन्दगानं विधत्ते ॥

इदानीं मानिनीमानखण्डनाखण्डमण्डलं चन्द्रोदयं वर्णयन्नाह—अत्रान्तर इति । अत्रान्तरे एतस्मिन्नवसरे इन्दुर्वृन्दावनान्तरमंशुदीपैरदीपयत् प्रकाशितवान् । किं-विशिष्टः ? स्फुटलाञ्छनश्रीः स्फुटकलङ्कशोभः । उत्प्रेक्षते—कुलटाकुलवर्त्मघातसञ्जात-पातक इव । अन्योऽपि यः कश्चन यस्य कस्यचन मार्गघातं करोति स कलङ्की भवत्येव । किम्भूत इन्दुः ? दिक्सुन्दरीवदनश्रीखण्डतिलक इव । वसन्ततिलका । अत्र रूपकोत्प्रेक्षे अलङ्कृती ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक से कवि मानिनी नायिकाओं के मान को तोड़ने में समर्थ पूर्ण चन्द्रोदय-मण्डल का वर्णन करते हैं । जब कि श्रीराधाजी श्रीभगवान् के विरह में संतप्त थीं, उसी समय कुलटा-समूह के मार्ग में बाधा उत्पन्न करने के कारण जिसको मानो पाप लग गया हो—इस प्रकार का चन्द्रमा, जिसकी लांछनश्री स्पष्ट प्रतीत हो रही थी तथा दिशा रूपी सुन्दरी के मुखमण्डल को अलंकृत करने वाले चन्दनबिन्दु के समान पूर्णचन्द्र ने अपनी किरणों से वृन्दावन को समलंकृत किया ।

लोक में भी देखा जाता है कि जो दूसरे के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है, उसे पापी माना जाता है । कुलटाएँ चूंकि अपने प्रेमियों से अंधेरी रात में ही मिलने जाती हैं, अतः चन्द्रमा के उग जाने से अन्धकार समाप्त हो जाने से कुलटाओं के मार्ग में बाधा उत्पन्न होने लगी । इससे जो चन्द्रमा को पाप लगा वह मानों चन्द्रमा में दिखने वाला मृगलांछन है । जिस प्रकार चन्दन का बिन्दु सुन्दरी के ललाट को समलंकृत करता है, उसी प्रकार दिशा रूपी सुन्दरी को चन्द्रमा ने समलंकृत किया ।

इस श्लोक में रूपक तथा उत्प्रेक्षालङ्कार एवं वसन्ततिलका वृत्त है ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रसरति शशधरबिम्बे विहितविलम्बे च माधवे विधुरा ।
विरचितविविधविलापं सा परितापं चकारोच्चैः ॥ २ ॥

अनुवाद—चन्द्रमा की किरणों के फैल जाने पर तथा श्रीभगवान् के विलम्ब करने के कारण दुःखी अनेक प्रकार से विलाप करती हुई श्रीराधा ने बहुत अधिक संताप का अनुभव किया ॥ २ ॥

इदानीं विप्रलब्धायास्तस्या विधुरत्वं कथयति—प्रसरतीति । सा राधा उच्चैः परितापं चकार खेदं चकार । कथं यथा भवति ? विरचितविविधालापं यथा स्यात्तथा । किम्भूता सा ? अतिशयविधुरा । क्व सति ? शशधरबिम्बे प्रसरति उद्गच्छति सति । माधवे च कृतविलम्बे सति । 'प्रेष्य दूतीं स्वयं दत्त्वा निकेतं नागतः प्रियः । यस्यास्तेन विना दुःस्था विप्रलब्धा तु सा मता' । आर्या ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी श्रीराधा के कष्टानुभव का वर्णन करती हुई कहती है कि जब चन्द्रमा की किरणें निकल रही थीं तथा श्रीभगवान् श्रीराधा से आकर मिलने में विलम्ब कर रहे थे, उस ससय अनेक प्रकार से विलाप करती हुई विप्रलब्धा नायिका श्रीराधा ने अत्यन्त कष्ट का अनुभव किया ।

इस श्लोक में आर्या छन्द है ॥ २ ॥

मालवरागयतितालाभ्यां गीयते । प्रबन्धः ॥ १३ ॥

अनुवाद—गीतगोविन्द काव्य का यह त्रयोदश प्रबन्ध मालव राग तथा यति ताल से गाया जाता है ।

कथितसमयेऽपि हरिरहह न ययौ वनं
मम विफलमिदममलरूपमपि यौवनम् ।
यामि हे कमिह शरणं सखीजनवचनवञ्चिता ॥ ध्रुवपदम् ॥ १ ॥

अनुवाद—अरे मेरे अनवद्य रूप तथा यौवन दोनों ही व्यर्थ हैं, क्योंकि संकेतकाल में भी श्रीहरि वन में नहीं आये । अपनी सखियों से ही प्रताड़ित मैं अब किसकी शरण में जाऊँ ॥ १ ॥

पूर्वं ध्रुवः । यामीति । हे सखि ! इह अस्मिन्नवसरे कं शरणं यामि ? किम्भूताहम् ? सखीति । सख्य एव जन इतरजनवत् तद्वचनेन 'त्वमत्र सङ्केतस्थाने तिष्ठ तमहमानयामि' इति कथनेनात्रैव स्थिता या विप्रलब्धा । इति ध्रुवः ॥ अथ पदानि—कथितेति । आत्मगतं कथयति—मम इदं यौवनं विफलम् । किम्भूतम् ? अमलरूपमपि । अथवा—यौवनं रूपं च द्वयमपि निष्फलम् । अत्र 'अपि'शब्दो भूषणकलादीनामनुक्तानां समुच्चयार्थः । अत्र कारणमाह—'अहह' इति कष्टे । हरिः कथितसमयेऽपि सङ्केतितकालेऽपि वनं न ययौ न प्राप्तवान् । यतः 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि योषितः' ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—विरहवेदना के आधिक्य का अनुभव करती हुई श्रीराधा कहती हैं कि मैं तो अपनी ही सखियों का द्वारा प्रताड़ित हूँ । सखी ने कहा था तुम यहीं रहो, मैं श्रीभगवान् को यहाँ ला रही हूँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीभगवान् के द्वारा निश्चित किये गये संकेतकाल में भी श्रीभगवान् यहाँ नहीं आये, यह बड़े कष्ट की बात है। लगता है कि मेरा यह अनवद्य रूप तथा यौवन दोनों ही व्यर्थ हैं। यदि ये सार्थक होते तो श्रीभगवान् इस समय यहाँ अवश्य आते। श्रीभगवान् के नहीं आने पर मेरे इस रूप तथा यौवन का क्या उपयोग है ? ॥ १ ॥

यदनुगमनाय निशि गहनमपि शीलितं
तेन मम हृदयमिदमसमशरकीलितम् ॥ यामि हे० ॥ २ ॥

अनवाद—चूंकि श्रीहरि का अनुसरण करने के लिए रात्रि में इस वन में भी मैं आयी, अतएव मेरा यह हृदय कामदेव के द्वारा कीलित कर दिया गया है। अब मैं किसकी शरण में जाऊँ ॥ २ ॥

अपि च—यदिति। यद्यस्माद्धेतोर्निशि रात्रौ अनुगमनाय। अर्थात् हरेरनुगमनाय। गहनमपि, 'अपि'शब्देन यत्कथमपि न क्रियते तदपि शीलितमनुभूतम्। तेन कारणेन मम इदं हृदयमसमशरकीलितं वर्तते। अथवा—यदित्यव्ययं सर्वनामप्रतिरूपकं यस्येत्यर्थे। यस्यानुस्मरणाय एवं कृतं तेन हेतुना तमेव हेतुं कृत्वा मम हृदयमसमशरकीलितं वर्तते। अथवा—यदिति यद्वचनेनाव्यवहितमेव सखीवचनं परामृश्यते। यद्वचनानुसरणाय गहनं शीलितं तेन तद्वचनहेतुना मम हृदयमसमशरपीडितं। वर्तते। अत्र यच्छब्दस्याप्राधान्यात्समासेन निर्गुणत्वाच्च न प्रधानत्वेनान्वयः सम्भवी, विवक्षितार्थासमर्पकत्वात् ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधाजी कहती हैं कि श्रीभगवान् का रात्रि में अनुसरण करने के लिए मैं वन में भी आयी। 'अपि' शब्द का अभिप्राय यह है कि ऐसा काम मैंने कभी नहीं किया था, उस काम को भी मैंने किया, अतएव यह मेरा हृदय काम के बाणों से कीलित कर दिया गया है। अथवा जिस सखी की बातों को मान कर मैं रात्रि में भी इस वन में आयी, उसी के प्रभाव से यह मेरा हृदय काम के बाणों से कीलित हो गया है ॥ २ ॥

मम मरणमेव वरमिति वितथकेतना।
किमिति विषहामि विरहानलमचेतना ॥ यामि हे० ॥ ३ ॥

अनुवाद—यहाँ मैं इस विरहाग्नि को क्यों सह रही हूँ ? मेरा शरीर व्यर्थ है, अतएव मेरे लिए मर जाना ही अच्छा है ॥ ३ ॥

अपि च—ममेति। इहाचेतनाहं चैतन्यरहिता विह्वलत्वमाप्ता विरहानलं विषहामि। कथमिति विषहामीति। धात्वन्तरमप्यस्तीत्यवधार्यताम्। तदसद्भावे भ्रान्तिर्मास्तु। तत्सन्देहनिराकरणार्थं कामधेनावीक्ष्यताम्। अत्र विषह्य किं शक्तावित्यस्य (?) विवादित्वचुरादित्वभ्वादित्वपरस्मैपदिनो न सन्ति। किंविशिष्टा अहम् ? इतीव हेतोः वितथकेतना वितथं केतनमावासो यस्याः। प्रियशून्यत्वात्। अथवा—वितथं निमन्त्रणं यस्याः सा। सखीमात्रवचनेन हि तामनुसरणेन वा ईदृशस्य साहसस्यानुपघातात्। अथवा—वितथं केतनं देहो यस्याः प्रियाप्राप्तेः॥ एवं सति मम मरणमेव वरं, न देहधारणम् ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावप्रकाशिका—यहाँ पर इस संकेतस्थान में अकेले विद्यमान मैं विह्वल एवं अचेतन हूँ और इस विरहाग्नि को सह रही हूँ। किन्तु मैं इसे व्यर्थ में क्यों सह रही हूँ, इसे मैं भी नहीं जानती। मेरा तो यह शरीर ही व्यर्थ है। अन्यथा श्रीभगवान् इस प्रकार मेरी उपेक्षा क्यों करते? मेरे इस जीने से तो मेरा मर जाना ही अच्छा है। केवल सखी की बातों को मानकर मैं यहाँ आयी, अतएव यह मेरा साहस मात्र है। मेरे शरीर का उपयोग मेरे प्रियतम श्रीभगवान् नहीं करते हैं तो मेरा सारा प्रयास व्यर्थ है, मेरा जीना व्यर्थ है ॥ ३ ॥

मामहह विधुरयति मधुरमधुयामिनी ।
कापि हरिमनुभवति कृतसुकृतकामिनी ॥ यामि हे० ॥ ४ ॥

अनुवाद—कितने कष्ट की बात है कि यह वसन्त की रात्रि मुझे विधुर बना रही है और कोई दूसरी पुण्यशालिनी कामिनी श्रीहरि का अनुभव कर रही है ॥ ४ ॥

अपि च—मामहहेति। मधुरमधुयामिनी कोमला सरसा वसन्तरात्रिर्मां विधुरं करोति। अपि च—कापि कृतसुकृतकामिनी कृपया हरिमनुभवति। एतावताऽहं मन्दभाग्या यतस्तत्प्राप्त्यर्थं मया प्रयत्नः कृतः, अन्यया च हरिरतसुखमनुभूयते ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—अपने अन्तःसन्ताप को अभिव्यक्त करती हुई श्रीराधाजी कह रही हैं कि वसन्तऋतु की ये सरस रात्रियाँ मुझे तो विकल बना रही हैं। दूसरी ओर कोई बहुत पुण्य करने वाली श्रीभगवान् के साथ विहार का अनुभव कर रही होगी, जिसके प्रेमपाश में बँधकर श्रीहरि इस संकेतस्थल पर नहीं आये। कितना बड़ा दुर्भाग्य है मेरा? मैंने तो श्रीभगवान् को प्राप्त करने का प्रयास किया, किन्तु कोई दूसरी नायिका उनके साथ रतिजन्य सुख का अनुभव कर रही है ॥ ४ ॥

अहह कलयामि वलयादिमणिभूषणम् ।
हरिविरहदहनवहनेन बहुदूषणम् ॥ यामि हे० ॥ ५ ॥

अनुवाद—मणिजटित वलयादि भूषण श्रीभगवान् की विरह की अग्नि से युक्त होने के कारण मुझे बहुत दोष युक्त प्रतीत होते हैं ॥ ५ ॥

अपि च—अहहेति 'अहह' इति खेदे। हरिविरहदहनवहनेन वलयादिकं मणिभूषणं बहुदूषणं कलयामि। यतः 'स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः' इति ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—स्त्रियाँ स्वभावतः अलङ्कारप्रिय होती हैं। किन्तु इनके अलङ्कार का प्रियत्व तो तभी अनुकूल होता है जब कि उन अलङ्कार को प्रेमपूर्वक देखने वाला उनका प्रियतम हो। मेरे भीतर तो श्रीहरि के वियोग की अग्नि जल रही है। अतएव मणि आदि से जटित मेरे वलयादि अलङ्कार मुझे बहुत दोष युक्त प्रतीत होते हैं। इन अलङ्कारों में मुझे प्रियत्व की प्रतीति नहीं, अपितु दोष की प्रतीति होती है ॥ ५ ॥

कुसुमसुकुमारतनुमतनुशरलीलया ।
स्रगपि हृदि हन्ति माममतिविषमशीलया ॥ यामि हे० ॥ ६ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद—अत्यन्त विषम स्वभाव के कारण कामदेव के बाणों की लीला होने के कारण हृदय पर धारण की गयी माला भी पुष्प से भी कोमल शरीर वाली मुझको मेरे हृदय पर प्रहार करती है ।। ६ ।।

अपि च—कुसुमेति । हे कान्त ! हृदि वर्तमाना स्रगपि मामतनुशरलीलया कामबाणस्वाभाव्येन हन्ति । मया पुष्पस्रगिति धार्यते; तस्याश्च स्मरशरमयत्वात् हननस्वभावः । अत एवातिविषमशरलीलया । अति विषमीयते यस्मिन्नित्यतिविषमं तच्छीलं यस्याः सा तथा । अथवा—मां हृदि मनसि हन्ति, मनो विध्यतीत्यर्थः । अत एव विषमशीलया अन्यशरेभ्यो विषमस्वभावया । तथा च 'अपूर्वेयं धनुर्विद्या मन्मथस्य महात्मनः । शरीरमक्षतं कृत्वा भिनत्त्यन्तर्गतं मनः ।। किम्भूताम् ? कुसुमादपि सुकुमारतनुम् । यो हि यस्माद्धीनबलः स तं सुखेन हन्ति ।। ६ ।।

भावप्रकाशिका—हे कान्त ! मैं तो माला समझकर पुष्पों की माला धारण करती हूँ, किन्तु वह तो कामदेव का बाण होने के कारण अपने स्वभावानुसार मेरे हृदय पर प्रहार करती है । क्योंकि कामदेव के बाणों की लीला तो अत्यन्त विषमयी होने के कारण विषम स्वभाव वाली है । मेरा शरीर पुष्प से भी सुकुमार है । अतः पुष्पमय बाणों से भी सुकुमार शरीर वाली होने के कारण उसको मेरे ऊपर प्रहार करने में कोई भी कठिनाई नहीं होती है । अतएव आप इस असहायावस्था में मुझे अवश्य बचायें ।। ६ ।।

अहमिह निवसामि नगणितवनवेतसा ।
स्मरति मधुसूदनो मामपि न चेतसा ।। यामि हे० ।। ७ ।।

अनुवाद—मैं तो यहाँ अगणित वेतसवन में निवास कर रही हूँ, किन्तु मधुसूदन मुझे अपने मन से भी स्मरण नहीं कर रहे हैं ।। ७ ।।

अपि च—अहमिति । हे कान्त ! अहमिह कुञ्जे नगणितवनवेतसा निवसामि न गणितानि वनानि वेतसाश्च यया । 'वनवेतस'ग्रहणमन्येषामपि वनस्थविषमाणामुपलक्षणार्थम् । तेन दुर्लङ्घ्यमप्युल्लङ्घ्य न चिन्तामहमागता, परं मधुसूदनस्तु मां चेतसापि न स्मरति । अतीव युद्धाभिनिवेशः सम्भोगपराङ्मुखो भवतीति व्यङ्ग्यम् । नगणितेत्यादौ निषेधार्थकनकारेण समासः । 'अनुनीतश्च खगः स नैकधा' इतिवत् । शेषविवक्षाभावान्मां स्मरतीत्यत्र न षष्ठी ।। ७ ।।

भावप्रकाशिका—यहाँ पर श्रीराधा अपना दैन्य निवेदन करती हुई कह रही हैं कि मैं श्रीभगवान् से मिलने के लिए सखीमात्र की बातें मानकर यहाँ पर ऐसे वेतस वन में आ गयी हूँ, जहाँ वन और वन के वेतस असंख्य हैं, किन्तु श्रीभगवान् मुझे अपने मन से भी स्मरण नहीं कर रहे हैं । यह मेरा कितना बड़ा दुर्भाग्य है ।। ७ ।।

हरिचरणशरणजयदेवकविभारती ।
वसतु हृदि युवतिरिव कोमलकलावती ।। यामि हे० ।। ८ ।।

अनुवाद—श्रीभगवान् के चरण ही जिनके रक्षक हैं, इस प्रकार के श्रीजयदेव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कवि की सरस तथा कलाओं से युक्त वाणी श्रीकृष्णभक्तों के हृदय में कोमल तथा कलासमलंकृत युवति के समान निवास करे ॥ ८ ॥

अपि च—हरिचरणेति। हरिचरणौ शरणं गृहं यस्याः, सा चासौ जयदेवकविभारती च। अथवा, हरिचरणेति जयदेवविशेषणम्। तत्र शरणं रक्षितृ। हृदि वसतु। अर्थाद्भक्तानाम्। किंलक्षणा? कोमला कलावती च। तथा च सङ्गीतराजे—'रागः स्यात्स्थानगौडाख्यस्तालो वर्णयती रसः। शृङ्गारो विप्रलम्भाख्यः प्रमदा मदनाकुला। पक्षनामावलेः पाटा गुम्फिता यत्र गीतके। स्निग्धमधुसूदनोऽयं रासावलयनामकः। प्रबन्धः पृथिवीभर्त्रा प्रबद्धः प्रीतये हरेः' ॥ इति स्निग्धमधुसूदनरासावलयनामा प्रबन्धस्त्रयोदशः ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि मेरे एकमात्र रक्षक श्रीभगवान् के चरण ही हैं। उनसे भिन्न मेरा कोई दूसरा रक्षक नहीं है। इस प्रकार का जो मैं हूँ, मेरी कविता कोमल वर्णों से युक्त तथा काव्य की कलाओं से विशिष्ट है। वह श्रीभगवान् के भक्तों के हृदय में उसी प्रकार निवास करे, जिस प्रकार कोमल शरीर वाली तथा शृङ्गारादि रसोपयोगी चतुष्षष्टि कलाओं से परिचित सुन्दरी अपने नायक के हृदय में निवास करती है। जिस प्रकार कोई लावण्यसम्पन्न नायिका अपने नायक के मन का अत्यधिक प्रह्लादन किया करती है, उसी प्रकार मेरी भी यह कविता श्रीभगवान् के भक्तों के मन का प्रह्लादन करें—यह श्रीजयदेव कवि की कामना है ॥ ८ ॥

तत्किं काममपि कामिनीमभिसृतः किं वा कलाकेलिभि-
र्बद्धो बन्धुभिरन्धकारिणि वनाभ्यर्णे किमुद्भ्राम्यति।
कान्तः क्लान्तमना मनागपि पथि प्रस्थातुमेवाक्षमः
सङ्केतीकृतमञ्जुवञ्जुललताकुञ्जेऽपि यन्नागतः ॥ १ ॥

अनुवाद—हमारे पति श्रीकृष्ण संकेतस्थल रूप से निर्दिष्ट मनोहर वेतसीलतागृह में जो नहीं आये उसका कारण क्या है? क्या वे किसी दूसरी कामिनी की अभिसारभूमि में चले गये? अथवा कलाओं तथा क्रीड़ा में परायण उनके बान्धवों ने उन्हें रोक लिया है? अथवा घने पेड़ों की छाया में घोर अन्धकार के संकेतस्थान का पता न पाने के कारण इधर-उधर घूम रहे हैं? अथवा मेरे विश्लेष के कारण सन्तप्तमना होने के कारण वहाँ से चल पाने में ही असमर्थ हो गये? ॥ १ ॥

राधा तदनागमने स्वगतान् हेतून्वितर्कयति—तत्किमिति। यद्यस्मात्कान्तः कामुकः सङ्केतीकृतमञ्जुवञ्जुललताकुञ्जेऽपि यन्नागतः मनोहरवेतसलतागृहेऽपि यन्नायासीत् तत्तस्मादहमिति वितर्कयामि। तमेव वितर्कमाह—कामपीति। काञ्चित्कामिनीमभिसृतः किमन्यकामिन्यर्थं गतः? अथवा—मामत्र सङ्केतस्थाने विहाय कथमन्यत्र विहरिष्यतीत्याशङ्क्याह—कलाकेलिभिर्बन्धुभिर्बद्धः किम्। कलेति। विलासक्रीडापरैः। मामभ्युपगच्छन्नन्तरापि क्रीडावशो जातः। अथवा—मां विहाय अन्यत्करोतीति विचारेणा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्यलम् । किन्तु मामेवाभिसरन् मामलभमान इतस्ततः सान्द्रेऽन्धकारे वनसमीपे परिभ्राम्यति । अथवा—तदपि न घटते । अथवा—क्लान्तमनाः सन् पथि मार्गे प्रस्थातुमेवाक्षम इति सुस्थितम् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । संशयोऽलङ्कारः ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् संकेतित स्थल पर श्रीराधाजी से मिलने के लिए नहीं आये । उनके नहीं आने का कारण क्या हो सकता है ? अपने उन मनःकल्पित हेतुओं को उपन्यस्त करती हुई श्रीराधाजी कहती हैं कि मनोहर वेतस-लतागृह ही हम दोनों के मिलनस्थान के रूप में संकेतित था । किन्तु यह जो श्रीभगवान् नहीं आये, उसका क्या कारण है ? क्या वे किसी दूसरी नायिका की अभिसार-भूमि में चले गये ? किन्तु मुझको यहाँ पर छोड़कर वे अन्यत्र विहार कैसे कर सकते हैं ? तो क्या केलिपरायण तथा कलापरायण उनके बान्धवों ने यहाँ आने से रोककर क्रीड़ा-भूमि में ही रख लिया ? किन्तु ऐसा होना भी सम्भव नहीं है । तो फिर क्या वे घोर अन्धकार में मुझसे मिलने के लिए चल तो पड़े, किन्तु अन्धकारातिशय्य के कारण मुझको न प्राप्त कर सकने के कारण मुझको ही इधर-उधर ढूंढ़ने लगे ? किन्तु ऐसा भी होना संभव नहीं है; वे भूल तो सकते नहीं है। तो फिर क्या मुझसे विश्लिष्ट होने से दुःखी होने के कारण वहाँ से मुझसे मिलने के लिए चलने में ही असमर्थ हो गये ?

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित वृत्त तथा संशय नामक अलङ्कार है ॥ १ ॥

अथागतां माधवमन्तरेण सखीमियं वीक्ष्य विषादमूकाम् ।
विशङ्कमाना रमितं कयापि जनार्दनं दृष्टवदेतदाह ॥ २ ॥

अनुवाद—उसके पश्चात् श्रीभगवान् को साथ में लिये विना ही आयी हुई विषण्ण सखी को देखकर जनार्दन को किसी दूसरी नायिका के साथ रमण करते देखा है क्या ? इस प्रकार की शङ्का करती हुई श्रीराधा ने कहा ।

अथ सखीविषादानुमितं कृष्णस्यान्यासक्तत्वं वितर्कयन्नाह—अथेति । इयं राधा अथानन्तरं कृष्णं विना आगतां सखीं वीक्ष्य दृष्ट्वा तत्प्रत्यक्षीकृतमिव यथा स्यात्तथा तद्वक्ष्यमाणमाह—किम्भूतां सखीम् ? विषादमूकामकृतकार्यत्वाद्विषण्णतया प्रतिवक्तुमक्षमाम् । किम्भूतां राधा ? जनार्दनं कयापि कान्तया रमितं विशङ्कमाना । सखीविषादान्यथानुपपत्त्याऽन्यासङ्गो व्यज्यते । उपेन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—जिस समय श्रीराधाजी श्रीभगवान् के संकेतस्थल में नहीं आने के अनेक कारणों का अनुमान कर रही थीं, उसी समय उनकी प्रिय सखी आयी, किन्तु उस सखी के साथ श्रीभगवान् नहीं आये थे । वह अकेले ही लौटकर आयी थी, साथ ही साथ वह विषण्ण थी तथा कुछ बोल नहीं रही थी । सखी को विषण्ण तथा मौन देखकर श्रीराधाजी ने यह अनुमान लगाया कि हो सकता है कि मेरी सखी ने श्रीभगवान् को किसी अन्य नायिका के साथ रमण करते हुए देखा हो, इसीलिए यह उदास तथा मौन है और कुछ बोल नहीं पा रही है । ऐसा सोचकर उन्होंने सखी से कहा । इस श्लोक का उपेन्द्रवज्रा वृत्त है ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वसन्तरागयतितालाभ्यां गीयते । प्रबन्धः ॥ १४ ॥

अनुवाद—गीतगोविन्द काव्य का यह चौदहवाँ प्रबन्ध वसन्त राग तथा यति ताल में गाया जाता है ।

स्मरसमरोचितविरचितवेशा
गलितकुसुमदरविलुलितकेशा
कापि मधुरिपुणा विलसति युवतिरधिकगुणा ॥ ध्रुवपदम् ॥ १ ॥

अनुवाद—कामक्रीडा के अनुकूल वेष वाली तथा रतिकाल में गिरे हुए पुष्पों तथा विमर्दित केशोंवाली मुझसे अधिक गुणों से युक्त कोई युवति मधुरिपु के साथ रमण कर रही है ॥ १ ॥

इदमेव प्रथयति—तत्र पूर्वं ध्रुवपदम् ॥ कापीति । सखि ! कापि युवतिः मधुरिपुणा सह विलसति । किम्भूता ? अधिका गुणाः सौन्दर्यादयो यस्याः । अर्थान्मत्सकाशात् । मां विहाय यया रमत इति । 'मधुरिपुः' इत्यनेन तस्य माधुर्यानभिज्ञत्वं द्योत्यते । तेन 'अधिकगुणा' इत्यनेन मत्तो हीनेति व्यज्यते ॥ अथ पदानि । स्मरेति । किम्भूता कापि ? स्मरसमरोचितो विरचितो वेषः प्रसाधनं यया सा । स्मरसमरः कामकेलिः । अथवा—स्मरोपलक्षितः समर इव समरः । अपि किम्भूता ? रतिविमर्दनेन विगलितपुष्पैरीषद्विलुलिताः केशा यस्याः सा । अनेनोक्तेनास्याः पुरुषायितत्वं व्यज्यते ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधाजी अपनी सखी से कह रही हैं कि हे सखि ! कोई मुझसे अधिक सौन्दर्य आदि गुणों से युक्त युवति कामकेलि के अनुकूल अपना वेश बना कर तथा जिसके रतिकेलि काल में बालों के पुष्प गिर गये हैं तथा केश मर्दित हो गये हैं, इस प्रकार मधुरिपु श्रीभगवान् के साथ विलास कर रही है । यहाँ पर मधुरिपु पद की यह व्यञ्जना है कि श्रीभगवान् माधुर्य के शत्रु हैं, उनको माधुर्य का ज्ञान है ही नहीं । इसीलिए वे मेरी उपेक्षा करके किसी दूसरी युवति के साथ कामक्रीड़ा में लिप्त है । क्योंकि मुझसे अधिक सौन्दर्यादि गुणसम्पन्न कोई व्रजयुवति हो—यह संभव नहीं है । अतएव अधिक गुणों का व्यंग्यार्थ है कम गुणों वाली । युवति रमण कर रही है, इससे विपरीत रति की सूचंना मिलती है । विपरित रति में युवति का ही रतिकर्तृत्व रहता है । यहाँ पर रतिकेलि को स्मरसमर कहा गया है । उसका अर्थ है—स्मरोपलक्षित समर के समान समर । रतिकेलि में भी रति-विमर्दन आदि की क्रिया होती ही है, जिसके कारण नायिका के बालों के पुष्प गिर जाते हैं और बाल विश्रृंखलित हो जाते हैं ॥१॥

हरिपरिरम्भणवलितविकारा ।
कुचकलशोपरि तरलितहारा ॥ कापि० ॥ २ ॥

अनुवाद—श्रीभगवान् का आलिङ्गन करने के कारण जिसमें रोमाञ्च आदि विकार उत्पन्न हो गये हैं तथा जिसके स्तनकलशों के ऊपर हार चञ्चल हो उठे हैं, इस प्रकार की रमणी मधुरिपु के साथ रमण कर रही है ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपि च—हरीति। पुनः किम्भूता ? हरिपरिरम्भणेन वलितः सम्भक्तो विकारः कामोपलक्षितो मानसो भावो यस्याः। कुचकलशयोरुपरि तरलितश्चञ्चलो हारो यस्याः। अत्रापि हारतरलत्वं पुरुषायितमभिव्यनक्ति ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधाजी उस रमणी के गुणों का तथा उसकी चेष्टाओं का आनुमानिक वर्णन करती हुई कह रही हैं कि श्रीभगवान् का आलिङ्गन करने मात्र से उस रमणी में कामोचित रोमाञ्चादि विकार उत्पन्न हो गये होंगे तथा जिसके उन्नत स्तनों पर हार चंचल हो रहा होगा। इस प्रकार की रमणी श्रीभगवान् के साथ रमण कर रही होंगी। रतिकाल में रमणी के उन्नत उरोजों पर हार चञ्चल तभी हो सकता है, जब कि वह विपरीत रति कर रही हो ॥ २ ॥

विचलदलकललिताननचन्द्रा ।
तदधरपानरभसकृततन्द्रा ॥ कापि० ॥ ३ ॥

अनुवाद—चञ्चल घुंघराले बालों से मनोहर प्रतीत होने वाली तथा श्रीभगवान् के अधरपान करने की इच्छा से सुखजनित अलीक निद्रा का अभिनय करने वाली रमणी श्रीभगवान् के साथ रमण कर रही है ॥ ३ ॥

अपि च—विचलदिति। पुनः किम्भूता ? विचलदलकैर्ललितो मनोहरो मुखचन्द्रो यस्याः सा तथा। पुनः किम्भूता ? तदधरपानरभसेन हर्षेण कृता तन्द्रा सुखजनितालीक-निद्रा यया ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—विपरीत रति में व्याप्त उस नायिका के घुंघराले बालों के चञ्चल होने के कारण उसका मुखड़ा और भी मनोहर लगने लगता होगा तथा रति काल में वह श्रीभगवान् के अधरों का पान कर सके—इसके लिए रतिजन्य सुख के कारण मिथ्या निद्रा का अभिनय कर रही होगी ॥ ३ ॥

चञ्चलकुण्डलदलितकपोला ।
मुखरितरसनजघनगतिलोला ॥ कापि० ॥ ४ ॥

अनुवाद—चञ्चल कुण्डलों के कारण जिसके गाल मनोहर लगते होंगे तथा कमर में लगी हुई शब्द करने वाली क्षुद्रघण्टिकाओं से युक्त जाँघों के गमनागमन से चञ्चल बनी हुई वह रमणी श्रीभगवान् के साथ विलास कर रही होगी ॥ ४ ॥

अपि च—चञ्चलेति। किम्भूता ? चञ्चलकुण्डलाभ्यां ललितौ दलितौ कपोलौ यस्याः। पुनः किम्भूता ? मुखरितरसना या जघनगतिः जघनस्य गतागतं तया लोला ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—रमणियों द्वारा किये जाने वाले विपरीत रतिकाल में उनके कुण्डलों का चञ्चल होना स्वाभाविक ही है। उस नारी के चञ्चल कुण्डलों के कारण उसके गालों की शोभा और बढ़ गयी होगी। उस समय उसकी करधनी में लगी घुंघरू आवाज कर रही होगी तथा जाँघों का संचलन सदा सञ्चालन करने के कारण वह अत्यन्त चञ्चल प्रतीत होती होगी ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दयितविलोकितलज्जितहसिता ।
बहुविधकूजितरतिरसरसिता ॥ कापि० ॥ ५ ॥

अनुवाद—प्रियतम श्रीकृष्ण के देखने पर वह लज्जायुक्त हास करती होगी तथा रतिकाल में रतिरसातिरेक के कारण वह कोकिल-कलहंसादि के समान अनेक प्रकार का शब्द भी करती होगी ॥ ५ ॥

अपि च—दयितेति। किम्भूता ? लज्जिता चासौ हसिता च लज्जितहसिता। दयितविलोकितेन लज्जितहसिता। अपि च किम्भूता ? बहुविधानि कूजितानि पारावतादीनामव्यक्तशब्दानुकरणानि यत्र तद्यथा स्यात्तथा रतिरसेन रतिरागेण रसिता शब्दिता। अथवा—बहुविधं कूजितमव्यक्तः शब्दो यत्र तेन रतिरसेन शब्दिता ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—विपरीत रतिकाल में वह रमणी पुरुष के समान चेष्टाएँ कर रही होगी तथा उसके प्रियतम श्रीकृष्ण रमणी के समान चेष्टा करते होंगे। उस समय जब श्रीकृष्ण उसकी ओर देखते होंगे तो वह लज्जित होकर मुस्कुरा रही होगी। किञ्च रतिजन्य आनन्द से आनन्दित होकर रतिकालोचित कोकिल, कलहंस आदि के समान मनोहर आवाज भी करती होगी ॥ ५ ॥

विपुलपुलकपृथुवेपथुभङ्गा ।
श्वसितनिमीलितविकसदनङ्गा ॥ कापि० ॥ ६ ॥

अनुवाद—बहुत अधिक रोमाञ्च तथा कम्प ही उसके तरङ्ग के समान हैं तथा स्खलन काल में दीर्घ निःश्वास तथा नेत्रनिमीलन के द्वारा आनन्दावाप्ति का प्रकाशन करने वाली रमणी श्रीभगवान् के साथ विलास कर रही है ॥ ६ ॥

अपि च—विपुलेति। पिपुला बहवः पुलका रोमाञ्चा यत्र असौ विपुलपुलकः पृथुर्यो वेपथुस्तस्य भङ्गस्तरङ्गो यस्याः, भङ्ग इव भङ्गः। श्वसितनिमीलिताभ्यां विकसन्प्रकटीभवन्ननङ्गः एतल्लक्षणः कामो यस्याः ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—उसे रतिकाल में बार-बार रोमाञ्च तथा कम्प होता होगा तथा स्खलनकाल के सन्निकट होने पर वह लम्बी श्वास छोड़ती होगी और आनन्दावाप्ति के पश्चात् अपनी आँखों को बन्द कर लेती होगी, जिससे उसके काम का विकास होता होगा। यहाँ पर रोमाञ्च तथा कम्प को तरङ्ग के सदृश इसलिए बतलाया गया है कि जिस प्रकार जलाशय में एक के बाद दूसरी तरङ्ग उत्पन्न होती है, उसी प्रकार उसके शरीर में भी रोमाञ्च तथा कम्प उत्तरोत्तर उत्पन्न होते होंगे ॥ ६ ॥

श्रमजलकणभरसुभगशरीरा ।
परिपतितोरसि रतिरणधीरा ॥ कापि० ॥ ७ ॥

अनुवाद—सुरतायासजन्य स्वेदबिन्दु के द्वारा मनोहर शरीर वाली, श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल पर शयन करने वाली तथा रतिक्रिया में धैर्य धारण करने वाली नायिका श्रीभगवान् के साथ रमण कर रही होगी ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपि च—श्रमजलेति। किम्भूता? स्वेदबिन्दूङ्कितशरीरा। अपि च किम्भूता? उरसि पतिता। अर्थाद्धरेः। रतौ रण इव रतिरणः तत्र धीरा स्थिरा ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—सुरतकाल में विपरीत रति करने के कारण जो उसे परिश्रम करना पड़ता होगा, उसके कारण उसका शरीर अत्यन्त सुशोभित हो रहा होगा। किञ्च सुरतकाल के पश्चात् विपरीत रति करने वाली वह रमणी श्रीभगवान् के वक्षः-स्थल पर थक कर शयन करने लग जाती होगी।

किञ्च वह सुरतक्रिया रूपी रण में दक्ष होगी, अतः इसी तरह की रमणी श्रीकृष्ण भगवान् के साथ रमण कर रही होगी ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितहरिरमितम् ।
कलिकलुषं जनयतु परिशमितम् ॥ कापि० ॥ ८ ॥

अनुवाद—श्रीजयदेव कवि के द्वारा वर्णित जो यह श्रीभगवान् का विपरीत रमण है, वह कलि के पापों को पूर्णतः शान्त कर दे ॥ ८ ॥

श्रीति। इदं श्रीजयदेवभणितं विपरीतरताभि(योग)क्रीडितं कलिकलुषं परि-शमितं जनयत्विति शान्ति नयतु ॥ तथात्र सङ्गीतराजे—'श्रीरागो यत्र रागः स्यात् तालस्तु द्रुतमण्ठकः। वर्णनं वासुदेवस्य रतिस्तद्व्यत्यये स्त्रियाः। पदेभ्यः पाटसन्तानं स्वरास्तेनास्तथैव च। प्रयोगश्च भवेद्यत्र स प्रबन्धवरः स्मृतः ॥ हरिरमितचम्पकवर्णेभ्यः शेखराभिधः' इति। हरिरमितचम्पकशेखरनामा चतुर्दशः प्रबन्धः ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—इस गीतगोविन्दकाव्य के चतुर्दश प्रबन्ध का नाम हरिरमित-चम्पकशेखर है। इस प्रबन्ध में श्रीभगवान् के विपरीत रति का वर्णन किया गया है। श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि इस प्रबन्ध में मैंने श्रीभगवान् के रमित का अर्थात् विपरीत रति का वर्णन किया है। यह अत्यन्त पवित्र वर्णन है। यह पाठकों तथा श्रोताओं के कलिदोषजन्य पाप का प्रक्षालन कर दे ॥ ८ ॥

विरहपाण्डुमुरारिमुखाम्बुजद्युतिरयं तिरयन्नपि वेदनाम् ।
विधुरतीव तनोति मनोभुवः सुहृदये हृदये मदनव्यथाम् ॥ १ ॥

अनुवाद—हे सखी! विरह के कारण पीले बने हुए श्रीहरि के मुखकमल की कान्ति के समान कान्ति वाला यह चन्द्रमा पहले मेरी वेदना को तिरोहित करते हुए भी अब कामदेव के सुहृद्भूत मेरे हृदय में कामवेदना को बहुत अधिक बढ़ा रहा है ॥

इदानीं विरहातुरा राधा चन्द्रमुद्दिश्याह—विरहेति। 'अये' कोमलामन्त्रणे। हे सखि! अयं विधुः हृदये अर्थात् मम अतिमदनव्यथां तनोति। किम्भूतः? मनोभुवः मदनस्य सुहृन्मित्रम्। मुरारेर्विरहावस्थास्मरणेनाह। किम्भूतः? विरहेण पाण्डु यन्मुरारिमुखाम्बुजं तस्य द्युतिरिव द्युतिर्यस्य। अत एव वेदनां तिरयन्नपि आच्छादय-न्नपि। एतदुक्तं भवति—पूर्वं मदीयविरहपाण्डुमुरारिमुखकान्तिमत्त्वेन मम वेदनां नाश-यन्नपि कामसुहृत्त्वेन वेदनां करोत्येव। तदप्राप्त्यापि मदपेक्षया तस्य स्थितत्वाद्दुःखं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाभूत्, साम्प्रतमन्यासक्तं तं ज्ञात्वा मया स्थातुं न शक्यत इति भावः। द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में चन्द्रमा को उद्दिष्ट करके श्रीराधा अपनी सखी से कह रही हैं कि हे सखि ! यह जो चन्द्रमा है वह मेरे मन में अत्यधिक व्यथा को उत्पन्न कर रहा है। यह स्वयं कामदेव का मित्र है। मेरे विरह से पाण्डुवर्ण का बना हुआ जो श्रीभगवान् का मुखमण्डल है, उसकी कान्ति के समान कान्ति वाला है। यह पहले मेरी वेदना को विनष्ट करने का काम करता था, किन्तु इस समय यह मेरे हृदय में वेदना को बढ़ा रहा है। क्योंकि यद्यपि मुझे अभी तक श्रीभगवान् की प्राप्ति नहीं हुई किन्तु मैंने जब से जाना है कि वे किसी अन्य रमणी के साथ रमण कर रहे हैं तब से मेरे हृदय की वेदना बढ़ रही है और इस चन्द्रमा को देखकर तो मेरी वेदना और भी तीव्र हो रही है ॥ १ ॥

गुर्जरीरागैकतालीतालेन गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ १५ ॥

अनुवाद—गीतगोविन्द काव्य का यह पन्द्रहवाँ प्रबन्ध गुर्जरी राग तथा एकताली ताल से गाया जाता है ॥

समुदितमदने रमणीवदने चुम्बनवलिताधरे ।
मृगमदतिलकं लिखति सपुलकं मृगमिव रजनीकरे ॥ १ ॥
रमते यमुनापुलिनवने विजयी मुरारिरधुना ॥ ध्रुवपदम् ॥

अनुवाद—इस समय विजयी मुरारी यमुनातट के वन में रमण कर रहे हैं तथा चुम्बन करने के लिए सामने किये गये—जिसमें पूर्ण रूप से काम का उदय हो गया है—ऐसे रमणी के मुखमण्डल पर रोमाञ्चित होकर उसी प्रकार कस्तूरी तिलक बना रहे हैं, जैसे चन्द्रमण्डल के ऊपर मृगलाञ्छन सुशोभित होता है ॥ १ ॥

इदानीं राधा विह्वलिते मनसि तत्स्वरूपमेव निरूपयति—अत्र पूर्वं ध्रुवपदम् ॥ रमत इति। अधुना मुरारिर्यमुनापुलिनवने रमते। अत्र 'मुरारि'पदं कामुकस्य कार्कश्येन रत्यभावं द्योतयति। किम्भूतः ? विजयी मां पराभूय जयवान्। इति ध्रुवः। अथ पद्यानि। तमेव रमणप्रकारमाह—समुदितेति। रमणीवदने मृगमदतिलकं कस्तूरीतिलकं लिखति। रमतेऽस्यामिति रमणी। लिखिरत्र लेखनसामान्याद्विन्यासे वर्तते। किम्भूते वदने ? अतएव सम्यगुदितः कामो यतः। पुनः किम्भूते ? सतिलकं मुखमुद्वीक्ष्य दीप्तस्मरत्वात्सपुलकं यथा भवति तथा चुम्बनाद्वलितः सम्मक्तोऽधरो यत्र। कस्मिन् क इव ? रजनीकरे मृग इव। पूर्णचन्द्रनिभे मुखे कस्तूरीतिलकेन राधानिःश्वासैककाश्मल्यं द्योत्यते। अत्र 'रजनीकर'ग्रहणेन तयोः क्षणरागित्वं द्योत्यते ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीराधा अपने विह्वलित मन में उस रमणी के स्वरूप का निरूपण करती हुई कहती है कि इस समय श्रीभगवान् मुझको पराजित करके विजयी बन गये हैं तथा यमुना के तट में रमण कर रहे हैं। जो रमणी इस समय उनके साथ विलास कर रही है, उसके मुख का चुम्बन करने की इच्छा से वे उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुख को अपने सामने कर लिया हैं जिसमें काम का पूर्णरूप से उदय हो गया है—उस रमणी के मुख पर वे कस्तूरी के द्वारा तिलक बना रहे हैं। उनको इस कार्य को करते समय रोमाञ्च हो रहा है। उस रमणी के मुख पर लिखा जाने वाला कस्तूरी का तिलक उसी प्रकार सुशोभित हो रहा है, जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रमण्डल के ऊपर मृगलाञ्छन मनोहर प्रतीत होता है ॥ १ ॥

घनचयरुचिरे रचयति चिकुरे तरलिततरुणानने।
कुरबककुसुमं चपलासुषमं रतिपतिमृगकानने ॥ रमते० ॥ २ ॥

अनुवाद—मेघसमूह के समान मनोहर, चञ्चल तरुण पुरुषों के मुख के समान, कामदेवरूपी मृग के कानन के समान रमणी के बालों में वे कटसरैया के पुष्पों को सजा रहे हैं ॥ २ ॥

अपि च—घनचयेति। स तस्या इति प्रकरणलभ्यौ। चिकुरे कुन्तले। जातावेकवचनम्। कुरबककुसुमं शोणसैरेयकपुष्पं शोणाम्लानपुष्पं वा रचयति। किम्भूते ? रतिपतिः मृग इव तस्य कानने। किम्भूते चिकुरे ? घनचयरुचिरे मेघपटलमनोहरे। पुनः किम्भूते ? तरलिततरुणानने। तरलितानि तरुणानामाननानि येन। काननपक्षे तरलितानि तरुणानां कुरबककुसुमानां वा वातारिवृक्षाणामग्रभागा यस्मिन्। रमणीपक्षे कुलटानां सुखरूपम्। यथा मृगः कानने बली तथात्र कामः। अत्र 'मृग'शब्देन तत्र रममाणस्य हरेः परुषत्वं (पशुत्वं) व्यज्यते ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीराधा श्रीभगवान् की रतिकेलि का वर्णन करती हुई कह रही है कि जो रमणी श्रीभगवान् के साथ रमण कर रही है, उसके बाल उस प्रकार काले, घने तथा घुंघराले हैं जिस प्रकार कोई सजल मेघों का समूह हो। उसके बालों की दूसरी विशेषता बतलाती हुई वे कहती हैं कि उन बालों को देखकर युवकों का मुखमण्डल चञ्चल हो जाता है। किञ्च उसके बाल ऐसे हैं जैसे वे कामदेव रूपी मृग के विहार करने योग्य वन हो। उन बालों में वे पीले-पीले कटसरैया के पुष्पों को सजा रहे हैं। रमणी के बालों में सजाये गये कटसरैया के पुष्पों की शोभा विद्युत् के समान है ॥ २ ॥

घटयति सुघने कुचयुगगगने मृगमदरुचिरूषिते।
मणिसरममलं तारकपटलं नखपदशशिभूषिते ॥ रमते० ॥ ३ ॥

अनुवाद—वे उस रमणी के कस्तूरी की धूलि से रूषित तथा अर्धचन्द्राकार नखक्षत से समलंकृत एवं कठोर आकाश के समान विस्तृत दोनों स्तनों के ऊपर मणियों के हार रूपी तारासमूह को सजा रहे हैं ॥ ३ ॥

अपि च—घटयतीति। स तस्याः कुचयुगगगने कुचयुगं गगनमिव बृहत्त्वात्। अमलं मणिसरं हीरकहारं तारकपटलं तारकासमूहं घटयति योजयति। किम्भूते ? सुघने सुतरां घने पीने। गगनपक्षे शोभनघने। किम्भूते स्तनयुगे ? मृगमदरुचिरूषिते। कस्तूरीपरिव्यङ्गेन निवारितसुरतश्रमजले। गगनपक्षे मृगमदकान्तियुक्ते रूक्षे च भावेन। पुनः कथ-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

म्भूते ? नखपदं शशीव तेन भूषिते । पक्षे—नखपदमेव शशी तेन भूषिते । अत्र तस्मिन्नभिलाषशून्यत्वं गगनपदव्यङ्ग्यम् ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीराधाजी बतला रही हैं कि श्रीभगवान् उस रमणी के आकाश के समान विस्तृत दोनों स्तनों पर मणियों की माला रूपी तारा-समूह को सजा रहे हैं। यहाँ पर उन्होंने स्तनद्वय की चार विशेषताओं को बतलाया है। वे चारों विशेषताएँ आकाश तथा स्तनद्वय दोनों में अन्वित होती हैं—(१) दोनों स्तन उसी प्रकार विस्तृत हैं जिस प्रकार आकाश विस्तृत होता है। इससे रमणी के पीन स्तनों की प्रतीति होती है। (२) 'सुघने' पद का अभिप्राय यह है कि उस नायिका के स्तन अत्यन्त कठोर हैं और आकाश भी सुन्दर घनों (मेघों) से युक्त होता है। अतएव दोनों में सुघनत्व समान रूप से है। (३) नायिका के सुरतंजन्य श्रम के कारण स्तनों पर स्वेदबिन्दु जब निकल आते हैं तो उन स्वेदबिन्दुओं को सुखाने के लिए कस्तूरी के चूर्ण को मला जाता है। आकाश भी कस्तूरी की कान्ति के समान नील कान्ति से युक्त होता है। (४) नायिका के स्तनों पर नायक अर्द्धचन्द्राकार नख-क्षत करता है। अतएव अर्द्धचन्द्राकार नखक्षत से समलंकृत होता है। आकाश भी स्वच्छ चन्द्रमा से समलंकृत होता है। जिस प्रकार आकाश में तारे सुशोभित होते हैं उसी प्रकार श्रीभगवान् भी उस रमणी के स्तनद्वय रूपी विस्तृत आकाश को हीरे तथा मोतियों की माला रूपी तारों से सजा रहे हैं ॥ ३ ॥

जितबिसशकले मृदुभुजयुगले करतलनलिनीदले।
मरकतवलयं मधुकरनिचयं वितरति हिमशीतले ॥ रमते० ॥ ४ ॥

अनुवाद—मृणालदण्ड से भी कोमल रमणी के दोनों हाथों की हथेली रूपी कमलदलों को वे नीलमणि के कंगन रूपी भ्रमरों से सजा रहे हैं ॥ ४ ॥

अपि च—जितेति। स कृष्णस्तस्या जितबिसशकले मृणालखण्डसदृशे भुजयुगले वर्तमाने। करतलनलिनीदले कराब्जपत्रे। शोणे करतले नीलमरकतसश्चयः सभ्रमरपद्मशोभामनुकरोति। तेन तयोः यावकमण्डनकमनीयतान्यायेन औपाधिकस्नेहो रसाभावत्वेन व्यञ्जितः। मरकतवलयं मधुकरनिचयमेव वितरति प्रयच्छति। किम्भूते करतले ? हिमशीतले। अत्र 'हिमशीतल'शब्दस्तस्मिन्कामाभावं द्योतयति तथा चाह—'अनुरागोऽनुरक्तायां रसावह इति स्थितिः। अभावे त्वनुरागस्य रसाभासं जगुर्बुधाः' ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद में श्रीराधाजी बतला रही हैं कि उस रमणी की दोनों भुजाएँ मृणालदण्ड के समान गोरी-गोरी तथा अत्यन्त कोमल हैं। उसके बर्फ के समान दोनों हाथों की हथेली कमलदल के समान लाल हैं। जिस प्रकार लाल-लाल कमलदलों के ऊपर नीले-नीले भौंरे अत्यन्त मनोहर प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार उसकी लाल हथेलियों को श्रीभगवान् नीलमणिजटित कंगन रूपी भौंरों से सजा रहे हैं। रमणी की भुजाओं को हिमशीतल कहकर श्रीराधाजी ने उसमें काम का अभाव सूचित किया है ॥ ४ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रतिगृहजघने विपुलापघने मनसिजकनकासने ।
मणिमयरसनं तोरणहसनं विकिरति कृतवासने ॥ रमते० ॥ ५ ॥

अनुवाद—मांसल, सुगन्धित तथा कामदेव के सुवर्णनिर्मित सिंहासन के समान रतिगृह के तुल्य उस नायिका की जांघों को वे मणियों से तथा करधनी को मङ्गल बन्दनवार से सजाते हैं ॥ ५ ॥

अपि च—रतीति । स तस्या रतिगृहजघने मणिमयरसनं मेखलं विकिरति । रतिगृहं च तज्जघनं च । जघनस्य रतिगृहेति नाम्नि सत्येव रतिं गृह्णाति । रतेरावासप्रस्थापितत्वेन विशेषणपरता । किम्भूते ? विपुलापघने विपुलावयवे । पुनः किम्भूते ? मनसिजकनकासने कामस्य हेमपीठे । किम्भूतं रसनम् ? तोरणहसनम् । रतिगृहं तोरणसदृशमिति यावत् । किम्भूते रतिगृहे ? कृतवासने कृतं वासनं गन्धादि यस्य । गृहं च अधिवासपरिकल्पितासनादि रमणीयं भवति । अत्र 'कनक'शब्दः स्मरहरप्रियत्वेन कामस्योद्वेजको भवतीति ध्वन्यते ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधाजी कह रही हैं कि उस नायिका की जाँघे रतिकेलि के आश्रयस्वरूप हैं, क्योंकि वे अत्यन्त कमनीय है तथा मांसल हैं एवं खूब मोटे-मोटे हैं । किञ्च वे कामदेवरूपी राजा के लिए सुवर्णरचित सिंहासन के समान हैं । नायिकाएँ नायक को अपने वश में करने के लिए अपने अङ्गों को एक विशेष प्रकार के सिद्ध धूप से सुवासित करती हैं । उसकी सुगन्धि मात्र से ही कोई भी नायक उस नायिका के वश में हो जाया करता है । इस नायिका की जाँघें उस धूप से धूपित हैं, जिसके कारण श्रीभगवान् मेरी उपेक्षा करके उसी नायिका के वश में हो गये । जब कोई राजा सिंहासनारूढ होता है तो मङ्गलमय वन्दनवार सजाया जाता है । कामरूपी राजा के नायिका के गौरवर्ण के जाँघों रूपी सुवर्ण सिंहासन पर आरूढ होने पर श्रीभगवान् उसे सजाने के लिए मणिमय करधनी रूपी बन्दनवार से सजा रहे हैं ।

रसिकप्रियाकार का कहना है कि कनक शब्द का एक अर्थ धतूरा भी होता है । वह भगवान् शंकर को प्रिय है । भगवान् शङ्कर ने कामदेव को भस्म कर दिया था । अतएव उनके प्रिय कनक शब्द के प्रयोग के द्वारा कामोद्वेजितत्व को सूचित किया है ॥ ५ ॥

चरणकिसलये कमलानिलये नखमणिगणपूजिते ।
बहिरपवरणं यावकभरणं जनयति हृदि योजिते ॥ रमते० ॥ ६ ॥

अनुवाद—श्रीभगवान् उस नायिका के नवपल्लवों के समान लाल तथा शोभासम्पन्न एवं नखरूपी मणियों से समलंकृत चरणों को नखक्षत तथा मणियों से समलंकृत एवं लक्ष्मी के निवासस्थान अपने हृदय से लगाकर उन्हें बाहर-बाहर आलक्तक रस से रञ्जित करते हैं ॥ ६ ॥

अपि च—चरणेति । हरिस्तस्याश्चरणकिसलये यावकभरणं पूरणं जनयति । किम्भूते ? हृदि योजिते योगं प्रापिते । अर्थात् श्रीकृष्णस्य हृदि । किंविशिष्टे चरण-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसलये ? कमलानिलये लक्ष्मीनिवासस्थाने। पुनः किम्भूते ? नखा एव मणिगणाः आरक्तत्वात्। तैः पूजिते। किम्भूतं यावकभरणम् ? चरणस्य स्वभावलोहितत्वाद् बहिर्भूतमाच्छादकम्। किम्भूते हृदि ? कमलानिलये लक्ष्मीनिवासस्थाने। पुनः किम्भूते ? नखमणिगणपूजिते। तया दत्तनखत्वात् ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीराधाजी श्रीभगवान् की एक दूसरी केलि का वर्णन कर रही हैं। वे कहती हैं कि उस नायिका के चरण नवीन कोमल पल्लवों के समान रक्तवर्ण के हैं, अर्थात् अत्यन्त शोभासम्पन्न हैं। किञ्च नायिका के लाल-लाल पैरों में विद्यमान उजले-उजले नख मणिगण के समान हैं। उस नायिका के पैर उन नख रूपी मणि से समलंकृत हैं। उन पैरों को श्रीभगवान् अपने हृदय से लगाये हुए हैं। श्रीभगवान् का हृदय श्रीलक्ष्मीजी का निवासस्थान है। लक्ष्मीजी श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में ही सर्वदा निवास करती हैं तथा श्रीभगवान् का वह हृदय नायिका के द्वारा किये गये नखक्षत तथा मणिसमूहों से समलंकृत है। अपने उस वक्षःस्थल से लगाकर वे उस नायिका के स्वभावतः लाल-लाल पैरों में आलक्तक रस लगाकर उसका बाह्य अलंकरण करने का काम कर रहे हैं।

इस श्लोक में आये हुए 'कमलानिलये' तथा 'नखमणिपूजित' ये दोनों विशेषण नायिका के चरण तथा श्रीभगवान् के वक्षःस्थल दोनों में अन्वित होते हैं ॥ ६ ॥

रमयति सुभृशं कामपि सुदृशं खलहलधरसोदरे।
किमफलमवसं चिरमिह विरसं वद सखि ! विकटपोदरे ॥ रमते० ॥ ७ ॥

अनुवाद—सखि ! अपने मौन का त्याग करो। जब दुष्ट श्रीकृष्ण अपने सदृश ही किसी नायिका के साथ रमण कर रहे हैं तो व्यर्थ में इस लतानिकुंज में बहुत देर तक ठहरने से क्या लाभ है ? ॥ ७ ॥

अपि च—रमयतीति। हे सखि ! मौनं विसृज। विरसं यथा स्यात्तथा चिरमिह विटपोदरे निकुञ्जे फलप्राप्तिलक्षणरहितं चिरं किं अवसं किमुषितास्मि। क्व सति ? खलहलधरसोदरे दुष्टे बलभद्रभ्रातरि कामपि आत्मसदृशं खलां सुदृशं लक्षणया विरूपनेत्रां रमयति सति। अत्र 'हलधर'शब्दो मामनुकूलां विहायान्यासक्तोऽन्यां रममाणस्य तस्य पामरत्वं द्योतयति। ईदृशस्यास्य प्रतीक्षायां विदग्धया न स्थातव्यमिति भावः ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीराधाजी कहती हैं कि हे सखि ! बहुत देर से मौन बैठी हो, अपने मौन का त्याग करो। अब इस लतानिकुञ्ज में व्यर्थ में बहुत देर तक रुकने से कौन-सा लाभ है। जब कि हलधर के दुष्ट भाई श्रीकृष्ण अपने ही सदृश किसी रमणी के साथ रमण कर रहे हैं। यहाँ पर 'खलहलधरसोदरे' पद का अर्थ यह है कि हलधर बलरामजी का एक नाम है। हलधर का अर्थ हलवाहा भी होता है। हलवाहा का भाई तो हलवाहा ही होगा। उसमें भी दुष्ट भाई तो और गँवार होगा। उसको क्या पता है कि मुझ श्रीराधा तथा एक गँवार रमणी में क्या अन्तर है ? हलवाहा तो अपने समान किसी गँवार तथा कुरूप रमणी के साथ रमण करना अच्छा समझेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतएव श्रीकृष्ण भी अपने ही समान जब किसी कुरूप रमणी के साथ रमण कर रहे हैं तो उनसे मेरा क्या लेना-देना है। चलो हमलोग यहाँ से चलें।

इस पञ्चदश प्रबन्ध की नायिका स्वाधीनपतिका नायिका है, जिसके कारण उसके गुणों से आकृष्ट भगवान् श्रीकृष्ण उसके सान्निध्य का त्याग नहीं कर रहे हैं और श्रीराधा की भी उपेक्षा कर चुके हैं ॥ ७ ॥

इह रसभणने कृतहरिगुणने मधुरिपुपदसेवके।
कलियुगरचितं न वसतु दुरितं कविनृपजयदेवके ॥ रमते० ॥ ८ ॥

अनुवाद—रसोद्दीपक सूक्ति कहने वाले, श्रीभगवान् की कथाओं का अभ्यास करने वाले, श्रीभगवान् के चरणों के सेवक मुझ जयदेव कवि में कलि के दोषों का निवास न होए ॥ ८ ॥

अपि च—इहेति। कविराजजयदेवके कलियुगेन रचितं दुरितं न वसतु न तिष्ठतु। किम्भूते ? रसभणने रसोद्दीपके। कर्तरि ल्युः। पुनः किम्भूते ? कृतहरिगुणने कृतहरिकथाभ्यासे। पुनः किम्भूते ? मधुरिपुपदसेवके। अथ च—इह रसभणने इति प्रबन्धविशेषणत्वेन योजनीयम्। इयमष्टपदी स्तुतिनिन्दापरत्वेन बोद्धव्या ॥ तथा च सङ्गीतराजे—'द्रुतमण्ठेन तालेन द्रुतेनैव लयेन च। मल्लारे रसराजे स्यात्पदानां सन्ततेः पुनः। स्वरग्रामस्तथा पाटास्तेना अपि यथाक्रमम्। हरिरसमन्मथाद्यस्तिलकाख्यः प्रबन्धराट्' ॥ इति हरिरसमन्मथतिलकनामा पञ्चदशः प्रबन्धः ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—इस पन्द्रहवें प्रबन्ध का नाम हरिरसमन्मथतिल है। यह प्रबन्ध श्रीभगवान् का स्तुतिपरक तथा निन्दापरक दोनों है। इस पद्य में श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि मुझमें कलियुग के पापों का संश्लेष नहीं होना चाहिए। इस प्रबन्ध के प्रणेता कविराज श्रीजयदेव कवि हैं। इनकी उक्तियाँ रसोद्दीपक होती हैं। इन्होंने श्रीभगवान् की कथा का अभ्यास किया है। किञ्च ये कवि श्रीहरि के चरणों के सेवक हैं ॥ ८ ॥

नायातः सखि ! निर्दयी यदि शठस्त्वं दूति ! किं दूयसे ?
स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमते, किं तत्र ते दूषणम् ? ।
पश्याद्य प्रियसङ्गमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुणै-
रुत्कण्ठार्तिभरादिव स्फुटदिदं चेतः स्वयं यास्यति ॥ १ ॥

अनुवाद—सखी—हे सखि राधे ! वे निर्दय नहीं आये। राधा—यदि वे शठ नहीं आये तो हे दूति ! तुम क्यों दुःखी हो रही हो ? सखी—अनेक प्रेयसियों वाले वे स्वच्छन्द रमण करते हैं। राधा—तो इसमें तुम्हारा क्या दोष है ? देखो, आज प्रियतम के गुणों से आकृष्ट तथा उत्कण्ठा के भार से विदीर्ण होकर यह मेरा अन्तःकरण स्वयम् ही उनके पास जायेगा ॥ १ ॥

कृष्णानागमने हेतुं दूतीं विषादोपनयपुरःसरं सोत्कण्ठा राधा प्रकटयति—नायात इति। हे सखि राधे ! स मया बहुप्रेयस्यापि आहूतः परं निर्दय इति नायातः। अथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राधाह—हे दूति ! स यदि शठः धूर्तः तर्हि किं दूयसे ? त्वं मा विषादं कार्षीः । त्वं दूतीकर्मण्येव प्रभुः । दूत्याह—हे राधे ! अहं अत एव दूये । स बहुवल्लभः सन् बह्व्यो वल्लभाः प्रेयस्यो यस्य सः स्वच्छन्दं यथा स्यात्तथा रमते क्रीडति । पुना राधाह—तत्र ते किं दूषणं ? न हि त्वं विपरीताचरणेति मदीयमेव दैवं बलवत्तरमित्याह—हे सखि ! पश्य जानीहि । बहुतरं ज्ञास्यसि वा । इदं हृदयं चेतो यास्यति । किम्भूतं चेतः ? स्वयं स्फुटद्विदलत् । उत्प्रेक्षते—उत्कण्ठार्तिभराविव प्रियमिलनेच्छापीडाभरादिव । अन्योऽपि आर्तिभरतापितो विदीर्यत एव । किम्भूतं चेतः ? अद्य प्रियसङ्गमाय दयितस्य गुणैः आकृष्यमाणं मया निरुध्यमानमपि नीयत एव । आद्यानि च तानि प्रियाणि च तेषां तैर्वा सङ्गमः तस्यायः प्राप्तिः तस्मै, तेन वा दयितः, तस्य वा । आद्यप्रियसङ्गमे निमित्ते अयेन शुभावहेन विधिना दयितस्य । अथवा—आद्यप्रियसङ्गमायेति चतुर्थ्यन्तं भिन्नपदम् । एतदुक्तं भवति—हरिसङ्गमे पूर्वानुभूतस्मरत्तादिदं चेतो यास्यत्येव, न ते दूषणं न मम । सोऽपि नोपालम्भमर्हति; विधेः पराङ्मुखत्वात् । अथवा–एवंविधमिदं चेत एव यास्यति ज्ञास्यति इदमेव ज्ञातास्वादं निवृत्तिप्रेष्यतीत्युपरम्यते । अथाद्य पश्य । तद्गुणैराकृष्यमाणं सत् प्रियसङ्गमाय यास्यति ॥ अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । काव्यलिङ्गमलङ्कारः । उत्प्रेक्षोत्तरे च ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीराधाजी श्रीकृष्ण के नहीं आने में हेतुभूत अपनी दूती सखी को और विषण्ण बनाती हुई अपनी उत्कण्ठा को स्पष्ट कर रही हैं। रसिकप्रियाकार का अभिप्राय है कि श्रीराधा के मन में यह बात है कि श्रीभगवान् के उनके पास नहीं आने का कारण उनकी दूती सखी ही है। क्योंकि वह भगवान् श्रीकृष्ण को बुलाने के लिए गयी थी, किन्तु स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण से रमण कराकर लौट आयी है। अतएव श्रीराधा ने पूरे प्रबन्ध में उसके समक्ष ही श्रीकृष्ण को उपालम्भित किया। यही नहीं, भगवान् श्रीकृष्ण को गँवार और शठ शब्द से भी अभिहित किया।

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध को रसिकप्रियाकार ने श्रीराधा और दूती सखी के वचन-प्रतिवचन रूप से व्याकृत किया है। वह कहती है कि हे सखि राधे ! मैं स्वयं श्रीभगवान् की प्रेयसी हूँ और मैंने उनको यहाँ पर आने के लिए कहा भी, किन्तु वे निर्दय स्वभाव वाले होने के कारण नहीं आये। इस पर श्रीराधा ने कहा—सखि ! तुम तो दूती हो और वे शठ स्वभाव के ठहरे। इसलिए उनको इस बात का भी पता नहीं है कि एक दूती तथा नायिका में क्या अन्तर होता है ? अतएव यदि वे नहीं आये तो फिर तुम क्यों दुःखी हो रही हो ? इस पर दूती ने कहा—वे तो अनेक वल्लभाओं वाले हैं, अतएव वे अपनी इच्छा के अनुसार इन सभी के साथ रमण करते हैं। श्रीराधाजी ने कहा—तो फिर इसमें तुम्हारा क्या दोष है ? देखो, प्रियतम श्रीकृष्ण के गुणों से आकृष्ट तथा उत्कण्ठा के भार से लदे होने के कारण उस भार को बर्दाश्त करने में ये मेरे प्राण स्वयं अपने उस प्रियतम से मिलने के लिए जायेंगे।

इस श्लोक के उत्तरार्द्ध का अनेक प्रकार से विग्रह प्रदर्शित करके उसके कई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार के अर्थों को रसिकप्रियाकार ने प्रदर्शित किया है। इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा काव्यलिङ्ग नामक अलङ्कार है ॥ १ ॥

देशवराडीरागेण रूपकतालेन गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ १६ ॥

अनुवाद—गीतगोविन्द काव्य का यह सोलहवाँ प्रबन्ध देशवराडी राग तथा रूपक ताल से गाया जाता है।

अनिलतरलकुवलयनयनेन ।
तपसि न सा किसलयशयनेन ।
सखि ! या रमिता वनमालिना ॥ ध्रुवपदम् ॥ १ ॥

अनुवाद—हे सखि ! जिसने वनमाली श्रीकृष्ण के साथ रमणी किया, वह वायु से चंचल बने हुए नीलकमल के समान चंचल नेत्र वाले श्रीकृष्ण के साथ पल्लव-शय्या पर शयन करने के कारण संतप्त नहीं हुई ॥ १ ॥

तानेव दयितस्य सुरतसौशील्यादिकान् गुणानन्यनायिकामग्नत्वेन निन्दास्तुतिपरत्वेनाह—अनिलेति। तत्र पूर्वं ध्रुवपदं यथा—सखि येति। हे सखि ! या गोपिका वनमालिना हरिणा रमिता। रमणमिता रमिता। अथवा—रमः सञ्जातो यस्य इति वनमालिना सह क्रीडितेत्यर्थः। अथवा—उद्यानविहारादिभिर्हरिणा वा रममाणा गोपिका हरिणैव तद्विशेषक्रीडने नियुक्ता। आत्मना सह क्रीडनार्थं प्रेरितेति यावत्। अथवा—वनमालिना सह कामेन रन्तुं प्रेरिता, तत्रैव साभिलाषा क्रीडापरा बभूवेत्यर्थः। निन्दापक्षे तु—वनमालिनेति मालायाः सद्भावात्तस्याः सम्भोगपराङ्मुखत्वं सूचितम्। वनलक्ष्म्या मलिनेव; इतस्ततः पुष्परसास्वादात्। इति ध्रुवः ॥ अथ पदानि। अनिलेति। तत्र प्रतिपदमेकैकं विशेषणम्। तृतीयान्तं वनमालिनः, प्रथमान्तं च या इति पदोपलक्षितायास्तस्याः। तत्रापि च ध्रुवपदाद्विशेषणानां वैपरीत्येन। पक्षे—एतद्विपरीतोऽर्थः सूचितो भवति। किम्भूतेन वनमालिना ? अनिलेन तरले ये नीलोत्पले ते इव। नीले कमले इव नयने यस्याः सा गोपिका किसलयशयनेन न तपति नोपतप्ता भवति। पक्षे—या किलान्यमनस्केन प्रियान्तरनिरीक्षणप्रहितचञ्चललोचनेनोपभुज्यते सा किसलयशयनेऽपि न तपतीति न, अपि तु तापं प्राप्नोत्येव ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद में श्रीराधाजी अपने पति भगवान् श्रीकृष्ण के सुरतसौशील्य आदि गुणों का वर्णन निन्दा तथा स्तुतिपरक रूप में कर रही हैं। वे कहती हैं कि जिस गोपिका ने वनमाली श्रीभगवान् के साथ रमण किया, वह वायु के द्वारा चंचल बनाये गये दो नीलकमल के समान नेत्र वाले श्रीभगवान् के साथ किसलय-शय्या पर शयन करने के कारण संतप्त नहीं होती हैं, क्योंकि उसको तो प्रियतम श्रीकृष्ण का संयोग प्राप्त है। यह तो इस पद्य का स्तुतिपरक अर्थ हुआ। निन्दापरक अर्थ यह यह है कि वनमाला धारण करने वाले तथा वन की लक्ष्मी शोभा का ही आनन्द लेने में लीन अतएव संभोगपराङ्मुख भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा जिस गोपी के साथ रमण नहीं किया जा सका, वह गोपी वायु के द्वारा चंचल बनाये गये नीलकमल के समान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नेत्रों वाले उनके द्वारा केवल किसलयरचित शय्या पर शयन करने मात्र से संतप्त नहीं की गयी क्या ? अवश्य ही की गयी। इस पद्य में रसिकप्रियाकार ने अनेक प्रकार से अर्थों का निरूपण किया है। उन सभी अर्थों को वहीं देखना चाहिए ॥ १ ॥

विकसितसरसिजललितमुखेन ।
स्फुटति न सा मनसिजविशिखेन ॥ सखि ! या० ॥ २ ॥

अनुवाद—विकसित कमल के समान मनोहर मुख वाले श्रीकृष्ण के कारण वह गोपी काम के बाणों से विद्ध नहीं होती है। अथवा विलासकलापराङ्मुख केवल हास्यपरायण श्रीकृष्ण के साथ रमण न कर सकने वाली वह गोपिका काम के बाणों से विद्ध नहीं होती है क्या ? अपितु होती ही है ॥ २ ॥

अपि च—विकसितेति। किम्भूतेन हरिणा ? स्फुटितारविन्दमिव मनोहराननेन सा गोपिका कामबाणेन विद्धा न भवति। पक्षे—विलासकलाविमुखेन। केवलं प्रसारितमुखेन सम्भोगमाप्नोति। सा मदनबाणैर्मनसि न विध्यते ? अपि तु विध्यत एव ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधाजी कहती हैं कि श्रीभगवान् का मुखकमल खिले हुए कमल के समान है। उन श्रीभगवान् के साथ जिस गोपी ने रमण किया उसे काम के बाणों से संतप्त होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इस पद्य का निन्दापरक अर्थ यह है कि श्रीकृष्ण तो विलासकलापराङ्मुख हैं, वे तो अपने मनोहर मुख के द्वारा हास्य करने में लगे रहते हैं। अतएव उनके साथ रमण नहीं कर सकने वाली गोपी काम के बाणों से संतप्त नहीं होती है क्या ? अवश्य होती है ॥ २ ॥

अमृतमधुरमृदुतरवचनेन ।
ज्वलति न सा मलयजपवनेन ॥ सखि ! या० ॥ ३ ॥

अनुवाद—वह गोपी अमृत के समान मधुर तथा कोमल वचन वाले श्रीकृष्ण के कारण मलयानिल के द्वारा संतप्त नहीं होती है। अथवा अमृत के समान मधुर तथा कोमल वचन वाले श्रीकृष्ण के साथ जो रमण नहीं कर सकी वह मलयानिल से संतप्त नहीं होती है क्या ? अपितु होती ही है ॥ ३ ॥

अपि च—अमृतेति। किम्भूतेन हरिणा ? अमृतवन्मधुरतरं कोमलं वचनं यस्य तेन। सा मलयानिलेन न ज्वलति न दीप्यते। अतिप्रियवचनस्य दाता न भावं द्योतयति। तेन 'प्रियवाक् स्त्री (?) शीलः स्त्रीणां भवति वल्लभः' इति वाल्लभ्यनिरासान्मनोऽनवस्थानान्मलयमारुतेन ज्वलत्येव ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीराधाजी कहती हैं कि श्रीभगवान् अमृत के समान मधुर तथा कोमल वाणी बोलते हैं। उनके साथ रमण करने वाली जो रमणी हैं, उसको मलयानिल की वायु, जो विरहिणियों को संतप्त करती है, वह उसे नहीं संतप्त कर पाती है। अथवा श्रीकृष्ण जिस रमणी के साथ रमण नहीं किये अपितु वे अमृत के समान मधुर वाणी बोलते रहे वह रमणी क्या मलयानिल के द्वारा नहीं संतप्त हो पायी ? अवश्य ही हुई होगी ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्थलजलरुहरुचिकरचरणेन ।
लुठति न सा हिमकरकिरणेन ।। सखि ! या० ।। ४ ।।

अनुवाद---स्थलकमल की कान्ति के समान कान्ति वाले जिनके लाल-लाल हाथ-पैर हैं, ऐसे श्रीभगवान् के साथ रमण करने वाली रमणी चन्द्रमा की किरणों से संतप्त होकर पृथिवी पर नहीं लोटती है। पक्षान्तर में इसका काक्वर्थ स्वीकार करना चाहिए।

अपि च—स्थलेति। किम्भूतेन हरिणा ? स्थलकमलकान्तिकरचरणेन सा गोपिका चन्द्रकिरणेन न लुठति न भूमौ परिवर्तते। ततः पक्षे—'स्थलकमल'ग्रहणेन तदङ्गस्य तस्यापह्नायित्वमुक्तम् ।। ४ ।।

भावप्रकाशिका---श्रीराधाजी कह रही हैं कि श्रीभगवान् के हाथ-पैर स्थलकमल के समान लाल-लाल हैं। उनके साथ रमण करने वाली जो रमणी है, वह चन्द्रकिरणों के द्वारा संतप्त नहीं होती है और न ही चन्द्रमा की चाँदनी में विरहविकल होकर अपनी करवटें बदलती रहती है। पक्षान्तर में इस पद्य का काकु के द्वारा 'रातभर करवटें बदलती रहती हैं' यह अर्थ किया जायेगा ।। ४ ।।

सजलजलदसमुदयरुचिरेण ।
दलति न सा हृदि चिरविरहेण ।। सखि ! या० ।। ५ ।।

अनुवाद---उठे हुए सजल मेघ के समान मनोहर कान्ति वाले श्रीभगवान् के साथ रमण करने वाली रमणी अपने पति के दीर्घकालिक विरह के कारण अपने हृदय में दुःखी नहीं होती है। पक्षान्तर में दुःखी ही होती है ।। ५ ।।

अपि च---सजलेति। किम्भूतेन हरिणा ? सजलजलदोदयवद्दीप्तिमता। सा गोपिका हृदि दुःसहविरहभरेण न दीर्यते। पक्षे—अत्र 'सजलजलद'ग्रहणेनैव विरहेण संयोगेऽपि प्रियविरहसाम्यमिति निन्दार्थः ।। ५ ।।

भावप्रकाशिका—किञ्च जिस गोपी ने श्रीभगवान् के साथ रमण किया है वह जलभरे मेघ के समान कान्ति वाले श्रीभगवान् के साथ रहकर चिरविरहजन्य कष्ट के कारण हृदय से दुःखी नहीं होती है। किन्तु जो गोपी नवीन जलभरे मेघ के समान कान्ति वाले श्रीभगवान् के साथ रमण नहीं कर सकी वह चिरकालिक विरह के कारण हृदय से दुःखी नहीं हो सकी क्या ? अवश्य हुई होगी ।। ५ ।।

कनकनिकषरुचिशुचिवसनेन ।
श्वसिति न सा परिजनहसनेन ।। सखि ! या० ।। ६ ।।

अनुवाद—सुवर्ण की कसौटी के समान श्याम वर्ण वाले तथा पवित्र पीतवस्त्र धारण करने वाले श्रीभगवान् के साथ रहने वाली रमणी परिजनों द्वारा किये जाने वाले परिहास के कारण दुःखी नहीं होती है ।। ६ ।।

अपि च—कनकेति। किम्भूतेन हरिणा ? कनकनिकषश्यामरुचिश्चासौ शुचिवसनश्च तेन। अथवा कनकस्य निकषः निकषोपलरेखा तत्कान्तिविमलवस्त्रेण। सा गोपिका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिजनहसनेन न श्वसिति निःश्वासवती न भवति। पक्षे--या काषायवसनादिना सङ्गता भवति सा परिजनैरुपहसिता दीर्घान्निःश्वासान्मुञ्चत्येव ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका--इस पद्य में श्रीराधा कहती है कि जो गोपी सुवर्ण की कसौटी के समान श्याम कान्ति वाले तथा पीतवस्त्र धारण करने वाले श्रीभगवान् के साथ विलास करती है, वह अपने परिजनों के द्वारा किये जाने वाले उपहास के कारण दुःखी नहीं होती है, किन्तु जो गोपी कषाय वस्त्र आदि को धारण करती है, वह तो अपने परिजनों के परिहास का पात्र बनकर दुःखी होती ही है ॥ ६ ॥

सकलभुवनजनवरतरुणेन ।
वहति न सा रुजमतिकरुणेन ॥ सखि ! या० ॥ ७ ॥

अनुवाद—सम्पूर्ण जगत् के श्रेष्ठ तरुण तथा अत्यन्त करुण श्रीभगवान् के साथ रमण करने वाली रमणी कभी पीड़ित नहीं होती ॥ ७ ॥

अपि च—सकलेति। किम्भूतेन हरिणा? सकलभुवनजनश्रेष्ठतरुणेन सातीव निर्भररसेनापि रुजं पीडां न धारयति। या किल सकलेष्वपि भुवनेषु वरतरुणेनोपभुज्यते तस्यास्तु एकैकस्यापि विरहेण शोको भवतीति निन्दा ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् सम्पूर्ण लोकों में विद्यमान जितने भी पुरुष हैं, उन सभी में श्रेष्ठ तथा तरुण हैं। साथ ही साथ श्रीभगवान् करुणासागर हैं। उन श्रीभगवान् के साथ रमण करने वाली रमणी कभी पीड़ा का अनुभव नहीं करती है। किन्तु जो गोपी सम्पूर्ण जगत् में विद्यमान श्रेष्ठ तथा तरुण पुरुषों के साथ रमण करने वाली है, वह उनमें से किसी एक पुरुष का भी विप्रयोग होने पर करुणातिशय के कारण कष्ट का अनुभव करती है। अतएव उस सर्वसामान्य रमणी का कष्टानुभव करना निश्चित है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितवचनेन ।
प्रविशतु हरिरपि हृदयमनेन ॥ सखि ! या० ॥ ८ ॥

अनुवाद—मुझ श्रीजयदेव कवि के द्वारा गाये गये इस वचन द्वारा श्रीहरि भी मेरे हृदय में प्रवेश करें ॥ ८ ॥

अपि च—श्रीजयदेवेति। अनेन श्रीजयदेवभणितं च तद्वचनं च तेन हेतुना हरिः, श्रीकृष्णः हृदयं प्रविशतु। अर्थाद्राधायाः। अथवा—अयं हरिः हृत्प्रविशतु। 'अपि'-शब्दात्तवारोपकरणवचनानि च ॥ तथा च सङ्गीतराजे—'रागो वराटिका यत्र तालो वर्णयतिस्तथा। पदानि स्वेच्छयालापभूषितानि यथाश्रुति ॥ ततः स्वराश्च पाटाश्च ततः पदानि कानिचित्। इति नारायणपदाम्बुजनायासनामकः ॥ प्रबन्धः क्षितिनाथेन लोकनाथस्य वर्णितः' ॥ इति नारायणभवनायासनामा षोडशः प्रबन्धः ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीजयदेव कवि कहते हैं, मेरे द्वारा गाये गये इस प्रबन्ध के द्वारा प्रसन्न होकर श्रीभगवान् श्रीराधिकाजी के हृदय में प्रवेश करें तथा मुझ कवि, इस ग्रन्थ के पाठक तथा श्रोताओं के भी मन में प्रवेश करें ॥ ८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मनोभवानन्दन चन्दनानिल !
प्रसीद रे दक्षिण ! मुञ्च वामताम् ।
क्षणं जगत्प्राण ! विधाय माधवं
पुरो मम प्राणहरो भविष्यसि ।। १ ।।

अनुवाद—हे मलयाचल की वायु ! आप तो विलासियों के लिए अनुकूल स्वभाव वाले हो, मेरे लिए अपने प्रतिकूल स्वभाव का त्याग कर दो। हे कामदेव को प्रसन्न करने वाले ! आप प्रसन्न होएँ। हे सम्पूर्ण जगत् के प्राणस्वरूप ! मेरे सामने श्रीभगवान् को करके आप प्राणापहारक हो जायेंगे ।। १ ।।

चेतो यास्यतीति सखीं प्रोच्य अन्तरा पुनः सव्याजं कालविलम्बं कृत्वा पुनः स्मरशरासहा मलयानिलमुपालब्धुमाह—मनोभवेति। हे चन्दनानिल ! जगदाह्लादक ! प्रसीद विपरीतलक्षणया क्षमां कुरु। कथं वैपरीत्यम् ? यतः जगदाह्लादकस्वरूपप्रच्युत्या मम रिपोर्मनोभवस्य आनन्दमकरोः अतो मनोभवानन्दन ! प्रसीद क्षमां कुरु। दक्षिणोऽहमिति कृत्वा हिताहितलक्षणवक्रतानभिज्ञत्वान्नोपालभ्योऽहमिति वदसीति चेत्तर्हि जितम्। हे दक्षिण ! क्षणं क्षणमात्रं वामतां मुञ्च। कृतजगत्प्राणस्य मे सर्वसाधारण्येन नेयं प्रकृतिरिति चेत्—हे जगत्प्राण अङ्गीकृतजगत्प्राण ! त्वं माधवं पुरो विधाय अग्रे कृत्वा साम्प्रतमेव मम प्राणहरो भविष्यसि। तर्हि साधु चेष्टितम्। नाहमस्या मरणनिमित्तं, किन्तु माधव इतीदमेव वामताया विलसितमिति। अत्र वंशस्थं वृत्तम्। अतिशयोक्तिरलङ्कारः ।। १ ।।

भावप्रकाशिका—पन्द्रहवें प्रबन्ध में श्रीराधा ने कहा है कि श्रीभगवान् के पास मेरे प्राण ही पहुँचेंगे। इस श्लोक में वह कह रही है कि काम के बाणों को उनके लक्ष्य तक पहुँचाने वाले मलयाचल की वायु भी मेरे प्रतिकूल बन गयी है। वे आगे कहती हैं कि हे मलयानिल ! तुम तो जगत् का आह्लादन करने वाले हो, मेरे शत्रु कामदेव को आनन्दित करते हो अतएव मेरे ऊपर दया करो। यदि तुम दक्षिणानिल कहलाते हो तो तुम्हें सबके अनुकूल कार्य करना चाहिए, किन्तु तुम्हारा आचरण मेरे प्रतिकूल है। तुम मुझे सन्तप्त करते हो। क्षणभर के लिए मेरे प्रति अपनी प्रतिकूलता का त्याग कर दो। तुम संसार के प्राणस्वरूप हो, अर्थात् सभी के प्राणों को स्वीकार करते हो, तो तुम श्रीमाधव को अपने आगे करके अर्थात् माधव को ही निमित्त बनाकर मेरे प्राणों का अपहार करोगे। अर्जुन ने भी शिखण्डी को अपने सामने करके भीष्म को मारने का काम किया था। अतएव तुम्हारा सम्पूर्ण आचरण मेरे विपरीत है।

इस श्लोक का छन्द वंशस्थ है तथा इसमें अतिशयोक्ति अलङ्कार है ।। १ ।।

रिपुरिव सखीसंवासोऽयं शिखीव हिमानिलो
विषमिव सुधारश्मिर्यस्मिन्दुनोति मनोगते।
हृदयमदये तस्मिन्नेवं पुनर्वलते बला-
त्कुवलयदृशां वामः कामो निकामनिरङ्कुशः ।। २ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद—हे सखि ! जिसमें मन के लगे होने के कारण सखियों के साथ निवास शत्रु के समान मन को दुःखी बनाता है, ठंडी हवा अग्नि के समान मन को जलाती है तथा चन्द्रमा विष के समान मन को कष्ट देता है, उसी श्रीकृष्ण में मेरा मन इस प्रकार से लगा हुआ है। यह सत्य है कि सुन्दरियों के ऊपर अत्याचार करने में काम बिलकुल निरंकुश हुआ करता है ॥ २ ॥

इदानीं स्वचित्तमेवोपालभते—रिपुरिवेति। हे सखि ! यस्मिन् गते सति अन्यत्र स्थिते सति अथवाऽज्ञातस्वरूपे सति अयमनुकूलोऽपि सखीसंवासः रिपुरिव मनो दुनोति। अनु च शीतो वायुः ज्वलन इव मनो दुनोति। अपि च—अमृतदीधितिर्हालाहलमिव मनो दुनोति। एवमप्यर्थे तस्मिन्नप्यदये हृदयं पुनर्बलाद्वलते तदभिमुखीभवति। किं तर्हि क्रियते स्त्रैणस्थितिरियम्। कुवलयदृशां निकामनिरङ्कुशः कामो वाम एव वर्तते। निकामनिरङ्कुशः अतिशयोच्छृङ्खलः। अत्र हरिणीवृत्तम्। विरोधालङ्कारः ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीराधा अपने चित्त को ही उपालम्भित करती हैं। वे अपनी सखी से कहती है कि जिस श्रीकृष्ण में मन के लगे रहने के कारण अपनी सखियों के बीच में बैठना मेरे मन को ऐसा लगता है जैसे मैं शत्रुओं के बीच में बैठी होऊँ। यह जो ठंडी हवा है, वह मुझे आग के समान संतप्त करती है। यह चन्द्रमा विष के समान मन को दुःखी बनाता है। ऐसा होने पर भी मेरा मन उसी निर्दयी श्रीकृष्ण में लगा रहता है। कमलनयनी नारियों का जो काम होता है, वह अत्यन्त निरंकुश होता है। अतएव वह सदा विहरणियों के विपरीत ही आचरण करता है।

इस श्लोक में हरिणी वृत्त तथा विरोधालङ्कार है ॥ २ ॥

बाधां विधेहि मलयानिल ! पञ्चबाण !
प्राणान्गृहाण न गृहं पुनराश्रयिष्ये।
किं ते कृतान्तभगिनि ! क्षमया तरङ्गै-
रङ्गानि सिञ्च मम शाम्यतु देहदाहः ॥ ३ ॥

अनुवाद—हे मलयानिल ! तुम भी बाधा उत्पन्न करो, हे कामदेव ! तुम भी मेरे प्राणों को ले लो, मैं घर नहीं जाऊँगी। हे यमुने ! तुम्हें क्षमा करने से क्या काम, तुम भी मेरे अङ्गों को सींच दो, जिससे कि मेरे शरीर का सन्ताप समाप्त हो जाय ॥ ३ ॥

इदानीं कामोपतप्ता मलयानिलादीनधिक्षिपति—बाधामिति। हे मलयानिल ! बाधां विधेहि पीडया किं प्रतीक्षसे ? हे पञ्चबाण ! प्राणान् गृहाण। पञ्चभिर्बाणैः पञ्चापि प्राणांस्त्वं गृहाण। भवत इदमेव प्रयोजनम्। यस्मात्स्मरोऽपि तप्तं जनमुपताप्य गृहाभिमुखीकरोति। एतदर्थमेव स्वभावपरित्यागेनाप्युपकृतिर्विधेया। परं तु अहं बाध्यमानापि गृहीतप्राणापि पुनर्गृहं नाश्रयिष्ये, श्रीकृष्णमेव शरणं व्रजिष्यामीति तावुपालभ्य पुनरुद्दीर्णस्मराय यमुनामाह—हे कृतान्तभगिनि यमस्वसः ! मलयानिलपञ्चबाणौ शैत्य-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्भोगकारणावपि पीडयतः; तर्हि नहि त्वं यमस्य भगिनी, ताभ्यां प्राणेषु गृहीतेषु भ्रातुः किमुत्तरं दास्यसि ? इति । तेन तव क्षमया क्षान्त्या किं ? भ्रातुर्हितं समाचर मत्प्राणार्पणेनेत्याह—तरङ्गैरूर्मिभिर्मम गात्राणि सिञ्च । तेषु सिक्तेषु माधवप्राप्त्या देहदाहः शाम्यतु । तरङ्गसेकेनापि तदलाभे प्राणेषु गतेषु देहदाहः शान्तिमेष्यतीत्यभिप्रायः । वसन्ततिलकावृत्तम् । अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः ।। ३ ।।

भावप्रकाशिका—अब काम से संतप्त श्रीराधाजी मलयानिल आदि को आक्षिप्त करती हुई कहती हैं कि हे मलयाचल की शीतल वायु ! तुम भी मुझे पीड़ित करने में कोई संकोच मत करो, अपने मनभर मुझे दुःख दे लो । हे कामदेवता ! तुम्हारे पाँच बाण हैं, इसीलिए तुम पञ्चबाण शब्द से अभिहित किये जाते हो । अतः तुम अपने पाँचों बाणों से मेरे पाँचों प्राणों को ले लो । कामदेव विरहिणियों को संतप्त करके उन्हें घर की ओर उन्मुख बना देता है, किन्तु मैं घर नहीं जाऊँगी, मेरे प्राण भले ही निकल जायँ; मुझे बहुत कष्ट सहना पड़े, किन्तु मैं अपने गृह का आश्रय न लेकर श्रीकृष्ण के ही शरण में जाऊँगी ।

श्रीयमुनाजी से श्रीराधा कहती हैं कि कामदेव संभोग की ओर स्वभावतः प्रेरित करता है, किन्तु आज वह मेरे प्राणों को ले रहा है । मलयानिल स्वभावतः सभी को सुखी बनाता है, किन्तु वह मुझे संतप्त कर रहा है । तुम तो यम की बहन हो, तुम क्यों चुकोगी ? तुम भी अपने कर्तव्य का निर्वाह करो । मेरे मरे हुए शरीर को तुम अपने भीतर डुबो दो, जिससे कि मेरे अङ्गों का संताप समाप्त हो जाय ।

इस श्लोक में वसन्ततिलका वृत्त तथा अप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कार है ।। ३ ।।

प्रातर्नीलनिचोलमच्युतमुरः संवीतपीतांशुकं
राधायाश्चकितं विलोक्य हसति स्वैरं सखीमण्डले ।
व्रीडाचञ्चलमञ्चलं नयनयोराधाय राधानने
स्वादुस्मेरमुखोऽयमस्तु जगदानन्दाय नन्दात्मजः ।। ४ ।।

इति श्रीजयदेवकृतौ श्रीगीतगोविन्दे विप्रलब्धावर्णने
नागरनारायणो नाम सप्तमः सर्गः ।। ७ ।।

अनुवाद—प्रातःकाल राधा के वक्षःस्थल को पीताम्बर से ढँके तथा श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल को नीले कञ्चुक से ढँके आश्चर्यपूर्वक देखकर स्वच्छन्दतापूर्वक हँसते हुए सखीमण्डल को देखकर राधा के मुख पर लज्जा से चञ्चल नेत्रों के आँचल को रख कर आनन्दप्रद मुस्कान करते हुए नन्दनन्दन जगत् के लिए आनन्दप्रद हों ।। ४ ।।

इस प्रकार श्रीजयदेव कवि प्रणीत गीतगोविन्द काव्य में विप्रलब्धा नायिका श्रीराधा के वर्णन प्रसङ्ग में नागरनारायण नामक सातवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ।। ७ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

इदानीं सर्गान्ते वैष्णवानाशास्ते—प्रातरिति। अयं नन्दात्मजः जगदानन्दायास्तु। किम्भूतः? स्वादु स्मेरमुखः स्मेरं सहासं मुखं यस्य स तथा। किं कृत्वा? राधानने नयनयोरञ्चलं प्रान्तमाधाय आरोप्य। किम्भूतमञ्चलम्? व्रीडाचञ्चलं लज्जया तरलम्। एतावता राधाननं कटाक्षवीक्षितं कृत्वेत्यर्थः। तदुक्तम्—'यद्गतागतविश्रान्तिवैचित्र्येण विवर्तनम्। तारकायाः कलाभिज्ञास्तं कटाक्षं प्रचक्षते' इति। क्व सति? सखीमण्डले प्रातश्चकितं यथा स्यात्तथा स्वैरं स्वेच्छया हसति सति। किं कृत्वा? अच्युतं नीलनिचोलं नीलपरिच्छदं विलोक्य। च पुनः राधाया उरः संवीतपीतांशुकम्। एवं वस्त्रविनिमयः सखीनां हास्ये कारणम्। इह हास्यो रसः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। स्वभावोक्तिरलङ्कारः। अत्र सर्गे शठो नायकः, अभिसारिका नायिका। तल्लक्षणं—स्मरार्ताभिसरेत्कान्तं सारयेद्वाभिसारिका' ॥ ४ ॥

श्रीएकलिङ्गाश्रयसोदरायां स्फीतोज्ज्वलायां रसिकप्रियायाम्।
श्रीकुम्भकर्णेन विनिर्मितायां सर्गोऽगमत्सप्तम ऊर्जितायाम् ॥

इति श्रीगयादिविमोक्षादिविश्वजनीनकर्मनिर्मलीकृतान्तःकरण-
राजाधिराजमहाराजश्रीकुम्भकर्णविरचितायां गीतगोविन्द-
टीकायां रसिकप्रियायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—इस सर्ग के अन्तिम श्लोक के द्वारा श्रीजयदेव कवि श्रीवैष्णवों को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि प्रातःकाल में सखियों ने आश्चर्यपूर्वक देखा कि श्रीराधा श्रीकृष्ण के पीताम्बर से अपने वक्षःस्थल को ढँके हुई हैं और श्रीभगवान् अपने वक्षःस्थल को श्रीराधा के नीली कञ्चुकी (ब्लाउज) से ढँके हुए हैं। एक-दूसरे को परस्पर एक-दूसरे के वस्त्र से अपने वक्षःस्थल को ढँके हुए देखकर सखियाँ बहुत जोर से हँस रही थीं। इस प्रकार स्वच्छन्दतापूर्वक सखियों को हँसते हुए देखकर श्रीभगवान् ने लज्जापूर्वक श्रीराधा के मुखमण्डल पर कटाक्षपात किया और मन्द-मन्द मधुर मुस्कान करने लगे। इस प्रकार के श्रीभगवान् जगत् के लिए आनन्दकारक बनें—ऐसी श्रीजयदेव कवि लोकमङ्गल की कामना करते हैं।

इस श्लोक में हास्य रस, शार्दूलविक्रीडित वृत्त, स्वभावोक्ति अलङ्कार तथा इस सर्ग में शठ नायक एवं अभिसारिका नायिका है ॥ ४ ॥

इस प्रकार शिवप्रसाद द्विवेदी कृत श्रीगीतगोविन्द काव्य के नागरनारायण नामक सातवें सर्ग की भावप्रकाशिका व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अष्टमः सर्गः

(विलक्ष्यलक्ष्मीपतिः)

अथ कथमपि यामिनीं विनीय स्मरशरजर्जरितापि सा प्रभाते।
अनुनयवचनं वदन्तमग्रे प्रणतमपि प्रियमाह साभ्यसूयम् ॥ १ ॥

अनुवाद—इसके पश्चात् किसी प्रकार से रात्रि विताकर कामदेव से व्याकुल श्रीराधा प्रातःकाल में प्रणत होकर सामने प्रार्थना करते हुए श्रीकृष्ण से अभ्यसूया-पूर्वक बोली ॥ १ ॥

सदानन्दसन्दोहकारं मुकुन्दं नमस्कृत्य पद्माङ्गविद्युत्पयोदम्।
नृपः कुम्भकर्णो विधत्ते विचित्रं वरं गीतगोविन्दधातुं पवित्रम् ॥ १ ॥

इदानीमेवं तत्परत्वेन विलपमानायास्तस्याः पुरत आर्तप्राणपरित्राणकारणं जगत्कारणकारणमाविरभूत्। अतः कविराह—अथेति। मानिनीनां हि प्रियाग्रतो मानोऽतिमानमेतीति प्रसिद्धमाह। अथ माधवागमनानन्तरं प्रियं साभ्यसूयं सा राधा वक्ष्यमाणमाह। किम्भूतं प्रियम्? अग्रे प्रणतमपि। अर्थाच्चरणयोः। पुनः किम्भूतम्? अनुनयवचनं सामवाक्यं वदन्तम्। क्व? प्रभाते किम्भूता सा? स्मरशरजर्जरितापि। किं कृत्वा? कथमपि महता कष्टेन यामिनीं विनीय। पुष्पिताग्रा वृत्तम्। खण्डिता नायिका। हरि हरीति खेदे धूर्तो नायकः। विप्रलम्भो रसः। जातिरलङ्कारः ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—सातवें सर्ग पर्यन्त श्रीराधा श्रीकृष्णपरायण होने के कारण संकेतस्थल में नहीं आये हुए श्रीकृष्ण को देखकर विलाप कर रही थीं। प्रातःकाल होते ही अचानक श्रीराधा के समक्ष श्रीभगवान् आ गये। यह प्रसिद्धि है कि मानिनी नायिकाओं का मान अपने प्रियतम के समक्ष बहुत बढ़ जाता है। अपने समक्ष आये हुए श्रीभगवान् को देखकर श्रीराधा असूयापूर्वक कहने लगीं, जिसका वर्णन सतरहवें प्रबन्ध में किया जायेगा। श्रीभगवान् की तात्कालिक विशेषता यह है कि श्रीभगवान् श्रीराधा के समक्ष प्रणत थे और बड़ी सान्त्वनामयी अनुनयात्मक बातें कर रहे थे। किन्तु श्रीराधा ने बड़े कष्ट से सम्पूर्ण रात्रि संकेतस्थल में श्रीभगवान् की प्रतीक्षा करते हुए बितायी और इस प्रकार उसे वहीं पर सबेरा हो गया। अतः प्रातःकाल में आये हुए भगवान् को देखकर काम से पीड़ित होने पर भी श्रीराधा ने असूयापूर्वक श्रीभगवान् से बातें की।

इस श्लोक में पुष्पिताग्रा वृत्त, खण्डिता नायिका, धूर्त नायक, विप्रलम्भ-शृङ्गार रस तथा जाति नामक अलङ्कार है ॥ १ ॥

भैरवीरागयतितालाभ्यां गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ १७ ॥

अनुवाद—श्रीगीतगोविन्द काव्य का यह सतरहवाँ प्रबन्ध भैरव राग तथा यति ताल से गाया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रजनिजनितगुरुजागररागकषायितमलसनिवेशम् ।
वहति नयनमनुरागमिव स्फुटमुदितरसाभिनिवेशम् ।
हरि हरि याहि माधव ! याहि केशव ! मा वद कैतववादम् ।
तामनुसर सरसीरुहलोचन ! या तव हरति विषादम् ।। ध्रुवपदम् ।। १ ।।

अनुवाद—हे माधव ! हे केशव ! मुझे खेद है ! आप चले जायें, यहाँ झूठ न बोलें। हे कमलनयन ! आपके विषाद को जो दूर करती है, उसी के पास आप जायें। आपके नेत्र रात्रि में बहुत अधिक जागने के कारण लाल-लाल हो गये हैं तथा आपकी आँखों में शृङ्गाररसजन्य अनुराग अब भी लक्षित हो रहा है ।। १ ।।

तामेव सपत्नीविषयेर्ष्यां प्रकटयति। तत्र पूर्वं पूर्वपदानुस्यूतत्वाद् ध्रुवपदं व्याक्रियते—हरि हरीति। हरि हरीत्यव्ययानामनन्तार्थत्वात्खेदवाचकमव्ययम्। अथवा गानपूर्त्यै, स्तोभमात्रम्। खण्डिता राधा अग्रे प्रणतं प्रियं सेर्ष्यमाह—हे माधव लक्ष्मी-पते ! याहि गच्छ। अन्यासक्तो हि कथमन्यां प्रतारयसीति 'मा'शब्दद्योत्यम्। अथवा, मा स्वभावचञ्चला तस्याः पत्युश्चञ्चलत्वं युक्तमेव। तर्हि चञ्चलस्त्वं त्वदेकपरायणां मां कथं प्रतारयसीति याहि। एवमप्यधिक्षेपेऽसन्तुष्टा पुनराह—हे केशव ! याहि। स्वयोषिति रतत्वे किमुच्यते। प्रशस्ताः केशा यस्येति केशवपदव्युत्पत्तेः। त्वं केश-संस्कारवतीषु स्वैरिणीषु रत इति 'केशव'शब्दव्यङ्ग्यम्। अतो हे केशव ! बहुवल्लभ ! त्वदेकपरायणोऽहमित्यादिकैतववादं छलवाक्यं मा वद। विषण्णे मयि किमकारणरोषणे रोष इत्याशङ्कसे चेत्—मैवम्; हे कुमुदलोचन ! या तव विषादं हरति तामेव बहुप्रिया-मनुसर। अनुरूपस्यानुरूपायामनुरूपं सुरतमिति। 'कुमुद'ग्रहणेन सोमवंशोद्भूतत्वाद्रात्रौ जागरो दिवाशयो लक्ष्यते। इति ध्रुवः ।। अथ पदानि। रजनीति। हे कृष्ण ! त्वं नयनमनुरागमिव वहसि। किम्भूतमनुरागम् ? स्फुटमतिबाहुल्येनान्तर्व्याप्य बहिर्निर्यातम्। पुनः किम्भूतम् ? उदितरसस्य शृङ्गारस्याभिनिवेश आग्रहो यत्र। अथानुरागविशेषण-त्वेन उदितः स्वादस्याभिलाषस्याग्रहो यत्रेति। किम्भूतं नयनम् ? रजनिजनितो योऽसौ गुरुजागररागः तेन कषायितं लोहितीकृतम्। पुनः किम्भूतम् ? अलसो निवेशोऽवस्थानं यत्र। अत्र 'वहति' इति पाठान्तरपक्षे तवेति पूर्वपक्षस्यानुषङ्गेण नयनं कर्तृ स्फुटमनुरागं वहतीति योज्यम् ।। १ ।।

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीराधाजी श्रीभगवान् को तीन सम्बोधनों से सम्बोधित करती हैं—(१) माधव, (२) केशव तथा (३) सरसीरुहलोचन। ध्रुव पद के हरि ! हरि ! ये दोनों अव्यय पद खेदार्थक हैं। वे कहती हैं कि हे भगवन् ! मुझे खेद है। आप तो माधव हैं अर्थात् लक्ष्मीपति हैं। लक्ष्मी स्वयं चञ्चला हैं। उनका किसी से भी स्थायी स्नेह नहीं है। चञ्चला लक्ष्मी से प्रेम करने वाले आपका तो उसी तरह की किसी रमणी से स्नेह हो सकता है, मैं तो एक पतिव्रता नारी हूँ। मुझसे आप क्यों स्नेह कर रहे हैं। अतएव आप यहाँ से चले जायें। झूठमूठ की बातें बनाने (कैतववाद) से क्या लाभ ? आप तो केशव हैं। अतएव किसी केशसंस्कार-सम्पन्न रमणी से ही स्नेह कर सकते हैं, आप जायें। आप सरसीरुहलोचन हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सरसीरुह शब्द कमल तथा कुमुद दोनों का समान रूप से वाचक है। श्रीभगवान् का कमललोचनत्व भी प्रख्यात है, किन्तु श्रीराधा को यहाँ पर सरसीरुह शब्द से कुमुद-रूपी अर्थ ही अभिप्रेत है। श्रीभगवान् भी चन्द्रवंशी हैं। उन्होंने रातभर किसी अन्य नायिका के साथ जगकर रात्रि विताया है। अतएव श्रीराधाजी कहती हैं कि आप उसी रमणी का अनुसरण कीजिए, जिसके साथ कुमद के समान रातभर जगकर आपने रात्रि वितायी हैं। जो आपके मंन के विषाद को दूर करने में समर्थ है, उसी के पास आप जायँ। कुमुद भी रातभर विकसित रहता है और दिन में मुकुलित हो जाता है। रजनिजनित० इत्यादि—रातभर महाजागरण करने के कारण आपकी आँखों में राग की लालिमा रूपी दोष विद्यमान है तथा उस समय जो बहुत अधिक शृङ्गार रस उदित हुआ, उस अनुरागमय का अभिनिवेश इस समय भी आपकी आँखों में बना हुआ है। यह श्रीराधा के कहने का अभिप्राय है॥ १॥

कज्जलमलिनविलोचनचुम्बनविरचितनीलिम रूपम्।
दशनवसनमरुणं तव कृष्ण! तनोति तनोरनुरूपम्॥ हरि हरि०॥ २॥

अनुवाद—हे कृष्ण! आपके लाल-लाल ओठ भी आञ्जन से अञ्जित नेत्रों का चुम्बन करने के कारण आपके काले शरीर के समान ही कृष्ण वर्ण के हो गये हैं॥२॥

अपि च—कज्जलेति। हे कृष्ण! तव दशनवसनमधरस्तनोरनुरूपं रूपं तनोति। किम्भूतम्? अरुणम्। स्वभावारुणमपि। पुनः किम्भूतं दशनवसनम्? कज्जलेन मलिने ये विलोचने तयोश्चुम्बनेन विरचितो नीलिमा यत्र तत्। अत्र मलिनग्रहणं तन्नेत्रयोर्बहु-पुरुषोपभोग्यत्वं व्यञ्ज्यति॥ २॥

भावप्रकाशिका—हे कृष्ण! यदि आप कहें कि रातभर तुमको ही खोजते-खोजते जागने के कारण मेरी आँखें लाल-लाल हो गयी हैं; मैंने किसी दूसरी नायिका के साथ रात नहीं वितायी है, तो आपका यह भी कथन झूठा होगा। क्योंकि आपने जिस रमणी के साथ रात वितायी है, रमण काल में उसके आञ्जन से अञ्जित आँखों का बहुत अधिक चुम्बन करने के कारण आपके स्वभावतः लाल-लाल ओठ भी इस समय उसी प्रकार काले-काले हो गये हैं, जिस प्रकार आपका शरीर काला-काला है॥ २॥

वपुरनुहरति तव स्मरसङ्गरखरनखरक्षतरेखम्।
मरकतशकलकलितकलधौतलिपेरिव रतिजयलेखम्॥ हरि हरि०॥ ३॥

अनुवाद—आपका शरीर कामकेलि के समय किये गये तीक्ष्ण नखक्षतरेखाओं से मरकतमणि के टुकड़े पर लिखी गयी सुवर्णलिपि के समान रतिजय-लेख से युक्त है॥ ३॥

तव वपू रतिजयलेखमनुहरतीवानुकरोतीव। इदं वपुर्न, मया सर्वं जितमिति कामिनः प्रति कामजायाप्रेष्यलेखोऽयम्। अनेन स्त्रीप्रेष्यत्वेन तस्याधमत्वं सूचितमिति व्यङ्ग्योऽर्थः। किम्भूतं वपुः? स्मरस्य सङ्गर इव सङ्गरे कामविलासे खरनखराणां क्षतरेखा यत्र। अत्रापि 'खर'ग्रहणं विलासभङ्गे हेतुः। तस्याः सम्बन्धिनं लेखमिति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वपुर्नखक्षतानां लेखेनोपमेयगर्भविशेषणमाह। मरकतशकले कलितायाः कलधौतलिपेः सम्बन्धिनम्। अथवा—लिपेरित्यत्र पञ्चमी। तत्रैवं लिपेरिवेति योजनीयम्। 'कलधौतलिपिमिव' इति युक्तः पाठः ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीराधाजी कह रही हैं कि उस रमणी ने रति काल में जो आपके हृदय पर तीक्ष्ण नखक्षत किया है, उस नखक्षत से युक्त आपका शरीर है। आपके नीलवर्ण के शरीर पर रमणी द्वारा किये गये नखक्षत की लालिमा ली हुई तीक्ष्ण रेखाएँ इस प्रकार प्रतीत होती हैं, जैसे किसी मरकतमणि की नीली शिला पर सुवर्णमयी लिपि लिखी गयी हो। आपके शरीर पर अब भी विद्यमान नखक्षत की रेखाएँ रतिजय-लेख के समान हैं। रतिजय लेख का अर्थ यह है कि मानों काम की पत्नी ने ऐसा अपना विजय-सन्देश भेजा है कि मैंने श्रीकृष्ण के इस सम्पूर्ण शरीर को कामसंग्राम (रतिक्रीड़ा) में पूर्ण रूप से जीत लिया है। इसका अभिप्राय यह है कि आज आप किसी नारी के दूत बनकर आये हैं, उसका विजय-संदेश मुझे सुनाने। यह आपकी कितनी बड़ी नीचता है? खर शब्द का प्रयोग कर श्रीराधा ने विलासभङ्ग को सूचित किया है। नखक्षत ऐसा होना चाहिए, जिसमें तीक्ष्णता न होकर मृदुता हो। तीक्ष्ण नखक्षत तो कष्टप्रद होता है, सुखप्रद नहीं। अतएव आपने जिस रमणी के साथ रात बितायी हैं, उसको रतिविलासकता का ज्ञान बिलकुल नहीं है। यह भी श्रीराधा के कहने का अभिप्राय है ॥ ३ ॥

चरणकमलगलदलक्तकसिक्तमिदं तव हृदयमुदारम्।
दर्शयतीव बहिर्मदनद्रुमनवकिसलयपरिवारम् ॥ हरि हरि० ॥ ४ ॥

अनुवाद—तुम्हारे विस्तृत वक्षःस्थल में रमणी के पैरों के महावर की स्पष्ट छाप आपके अन्तःकरण में विद्यमान कामवृक्ष के लाल किसलय-समूह को मानों बाहर व्यक्त कर रही है ॥ ४ ॥

अपि च—चरणेति। अत्र प्रीतिविशेषं सूचयति—हे कृष्ण! तवेदं हृदयं बहिर्मदनद्रुमस्य मदनो द्रुम इव तस्य, नवकिसलयपरिवारं नवपल्लवसमूहमिव दर्शयति—किम्भूतं हृदयम्? उदारं महत्। पुनः किम्भूतम्? चरणकमलादलक्तकसान्निध्यादुपभुक्तवनितापादपद्मतः गलतालक्तकेन सिक्तम्। अत्र मदनद्रुमत्वारोपेण बहिर्ग्रहणेन च तस्याः साधारण्याननुरागौ सूचितौ। हस्तचरणाभ्यां रतविशेषो यथा—'यदि संहतमूर्ध्वगमूरुयुगं युवतेः परिरभ्य नरो रमते। तदभग्नमुरःस्फुटनं च भवेदुरसि प्रमदाचरणद्वयतः' ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीराधा कहती हैं कि आपने उस नायिका के साथ क्रोध नामक बन्ध-विशेष से रमण किया है। रमण के क्रोधबन्ध का वर्णन करते हुए वात्स्यायन मुनि ने कहा है—

'योषित् पादौ हृदि न्यस्य कराभ्यां धारयेत् कुचौ।
यथेष्टं ताडयेद् योनिं क्रोधबन्धः प्रकीर्तितः' ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् जब पुरुष रमणी के दोनों पैरों को एक में सटाकर अपने हृदय से लगाता है तथा उसके दोनों स्तनों को पकड़कर अपनी इच्छानुसार रमणी का योनि-ताड़न करता है तो उसे क्रोध नामक बन्ध-विशेष कहते हैं।

श्रीराधा भी कहती हैं कि रमणी के चरणकमल से निकाले हुए आलक्तक रस से रञ्जित जो आपका विस्तृत वक्षःस्थल है, उसके द्वारा मानों आपके अन्तःकरण में विद्यमान जो कामवृक्ष है, उसके नये-नये लाल-लाल पल्लव बाहर निकल आये हों—ऐसा प्रतीत होता है ॥ ४ ॥

दशनपदं भवदधरगतं मम जनयति चेतसि खेदम्।
कथयति कथमधुनापि मया सह तव वपुरेतदभेदम् ॥ हरि हरि० ॥ ५ ॥

अनुवाद—आपका जो यह अधर हैं उस पर पड़े हुए दन्तक्षत के चिह्न मेरे अन्तःकरण में खेद उत्पन्न कर रहे हैं, अतएव आपका मेरे साथ वह अभेद कैसे द्योतित कर सकता है ॥ ५ ॥

अपि च—दशनपदमिति। हे कृष्ण ! तव एतदिति अन्यरमण्युपभोगचिह्नितं मया सहाधुनापि प्रत्यक्षतो दृश्यमानेऽपि भेद एतामप्यवस्थां प्रापितया सहाभेदं कथं कथयति। कोऽसावभेद इत्याह—दशनपदं दन्तक्षतं भवदधरगतं सत्, मम चेतसि खेदं जनयतीति। यस्य व्रणस्तस्य वेदनेति प्रसिद्धेऽन्यव्रणोऽन्यवेदनामादधातीति विरुद्धपरिहाराय भेद एव घटते। स च सुतरां विरुद्ध इति ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधाजी कहती हैं कि आपकी विरहवेदना के कारण मैं तो इस दशा को प्राप्त हो गयी हूँ और आपने जिस रमणी के साथ रात बितायी है, उसने सुरतकाल में आपके ओठों पर अपने दाँतों की छाप छोड़ दी है। उस दन्तक्षत को देखकर मेरे हृदय में कष्ट होता है। ऐसी स्थिति में आपसे मेरा अभेद कैसे अभिव्यक्त हो सकता है ? इससे तो हम दोनों का भेद ही सिद्ध होता है ॥ ५ ॥

बहिरिव मलिनतरं तव कृष्ण ! मनोऽपि भविष्यति नूनम्।
कथमथ वञ्चयसे जनमनुगतमसमशरज्वरदूनम् ! ॥ हरि हरि० ॥ ६ ॥

अनुवाद—हे कृष्ण ! मैं समझती हूँ कि आपका स्वभावतः विशद भी मन अधिक मलिन हो गया होगा, अन्यथा मुझ जैसे अपने आश्रित व्यक्ति को आप कैसे वञ्चित करते ? मलिन मन वाला व्यक्ति ही किसी आश्रित व्यक्ति के साथ छल करता है ॥ ६ ॥

अपि च—बहिरिवेति। नूनं वितर्के। हे कृष्ण ! अहमिति वितर्कयामि। तव मनोऽपि मनसः स्वभावादौज्ज्वल्ये सत्यपि बहिरिव बहिर्गतकृष्णवर्णं इव मलिनतरं भविष्यति। अथ चैवं न तर्हि अनुगतमाश्रितं भवन्तमधिकृत्यासमशरदूनं मल्लक्षणं जनं कथं वञ्चयसे। तद्वञ्चनादेव चित्तमपि मलिनमनुमीयते। मलिना एवाश्रितवञ्चनां कुर्वन्तीति ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधाजी भगवान् श्रीकृष्ण से कहती हैं कि हे भगवन् ! आपका मन स्वभावतः तो उदार हैं, किन्तु दुःसङ्गति में पड़कर आपका मन भी लगता है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब ऊपर से मलिन हो गया है। इसीलिए आप मुझ जैसी एक पतिव्रता नारी को, जो आपके ही आश्रित है, उसके साथ छल करते हैं। मेरी उपेक्षा करके आप अन्य रमणी के साथ विलास करते हैं। कोई भी मलिन मन वाला व्यक्ति ही अपने आश्रित व्यक्ति के साथ छल करता है। खासकर उस अवस्था में जब कि मैं काम के बाणों से पीड़ित हूँ। ऐसी दशा में आपका इस प्रकार छल करना उचित है क्या ? ॥ ६ ॥

भ्रमति भवानबलाकवलाय वनेषु किमत्र विचित्रम् ।
प्रथयति पूतनिकैव वधूवधनिर्दयबालचरित्रम् ॥ हरि हरि० ॥ ७ ॥

अनुवाद—लगता है कि आप नारियों का वध करने के लिए ही वन में विचरण करते हैं। हे स्त्रियों का वध करने में निर्दय श्रीभगवन् ! पूतना का वध ही आपके नारीवधपरायण बालचरित्र को स्थापित करता है ॥ ७ ॥

अपि च—भ्रमतीति। हे वधूवधे निर्दय ! भवान्वनेषु अबलाकवलाय युवतीग्रसनाय भ्रमति। सर्वाणि वाक्यानि सावधारणान्येवेति। यथा 'पार्थो धनुर्धरः' इतिवत्। अत्र मद्वधे किं विचित्रम् ? ममाबलाया वधः सुकर एव पूतनिका अतियुद्धमदा कंसभगिन्येव तव बालचरित्रं प्रथयति। बालेन यदि तादृशी प्रबला कवलिता तर्ह्यस्या अबलायाः कवलने किमाश्चर्यम् ? अत्र स्त्रीवधो निषिद्ध इति निन्दा। 'अथ कथमपि' इत्यादौ खण्डिता नायिका। तल्लक्षणम्—'ज्ञातेऽन्यासङ्गविकृते कान्ते कोपकषायिता। गत्वान्यत्रागते कान्ते भोगचिह्नैः कषायिता' ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीराधाजी कहती हैं कि हे भगवन् ! लगता है कि आप जो वनों में भ्रमण किया करते हैं, उसका उद्देश्य नारियों का वध करना ही है और नारियों का वध करने में आपके लिए आश्चर्य भी क्या है ? आपकी अबला-वध करने की प्रख्याति तो आपके बालचरित्र से ही है। आपने अपने शैशव के प्रारम्भ में पूतना जैसी भयंकर तथा युद्धप्रिया नारी का वध कर दिया था। ऐसी स्थिति में जब कि आप युवक हैं, आपके लिए मुझ जैसी नारियों का वध करने में कौन-सा प्रयास करना होगा ? बड़ी आसानी से आप मुझ जैसी नारियों का वध कर सकते हैं। इस कार्य को करने में आपको दया भी नहीं आती है, किन्तु यह आपका काम शास्त्रीय दृष्टि से निन्दित है ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितरतिवञ्चितखण्डितयुवतिविलापम् ।
शृणुत सुधामधुरं विबुधा ! विबुधालयतोऽपि दुरापम् ॥ हरि हरि० ॥ ८ ॥

अनुवाद—हे विद्वानो अथवा देवताओ ! श्रीजयदेव कवि द्वारा वर्णित अमृत से भी अधिक मधुर तथा देवलोक में भी दुष्प्राप्य रति से वञ्चित खण्डिता नायिका के विलाप को आप सुनें ॥ ८ ॥

अपि च—श्रीजयदेवेति। हे विबुधाः ! श्रीजयदेवेन भणितमभिलाषवञ्चित-खण्डितयुवतिविलापं शृणुत। किम्भूतम् ? सुधामधुरम्। पुनः किम्भूतम् ? स्वर्गेऽपि दुरापम्। सप्तम्यर्थे तसिः। खण्डितालक्षण यथा—'निद्राकषायमुकुलीकृतताम्रनेत्रो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारीनखव्रणविशेषविचित्रिताङ्गः। यस्याः कुतोऽपि पतिरेति गृहं प्रभाते सा खण्डितेति कथिता कविभिः पुराणैः ॥' तथा च सङ्गीतराजे—'तालो वर्णयतिर्मेघरागो देवादिवर्णनम्। विप्रलम्भाख्यशृङ्गारो रसः करुणवेदनम्। कविनामाङ्कितपदप्रान्ते पाटस्वरावलिः। द्वित्राण्यथ पदानि स्युरिति लक्ष्मीपतेः पुरः। रत्नावलीप्रबन्धोऽयं निबद्धः कुम्भभूभुजा ॥' इति लक्ष्मीपतिरत्नावलीनामा सप्तदशः प्रबन्धः ॥ पदरचना जयदेवोदिता कमलावल्लभगानोचिता। कुम्भनृपेण परं योजिता धातुवरेण भणत रसरताः ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि हे विद्वानो! इस अष्टपदी में मैंने रति से वञ्चित खण्डिता नायिका के विलाप का वर्णन किया है। श्रीराधाजी इस प्रबन्ध की खण्डिता नायिका हैं और श्रीभगवान् ने उनकी उपेक्षा करके उनको रतिक्रीड़ा से वञ्चित रखा है। अतएव उन्होंने इस प्रबन्ध में अपने प्रियतम की विरहवेदना में जो विलाप किया है, उसमें अमृत से भी अधिक माधुर्य है। ऐसे माधुर्य की प्राप्ति देवलोक में भी नहीं हो सकती है। देवलोक में सर्वाधिक मधुर पदार्थ अमृत ही है, किन्तु इस विलाप में उस अमृत से भी अधिक माधुर्य है। अतएव विद्वानों में जो लोग अमृतत्व-प्राप्ति की कामना करते हैं उन्हें इस भौम-अमृत का पान अवश्य करना चाहिए।

इस प्रबन्ध की नायिका श्रीराधा खण्डिता नायिका हैं। खण्डिता नायिका का लक्षण निम्नांकित है—

'निद्राकषायमुकुलीकृतताम्रनेत्रो नारीनखव्रणविशेषविचित्रिताङ्गः।
यस्याः कुतोऽपि पतिरेति गृहं प्रभाते सा खण्डितेति कथिता कविभिः पुराणैः' ॥

अर्थात् रात्रि में नींद पूरी न हो सकने के कारण लाल-लाल नेत्रों वाला, रमणी के नखक्षत के चिह्न से चिह्नित अङ्गों वाला जिस नारी का पति कहीं से प्रातःकाल में घर आता है, उस नायिका को कवियों ने खण्डिता नायिका कहा है।

इस गीतगोविन्द काव्य के सतरहवें प्रबन्ध का नाम लक्ष्मीपतिरत्नावली है ॥ ८ ॥

तवेदं पश्यन्त्याः प्रसरदनुरागं बहिरिव
प्रियापादालक्तच्छुरितमरुणद्योति हृदयम्।
ममाद्य प्रख्यातप्रणयभरभङ्गेन कितव!
त्वदालोकः शोकादपि किमपि लज्जां जनयति ॥ १ ॥

अनुवाद—हे कपटी! आज प्रेष्या रमणी के चरणालक्तक रस से व्याप्त आपके रक्तवर्ण के हृदय से लगता है कि उस रमणी का अनुराग आपके हृदय में नहीं अटकर बाहर निकल आया है। उसे देखकर अपने प्रसिद्ध प्रेम के टूट जाने के कारण मेरे हृदय में शोक की अपेक्षा अधिक कोई अनिर्वचनीय लज्जा ही उत्पन्न हो रही है ॥ १ ॥

इदानीं खण्डितापि प्रौढत्वमालम्ब्य तमधिक्षिपति—तवेदमिति। हे कितव! त्वदालोकोऽद्य मम शोकादपि किमपि अधिकतरां लज्जां जनयति। त्वद्दर्शनेन शोकं पराकृत्य लज्जैवाधिकाभूत्। तत्र पूर्वं शोके कारणमाह—प्रख्यातस्य जगद्विदितस्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्नेहातिशयस्य भङ्गेन। ततो लज्जां प्रति हेतुगर्भं विशेषणमाह—किम्भूताया मम ? तवेदं हृदयं पश्यन्त्याः। किम्भूतं हृदयम् ? प्रियायाः यावककर्बुरितम्। अत एवारुणद्योति अरुणस्य द्योत इव द्योतो विद्यते यस्य तत्तथा। अरुणवत्सन्ध्यारागवद्द्योतनशीलं वा। उत्प्रेक्षते—बहिः प्रसरदनुरागमिव बहिः प्रसरन्नलक्तकव्याजेन तदनुरागो यस्मिन्। बहुमानपुरःसरमुपभोगयोग्यस्य कौस्तुभस्य प्रेष्यापादाहतिर्लज्जाधिक्ये हेतुः। तव प्रेष्योपभोगे लज्जापि नास्तीति व्यङ्ग्यम्। अत्र शिखरिणीवृत्तम्॥ १॥

भावप्रकाशिका—यद्यपि श्रीराधाजी खण्डिता नायिका हैं फिर भी वे प्रौढत्व का आलम्बन करके श्रीभगवान् के ऊपर आक्षेप करते हुए कहती हैं कि हे श्रीकृष्ण ! आप धूर्त हैं। आपको देखने से उतना शोक नहीं सताता है जितना कि लज्जा सताती है। मैंने आपके पास अपनी दूती को भेजा था, किन्तु आपने उस दूती के साथ ही रमण किया। यही नहीं, उसके पैरों के महावर की छाप आपके वक्षःस्थल में अब भी विद्यमान है। जिस स्थान पर कौस्तुभमणि सुशोभित होती थी, उस स्थान पर प्रेष्या दूती के पैरों की छाप सुशोभित हो रही है। लग रहा है कि उसके प्रति आपका जो अनुराग है, वह आपके हृदय में नहीं अट रहा अतएव बाहर निकल आया है। आज तक मैं जानती थी कि श्रीकृष्ण मेरे हैं, वे अनन्य रूप से मेरे हैं; उस प्रणय के अपार गर्व से मैं अमर्यादित प्रसन्नता से प्रसन्न रहती थी, किन्तु आपने अपने आचरण के द्वारा उस प्रणय का भङ्ग कर दिया है। इस प्रकार आपको देखकर मुझे लज्जा अधिक आती है और शोक कम। मैं नहीं समझती थी कि मेरे श्रीकृष्ण किसी प्रेष्या के साथ रमण करके इतनी प्रसन्नता का अनुभव करेंगे। आश्चर्य है कि आप किसी प्रेष्या का उपभोग करके भी लज्जित नहीं है ?

इस श्लोक में शिखरिणी छन्द तथा उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥ १॥

अन्तर्मोहनमौलिघूर्णनचलन्मन्दारविभ्रंशन-
स्तम्भाकर्षणदृसिहर्षणमहामन्त्रः कुरङ्गीदृशाम्।
दृप्यद्दानवदूयमानदिविषद्दुर्वारदुःखापदां
भ्रंशः कंसरिपोर्विपोलयतु वः श्रेयांसि वंशीरवः॥ २॥

इति श्रीजयदेवकृतौ श्रीगीतगोविन्दे खण्डितावर्णने
विलक्ष्यलक्ष्मीपतिर्नामाष्टमः सर्गः॥ ८॥

अनुवाद—सुन्दरियों के मन को मोहित करने वाली, प्रसन्नता से उनके सिर को कँपाने वाली, चञ्चल मन्दार कुसुम को गिराने वाली तथा दृप्त दानवों से दुःखी देवताओं के दुःख दूर करने वाली, कंस के शत्रु श्रीकृष्ण भगवान् की सुन्दरियों के लिए स्तम्भन, आकर्षण तथा नेत्रोत्साह को बढ़ाने वाले महामन्त्र के समान बंशी की ध्वनि आप सभी के कल्याण को बढ़ायें॥ २॥

इस प्रकार श्रीजयदेव कवि प्रणीत गीतगोविन्द काव्य के खण्डिता नायिकावर्णन प्रसङ्ग में विलक्ष्यलक्ष्मीपति नामक आठवाँ सर्ग पूर्ण हुआ॥ ८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदानीं सर्गान्ते मङ्गलाचरणाशिषमाह—अन्तर्मोहनेति। कंसारेः श्रीकृष्णस्य वंशीरवः पाविकाध्वनिः वो युष्माकं श्रेयांसि विपोलयतु विपुलीकरोतु। किम्भूतो वंशीरवः? दृप्यद्दानवदूयमानदिविषद्दुर्वारदुःखापदां भ्रंशः दृप्यद्भिर्दानवैर्दूयमाना ये दिविषदस्तेषां दुर्वारदुःखापद्भ्रंशहेतुत्वाद्भ्रंशः। पुनः किम्भूतः? कुरङ्गीदृशामन्तर्मोहनमौलिघूर्णन-चलन्मन्दारविभ्रंशनस्तम्भाकर्षणदृप्तिहर्षणमहामन्त्रः। अन्तर्मोहनेत्यादिदृप्तिपदान्तो द्वन्द्वः। तेषां संहर्षो योगः तत्र महामन्त्र इव। अन्तर्मोहनं मनोमोहनम्। अनेन मोहनं मौलिघूर्णनमिति वशीकारः। वशीकृता हि देवताः साधु साध्विति शिरोधूननेन प्रशंसन्ति। चलन्ति यानि मन्दारकुसुमानि तेषां विभ्रंशनम्। एतावता मारणमुद्दिष्टम्। मारणे हि कुसुमस्रजां भ्रंशो जायते। स्तम्भाकर्षणं सिद्धम्। दृप्तिर्बाधा। उच्चाटनमिति यावत्। एतेषां योगः। एतावता वंशीरवस्य मृगीदृशां सम्बन्धि षट्कर्मसाधनमहा-मन्त्रत्वमुक्तम्। वंशं श्रुत्वा मृगीदृशस्तां तामवस्थां प्राप्नुवन्तीत्यर्थः॥ २॥

उद्यन्नष्टकुलाचलप्रतिनिधिः कीर्तिव्रजापूरिता-
ष्टाशोऽष्टद्रुहिणश्रुतिप्रतिहतिप्रक्रान्तभेरीरवः।
स्फूर्जच्छौर्यजिताष्टदिक्पतिरसौ श्रीकुम्भकर्णो व्यधात्
सर्गस्याष्टमितस्य चारुविवृतिं भक्तोऽष्टमूर्तेरिमाम्॥

इति श्रीरसिकप्रियानाम्नि श्रीगीतगोविन्दविवरणे म्लेच्छवनीदावानल-
महाराजश्रीकुम्भकर्णविरचितेऽष्टमः सर्गः॥ ८॥

भावप्रकाशिका—आठवें सर्ग के इस अन्तिम श्लोक में श्रीजयदेव कवि पाठकों एवं श्रोताओं को आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहते हैं कि श्रीभगवान् की बंशी की ध्वनि एक महामन्त्र के समान है। इसकी आवाज को सुनकर सुन्दरियों का मन मोहित हो जाता है। उस आवाज के आनन्द में मग्न होकर सुन्दरियाँ अपना शिरश्चालन करने लग जाती हैं। स्वर्गलोक की सुन्दरियाँ जो मन्दार पुष्प की माला पहने रहती हैं वह माला भी इस आवाज से टूट जाती है। इस प्रकार श्रीभगवान् की बंशी की ध्वनि स्तम्भन, आकर्षण तथा सुन्दरियों के नेत्रप्रहर्षण करने लिए महामन्त्र के समान है। श्रीभगवान् कंस नामक राक्षसराज के शत्रु हैं, क्योंकि इन्होंने कंस का वध किया है। किञ्च दर्प युक्त जो दानव हैं उनसे देवताओं को असह्य कष्ट होता है, उस सम्पूर्ण कष्ट का विनाश श्रीभगवान् की बंशी की ध्वनि से हो जाता है। इस प्रकार श्रीभगवान् की बंशी की ध्वनि आप समस्त भक्तों तथा इस काव्य के श्रोताओं का कल्याण करे॥ २॥

इस प्रकार शिवप्रसाद द्विवेदी कृत गीतगोविन्द काव्य के विलक्ष्यलक्ष्मीपति
नामक आठवें सर्ग की भावप्रकाशिका व्याख्या पूर्ण हुई॥ ८॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नवमः सर्गः

(मुग्धमुकुन्दः)

तामथ मन्मथखिन्नां रतिरसंभिन्नां विषादसम्पन्नाम् ।
अनुचिन्तितहरिचरितां कलहान्तरितामुवाच रहसि सखी ॥ १ ॥

अनुवाद—उसके पश्चात् काम के कारण दुःखी शृङ्गार रस से युक्त श्रीहरि के चरित्र के विषय में सतत चिन्तन करने वाली कलहान्तरिता श्रीराधा को सखी ने एकान्त में कहा ॥ १ ॥

इदानीं प्रणयकोपाद्धरिमधिक्षिप्य कलहान्तरितत्वेनोपतप्यमानां राधां सख्याह—तामथेति । अथ सखी तामुवाच । किम्भूताम् ? मन्मथखिन्नाम् । पुनः किम्भूताम् ? सम्भोगरागेण भावशबलतां प्राप्ताम् । पुनः किम्भूताम् ? विषादसम्पन्नाम् । पुनः किम्भूताम् ? अनुध्यातहरिचेष्टिताम् । पुनः किम्भूताम् ? कलहान्तरिताम् । तल्लक्षणं यथा—'प्राणेश्वरं प्रणयकोपविशेषभीतं या चाटुकारमवधीर्य विशेषवाग्भिः । सन्तप्यते मदनवह्निशिखासमूहैर्बाष्पाकुलेह कलहान्तरिता हि सा स्यात्' ॥ इयं पथ्या आर्या । तामथेत्यादिषु अनुकूलो नायकः । प्रौढधीरा मानवती नायिका । सखी दूती च ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—प्रणयकोप के कारण श्रीराधा ने श्रीभगवान् के ऊपर अनेक प्रकार के आक्षेप लगाये और अपने किये हुए कलह को सोचकर संतप्त होने वाली श्रीराधा को सखी ने अठारहवें प्रबन्ध में एकान्त में कहना प्रारम्भ किया । श्रीराधा की इस श्लोक में वर्तमानकालिक पाँच विशेषताएँ बतलायी गयी हैं—(१) श्रीराधा मन्मथखिन्ना थीं अर्थात् कामोद्वेग के कारण उन्हें कष्ट की अनभूति हो रही थी । (२) विषादसम्पन्नाम्—वे विषाद से युक्त थीं अर्थात् सम्भोग के प्रति अनुरक्त होने के कारण भावशबलता की स्थिति में पहुँच चुकी थीं । (३) वे कामरससंभिन्न होने के कारण ही विषाद कर रही थीं । (४) अनुचिन्तितहरिचरिताम्—वे बार-बार श्रीभगवान् के चरित्र के ही विषय में सोचती जा रही थीं तथा (५) कलहान्तरिता नायिका थीं । कलहान्तरिता नायिका का लक्षण निम्नांकित बतलाया गया है—

'प्राणेश्वरं प्रणयकोपविशेषभीतं या चाटुकारमवधीर्य विशेषवाग्भिः ।
सन्तप्यते मदनवह्निशिखासमूहैर्बाष्पाकुलेह कलहान्तरिता हि सा स्यात्' ॥

अर्थात् वह नायिका कलहान्तरिता कहलाती है जो विशेष प्रकार के प्रणयकोप से भयभीत तथा नायिका की चाटुकारिता करने वाले अपने प्रियतम की वाग्विशेष के द्वारा अवहेलना करके आँखों में आँसू भरकर कामदेव के बाण-समूह से संतप्त होती रहती है ।

इस पद्य में पथ्या आर्या छन्द है ॥ १ ॥

गुर्जरीरागयतितालाभ्यां गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ १८ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद—गीतगोविन्द काव्य का अठारहवाँ प्रबन्ध गुर्जरी राग तथा यति ताल में गाया जाता है।

हरिरभिसरति वहति मधुपवने।
किमपरमधिकसुखं सखि! भवने॥ १॥
माधवे मा कुरु मानिनि! मानमये॥ ध्रुवपदम्॥

अनुवाद—अरे सखि! लक्ष्मीपति माधव से मान मत करो। वासन्ती वायु में श्रीहरि तुम्हारे संकेतस्थल में आ रहे हैं, इससे बढ़कर घर में दूसरा कौन सुख हो सकता है?॥ १॥

तदेव वक्ष्यमाणमाह—हरिरभीति। तत्र पूर्वं ध्रुवः। माधव इति। अये राधे मानवति! अनु च समर्थनायिकानाथे। इति ध्रुवः। अथ पदानि—हरिरिति। हे सखि राधे! भवने गृहे। 'अपरम्' इति सावधिको निर्देशः। अतः परमधिकं किं सुखम्? न किञ्चिदपीत्यर्थः। अत इति किम्? यन्मधोर्वसन्तस्य पवने वहति वाति सति हरिरभिसरति स्वयमायाति॥ १॥

भावप्रकाशिका—सखी श्रीराधाजी से कहती है कि हे सखी! तुम्हें लक्ष्मीपति श्रीभगवान् से मान नहीं करना चाहिए। भला बतलाओ, इससे बढ़कर दूसरा सौभाग्य क्या हो सकता है कि स्वयं श्रीलक्ष्मीपति तुम्हें मना रहे हैं। अतएव तुम अपना मान करना छोड़ दो। वासन्ती वायु बह रही है और ऐसी स्थिति में श्रीभगवान् तुम्हारे संकेतस्थल में आ रहे हैं, इससे बढ़कर घर में कौन-सा सुख मिल सकता है? यही सबसे बड़ा सुख है कि स्वयं लक्ष्मीपति श्रीभगवान् तुम्हारे पास आ रहे हैं॥ १॥

तालफलादपि गुरुमतिसरसम्।
किं विफलीकुरुषे कुचकलशम्?॥ माधवे०॥ २॥

अनुवाद—ताल के फल से भी भारी तथा अत्यन्त रसभरे अपने कुचकलशों को तुम व्यर्थ क्यों बना रही हो?॥ २॥

अपि च—तालफलादिति। हे राधे! कुचकलशं किं विफलीकुरुषे? हरिकरतलस्पर्शविलासाभावाद्विफलमित्यर्थः। तालफलादपि गुरुं कठिनं महान्तं च। पुनः कीदृशम्? अतिशयेन सरसम्॥ २॥

भावप्रकाशिका—सखि कहती है कि राधे! तुम्हारे स्तन कलश के समान अत्यधिक विस्तृत हैं और वे ताल के फल के समान गौरव युक्त तथा सरस हैं। कलश देखने में बड़ा तो प्रतीत होता है, किन्तु उसमें न तो गुरुता होती है और न रस ही। अतएव स्तनों के विस्तार को बतलाने के लिए उनकी उपमा कलश से दी गयी है। उनके गुरुत्व तथा रसयुक्तत्व को बतलाने के लिए उनकी उपमा तालफल से दी गयी है। श्रीराधा के स्तनों के गुरुत्व तथा सरसत्व को तालफल के भी गुरुत्व तथा सरसत्व से अधिक बतलाया गया है। सखि का कहना है कि तुम्हारे इन स्तनकलशों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की इसी में सार्थकता है कि उनका स्पर्श श्रीभगवान् करें तथा वे तुम्हारे स्तनों के द्वारा विलास का अनुभव करें ॥ २ ॥

कति न कथितमिदमनुपदमचिरम् ।
मा परिहर हरिमतिशयरुचिरम् ॥ माधवे० ॥ ३ ॥

अनुवाद—सखि ! मैंने तुम्हें बार-बार इस बात को बतलाया है कि अत्यन्त मनोहर श्रीहरि का परित्याग मत करो ॥ ३ ॥

अपि च—कति नेति । हे सखि ! अतिशयरुचिरं हरिं मा परिहर । इदं वचनमचिरं साम्प्रतमनुपदं स्थाने स्थाने कतिवारं कथितम् ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में सखि श्रीराधाजी को समझाती हुई कहती हैं कि मैंने तुम्हें बार-बार स्थान-स्थान पर इस बात को कहा है कि श्रीभगवान् अतिशय सुन्दर हैं। उनके मनोज्ञत्व की कोई सीमा नहीं है। इससे बढ़कर कोई भी दूसरा पुरुष रुचिर नहीं है। अतएव इतने मनोहर श्रीभगवान् का परित्याग करना उचित नहीं है। अपना मान त्याग कर श्रीभगवान् के साथ तुम अभिसरण करो, यही उचित है ॥ ३ ॥

किमिति विषीदसि रोदिषि विकला ? ।
विहसति युवतिसभा तव सकला ॥ माधवे० ॥ ४ ॥

अनुवाद—तुम व्याकुल होकर इस प्रकार विषाद करती हुई क्यों रोती हो ? तुम्हारी इन चेष्टाओं को देखकर सम्पूर्ण युवति-सभा हँसती है ॥ ४ ॥

अपि च—किमितीति । हे सखि ! इति अमुना प्रकारेण किं विषादं कुरुषेऽतिविकला सती किमिति रोदिषि ? सकला युवतिसभा तव इति चेष्टितं हसति ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—हे सखि ! इस प्रकार तुम्हारा रोना और विषाद करना ठीक नहीं है। तुम्हारी इस प्रकार की चेष्टाओं को देखकर सारी युवतियाँ हँस रही हैं। इसलिए तुम श्रीभगवान् के विषय में मान को छोड़कर उनके साथ अभिसरण करो ॥ ४ ॥

सजलनलिनीदलशीतलशयने ।
हरिमवलोकय सफलय नयने ॥ माधवे० ॥ ५ ॥

अनुवाद—जलकणों से युक्त तथा कमलपत्र से रचित शय्या पर श्रीभगवान् को देखकर तुम अपने नेत्रों को सफल बनाओ ॥ ५ ॥

अपि च—सजलेति । अत एव नयने सफलय ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—सखि कह रही है कि संकेतस्थल पर जलकण से युक्त शीतल कमल के पत्तों से निर्मित शय्या पर लेटे हुए श्रीभगवान् तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं और तुम यहाँ मान किये हुए बैठी हो ? यह उचित नहीं है। तुम अभिसारगृह में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जाकर शय्या पर सोये हुए श्रीभगवान् का दर्शन करके अपने नेत्रों को सफल बनाओ। मान को छोड़ो और श्रीभगवान् से मिलो ॥ ५ ॥

जनयसि मनसि किमिति गुरुखेदम् ? ।
शृणु मम वचनमनीहितभेदम् ॥ माधवे० ॥ ६ ॥

अनुवाद—इस प्रकार मन में बहुत अधिक कष्ट का अनुभव क्यों करती हो ? मेरी बातों को सुनो। तुम दोनों में कोई भेद नहीं है ॥ ६ ॥

अपि च—जनयसीति। हे राधे ! इत्येवं पूर्वोक्तप्रकारेण मनसि चित्ते महान्तं खेदं किं जनयसि ? तर्हि किं किं विधेयमित्याशङ्क्याह—मम वचनं शृणु। किम्भूतम् ? अनीहितभेदम्। न ईहितश्चेप्सितो भेदः पार्थक्यं येन तत्तथा ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में सखी श्रीराधाजी से कहती है कि तुम्हारा इस प्रकार अपने मन में खेद करना ठीक नहीं है। अकेले बैठी हुई तुम बहुत बड़े कष्ट का अनुभव कर रही हो, अतः तुम मेरी बात को सुनो। मैं कहती हूँ कि तुम मान छोड़कर श्रीभगवान् से मिलो। तुममें तथा श्रीभगवान् में किसी प्रकार का भेद अनीप्सित है। मेरे साथ भी तुम अपना भेद न मानो। मैं तुम्हारा किसी भी प्रकार से अहित नहीं चाहती हूँ, इस बात को तुम्हें जानना चाहिए। अतएव तुम मेरी बातों को मानो ॥ ६ ॥

हरिरुपयातु वदतु बहुमधुरम् ।
किमिति करोषि हृदयमतिविधुरम् ? ॥ माधवे० ॥ ७ ॥

अनुवाद—श्रीभगवान् तुम्हारे सन्निकट आएँ और वे तुमसे बहुत मधुर बातें करें। अपने हृदय को इस प्रकार दुःखी क्यों बनाती हो ? ॥ ७ ॥

अपि च—हरिरुपयात्विति। हे राधे ! हरिरुपयातु त्वत्समीपमायातु। बहु विस्तारं मधुरं चाटु वदतु। अनया रीत्या हृदयमतिविधुरं किं करोषि ? ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—सखी श्रीराधाजी को मनाती हुई कहती है कि तुम अलग रहो और श्रीभगवान् तुमसे अलग रहें—यह ठीक नहीं है। तुम उनसे न बोलो यह भी ठीक नहीं है। यही ठीक है कि श्रीभगवान् तुम्हारे सन्निकट आएँ और तुमसे अत्यन्त मधुर बातें करें। इस प्रकार मान करके अपने हृदय को अत्यन्त दुःखी बनाना ठीक नहीं है। तुम श्रीभगवान् से मान करना छोड़ दो ॥ ७ ॥

श्रीजयदेवभणितमतिललितम् ।
सुखयतु रसिकजनं हरिचरितम् ॥ माधवे० ॥ ८ ॥

अनुवाद—श्रीजयदेव कवि द्वारा वर्णित श्रीहरि का अत्यन्त मनोहर चरित्र भगवद्भक्तों को आनन्द प्रदान करे ॥ ८ ॥

अपि च—श्रीजयदेवभणितमिति। हरिचरितं रसिकजनं सुखयतु। किम्भूतम् ? श्रीजयदेवभणितम्। पुनः किम्भूतम् ? अतिललितम्। श्रुतिजातिग्रहलयसाम्यान्मनोहरम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा च सङ्गीतराजे—'नट्टरागस्तृतीयाख्यस्तालो मध्ये क्वचित् क्वचित् । पदानां शोभयालापगुम्फानां गानहेतुकम् ॥ अन्ते पाटाः स्वरास्तेनास्तवन्ते पद्यगुम्फनम् । पद्यामन्दमुकुन्दाद्यमकरन्दाभिधानवत् । प्रबन्धः प्रीतये गीतः श्रीपतेः कुम्भभूभुजा ॥' इति श्रीअमन्दमुकुन्दो नामाष्टादशः प्रबन्धः ॥ यदि कौतुकिनो गाने सङ्गीते चातुरी यदि । रसिकाः कुम्भकर्णस्य शृण्वन्तु बुधसत्तमाः ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीजयदेव कवि कह रहे हैं कि मैंने भगवान् श्रीहरि के अत्यन्त मनोहर चरित का गान किया है। यह रसिक-जनों को अत्यधिक आनन्द प्रदान करें।

गीतगोविन्द काव्य के इस अठारहवें प्रबन्ध का नाम अमन्दमुकुन्द है। इस प्रबन्ध के गान का एकमात्र उद्देश्य श्रीभगवान् की प्रसन्नता तथा भगवद्भक्तों की प्रसन्नता है ॥ ८ ॥

स्निग्धे यत्परुषासि यत्प्रणमति स्तब्धासि यद्रागिणि
द्वेषस्थासि यदुन्मुखे विमुखतां यातासि तस्मिन्प्रिये ।
तद्युक्तं विपरीतकारिणि तव श्रीखण्डचर्चा विषं
शीतांशुस्तपनो हिमं हुतवहः क्रीडामुदो यातनाः ॥ २ ॥

अनुवाद—ऐ विपरीत आचरण करने वाली श्रीराधे ! जो तुम स्नेह युक्त प्रियतम के होने पर भी कठोर बनी हुई हो, उनके नमन करने पर भी चुपचाप बैठी हो, उनके रागयुक्त होने पर भी उनसे द्वेष करती हो तथा तुम्हारे प्रति उनके उन्मुख होने पर भी विमुख बनी बैठी हो—इस तुम्हारे विपरीत आचरण के कारण ही तुम्हारे लिए चन्दन का लेप विष का काम कर रहा है, चन्द्रमा तुम्हें सूर्य के समान संतप्त कर रहा है, बर्फ अग्नि का काम कर रही है तथा क्रीडा का आनन्द तुम्हें यातना के समान प्रतीत हो रहा है ॥ २ ॥

सखी तद्दुश्चेष्टितमनुवदन्ती तां राधां प्रति बोधयति—स्निग्ध इति । हे विपरीतकारिणि विपरीतकृतप्रतिकरणशीले ! यत्तव श्रीखण्डचर्चा चन्दनानुलेपो विषमिव भवति । यच्च शीतांशुश्चन्द्रः तपन इव भवति, यच्च हिमं नीहारो हुतवह इव भवति, यच्च क्रीडामुदः केलिप्रमोदास्तीव्रवेदना इव भवन्ति, एतद्युक्तम् । विपरीतं य आचरति यस्य सर्वं विपरीतमेव भवति । तदेव विपरीतमाचरणं दर्शयति—यत्तस्मिन्नपि तादृश-प्रियकारिण्यपि हरौ स्निग्धे सस्नेहे परुषा रूक्षासि । सस्नेहे स्नेहराहित्यं वैपरीत्यम् । यच्च प्रणमति नतिशीले प्रिये स्तब्धासि । प्रणमत्यप्रवणत्वं वैपरीत्यम् । यच्च रागवति प्रद्वेषिण्यसि । अत्रापि तादृगेव वैपरीत्यम् । यच्च सम्मुखे प्रिये वैमुख्यं यातासि । सम्मुखे विमुखभावो वैपरीत्यम् । अत्र शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । विरोधालङ्कारः ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—इस प्रबन्ध के प्रारम्भ में एक श्लोक आ चुका है, अतएव यह दूसरा श्लोक है। इस श्लोक में श्रीराधा को समझाती हुई सखी उनसे कहती है कि हे सखी ! तुम विपरीत आचरण कर रही हो। अर्थात् इस समय तुम्हें जैसा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आचरण नहीं करना चाहिए वैसा ही आचरण तुम कर रही हो। उसके विपरीत आचरण को बतलाती हुई वह कहती है—श्रीभगवान् तो इस समय तुमसे स्नेह कर रहे हैं, किन्तु मानवती होने के कारण तुम उनसे प्रेम की बातें नहीं करके रूक्ष बातें करती हो। श्रीभगवान् तुम्हें अपने मनोनुकूल बनाने के लिए तुम्हारे सामने नमन कर रहे हैं और तुम ठीक उसके विपरीत चुपचाप बैठी हो। यही तुम्हारा विपरीत आचरण है। श्रीभगवान् तुम्हारे प्रति सम्प्रति रागवान् हो गये हैं, किन्तु तुम तो ठीक उनके विपरीत मान करने के कारण उनसे द्वेष कर रही हो। श्रीभगवान् तुम्हारे प्रति उन्मुख हैं और तुम उनसे विमुख बनी हुई हो। यही कारण है कि तुम जो चन्दन का लेप अपने अंगों में लगायी हो उससे तुम्हें सुख नहीं मिल रहा है, अपितु वह तुम्हें विष के समान संतप्त कर रहा है। चन्द्रमा तुमको शीतल नहीं बना रहा है अपितु वह तुम्हें सूर्य के समान संतप्त कर रहा है। बर्फ तुम्हें ठंडी नहीं लगती है अपितु वह तुम्हें अग्नि के समान दग्ध कर रही है तथा जो क्रीडा के आनन्द हैं वे तुम्हारे लिए यातना के रूप में परिणत हो गये हैं। अतएव तुम अपना विपरीत आचरण छोड़ो।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा विरोधालङ्कार है ॥ २ ॥

सान्द्रानन्दपुरन्दरादिदिविषद्वृन्दैरमन्दादरा-
दानम्रैर्मुकुटेन्द्रनीलमणिभिः सन्दर्शितेन्दिन्दिरम् ।
स्वच्छन्दं मकरन्दसुन्दरगलन्मन्दाकिनीमेदुरं
श्रीगोविन्दपदारविन्दमशुभस्कन्दाय वन्दामहे ॥ ३ ॥

इति श्रीजयदेवकृतौ श्रीगीतगोविन्दे कलहान्तरितावर्णने
मुग्धमुकुन्दो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

अनुवाद—हम अपने अशुभ का विनाश करने के लिए श्रीभगवान् के उन चरण-कमलों की वन्दना करते हैं, जिनसे स्वच्छन्द रूप से निकलती हुई श्रीगङ्गाजी पराग के समान मनोहर लगती हैं तथा अत्यधिक आदरपूर्वक साष्टाङ्गप्रणतिपुरस्सर पूर्णानन्द युक्त इन्द्रादि देव-समूह के मुकुट में लगी इन्द्रनीलादि मणियाँ भ्रमर के समान प्रतीत होती हैं।

इस प्रकार श्रीजयदेव कवि प्रणीत गीतगोविन्द काव्य के कलहान्तरिता नायिका वर्णन के प्रसंग में मुग्धमुकुन्द नामक नवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

इदानीं सर्गान्ते सर्वविघ्नोपशमनार्थं गोविन्दं प्रणमति—सान्द्रेति। श्रीगोविन्द-पदारविन्दं वन्दामहे नमस्कुर्महे। किमर्थम् ? अशुभस्कन्दाय अशुभनाशाय। किंविशिष्टम् ? स्वच्छन्दं यथा स्यात्तथा मकरन्दसुन्दरा मकरन्दसदृशी गलन्ती या मन्दाकिनी गङ्गा तया सान्द्रं स्निग्धम्। अरविन्दे हि मकरन्दो भवति। तेन मन्दाकिनी उपमीयते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इत्युपमालङ्कारः। पुनः किम्भूतम् ? सान्द्रानन्दा निबिडहर्षा ये पुरन्दरादिदिविषदस्तेषां वृन्दैः मुकुटेन्द्रनीलमणिभिः सन्दर्शिता इन्दिन्दिरा मधुपा यत्र तत्तथा। अत्र चरणयोः कमलोपमा, मन्दाकिन्या मकरन्दोपमा, सुरवृन्दमौलीन्द्रनीलमणीनां भृङ्गोपमा। एवं चरणसरोजे मकरन्दजुषो नमत्सुरमौलिनीलमणिव्याजेन भृङ्गा इव। किंविशिष्टैर्दिविषद्वृन्दैः ? अमन्दादरात्प्रचुरादरवशतः आनम्रैः साष्टाङ्गप्रणिपातप्रवणैः। शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ३ ॥

एवं कृत्वा हृदीशं द्वितयमथ नये सारमासाद्य तिस्रः
सम्यग्योगं चतुर्णां निपुणतरधिया पञ्च जित्वा विवित्वा।
षट्कं हित्वाथ सप्ताष्टकुलगिरिबलो गीतगोविन्दसर्गं
सूक्त्या कृत्वा निसर्गोज्ज्वलमिव नवमं कुम्भकर्णो जयी स्यात् ॥

इति श्रीकुम्भकर्णविरचितायां गीतगोविन्दटीकायां रसिकप्रियायां.
कलहान्तरितावर्णने मुग्धमुकुन्दो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक के द्वारा श्रीजयदेव कवि सर्ग के अन्त में सम्पूर्ण विघ्नों को शान्त करने के लिए श्रीगोविन्द भगवान् को प्रणाम करते हैं। वे कहते हैं कि मैं अपने शिष्य-प्रशिष्यों के साथ श्रीगोविन्द भगवान् के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ। यहाँ पर श्रीभगवान् के चरणों की उपमा कमल से दी गयी है। अर्थात् श्रीभगवान् के चरण कमल के समान अत्यन्त मनोहर हैं। जिस प्रकार कमल में पराग होता है, उसी प्रकार श्रीभगवान् के चरणों से स्वछन्द रूप से निकलने वाली श्रीगङ्गाजी पराग के समान मनोहर प्रतीत होती हैं। पराग-परिपूर्ण कमल पर जैसे भ्रमर सुशोभित होते हैं उसी प्रकार अत्यधिक आदरपूर्वक अमन्दानन्दसन्दोह से परिपूर्ण होकर इन्द्रादि देवता-समूह जो श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं, उनके मुकुटों में लगी हुई इन्द्रनीलादि मणियाँ नीले-नीले भ्रमर के समान प्रतीत होती हैं।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा रूपकालङ्कार है, क्योंकि चरणों में कमल का, श्रीगङ्गाजी में पराग का तथा देवताओं के मुकुट में जटित इन्द्रनीलादि मणियों में भ्रमर का आरोप किया गया है।

इस प्रकार शिवप्रसाद द्विवेदी कृत श्रीगीतगोविन्द काव्य में मुग्धमुकुन्द
नामक नवें सर्ग की भावप्रकाशिका व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ९ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दशमः सर्गः

(चतुरचतुर्भुजः)

अत्रान्तरे मसृणरोषवशामपारनिःश्वासनिःसहमुखीं सुमुखीमुपेत्य ।
सव्रीडमीक्षितसखीवदनां दिनान्ते सानन्दगद्गदपदं हरिरित्युवाच ॥ १ ॥

अनुवाद—इसी बीच सायंकाल होने पर कोमल रोष के कारण बहुत अधिक दीर्घ निःश्वास को सहन करने में असमर्थ मुखवाली तथा लज्जापूर्वक सखी के मुखड़े को देखने वाली श्रीराधा के सन्निकट आकर श्रीहरि ने आनन्द युक्त वाणी में इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

इदानीं सायं कृतसखीकृत्यां स्मरशरजर्जरितकोपां स्वयमनुनयति—अत्रान्तर इति । अत्रान्तरेऽस्मिन्नवसरे दिनान्ते हरिः सव्रीडं यथा स्यात्तथा सुमुखीं राधामुपेत्य सानन्दगद्गदपदं सहर्षविशकलिताक्षरं यथा स्यात्तथा इति वक्ष्यमाणमुवाच । पुनः कथम् ? यथा स्यात्तथा । किम्भूताम् ? मसृणरोषवशां स्निग्धरोषरागाम् । कोमलसखीवचनैः किञ्चिन्नमितरोषाम् । पुनः किम्भूताम् ? अपारनिःश्वासनिःसहमुखीं विरहसहनासमर्थानाम् । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—सायंकाल की वेला हो गयी थी । सखी के द्वारा अनुनय करने पर भी श्रीराधा का क्रोध अभी शान्त नहीं हो पाया था । वे कोमल रोष से युक्त थीं । उसके कारण श्रीराधाजी बहुत अधिक लम्बी श्वास ले रही थीं, जिसको उनका मुखड़ा बर्दास्त नहीं कर पा रहा था तथा सखी उनके मुखड़े को लज्जापूर्वक देख रही थी । इसी स्थिति में सायंकाल होने पर श्रीराधाजी के सन्निकट आकर श्रीभगवान् ने आनन्दपूर्ण वाणी में कहा ॥ १ ॥

देशवराडीरागाष्टतालीतालाभ्यां गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ १९ ॥

अनुवाद—गीतगोविन्द काव्य का यह उन्नीसवाँ प्रबन्ध देशवराडी राग तथा अष्टताली ताल में गाया जाता है ।

वदसि यदि किञ्चिदपि दन्तरुचिकौमुदी,
हरति दरतिमिरमतिघोरम् ।
स्फुरदधरशीधवे तव वदनचन्द्रमा
रोचयतु लोचनचकोरम् ॥ १ ॥
प्रिये ! चारुशीले ! मुञ्च मयि मानमनिदानम् ।
सपदि मदनानलो दहति मम मानसं
देहि मुखकमलमधुपानम् ॥ ध्रुवपदम् ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद—हे सुन्दर शील वाली प्रिये राधे ! मेरे विषय में अपने अकारण क्रोध का त्याग करो, मुझे कामाग्नि जला रही है। मुझे अपने मुखकमल का शीघ्र पान कराओ। यदि तुम कुछ भी बोलती हो तो तुम्हारे दांत की ज्योत्स्ना मेरे घोर भयान्धकार को दूर करती है। तुम्हारा मुखमण्डल रूपी चन्द्रमा मेरे नेत्र रूपी चकोर को तुम्हारे अधर पर चमकती हुई मदिरा के लिए साभिलाष बनाये ॥ १ ॥

तदेव वक्ष्यमाणमाह—वदसीति। तत्रानुरोधेन क्रमपारंपाटीं परित्यज्य पूर्वं ध्रुवपदं व्याक्रियते—प्रिये हीति। हे प्रिये ! शोभनशीले ! मयि विषये यो मानः तं मुञ्च परित्यज। किम्भूतम् ? अनिदारम् सपत्नीसम्भोगलक्षणकारणरहितम्। सपदि साम्प्रतं भवतीति मानमपेक्ष्य मदनानलो मम मानसं दहति। तत्तापोपशान्त्यै मुखकमलमधुपानं देहीति ध्रुवः। अथ पदानि। वदसीति। हे प्रिये ! किञ्चिदपि प्रियाप्रियनिरपेक्षं स्वल्पमपि वदसि। तदा तव दन्तरुचिकौमुदी मम दरतिमिरं भवान्धकारं हरति। किम्भूतं भयान्धकारम् ? अतीव घोरम्, अतीव भयानकहेतुत्वाद्भयानकम्। अत्र मयि स्थायी भयमेवोद्रिक्तः संन् भयानकतामेष्यतीति। 'विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः। अनीयमानः स्थायित्वे स्थायीभावो रसः स्मृतः' इति। स च शृङ्गारविरोधी त्वया परिहरणीय एव। तव वदनचन्द्रमा मम लोचनचकोरं स्फुरन्योऽधरे शीधुस्तस्मै रोचयतु साभिलाषं करोतु। अधरशीधुचन्द्रिकार्थं चन्द्रमसः सान्निध्यान्मन्नेत्रचकोरस्य स्पृहा जायते ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीभगवान् श्रीराधाजी से कहते हैं कि हे राधे ! तुम सुन्दर शील वाली नायिका हो तथा मेरी प्रियतमा हो। अतएव तुम मेरे विषय में अपने मान का त्याग कर दो। क्योंकि तुम्हारे इस प्रकार के मान करने का कोई भी कारण नहीं है। तुम व्यर्थ ही मेरे विषय में परस्त्रीरमण रूपी शंका कर रही हो। इस समय तुमको ही आश्रय बनाकर काम मुझे संतप्त कर रहा है। अतएव इस संताप से त्राण पाने के लिए मुझे अपने मुखकमल के मधु का पान कराओ। अर्थात् ऐसा कुछ करो कि मैं तुम्हारे मुखकमल का चुम्बन कर सकूं। मेरे अन्तःकरण में एक प्रकार का भय बना हुआ है। उस भयरूपी अन्धकार को तभी दूर किया जा सकता है जब कि तुम मेरे विषय में अनुकूल अथवा प्रतिकूल कुछ भी बोलो। बोलते समय तुम्हारे दाँतों की जो कान्ति निकलेगी उससे मेरे अन्तःकरण के भयरूपी अन्धकार का विनाश हो जायेगा। ऐसा करके तुम्हारा मुखमण्डल रूपी चन्द्रमा मेरे नेत्र रूपी चकोरों को तुम्हारे होठों की मधु को पीने के लिए साभिलाष बनायेगा ॥ १ ॥

सत्यमेवासि यदि सुदति ! मयि कोपिनी
देहि खरनखरशरघातम्।
घटय भुजबन्धनं जनय रदखण्डनं
येन वा भवति सुखजातम्। प्रिये ! ० ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद—हे सुन्दर दाँतों वाली प्रिये ! यदि तुम वस्तुतः मुझ पर क्रुद्ध हो तो मेरे शरीर पर तो तीक्ष्ण नख रूपी बाणों का प्रहार कर अपनी भुजाओं में मुझे बाँध लो, मेरे होठों को काटो; जिससे बहुत अधिक सुख उत्पन्न होता है ।। २ ॥

अपि च—सत्यमिति । हे सुदति शोभनदन्ते ! सत्यमेव यदि मयि कोपिन्यसि तर्हि सापराधे मयि खरनखरशरघातं देहि । भुजाभ्यां बन्धनं घटय । रदैः खण्डनं जनय । अथवा—किमुद्दिश्यते येन वा अपराधयोग्येन दण्डेन तव सुखजातं भवति स एव विधीयताम् । प्रभूणां हि सापराधेषु भृत्येषु ताडनबन्धनखण्डनादयो दण्डाः समुचिताः । अत्रैतद् व्याजेन नखक्षतालिङ्गनचुम्बनादीन्प्रार्थयते ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीभगवान् राधिकाजी से कहते हैं कि हे सुन्दर दाँतों वाली प्रियतमे राधे ! यदि तुम वस्तुतः मुझसे नाराज हो तो अपने सन्तोष के लिए अपने तीक्ष्ण नख रूपी बाणों का प्रहार मुझ पर करो, अर्थात् मेरे शरीर पर नखक्षत करो । उससे भी यदि सन्तोष न हो तो मुझे अपनी भुजाओं के बन्धन में बाँध दो और पुनः अपने मनस्तोष के लिए मेरे होठों को अपने दाँतों से काट लो अथवा इससे भी भिन्न यदि तुमको अपने मनस्तोष के लिए कोई दूसरा उचित उपाय प्रतीत हो, जिससे तुम्हें विपुल सुख मिले वही करो । लोक में भी देखा जाता है कि स्वामी नाराज होकर अपराधी के ऊपर प्रहार करते हैं, उसे बाँध देते हैं तथा काटते हैं ! तुम तो मेरी स्वामिनी हो, मुझे अपने मनोनुकूल दण्ड दो । इस प्रकार श्रीभगवान् ने श्रीराधा से नखक्षत करने, आलिङ्गन तथा चुम्बन करने के लिए अनुनय किया ।। २ ।।

त्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनं
त्वमसि मम भवजलधिरत्नम् ।
भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी
तत्र मम हृदयमतियत्नम् । प्रिये ! ० ।। ३ ।।

अनुवाद—तुम ही मेरा अलङ्कार हो, मेरा जीवन हो, संसारसागर की निधि हो, तुम सदा मेरे अनुकूल बनी रहो, यह मैं हृदय से चाहता हूँ ॥ ३ ॥

अपि च—त्वमसीति । तव अन्या एव सन्ति, ता एव प्रार्थ्यन्तामित्याशङ्क्याह—मम त्वमेव भूषणमसि । त्वयाऽलङ्कृतोऽहमन्यासु सौभाग्यवान् । अथ तिष्ठतु बाह्यभूषणम् । मम जीवनमपि त्वमेवासि । अथ जीवनमपि तिष्ठतु । जीवनेऽपि भवजलधौ रत्नं त्वमेव । 'भवजलधि'ग्रहणमन्यस्य परिग्रहस्य जडत्वद्योतनार्थम् । भवतीह विषये मयि सततमनुरोधिनी कृपापरा भवतु । अत्रैवार्थे मम हृदयमतीव यत्नपरं विद्यते ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—यदि श्रीराधा कहें कि तुम्हारी तो अन्य भी प्रियाएँ है, तुम जाकर उनसे ही इस प्रकार की प्रार्थना करो, तो इस पर श्रीभगवान् कहते हैं कि ऐसी बात नहीं है । तुम ही मेरा अलङ्कार हो । तुमसे ही अलंकृत होकर मैं अन्य रमणियों के बीच अपने को सौभाग्यसम्पन्न मानता हूँ । यही नहीं, मेरा जीवन भी तुम ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो। तुम्हारे बिना मैं जी भी नहीं सकता। किञ्च इस संसार रूपी सागर में मेरे लिए तुम ही अनर्घ्य रत्न हो। तुमसे बढ़कर मेरे लिए कोई दूसरा धन नहीं है। अतएव तुम मेरे ऊपर कृपा बनाये रखो—यह मैं अपने हृदय से चाहता हूँ तथा इसके लिए प्रयासरत रहता हूँ ॥ ३ ॥

नीलनलिनाभमपि तन्वि ! तव लोचनं
धारयति कोकनदरूपम् ।
कुसुमशरबाणभावेन यदि रञ्जयसि
कृष्णमिदमेतदनुरूपम् ॥ प्रिये ! ० ॥ ४ ॥

अनुवाद—तुम्हारे नीलकमल के समान जो नेत्र हैं, वे इस समय रक्तकमल के समान हो गये हैं। कामदेव के बाण रूप से यदि तुम मुझे भी रञ्जित कर देती हो तो यह तुम्हारे अनुरूप होगा ॥ ४ ॥

अपि च—नीलेति। हे तन्वि ! नीलनलिनाभमपि कृष्णरूपमपि तव लोचनं कोकनदरूपं रक्तिमानं धारयति। अतो यदि कुसुमशरबाणचेष्टया कुसुमशरबाणाधीना भूत्वा यदि मामपि कृष्णं रञ्जयसि तदा इदं रञ्जनमेतल्लोचनरञ्जनानुरूपं स्यात्। इदमाकूतम्—यथा मयि कोपेन त्वया कृष्णं लोचनं रक्तं कृतं तथा मयि प्रसादपरा भूत्वा कुसुमशरभावेन कामबाणानां कटाक्षादीनां चेष्टया मयि रक्तं कुरु, कोपं त्यक्त्वा प्रसादपरा भवेत्यर्थः। अथवा—कुसुमशरभावेन यदि नीलनलिनाभमपि लोचनं कोकनदरूपं धारयति तर्हि एतदिदं तवानुरूपम् ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् श्रीराधाजी से कहते हैं कि तुम्हारे नेत्र स्वभावतः नीलकमल के समान कृष्ण वर्ण वाले हैं। किन्तु हे तन्वि श्रीराधे ! क्रोध के कारण तुम्हारे ये कृष्ण वर्ण के नेत्र लाल कमल के समान हो गये हैं। इससे लगता है कि कृष्ण वर्ण की वस्तुओं को तुममें रक्त वर्ण का बना देने का सामर्थ्य है। अतएव यदि तुम इन अपने नेत्र के कटाक्ष रूपी काम के बाणों से मुझ कृष्ण को भी घायल करके अनुरागरंजित कर देती हो तो यह तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप होगा। अर्थात् मुझ पर क्रोध न करके मुझसे स्नेह करो तथा कामक्रीड़ाव्यापृत हो जाओ ॥ ४ ॥

स्फुरतु कुचकुम्भयोरुपरि मणिमञ्जरी
रञ्जयतु तव हृदयदेशम् ।
रसतु रसनापि तव घनजघनमण्डले
घोषयतु मन्मथनिदेशम् । प्रिये ! ० ॥ ५ ॥

अनुवाद—तुम्हारे स्तन रूपी कलशों के ऊपर मणिरूपी मंजरी प्रकाशित होए, जिससे तुम्हारा हृदयप्रदेश सुशोभित हो। तुम्हारी मांसल जाँघों के ऊपर आवाज करती हुई करधनी कामदेव के आदेश का उद्घोष करे ॥ ५ ॥

अपि च—स्फुरत्विति। हे तन्वि ! तव कुचकुम्भयोरुपरि मणिमञ्जरी मणिः मञ्जरीव स्फुरतु। स्फुरन्ती च किं करोत्वित्याह—तव हृदयदेशं रञ्जयतु। अपि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

च—रसनापि तत्र निबिडजघनमण्डले रसतु शब्दं करोतु। सा तथाविधा किं करोतीत्याह—मन्मथनिदेशं 'सर्वा एव मानिन्यो मानं मुक्त्वा कामवशगा भवन्तु' इति कामाज्ञां घोषयन्तु ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—किञ्च हे राधे ! इस सुरतारम्भ रूपी शुभ कर्म को प्रारम्भ करने से पूर्व पूर्ण कलशों की प्रतिष्ठा आवश्यक है। तुम्हारे दोनों स्तन कलश के समान विपुलाकार वाले हैं। उन स्तनकलशों के ऊपर मणि रूपी मञ्जरी प्रकाशित हो तथा वे तुम्हारे वक्षःस्थल को समलंकृत करें। किञ्च तुम्हारी मांसल जांघों के ऊपर छोटी-छोटी घुंघरूवाली करधनी आवाज करती हुई कामदेव की आज्ञा का उद्घोष करे। कामदेव की आज्ञा है कि इस वसन्त ऋतु की वेला में सभी विलास-प्रवण नर-नारी विलास-क्रिया में व्यापृत हो जायें। यह मानिनियों के मान करने की वेला नहीं अपितु अपने प्रियतमों के साथ विलास करने की वेला है ॥ ५ ॥

स्थलकमलगञ्जनं मम हृदयरञ्जनं
जनितरतिरङ्गपरभागम् ।
भण मसृणवाणि ! करवाणि चरणद्वयं
सरसलसदलक्तकरागम् । प्रिये ! ० ॥ ६ ॥

अनुवाद—स्थलकमल से भी अधिक सुन्दर मेरे हृदय के अनुकूल तथा कामोद्रेक करनेवाले तुम्हारे दानों चरणों को मैं आलक्तक रस से रञ्जित करता हूँ। हे मधुर बोलनेवाली श्रीराधे ! तुम आदेश दो ॥ ६ ॥

अपि च—स्थलकमलेति। हे मसृणवाणि स्निग्धवाणि ! भण आदिश। तव चरणद्वयं सरसलसदलक्तकरागं करवाणि। सरवः सस्नेहो लसन्योऽसावलक्तकस्तस्य रागो यत्र। अथवा—सह रसेन शृङ्गारेण वर्तत इति सरसः, स चासौ तथा शृङ्गारोत्पत्तिद्वारेण स्पृहाजनकश्चासौ लसत्कान्तिमांश्चेति ईदृशोऽलक्तकरागो यत्र। एतावता अलक्तकरञ्जनसमकालमेव शृङ्गारोत्पत्तिर्भवत्येव यूनाम्। किम्भूतं चरणद्वयम् ? स्थलकमलगञ्जनं पद्मरागस्पर्धि। पुनः किम्भूतम् ? मम हृदयरञ्जनं मम चित्तानुकारि। पुनः किम्भूतम् ? जनित उत्पादितो रतिरङ्गस्य रमणप्रमोदस्य परभागो यत्र, कामोद्रेककारीत्यर्थः ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधाजी से कहते हैं कि तुम तो मधुर वाणी बोलने वाली हो, अतएव तुम मुझे आदेश दो कि मैं तुम्हारे स्थलकमल को भी तिरस्कृत करने वाले तथा मेरे हृदय को रञ्जित करनेवाले दोनों चरणों को रस युक्त आलक्तक रस से रञ्जित कर दूँ। जिससे कि सुरतक्रीड़ा की वेला में वे एक-दूसरे की शोभा को धारण करके कामोद्रेक उत्पन्न कर सकें। इससे इस अर्थ की सूचना मिलती है कि रमणी के आलक्तक रसरञ्जित मनोहर पैरों को देखकर नायक के मन में काम की भावना उद्रिक्त हो जाती है ॥ ६ ॥

स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं
धेहि पदपल्लवमुदारम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्वलति मयि दारुणो मदनकदनारुणो
हरतु तदुपाहितविकारम् । प्रिये ! ० ॥ ७ ॥

अनुवाद—तुम मेरे सिर पर अपने मनोहर चरण-किसलय रूपी अलंकार को रख दो, जिससे काम का विष समाप्त हो जाय। मेरे भीतर जो कामजन्य कष्ट रूपी सूर्य चमक रहा है, उससे उत्पन्न विकार भी शान्त हो जाय ॥ ७ ॥

अपि च—स्मरेति । हे राधे ! मम शिरसि उदारं चरणलक्षणंमहत्पदपल्लवं पदं पल्लव इव लौहित्यकौमल्यशैत्यादिना मण्डनमिव धेहि आरोपय । किम्भूतं पदपल्लवम् ? स्मरगरलखण्डनं कामविषतापशमनम् । मयि विषये दारुणो मदनस्य यत्कदनं तदेवारुण एव सूर्य इव ज्वलति दीप्यते । स चरणपल्लवः मम शिरसि निहितः सन् । तेन मदन-कदनारुणजनिततापेन उपाहितविकारमारोपितविकृतिं सन्तापं हरतु । अत्रान्तरेत्यादौ प्रौढा मानवती नायिका । अनुकूलो नायकः ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीभगवान् श्रीराधाजी से कहते हैं कि तुम्हारे पैर लौहित्य, कोमल्य तथा शैत्य इत्यादि गुणों से समलंकृत होने के कारण अलङ्कारस्वरूप हैं। अपने उन चरणों को तुम मेरे सिर पर रख दो, जिससे कि मेरा सिर समलंकृत हो जाय तथा कामजन्य जो विष है वह शान्त हो जाय। यहाँ पर कामदेव को एक सर्प के समान कल्पित किया गया है। जिस प्रकार सर्पविष का प्रभाव गारुडिक के चरणस्पर्श को पाकर समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार मेरे भीतर जो कामरूपी सर्प का विष प्राप्त हो गया है, उसको शान्त करने के लिए तुम्हारे पैरों का स्पर्श अत्यावश्यक है। किञ्च मेरे भीतर कामजन्य संताप जल रहा है, उसके सम्बन्ध से मेरे भीतर उत्पन्न मनोविकार इत्यादि दोष भी शान्त हो जायेंगे।

इस सम्पूर्ण प्रबन्ध की नायिका श्रीराधा प्रौढा तथा मानवती हैं और नायक भगवान् श्रीकृष्ण एक अनुकूल नायक हैं ॥ ७ ॥

इति चटुलचाटुपटुचारु मुरवैरिणो
राधिकामधि वचनजातम् ।
जयति जयदेवकविभारतीभूषितं
मानिनीजनजनितशातम् ॥ प्रिये ! ० ॥ ८ ॥

अनुवाद—इस प्रकार राधिका को लक्ष्य करके श्रीभगवान् के मनोहर, सुकुमार, प्रीतियुक्त तथा चातुर्य युक्त मानिनियों को सुख देनेवाला तथा जयदेव कवि की भारती से भूषित वचनसमूह की जय हो ॥ ८ ॥

अपि च—इतीति । इत्यमुना प्रकारेण चटुलचाटुपटुचारु मुरवैरिणो राधिकामधि-कृत्य वचनजातम् । जयदेवकविभारतीभूषितम् । पुनः किम्भूतम् ? मानिनीजनजनित-शातम् मानिनीजनस्य जनितमुत्पादितं शातं सुखं येन ॥ 'ललितापि पद्यरचना न धातुयोगावृते विभाति शुभा । इति कुम्भकर्णनृपतिर्गायति तां गीतगोविन्दे ॥' तथा च सङ्गीतराजे—'तालो वर्णयती रागाः क्रमादष्टावश स्मृताः । मध्यमादिश्च ललितो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुर्जरी तथा ॥ धनाश्री भैरवो गौण्डकृतिर्देशाङ्क्किापि च । मालवश्रीश्च केदारमालवीयादिगौण्डकौ ॥ स्थानगौण्डश्च श्रीरागो मल्लारश्च वराटिका । मेघरागश्च भद्रावद्धोरणीनियता इमे ॥ यावद्रागं पदानि स्युः प्रान्ते पाठस्वराणि तु । क्वचित्क्वचिद्वृगतालापभूषितानि यथारुचि ॥ मिथः प्रियोक्तिसम्भारविप्रलम्भरसानि च । यत्र स्यात्स प्रबन्धोऽयं रागराजिविराजितः ॥' इति चतुरचतुर्भुजरागराजिचन्द्रोद्द्योतनामा एकोनविंशः प्रबन्धः ॥ ८ ॥ १९ ॥

भावप्रकाशिका—गीतगोविन्द काव्य के इस उन्नीसवें प्रबन्ध का नाम चतुरचतुर्भुजरागराजिचन्द्रोद्योत है । इस प्रबन्ध के अन्तिम पद्य के द्वारा श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि श्रीभगवान् ने इस प्रबन्ध में श्रीराधिकाजी को लक्ष्य करके जिन वचनों को कहा है, वे वचन मनोहर, प्रीति युक्त, चातुर्य युक्त तथा सौकुमार्य युक्त हैं । ऐसे वचनों से मानिनी नायिकाओं को सुख मिलता है । किञ्च ये वचन श्रीजयदेव कवि की भारती से भूषित हैं, अतएव श्रीभगवान् के इन वचनों की जय हो, क्योंकि ये सर्वोत्कृष्ट वचन हैं ॥ ८ ॥

परिहर कृतातङ्के ! शङ्कां त्वया सततं घन-
स्तनजघनयाक्रान्ते स्वान्ते परानवकाशिनि ।
विशति वितनोरन्यो धन्यो न कोऽपि ममान्तरं
प्रणयिनि ! परीरम्भारम्भे विधेहि विधेयताम् ॥ २ ॥

अनुवाद—मेरे विषय में अन्य वनितासङ्ग की शङ्का को छोड़ दो । हे प्रणयिनि श्रीराधे ! सदा तुम्हारे कठोर स्तन तथा जघन से आक्रान्त दूसरी नायिका के लिए अवकाश रहित मेरे मन में कामदेव से भिन्न कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता, अतएव मेरा आलिङ्गन करके मुझे अपना दास बनाओ ॥ २ ॥

इदानीमात्मानं गतदोषं ज्ञापयन्सम्भोगार्थं प्रोत्साहयन्नाह—परिहरेति । हे कृतातङ्के कृतान्यवनितासङ्गशङ्के ! मयि शङ्कां त्यज । अथवा—मयि कृतातङ्के त्वद्वियोगदर्शनसञ्जातसन्तापे शङ्कां त्यज । त्वां मयि सञ्जातमनोविकल्पां दृष्ट्वा मयि सन्तापो जायत इत्यर्थः । अत्र ममेति षष्ठ्यन्तमर्थवशात्सप्तम्या विपरिणम्यते । कथं शङ्का परिहरणीयेति वाक्यार्थद्वारेण हेतुमाह । 'सतत'ग्रहणेन जीवितावधि त्वदृतेऽन्या काचन मम हृदयमाश्रित्य न वर्तत इति बोधयति । हे प्रणयिनि ! मम स्वान्ते घनस्तनजघनया त्वया सततमाक्रान्ते अत एवान्यानवकाशयति वितनोरनङ्गादन्यो धन्यस्तादृशसौभाग्ययोग्यः कोऽप्यन्यः स्त्रीलक्षणो जनोऽन्तरं मध्यान्न विशति । साङ्गस्य प्रवेशाभाव इति तां शङ्कां मा कृथा इत्यर्थः । शङ्कां मुक्त्वा किं कुर्वित्याह—परीरम्भारम्भ आलिङ्गनारम्भे विधेयतां वासतां विधेहि । अथवैवं योजना—प्रणयिनीति काकाक्षिगोलकन्यायेनोभयत्र सम्बध्यते । त्वयि योगो न युक्त इति प्रणयिनि मयि स्नेहपरे परीरम्भारम्भे विधेयतां किङ्करतां विधेहि । त्वयानुमतोऽहमालिङ्गनार्थं प्रयतेय तथा कुरु । हरिणी वृत्तम् । अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः । प्रणयिनीति पदौचित्यं वर्णानुप्रासश्च । प्रौढा नायिका । प्रगल्भो नायकः । विप्रलम्भे सङ्गसिद्धिः ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीभगवान् बतला रहे हैं कि जिस दोष की शङ्का तुम कर रही हो वह दोष मुझमें नहीं है, अतएव अन्य स्त्रीसंसर्ग-दोष की शङ्का को तुम छोड़ दो। तुमको इस प्रकार सन्ताप से संतप्त देखकर मुझे भी सन्ताप होता है। मेरे अन्तःकरण में तो तुम्हारे कठोर स्तन तथा मांसल जाँघों की ही याद बनी रहती है। अब उसमें किसी दूसरी रमणी के प्रवेश करने के लिए कोई स्थान है ही नहीं। अतएव कामदेव को छोड़कर कोई ऐसा धन्य है ही नहीं जो मेरे अन्तःकरण में प्रवेश पा सके। हे प्रणयिनि श्रीराधे! अब अपने मान का परित्याग कर दो, मुझे अपना अनुचर बना लो और मेरा आलिङ्गन करो। अर्थात् तुम्हारी अनुमति प्राप्त करके मैं तुम्हारा आलिङ्गन करूँ, इस तरह की तुम बन जाओ।

इस श्लोक में हरिणी नामक वृत्त तथा काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। 'प्रणयिनि' पद में पदौचित्य है तथा वर्णानुप्रास इस श्लोक में विद्यमान है। इस श्लोक की नायिका श्रीराधा प्रौढा नायिका हैं तथा श्रीभगवान् प्रगल्भ नायक हैं ॥ २ ॥

मुग्धे ! विधेहि मयि निर्दयदन्तदंश-
दोर्वल्लिबन्धनिबिडस्तनपीडनानि ।
चण्डि ! त्वमेव मुदमुद्वह पञ्चबाण-
चाण्डालकाण्डदलनादसवः प्रयान्ति ॥ ३ ॥

अनुवाद—हे मुग्धे ! तुम निर्दय दन्तक्षत करो तथा अपने हस्तवल्ली के बन्धन द्वारा स्तनों का गाढ निपीडन करो। हे चण्डि ! तुम ही आनन्द प्राप्त करो, क्योंकि चाण्डाल कामदेव के बाणप्रहार से मेरे प्राण निकले जा रहे हैं ॥ ३ ॥

इदानीं सापराधित्वमभ्युपगम्याप्याह—मुग्धे इति। हे मुग्धे आत्महितानभिज्ञे ! अहमपराधीति चेत्तर्हि मय्यपराधयोग्यं दण्डं निर्दयदन्तदंशदोर्वल्लिबन्धनिबिडस्तनपीडनानि विधेहि। अथवा—कोपैकशरणेति चेत्तर्हि सम्बोधनमुखेनानुरूपं विशेषणमाह—हे चण्डि कोपने ! पञ्चबाणश्चाण्डालः तस्य काण्डैः शरैर्दलनान्ममासवः प्रयान्ति। किं पुनस्तस्य पौरुषेण ? त्वमेव मुदमुद्वह मया जितोऽयमिति जयपटहं वादय इत्यन्वयः। अथवा—हे चण्डि ! त्वं मुदमुद्वह एव; नात्योऽवकाशः, चण्डित्वं त्यज। त्वया चण्डित्वे ध्रियमाणे पञ्चबाणचाण्डालकाण्डदलनान्ममासवः प्रयान्ति। वसन्ततिलकावृत्तम्। रतिर्भावो व्यङ्ग्यः। तेन रसवदलङ्कारता। अनुकूलो नायकः। मुग्धा नायिका। प्रसादो गुणः। वैदर्भी रीतिः ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीभगवान् स्वयं को अपराधी बतला रहे हैं। अतएव वे कह रहे हैं कि श्रीराधे ! मुझे तुम दण्ड दो। तुम मेरे ओठों पर निर्दय दन्तक्षत करो। तुम तो मुग्धा हो। तुम्हें अपने हित तथा अहित का ज्ञान ही नहीं है। तुम मुझे अपनी भुजा रूपी लताओं में बाँध लो तथा अपने स्तनों का घना निपीडन करो। ऐ क्रोध करने वाली श्रीराधे ! तुम ही आनन्द प्राप्त करो, दूसरे को आनन्द प्राप्त करने के लिए कोई अवकाश नहीं है। यह कामदेव तो अपने धनुष पर बाण चढ़ाये हुए है, उसके बाणप्रहार के कारण लगता है मेरे प्राण निकल जायेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है तथा रति नामक भाव व्यंग्य है। अतएव इस श्लोक में रसवदलङ्कार है। इस श्लोक के नायक भगवान् श्रीकृष्ण अनुकूल नायक हैं, श्रीराधा मुग्धा नायिका हैं, प्रसाद नामक गुण है तथा वैदर्भी रीति है ॥ ३ ॥

शशिमुखि! तव भाति भङ्गुरभ्रूर्युवजनमोहकरालकालसर्पी।
तदुदितभयभञ्जनाय यूनां त्वदधरसीधुसुधैव सिद्धमन्त्रः॥ ४॥

अनुवाद—हे चन्द्रमुखि! तुम्हारी टेढी भौंहें युवकों को मोहित करने के लिए भयङ्कर सर्प के समान हैं। उससे उत्पन्न भय को विनष्ट करने के लिए तुम्हारे अधरों की मदिरा ही सिद्ध मन्त्र है॥ ४॥

इदानीं वात्स्यायनन्यायमाश्रित्य क्रमेणानुकूलयति—शशिमुखीति। हे शशिमुखि! तव भङ्गुरभ्रूर्युवजनमोहकरालकालसर्पी विद्यते। युक्तोऽयमर्थः; शशिनो हिंसार्थश्रवणात्। या हिंस्रमुखी भवति तस्या मुखे भ्रूः कृष्णसर्पी भवत्येव। यूनां तरुणानां यतः सर्पादुदितभयभञ्जनाय त्वदधरसीधुसुधैव त्वदधरसीधुः, स एव सुधा। तव किलामृतबुद्ध्या तत्सन्निधौ कृष्णसर्प्या अवस्था न युज्यते इति योजना। अथवा—हे शशिमुखि! तव मुखे भ्रूस्तावत्सर्पीत्यनुमीयते। यतो यदुदितभयभञ्जनाय यूनां त्वदधर एव सीधुः; पानसाधर्म्यात् स एव सुधामधुरत्वाद्विषनाशनाय सिद्धमन्त्रः। अत्र सुधाया आस्वाद्यत्वेन ओषधित्वे वक्तव्ये यन्मन्त्रोपादानं तत्सर्वयुवसाधारण्येन शृङ्गाराभासव्यावृत्त्यर्थम्; अतिसौन्दर्यात्। अन्ये स्मरन्तु नाम उपभोगयोग्यत्वं हरेरेवेति। पुष्पिताग्रा वृत्तम्। अत्र कल्पितोपमारूपकालङ्कारौ। तमेव क्रमशब्दार्थं विशिनष्टि आसर्गपरिसमाप्तेः॥ ४॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीभगवान् श्रीराधा को अनुनीत करते हुए कहते हैं कि हे राधे! तुम्हारा मुखमण्डल चन्द्रमा के समान आह्लादक है, किन्तु तुम्हारे मुखमण्डल पर विराजमान टेढ़ी भौंहें तो युवकों को मोहित करने के लिए भयंकर काली सर्पिणी के समान है। उस सर्प के काटने से उत्पन्न भयंकर विष से कोई भी युवक तभी बच सकता है, जब उसे तुम्हारे अधरों की मदिरारूपी अमृत पीने को प्राप्त हो जाय। अतएव तुम्हारे अधरों की सुधा तुम्हारी भ्रूरूपी सर्पिणी के डँसने से उत्पन्न विष को शान्त करने के लिए सिद्धमन्त्र के समान है।

इस श्लोक में पुष्पिताग्रा वृत्त तथा कल्पितोपमा और रूपक अलङ्कार हैं॥ ४॥

व्यथयति वृथा मौनं तन्वि! प्रपञ्चय पञ्चमं
तरुणि! मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः।
सुमुखि! विमुखीभावं तावद्विमुञ्च न मुञ्च मां
स्वयमतिशयस्निग्धो मुग्धे! प्रियोऽयमुपस्थितः॥ ५॥

अनुवाद—हे तन्वि! तुम्हारा यह व्यर्थ का मौन मुझे कष्ट देता है। हे तरुणि! तुम पञ्चम स्वर से आलाप प्रारम्भ करो। हे सुमुखि! अपने मधुर आलापों तथा कटाक्षपातों से मेरे संताप का अपनोदन करो। तुम अपनी विमुखता का भाव छोड़ दो—मुझे न छोड़ो। हे मुग्धे! यह तुम्हारा अत्यन्त स्नेह करने वाला प्रियतम तुम्हारे सामने उपस्थित है॥ ५॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यथयतीति। हे तन्वि कृशाङ्गि! तवैतद्वृथा मौनं मां व्यथयति। त्वया तनुत्वाद्वक्तुमशक्यत्वेन मौनं न ध्रियते, किन्तु निरपराधे सापराधोऽयमिति 'वृथा'शब्दद्योत्यम्; अत एव व्यथयति। हे तरुणि! मधुरालापैः पञ्चमं पञ्चमस्वरं प्रपञ्चय विस्तारय। पञ्चमोपादानेन वसन्तसमयसञ्जातरुचिरालापकोकिलजेतृत्वं सूचितम्। वसन्ते हि कामिन्यः स्वैरं प्रियमनुसरन्तीति व्यज्यते। हे तरुणि! मौनं वचनशक्तौ सत्यामवचनमर्थान्तरापाति तत्त्यजेति। अपि च—दृष्टिभिरित्यत्र 'दृशिर् प्रेक्षणे' इत्यत्र 'प्र'शब्दो दर्शनप्रकर्षं स्निग्धत्वादि वदति। तेन स्निग्धलोचनैस्तापं विनोदयेति विशिष्टोऽर्थो लभ्यते। हे सुमुखि! तावद्विमुखीभावं विमुञ्च। सुमुख्या विमुखीभावो न युक्तः। हे मुग्धे! अयमहमतिशयस्निग्धः स्नेहवान्प्रीतिमांश्च उपस्थित इति मां न वञ्च इति न, अपि तु वञ्च जानीहि। 'अयम्' इति औदासीन्यव्यावृत्त्यर्थो निर्देशः। अत्र मुग्धत्वं न घटते। चातुर्यमुपेत्य मां त्वदेकतानं जानीहीत्यर्थः। अत्र हरिणीवृत्तम्। यथासंख्यमलङ्कारः। अनुकूलो नायकः। प्रसादो गुणः। कैशिकी वृत्तिः। वैदर्भी रीतिः। मागधी गीतिः॥ ५॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीभगवान् श्रीराधाजी को अनुनीत करते हुए कहते हैं कि हे कृश शरीर वाली श्रीराधे! तुम जो यह व्यर्थ मौन धारण की हुई हो, उससे मुझे बहुत कष्ट हो रहा है। तुम कुछ भी तो बोलो। ऐसा तो नहीं है कि तुम अपनी कमजोरी के कारण कुछ बोल नहीं पाती हो, किन्तु मुझ निरपराध व्यक्ति के विषय में तुम व्यर्थ क्रोध किये बैठी हो। पुनः वे कहते हैं कि हे तरुणि राधे! तुम पञ्चम स्वर का विस्तार करो। वसन्त ऋतु में पञ्चम स्वर का विस्तार करने का अभिप्राय यह है कि तुम पञ्चम स्वर का कोयल से भी मधुर आलाप करती हो और वसन्त ऋतु में तो कामिनियाँ अपने मन से अपने प्रियतम का अनुसरण किया करती हैं। वे आगे कहते हैं कि हे सुन्दर मुखवाली श्रीराधे! अपने कटाक्षपातों के द्वारा मेरे मन में विद्यमान कामजन्य सन्ताप का अपनोदन करो। तुम जो इस प्रकार मुझसे विमुख होकर बैठी हो, अपने इस वैमुख्य का त्याग करो; तुम्हें मेरा त्याग नहीं करना चाहिए। सुमुखी रमणी का विमुखीभाव अच्छा नहीं लगता है। मैं स्वयं स्नेहपूर्वक तुम्हारे समक्ष उपस्थित हूँ। अतएव तुम्हें भी मुझसे इसी प्रकार स्नेह करना चाहिए। इस श्लोक में हरिणी वृत्त, यथासंख्य अलङ्कार, अनुकूल नायक, प्रसाद गुण, कैशिकी वृत्ति, वैदर्भी रीति तथा मागधी गीति है॥ ५॥

बन्धूकद्युतिबान्धवोऽयमधरः स्निग्धो मधूकच्छवि-
र्गण्डश्चण्डि! चकास्ति नीलनलिनश्रीमोचनं लोचनम्।
नासाभ्येति तिलप्रसूनपदवीं कुन्दाभदन्ति! प्रिये!
प्रायस्त्वन्मुखसेवया विजयते विश्वं स पुष्पायुधः॥ ६॥

अनुवाद—हे प्रिये! चण्डि! यह तुम्हारे अधर बन्धूक पुष्प के समान है, तुम्हारे कपोल मधूक पुष्प की कान्ति से युक्त हैं, तुम्हारे नेत्र नीलकमल की शोभा को तिरस्कृत करने वाले हैं, तुम्हारी नाक तिल पुष्प के समान है तथा दाँत कुन्द पुष्प के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समान हैं। हे प्रिये ! पुष्पधन्वा इन पाँच पुष्प रूपी बाणों के द्वारा तुम्हारे मुख की सेवा करके प्राय: विश्वविजयी बन गया है ॥ ६ ॥

बन्धूकेति। 'हे चण्डि' इति साम्प्रतं कोपहानावपि भूतपूर्वकोपाश्रयणेन सम्बुद्धिः। 'प्रिय' इति वितर्के। अहमिति जाने। स पुष्पायुधस्त्वन्मुखसेवया विश्वं विजयते। 'सः' इत्यनेन स बाणोऽपीश्वरदग्धः स्मर्यते। स तथाविधः साम्प्रतं पुष्पैरपि आश्रयविशेषेण साधकैः सुरासुरैर्दुर्जयमपि विश्वं विजयते। तानेव त्वन्मुखसेविपौष्पान्पञ्चबाणानुद्दिशति। हे चण्डि ! अयं तवाधरो बन्धूकद्युतिबान्धवः बन्धुजीवकान्तिसदृशः। अनेन रक्ताकर्षण-बाण उक्तः। अपि च—तव गण्डः स्निग्धो मधूकच्छविश्चकास्ति। विरहिणीनां हि गण्डे पीतिमा भवति। अनेन पीतो वशीकारबाण उक्तो भवति। अपि च—तव लोचनं नीलनलिनकान्तिपराकरणशीलं चकास्ति। अनेन कृष्णवर्ण उन्मादनबाणोऽभाणि। अपि च—तवेयं नासा तिलप्रसूनपदवीमत्येति अतिक्रामति। अनेन द्रावणबाण उक्तः। अपि च—हे प्रिये ! कुन्दाभदन्ति कुन्दवदुज्ज्वलदशने !। अनेन शोषणबाण उक्तः। एवमेतैः पञ्चभिर्बाणैर्भवत्याः सेवको भूत्वा विश्वजेता भवतीति। शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्। उपमा-विशेषोऽलङ्कारः। अनुप्रासो वर्णालङ्कारः। असमस्तपदा वैदर्भीरीतिः। प्रसादो गुणः। स्थितलयं गानम्। सम्भाविता गीतिः। कैशिकी वृत्तिः ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—'चण्डि'—इस संबुद्धि पद के द्वारा श्रीभगवान् यह सूचित करते हैं कि यद्यपि तुमने इससे पहले मेरे ऊपर क्रोध किया था; किन्तु उसका अब भी तुम्हारे ऊपर प्रभाव है। श्रीराधाजी श्रीभगवान् की प्रियतमा हैं, अतएव उनके लिए वे 'प्रिये' पद का प्रयोग करते हैं। इस श्लोक में श्रीभगवान् कहते हैं कि कामदेव के पाँच पुष्पमय बाण हैं। उन अपने पुष्पमय बाणों के द्वारा कामदेव तुम्हारे मुख की सेवा करता है। इसीलिए इस समय वह विश्वविजयी बना हुआ है। कामदेव के पाँच बाणों की श्रीराधाजी के मुखमण्डल में विद्यमानता का वर्णन करते हुए श्रीभगवान् कहते हैं कि तुम्हारे होठ बन्धूक (दूपहरिया) पुष्प के समान लाल-लाल हैं। अतएव वे ही कामदेव के रक्तवर्ण के आकर्षण बाण हैं। तुम्हारे कपोल मधूक (महुआ) के पुष्प के समान पीले-पीले हैं, वे ही कामदेव के पीत वर्ण के वशीकरण बाण हैं। तुम्हारे नीले-नीले नेत्र नीलकमल को भी तिरस्कृत करने वाले हैं। वे ही मानो कामदेव के कृष्ण वर्ण के उन्मादन बाण हैं। तुम्हारी नाक तिल पुष्प के समान है। वही मानों कामदेव का द्रावण बाण है। तुम्हारे दाँत कुन्द पुष्प के समान हैं। वे ही मानों कामदेव के शोषण बाण हैं। इस प्रकार इन पाँच बाणों के द्वारा तुम्हारे मुख की सेवा करने के कारण कामदेव विश्वविजयी बना हुआ है ॥ ६ ॥

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द, उपमा तथा उत्प्रेक्षालङ्कार है।

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दुसन्दीपनं
गतिर्जनमनोरमा विजितरम्भमूरुद्वयम्।
रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवा-
वहो विबुधयौवतं वहसि तन्वि ! पृथ्वीगता ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद—हे तन्वि राधे ! तुम्हारे नेत्र मद से अलस हैं, तुम्हारा मुखमण्डल चन्द्रमा के समान है, तुम्हारा चलना लोगों के मन को मोहित कर लेता है, तुम्हारी दोनों जाँघें कदलीस्तम्भ को भी तिरस्कृत करने वाले हैं, तुम्हारा संभोग कला युक्त है, तुम्हारी भौंहें मनोहर और विचित्र हैं। इस प्रकार पृथिवी पर भी रहकर तुम देवस्त्रीसमूह को अपने में धारण करती हो ॥ ७ ॥

दृशाविति। 'अहो' इति आश्चर्ये। त्वं पृथ्वीगतापि दिव्यस्त्रीसमूहं वहसि। क्व कामित्याह—तव दृशौ मदेनालसे वर्तेते। अनेन मदालसतां वहसीत्युक्तम्। अपि च—तव वदनं चन्द्रवद्दीप्तिमद्वर्तते। अनेन इन्दुमतीनाम्नी अप्सराः कथिता। अपि च—तव गतिर्जनमनांसि रमयतीति। अनेन मनोरमा काचन सुरस्त्री भणिता। अपि च—तवोरुद्वयं विजितकदलीकाण्डं वर्तते। अनेन रम्भोक्ता। अपि च—तव रतिः सम्भोगः कलावती हावभावकिलकिञ्चितमोट्टायितविब्बोकादिमती वर्तते। अनेन कलावती काचिद्देवनायिकोक्ता। अपि च—तव भ्रुवौ रुचिरे चित्रे लेखे ययोस्ते तादृश्यौ। अनेन रुचिरा चित्रलेखा च वर्णिता॥ 'जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः' इति पृथ्वी-छन्दः। कल्पितोपमालङ्कारः ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीभगवान् कहते हैं कि श्रीराधे ! यद्यपि तुम पृथिवी पर निवास करती हो, फिर भी तुम्हारे भीतर देवस्त्रीसमूह का निवास है यह एक बड़े आश्चर्य की बात है। मद से आलस्य युक्त बने हुए तुम्हारे नेत्रों में मदालसा नामक अप्सरा का निवास है। तुम्हारा मुखमण्डल चन्द्रमा से भी अधिक आह्लादक है, अतएव तुममें इन्दुमती नामक अप्सरा का निवास है। तुम्हारी गति लोगों के मन को मोहित करने वाली है, अतएव तुम में मनोरमा नामक अप्सरा का निवास है, तथा तुम्हारी दोनों जांघे कदली स्तम्भ से भी अधिक मनोहर हैं, अतएव तुममे रम्भा का निवास है। तुम्हारी गति, हाव, भाव, विलास किलकिंचित आदि कलाओं से युक्त है, अतएव तुममें कलावती नामक अप्सरा का निवास है, तुम्हारी भौंहें मनोहर चित्र-लिखित के समान हैं, अतएव तुममें चित्रलेखा का निवास है ! इस तरह पृथिवी लोक में भी रहने वाली तुममें देवस्त्रीसमूह का निवास है ॥ ७ ॥

इस श्लोक में पृथ्वी छन्द तथा कल्पितोपमालङ्कार है।

स प्रीतिं तनुतां हरिः कुवलयापीडेन सार्धं रणे
राधापीनपयोधरस्मरणकृत्कुम्भेन सम्भेदवान्।
यत्र स्विद्यति मीलति क्षणमपि क्षिप्रं तदालोकन-
व्यामोहेन जितं जितं जितमभूत्कंसस्य कोलाहलः ॥ ८ ॥

इति श्रीजयदेवकृतौ श्रीगीतगोविन्दे मानिनीवर्णने
चतुरचतुर्भुजो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद—वे श्रीभगवान् जगत् का हर्ष बढायें, जो भगवान् श्रीराधा के पीनस्तनों के समान कुम्भस्थल वाले कुवलयापीड हाथी के साथ युद्धकाल में पहले तो स्वेद युक्त हो गये, पुनः उसके साथ अपनी आँखों को मिलाये, अन्त में उस हाथी को मार देने पर कंस की सभा में 'जीत गया, जीत गया' इस प्रकार का व्यामोह युक्त कोलाहल उत्पन्न हुआ ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीजयदेव कवि प्रणीत गीतगोविन्द काव्य के मानिनी नायिका वर्णन प्रसङ्ग में चतुरचतुर्भुज नामक दसवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

स प्रीतिमिति। स हरिर्जगतां प्रीतिं तनुतां हर्षं विस्तारयतु। कीदृशो हरिः? कुवलयापीडेन कंसदन्तिना सार्धं रणे सम्भेदवान्सङ्गमवान्। किंविशिष्टेन कुवलयापीडेन? राधापीनपयोधरयोः स्मरणकरौ कुम्भौ यस्य तेन। क इत्यपेक्षायामाह—यत्र हराविति हेतोः राधापीनपयोधरस्मरणादेव सात्त्विकभावोद्रेकात्क्षणं स्विद्यति स्वेदयति। मीलतीति। भ्रान्त्या चक्षुषि निमीलति सति कंसस्य तदालोकनात्तस्य तथाविधस्य दर्शनाद्व्यामोहेन भ्रान्त्या क्षिप्रं वेगेन जितं जितमिति कोलाहलो भवति स्म। भ्रान्तिमदाशिषावलङ्कारौ। शृङ्गारवीरयोः सङ्करश्च। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ८ ॥

आनन्दकन्दलीकन्दं मुकुन्दं नन्दनन्दनम्।
प्रणम्य दशमं सर्गं व्याकरोत्कुम्भभूपतिः ॥

इति श्रीचित्रकूटाधीश्वरराजाधिराजमहाराजश्रीकुम्भकर्णविरचितायां रसिकप्रियायां चतुरचतुर्भुजो नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीजयदेव कवि पाठकों को आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण भगवान् सम्पूर्ण संसार के आनन्द को बढ़ायें। भगवान् श्रीकृष्ण की विशेषता बतलाते हुए वे कहते हैं कि जब श्रीभगवान् का कंस के हाथी कुवलयापीड के साथ युद्ध हुआ, उस समय जब श्रीभगवान् ने उस कुवलयापीड हाथी के कुम्भस्थल को देखा तो उन्हें श्रीराधाजी के स्तनों की याद आ गयी। अर्थात् उस हाथी के भी कुम्भस्थल उसी प्रकार विशाल थे जिस प्रकार श्रीराधाजी के स्तन। इस प्रकार उस हाथी को देखते ही उनके मन में सहसा शृङ्गारिक भावना उत्पन्न हो गयी। फलतः उनमें सात्त्विक भाव उदित हुआ और उनको एक बार पसीना हो गया। श्रीभगवान् को पसीने-पसीने होते देखकर कंस की सभा में बड़ी प्रसन्नता हुई। लोगों ने समझा इस हाथी को देखकर ही श्रीभगवान् भयभीत हो गये।

सहसा श्रीराधाजी के स्तनों की याद आ जाने तथा सात्त्विक भाव के उत्पन्न हो जाने से श्रीभगवान् का मन सम्पूर्ण रूप से शृङ्गारिक भावना से परिपूर्ण हुआ। श्रीराधा के स्मरण और उनके मिलनजन्य आनन्द का स्मरण करते हुए श्रीभगवान् ने एक बार अपनी आँखें बन्द कर लीं। लोक में भी देखा जाता है कि जब कोई अपनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रेयसी के मिलनजन्य आनन्द की याद करता है तो अपनी आँखें बन्द कर लेता है। किन्तु भगवान् की इस स्थिति को देखकर कंस के सभासदों को यह समझकर आनन्द हुआ कि इस कुवलयापीड को देखकर श्रीकृष्ण भयभीत होकर अपनी आँखें बन्द कर लिये हैं। किन्तु ज्यों ही श्रीभगवान् के मन में आया कि यह कुवलयापीड हाथी है, उन्होंने उस हाथी को मार दिया। उसे देखते ही कंस के सभासदों के मुख से अचानक यह बात निकल पड़ी—'श्रीकृष्ण जीत गये, जीत गये'। यह आवाज व्यामोह युक्त होने के कारण कोलाहल के समान बन गयी ।। ८ ।।

इस प्रकार शिवप्रसाद द्विवेदी कृत गीतगोविन्द काव्य के चतुरचतुर्भुज नामक दसवें सर्ग की भावप्रकाशिका व्याख्या पूर्ण हुई ।। १० ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एकादशः सर्गः

(सामोददामोदरः)

सुचिरमनुनयेन प्रीणयित्वा मृगाक्षीं
गतवति कृतवेशे केशवे कुञ्जशय्याम् ।
रचितरुचिरभूषां दृष्टिमोषे प्रदोषे
स्फुरति निरवसादां कापि राधां जगाद ।। १ ।।

अनुवाद—दीर्घकाल-पर्यन्त अनुनय के द्वारा श्रीराधा को प्रसन्न करके समलंकृत निकुञ्ज की शय्या पर श्रीकृष्ण के चले जाने पर मनोहर अलङ्कार धारण की हुई तथा प्रसन्न श्रीराधा से सायंकाल की वेला में किसी सखी ने कहा ।। १ ।।

इदानीं कृतानुनयां राधां कापि सखी हरिमभिगमनाय प्रोत्साहयति—सुचिरेति । कापि सखी राधां जगाद । क्व सति ? प्रदोषे रजनीमुखे स्फुरति सति । किम्भूते प्रदोषे ? दृष्टिं मुष्णातीति कर्मण्यण् । अभिसारिकाभिसरणावसान इत्यर्थः । किम्भूतां राधाम् ? निरवसादामङ्गीकृतानुनयेन गतखेदाम् । पुनः किम्भूताम् ? रचितनीलनिचोलाद्यभिसरणयोग्यवेषाम् । क्व सति ? कृतवेशे कृतनेपथ्ये, अथ वा कृतग्रहे कृष्णे कुञ्जशय्यां गतवति सति । किं कृत्वा ? बहुकालानुनयेन मृगाक्षीमनुकूलयित्वा । मालिनीवृत्तम् ।। १ ।।

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् ने श्रीराधा को दीर्घकाल-पर्यन्त मनाया । उनके अनुनय-विनय से श्रीराधाजी प्रसन्न हो गयीं । उनकी हरिणी के समान आँखों में चमक आ गयी । अब वे विषाद रहित थीं । उनके मन में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी । अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण से मिलने योग्य मनोहर अलङ्कारों से उन्होंने स्वयं को अलंकृत किया । श्रीभगवान् केशव भी लताकुञ्ज में पल्लवों से रचित शय्या पर जाकर श्रीराधा के आने की प्रतीक्षा करने लगे । उसी समय किसी सखी ने श्रीभगवान् से मिलने के लिए श्रीराधा को प्रोत्साहित करते हुए आगे की बातों का कहा । इस श्लोक में मालिनी वृत्त है ।। १ ।।

वसन्तरागयतितालाभ्यां गीयते ।। प्रबन्धः ।। २० ।।

अनुवाद—श्रीगीतगोविन्द काव्य का यह बीसवाँ प्रबन्ध वसन्त राग तथा यति ताल में गाया जाता है ।

विरचितचाटुवचनरचनं चरणे रचितप्रणिपातम् ।
सम्प्रति मञ्जुलवञ्जुलसीमनि केलिशयनमनुयातम् ।। १ ।।
मुग्धे ! मधुमथनमनुगतमनुसर राधिके ! ।। ध्रुवपदम् ।।

अनुवाद—हे मुग्धे राधिके ! तुम्हारे मनोनुकूल बने हुए, मनोहर वाणी बोलने वाले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तुम्हारे चरणों पर प्रणिपात करने वाले, इस समय मनोहर वेतसलता के भीतर केलिशयन पर पहुँचे हुए भगवान् श्रीकृष्ण के साथ तुम अभिसरण करो ॥ १ ॥

तदेव प्रोत्साहमनुवदति—विरचितेति। तत्र पूर्वं ध्रुवः। मुग्ध इति। हे मुग्धे प्रियाभिसरणकालानभिज्ञे राधिके ! बालत्वद्योतनाय कप्रत्ययः। अनुगतमनुकूलं मधुमथनमनुसर। मा विलम्बं विधेहीत्यर्थः। इति ध्रुवः। अथ पदानि। विरचितेति ध्रुवेणान्वयः। किम्भूतं मधुमथनम् ? सम्प्रति इदानीमेव मनोरमवञ्जुलसीम्नि केलिशयनमनुप्राप्तम्। वञ्जुलादीनां विभावत्वेन परिणमनात्तद्द्योतनार्थत्वान्निकुञ्जोपादानम्। पुनः किम्भूतम् ? विरचितचाटुवचनरचनम्। पुनः किम्भूतम् ? चरणे रचितप्रणिपातम् ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में सखी श्रीराधाजी से कहती है कि हे राधिके ! तुम मुग्धा नायिका हो, अतएव अपने हिताहित को भी अभी नहीं समझ पाती हो। अब तुम भगवान् श्रीकृष्ण के साथ अभिसरण करो। वे भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हें मनाने के लिए तुम्हारे चरणों पर प्रणिपात कर चुके हैं तथा तुम्हारा अनुनय-विनय भी कर चुके हैं। अभी-अभी वे मनोहर वेतसलता के भीतर विद्यमान केलिशय्या पर पहुँचे हैं, तुम भी उनका अनुसरण करती हुई वहाँ पर पहुँच जाओ ॥ १ ॥

घनजघनस्तनभारभरे ! दरमन्थरचरणविहारम्।
मुखरितमणिमञ्जीरमुपैहि विधेहि मरालनिकारम् ॥ मुग्धे० ॥ २ ॥

अनुवाद—स्थूल होने के कारण परस्पर सटे हुए जाँघों तथा स्तनों वाली श्रीराधे ! धीरे-धीरे मन्थर गति से पदविन्यासों को करती हुई, जिससे कि मणिरचित नूपुरों की ध्वनि हो रही हो, ऐसी तुम हंस को भी अपनी गति से मात करती हुई वहाँ पर जाओ ॥ २ ॥

अपि च—घनेति। हे घनजघनस्तनभारभरे ! जघने च स्तनौ च जघनस्तनम्, घनं च तज्जघनस्तनं च, तस्य देशे भरोऽतिशयो यस्यास्तस्याः सम्बुद्धिः। मुखरितमणिमञ्जीरं नूपुरं यथा स्यात्तथा उपैहि आगच्छ। तेन चागमनेन मरालानां हंसानां निकारं जयं विधेहि। कथं विधेहीति चेत्—दरमन्थरेति। ईषन्मन्थरचरणविन्यासं यथा स्यात्तथा ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—सखी श्रीराधाजी से कहती है कि हे मुग्धे नायिके श्रीराधे ! दोनों जाँघों तथा स्तनों के परस्पर सटे हुए होने के कारण तुम्हारे ये दोनों स्थान भार से युक्त हैं। तुम इस प्रकार से जाओ जिससे कि तुम्हारी चाल को देखकर हंस भी लज्जित हो जायँ। उनसे भी सुन्दर चाल चलो। तुम धीरे-धीरे मन्थर गति से अपने चरणों का विन्यास करती हुई जाओ तथा तुम्हारे पैरों के मणिमय नूपुर की मधुर आवाज होती रहे ॥ २ ॥

शृणु रमणीयतरं तरुणीजनमोहनमधुपविरावम्।
कुसुमशरासनशासनबन्दिनि पिकनिकरे भज भावम् ॥ मुग्धे० ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुवाद—हे मुग्धे ! तरुणियों को भी मोहित करने वाली भ्रमरों की ध्वनि सुनो तथा कामदेव की आज्ञा का उद्घोष करने वाले कोकिल-समूह में अपने भावों को प्राप्त करो ।। ३ ।।

अपि च—शृण्विति । हे मुग्धे ! रमणीयतरं तरुणीजनमोहनं मधुपानां विरुतं शृणु । अपि च—कामाज्ञास्तुतिपाठके पिकसमूहे भावमभिप्रायं भज । किमुक्तं भवति ? 'मधुप'शब्देन कृष्ण उपलक्ष्यते वर्णतः साम्येन त्वदोष्ठमधुपानेन च । अथ मधोर्दैत्यस्य पातनाच्छोषणान्मधुपः कृष्णः । तरुणीजनमोहनश्चासौ मधुपश्च तस्य भवत्सङ्गमे विशिष्टात्सीत्कृतादिशब्दाञ्शृणु । अनु च त्वमपि तदा स्वात्मगतं रोषं त्यक्त्वा कोकिलस्वरा तमानन्दयेत्यर्थः । कुसुमशरासनशासनबन्दिनीति तेषां विभावत्वमुक्तम् ।। ३ ।।

भावप्रकाशिका—सखी कह रही है कि इस वसन्त ऋतु की वेला में चारों ओर भ्रमर-समूह गुञ्जन कर रहा है, जिससे सुनकर तरुणियाँ मोहित हो जाया करती हैं। इसका यह भी अभिप्राय है कि जिस प्रकार भौंरे कृष्णवर्ण के हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी श्यामवर्ण के हैं। भ्रमरों की गुञ्जन ध्वनि से तरुणियों का मन मोह जाता है। श्रीकृष्ण की भी अनुनयपूर्ण मीठी-मीठी बातों से तरुणियों का मन मोह में पड़ जाता है। जिस प्रकार वसन्त ऋतु में कोकिल-समूह मनोहर पञ्चम स्वर से गान करता है, मानों वह कामदेव की आज्ञा का उद्घोष करता है; उसी प्रकार तुम भी अपनी कोकिल से भी मनोहर ध्वनि के द्वारा कुसुमसायक कामदेव की आज्ञा का उद्घोष करो। कामदेव की आज्ञा है कि सभी विलासी नर-नारी वसन्त ऋतु में स्वच्छन्द विहार करें ।। ३ ।।

अनिलतरलकिसलयनिकरेण करेण लतानिकुरम्बम् ।
प्रेरणमिव करभोरु ! करोति गतिं प्रति मुञ्च विलम्बम् ।। मुग्धे० ! ।। ४ ।।

अनुवाद—वायु से चञ्चल बने हुए किसलय-समूह रूपी हाथ से लता-समूह मानों तुम्हें प्रेरित कर रहा है। अतएव हे करभोरु ! जाने में विलम्ब न करो ।। ४ ।।

अपि च—अनिलेति । हे करभोरु ! करभवदूरू यस्याः सा । 'मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः ।' लतानिकुरम्बं लतासमूहः । अनिलतरलकिसलयनिकरेणेव करेण । गतिं प्रति प्रेरणमिव करोति । अतो विलम्बं मुञ्च । यत्र अचेतना अपि चेतनवत्प्रतिबोधयन्ति तत्रेष्टसिद्धिरवश्यम्भाविनी । अत्र करसान्निध्यात् 'लता'शब्देन सख्यः त्वां त्वरयन्तीति द्योत्यते ।। ४ ।।

भावप्रकाशिका—इस पद्य में सखी श्रीराधाजी से कहती है कि हे सखी ! यह इतनी मादक वेला है कि इसमें जड़-जंगम सभी काम की भावना से परिपूर्ण हो गये हैं। हे करभोरु ! यह लताओं का समूह मलयानिल से चञ्चल बने हुए नवपल्लव समूह रूपी हाथों से तुम्हें भगवान् श्रीकृष्ण के पास पहुँचने के लिए मानों प्रेरित कर रहा है। अतएव अब भगवान् श्रीकृष्ण के पास उस वञ्जुल (वेतस) लता गृह में विलास शय्या पर पहुँचने में देर न करो ।। ४ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्फुरितमनङ्गतरङ्गवशादिव सूचितहरिपरिरम्भम् ।
पृच्छ मनोहरहारविमलजलधारममुं कुचकुम्भम् ।। मुग्धे० ! ।। ५ ।।

अनुवाद—मनोहर हाररूपी विमल जलधार युक्त कामतरङ्ग के कारण श्रीहरि के आलिङ्गन को सूचित करने वाले अपने इन स्तनकलशों की ही बात को तुम सुनो ।। ५ ।।

अपि च—स्फुरितमिति । हे सखि ! अमुं कुचकुम्भं पृच्छ । प्रियकरस्पर्शलालस-कुचकुम्भचेष्टां ज्ञातुमिच्छां कुरु । भाविप्रियावेदकः कुचकलशोऽपि त्वां प्रेरयतीत्यर्थः । किम्भूतं कुचकुम्भम् ? स्फुरितम् । कुचस्फुरणं प्रियसङ्गममावेदयतीति सामुद्रिकज्ञाः । कस्मादिव ? कामोर्मिवशादिव । किम्भूतम् ? सूचितः कथितो हरेः परिरम्भो येन । अपि किम्भूतम् ? मनोहरो हार एव विमलजलधारा यत्र । शकुनकलशेऽपि तरङ्गवशात्सूचितप्रियप्राप्तिर्भवति । विमलजलधारोऽपि, खण्डश्लेषालङ्कारः ।। ५ ।।

भावप्रकाशिका—इस पद्य में सखी कहती है कि हे राधिके ! तुम मेरी बातों को भले न मानो, किन्तु तुम अपने इन स्तनकलशरूपी शकुनकलशों की तो भाषा समझो । तुम्हारे दोनों स्तन मानो काम के आवेश से स्फुरित हो रहे हैं । इससे स्पष्ट रूप से इनकी अपने प्रियतम के कर-स्पर्श की लालसा प्रतीत होती है; क्योंकि जब नायिका में स्तनों में स्फुरण होता है तो उससे उसको अपने प्रियतम के संयोग की सूचना मिलती है । अतएव ये तुम्हें श्रीहरि के आलिङ्गन की सूचना दे रहे हैं । उस स्तनरूपी शकुनकलश पर विद्यमान स्वच्छ हार स्वच्छ जल की धारा के समान है । शकुन कलश में जलधारा की विद्यमानता प्रियतम की प्राप्ति को सूचित करती है । इस पद्य में खण्डश्लेषालङ्कार है ।। ५ ।।

अधिगतमखिलसखीभिरिदं तव वपुरपि रतिरणसज्जम् ।
चण्डि ! रसितरशनारवडिण्डिममभिसर सरसमलज्जम् ।। मुग्धे० ।। ६ ।।

अनुवाद—हे चण्डि ! सखियों ने यह जान लिया है कि तुम्हारा यह शरीर रति रूपी समर (कामक्रीड़ा) के लिए सजा हुआ है, अतएव अनुरागपूर्वक बिना किसी लज्जा के बजती हुई करधनी की आवाज रूपी डिण्डिम घोष को करते हुए तुम अभिसरण करो ।। ६ ।।

अपि च—अधिगतमिति । हे चण्डि ! सखीसकाशाल्लज्जारहितं यथा स्यात्तथा अभिसर । अर्थात्कृष्णवसतिम् । यतोऽखिलसखीभिरिदमधिगतं ज्ञातम् । इदमिति किम् ? तव वपुरतीव रतिरणाय विहितसामग्रीकं वर्तते इति सखीनामग्रे वपुषैव निवेदितम् । अतो लज्जां मा कुरु । किम्भूतं वपुः ? रसितो रशनावलिरेव डिण्डिमः पणववाद्यविशेषो येन । अपि च किम्भूतम् ? सरसं सरागम् । अत एव रणोद्यतायाश्चण्डीति विशेषणमुचितम् ।। ६ ।।

भावप्रकाशिका—इस पद्य में सखी श्रीराधाजी से कहती है कि तुम्हें श्रीभगवान् के पास अभिसरण करने में किसी भी प्रकार की लज्जा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ कोई दूसरा तो है नहीं। सखियाँ ही हैं। सभी सखियों ने इस बात को अपनी तरह से जान लिया है कि तुम्हारा यह जो अलङ्कारों से समलंकृत शरीर है, वह रति रूपी रण (कामक्रीड़ा) के लिए सजा-धजा है। अर्थात् रतिक्रीड़ोपयीगी सम्पूर्ण सामग्री से सम्पन्न है। जिस तरह युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय अनेक प्रकार के वाद्य बजते हैं, उसी तरह से जब रतिरण के लिए तुम प्रस्थान करोगी तो उस समय तुम्हारी करधनी में लगे छोटे-छोटे घुंघरू बज उठेंगे। वही तुम्हारे लिए डिण्डिम घोष होगा। उस डिण्डिम घोष को करती हुई तुम भगवान् श्रीकृष्ण के सन्निकट अनुरागपूर्वक अभिसरण करो ।। ६ ।।

स्मरशरसुभगनखेन सखीमवलम्ब्य करेण सलीलम् ।
चल वलयक्वणितैरवबोधय हरिमपि निगदितशीलम् ।। मुग्धे० ।। ७ ।।

अनुवाद—कामदेव के बाण (पुष्प) के समान नखों से युक्त हाथ से सखी को पकड़कर लीलापूर्वक चलो। प्रख्यात शीलवाले श्रीहरि को भी अपनी कङ्कण ध्वनि के द्वारा सूचित करो ॥ ७ ॥

अपि च—स्मरशरेति। हे सखि! करेण सखीमवलम्ब्य सलीलं चल। अपिश्चार्थे। च पुनः। निगदितशीलं निगदितं तव प्रतीक्षया सुघटं व्याख्यातं शीलं यस्य। अथवा—पूर्वपददोषत्वेन सखीभिज्ञानपरं निगदितं च तच्छीलं च भवत्याश्चरित्रं तत्। हरिमपि बोधयेति 'अपि' शब्दार्थः। किम्भूतेन? स्मरशरसुभगनखेन स्मरशरवत्पुष्पवत्सुभगा नखा यस्मिंस्तादृशेन ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में सखी श्रीराधाजी से कहती है कि कामदेव के बाण स्वरूप पुष्पों के समान मनोहर तुम्हारे हाथों के नख हैं। उस मनोहर हाथ से तुम अपनी सखी को पकड़कर लीलापूर्वक चलो। अन्य रणों में भी योद्धा शस्त्रास्त्रों को लेकर रण में जाते हैं। इस रतिरण में तो कामदेव के बाणभूत पुष्प के समान मनोहर नख ही तुम्हारे शस्त्रास्त्र हैं। जिस तरह कोई योद्धा अपने प्रतिकार को सूचित करके ही उसके साथ युद्ध करने में प्रवृत्त होता है, उसी तरह तुम भी अपनी कङ्कण की ध्वनि से अपने आने की सूचना तुम्हारी प्रतीक्षा करने वाले श्रीभगवान् को दे दो। पुनः उनके साथ रतिरण में प्रवृत्त होओ ।। ७ ।।

श्रीजयदेवभणितमधरीकृतहारमुदासितवामम् ।
हरिविनिहितमनसामधितिष्ठतु कण्ठतटीमविरामम् ।। मुग्धे० ।। ८ ।।

अनुवाद—अपने गुणों के द्वारा हार तथा रमणी को भी तिरस्कृत करने वाली श्रीजयदेव कवि कृत यह कविता श्रीभगवान् में अपने मन को लगाने वालों श्रीपराशर आदि मेरे सुहृद् वर्ग के कण्ठ को सुशोभित करे ॥ ८ ॥

अपि च—श्रीजयदेवेति। इदं श्रीजयदेवभणितं हरावारोपितमनसामविराममविच्छेदं कण्ठतटीमधितिष्ठति। अधरीकृतो हारो मुक्ताविग्रथितो येन। पक्षेऽधरीकृतो हारः युद्धं वचनं येन। पुनः किम्भूतम्? उदासितवामम्। उदासिता वामा स्त्री येन।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अथवा उदासितं हरिभक्तिप्रतीतं वचनं येन। वा उदासितं निराकृतमन्यदपि सुन्दरं येन इति। हारनारीसुन्दरादीनां परिहारेणेदमेवैकं कण्ठे धारणीयमित्यर्थः। तथा च सङ्गीतराजे—'आदितालः प्रथमतः प्रतिमण्ठस्ततः परम्। चतुर्मात्राह्वमण्ठश्च तुर्यः स्यादड्डुतालकः॥ तालो वर्णयतिः पश्चान्नवमात्रिकमण्ठकः। निसारश्च तथा झम्पा द्रुतमण्ठश्च रूपकः॥ प्रतितालस्त्रिपुटक एकतालीति संज्ञया। त्रयोदश क्रमात्तालाः प्रतितालं पदानि च॥ यथा शोभालप्तियुञ्जि तावन्त्येव ततः परम्। काहली तुण्डकिन्यौ च मुक्ता च शृङ्गशङ्खकौ॥ पटहश्च हुडुक्कं च मुरजः करटापि च। कुण्डा च डमरूढक्का पाटा एतत्समुद्भवाः॥ निःसारौ पटहो ढक्का मर्दलस्त्रिवली तथा। करटेति तथैतस्यां प्रधानाक्षरयोजना॥ एकताल्या ढक्कखौ च त्रिवली दुन्दुभिस्तथा। घटश्चतुर्वर्ण्यकः स्यादधिका पाठसन्ततिः॥ प्रतितालं प्रयोगोऽपि रागो नन्दो निगद्यते। शृङ्गारो विप्रलम्भाख्यो रस उत्तमनायकः॥ दूतीसंवादकथनं नायिकायामिहेष्यते। एतत्स्याल्लक्षणं यच्च तालराजिरसः स्मृतः॥ प्रबन्धः कुम्भभूपेन हरिप्रवणचेतसा॥ इति श्रीहरितालराजिजलधरविलसितनामा विंशतितमः प्रबन्धः॥ ८॥

भावप्रकाशिका—इस प्रबन्ध के अन्तिम पद्य में श्रीजयदेव कवि कह रहे हैं कि मेरे द्वारा प्रणीत यह कविता अपने गुणों के कारण हार को भी तिरस्कृत करने वाली है तथा रमणी के प्रति भी उदासीन बना देने वाली है। अतएव जिन पराशर आदि श्रीवैष्णवों का मन श्रीभगवान् में लगा हुआ है, वे लोग इस कविता को अपने गले में धारण करेंगे, हार को नहीं। इस कविता को ही अपने गले लगायेंगे, किसी रमणी को नहीं।

यद्यपि हार तथा रमणी भी कण्ठ को समलंकृत करते हैं, किन्तु वे सभी के कण्ठ को नहीं समलंकृत करते अपितु रागियों के ही। किञ्च सभी काल में कण्ठ को नहीं समलंकृत करते अपितु तारुण्यावस्था में ही। किन्तु श्रीजयदेव कवि कृत यह कविता तो श्रीभगवान् विषयक होने के कारण सभी के कण्ठ को समलंकृत करती है, तथा सभी अवस्थाओं में समलंकृत करती है।

इस प्रबन्ध का नाम श्रीहरितालराजिजलधरविलसित है। इसी पद्य के साथ यह प्रबन्ध सम्पूर्ण हो गया॥ ८॥

सा मां द्रक्ष्यति वक्ष्यति स्मरकथां प्रत्यङ्गमालिङ्गनैः
प्रीतिं यास्यति रंस्यते सखि! समागत्येति चिन्ताकुलः।
स त्वां पश्यति वेपते पुलकयत्यानन्दति स्विद्यति
प्रत्युद्गच्छति मूर्च्छति स्थिरतमःपुञ्जे निकुञ्जे प्रियः॥ २॥

अनुवाद—हे सखि! तुम्हारे प्रियतम श्रीकृष्ण घने अन्धकारसमूह में बैठे हुए सोचते हैं कि श्रीराधा आकर मुझसे मिलेगी, कामकेलि की बातें करेगी, अङ्ग-प्रत्यङ्ग का आलिङ्गन करके प्रसन्न होएगी तथा आकर रमण करेगी। इस प्रकार की चिन्ता से व्याकुल वे तुमको देखते हैं, काँपते हैं, रोमाञ्चित होते हैं, आनन्दित होते हैं, पसीने-पसीने हो जाते हैं, उठकर खड़े होते और मूर्च्छित हो जाते हैं॥ २॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदानीं तच्चेष्टाकथनव्याजेन गन्तं व्याकुलयति—सा मामिति । हे सखि ! प्रियः कृष्णो निकुञ्जे भवत्या अपेक्षयेत्येवं कुर्वन्नास्ते । किम्भूते निकुञ्जे ? स्थिरतमःपुञ्जे स्थिरान्धकारचये । इतीति किम् ? सा प्रिया समागत्य मां द्रक्ष्यतीति चिन्ताकुलो भवति, दूरं च पश्यति । एतावता हि सात्त्विकभावौ स्तम्भवैवर्ण्ये सञ्जातौ भवत इति सूचितम् । चिन्तया स्तम्भं दूरदर्शनेन वैवर्ण्यमाप्नोति । दृष्ट्वा च स्मरकथां वक्ष्यतीति वेपते पुलकयति च । एवं द्वावपरौ सात्त्विकौ वेपथू रोमाञ्चश्चेति । कथाः कृत्वा प्रत्यङ्गमालिङ्गनैः प्रीतिं यास्यतीत्यानन्दति आनन्दाश्रु मुञ्चति स्विद्यति च । एवमश्रुस्वेदावुक्तौ । आलिङ्ग्य च नानारतोपचारै रंस्यते । चिन्तया आह्वानाशक्तत्वे प्रत्युद्गच्छति । त्वदलाभे मूर्च्छति च । एवं स्वरभङ्गप्रलयौ दर्शितौ । एवं स कृष्णस्त्वदभिकाङ्क्षयाऽष्टावपि सात्त्विकान्भावाननुभवन्नास्ते । प्रत्यङ्गालिङ्गनेन स्थितालिङ्गनं वृक्षाधिरूढमुक्तं भवति । तल्लक्षणं यथा—'रमणचरणमेकेनाङ्घ्रिणाक्रम्य खिन्नं श्वसितमपरपादेनाश्रयन्ती तदूरुम् । निजमथ भुजमेनं प्राञ्चयन्ती तदंसं तरुमिव कमितारं चुम्बनार्थाधिरोढुम् ॥ यदभिलषति नारी तच्च वृक्षाधिरूढम् ॥' शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । दीपकमलङ्कारः ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी श्रीराधाजी को प्रोत्साहित करती हुई कहती है कि हे सखि ! निकुञ्ज में श्रीभगवान् तुम्हारी प्रतीक्षा में घने अन्धकार में बैठे हैं तथा नाना प्रकार की शृङ्गारिक चेष्टाएँ कर रहे हैं । वे सोचते हैं कि श्रीराधा यहाँ आकर मुझसे मिलेगी; यह सोचकर चिन्ता से व्याकुल वे तुम्हें दूर तक देखते हैं कि कहीं श्रीराधा आ तो नहीं रही है । इन दोनों क्रियाओं के द्वारा सखी ने श्रीभगवान् के स्तम्भ तथा वैवर्ण्य नामक दो सात्त्विक भावों का वर्णन किया है । चिन्ता के द्वारा उनके स्तम्भ को तथा दूरदर्शन के द्वारा वैवर्ण्य नामक भाव को सखी ने बतलाया है ।

श्रीराधा मुझसे मिलकर कामकेलि की बातें करेगी; यह सोचकर वे काँपने लगते हैं तथा रोमाञ्चित हो जाते हैं । इस प्रकार से सखी ने श्रीभगवान् के वेपथु तथा रोमाञ्च नामक दो सात्त्विक भावों को बतलाया ।

कामकेलि की बातें करने के बाद श्रीराधा प्रत्येक अङ्गों का बार-बार आलिङ्गन करके आनन्दानुभव करेगी—यह सोचकर श्रीभगवान् आनन्दित होते हैं, आनन्दाश्रु बहाते हैं तथा पसीने-पसीने हो जाते हैं । इस तरह श्रीभगवान् के अश्रु तथा स्वेद नामक दो सात्त्विक भाव कहे गये हैं ।

श्रीराधा मेरा आलिङ्गन करके अनेक प्रकार की रति-क्रीड़ाओं से मेरे साथ रमण करेगी—इस प्रकार की चिन्ता करते हुए बुलाने में असमर्थ होने के कारण वे कुछ आगे बढ़ आते हैं, किन्तु जब तुम नहीं मिलती हो तो मूर्च्छित हो जाते हैं । इस प्रकार सखी ने श्रीभगवान् के स्वरभङ्ग तथा प्रलय नामक दो सात्त्विक भावों को बतलाया है ।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा दीपक अलङ्कार हैं ॥ २ ॥

अक्ष्णोर्निक्षिपदञ्जनं श्रवणयोस्तापिच्छगुच्छावलीं
मूर्ध्नि श्यामसरोजदामकुचयोः कस्तूरिकापत्रकम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धूर्तानामभिसारसम्भ्रमजुषां विष्वङ्निकुञ्जे सखि !
ध्वान्तं नीलनिचोलचारु सुदृशां प्रत्यङ्गमालिङ्गति ॥ ३ ॥

अनुवाद—हे सखि ! निकुञ्ज में सुन्दरियों की आँखों में अञ्जन लगाते हुए, कानों में तमाल गुच्छ लगाते हुए, बालों में नीलकमल की माला पहनाते हुए, स्तनों पर कस्तूरी पत्र की रचना करते हुए, काली कञ्चुकी के समान मनोहर अन्धकार धूर्तों के साथ अभिसार के उत्साह से युक्त सुन्दरियों के प्रत्येक अङ्ग का आलिङ्गन करता है ॥ ३ ॥

इदानीमभिसारिकासमयमाह—अक्ष्णोरिति । हे सखि ! विष्वक् चतुर्दिक्षु नीलप्रच्छदपटसदृग्ध्वान्तं सुदृशः प्रत्यङ्गमालिङ्गति । नीलप्रच्छदपटवदाच्छाद्य अदृश्यां करोतीत्यर्थः । किं कुर्वन् ? धूर्तानां मायाविनामभिसारे सम्भ्रमं वेगं भजन्तीनामुत्कोचमिवाक्ष्णोरञ्जनं निक्षिपत् । एतदेतत्कुर्वंस्तदाह—अपि च—कुचयोः कस्तूरिकापत्रावलिरचनाविशेषमिव निक्षिपत् । अत्र 'धूर्ता'ग्रहणेन निक्षेप औचित्यमावहति । यतो मायाविनो माययैव साध्याः । अत्र च क्रमेण तमसो वृद्धिर्ज्ञेया । पूर्वं प्रादुर्भावेऽक्ष्णोरञ्जनम्, किञ्चिद्वृद्धे कर्णाभरणाच्छादनम्, तत एव प्रवृद्धे शिरोमुकुटवृत्ति । ईषदापरिसमासेः कुचयोर्हारादिलोपः । क्रमेण प्रवृद्धं सत्सर्वशरीरं व्याप्य वर्तत इति क्रमवृद्धिर्दर्शिता । अत्र 'धूर्त'ग्रहणेन ता अपश्यन्तो भवतीं न कस्यचिदग्रे कथयिष्यन्तीति निःशङ्कं व्रज । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । यथासङ्ख्यमलङ्कारः ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में सखी कहती है कि हे सखि ! अपने को अलंकृत करने में अधिक समय नहीं लगाओ । धूर्त नायकों के साथ अभिसार के उत्साह से युक्त अभिसारिकाओं के प्रत्येक अङ्गों का चारों ओर से आलिङ्गन अन्धकार ही पैदा करता है । वह अभिसारिकाओं के लिए उत्तम नीले वस्त्र के समान मनोहर होता है । नीला वस्त्र धारण करके अभिसारिकाएँ अपने प्रियतम से मिलने के लिए अन्धेरे में जाती हैं, जिससे कि उनको जाते हुए कोई देख नहीं पाता है । नीले वस्त्र के ही समान नीलवर्ण का होने के कारण अन्धकार भी अभिसारिकाओं को प्रिय होता है । वह अन्धकार धूर्तों के साथ रमण करने के लिए उत्सुक अभिसारिकाओं के प्रत्येक अङ्ग का निकुञ्ज में हर ओर से आलिङ्गन करता है । वह उनकी आँखों में अञ्जन लगाने का भी कार्य करता है । जिस प्रकार अञ्जन काला होता है उसी प्रकार वह भी काला होता है । अभिसारिकाओं के कानों में लगे हुए कृष्णवर्ण के तमालपत्र का भी काम वह करता है । अभिसारिकाएँ नीलकमल की माला धारण करती हैं, नीलवर्ण का अन्धकार भी उनके नीलकमल की माला का काम किया करता है । नायिकाओं के स्तन पर बने नीलवर्ण के कस्तूरी पत्रक का भी काम अन्धकार कर लेता है । इस प्रकार वह अभिसारिकाओं के प्रत्येक अङ्ग का आलिङ्गन करते हुए उन्हें अलंकृत कर देता है ।

इस श्लोक में यथासंख्य अलङ्कार तथा शार्दूलविक्रीड़ित वृत्त है ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काश्मीरगौरवपुषामभिसारिकाणा-
माबद्धरेखमभितो रुचिमञ्जरीभिः ।
एतत्तमालदलनीलतमं तमिस्रं
तत्प्रेमहेमनिकषोपलतां तनोति ॥ ४ ॥

अनुवाद—केसर के समान गोरे बदन वाली अभिसारिका समूह के दोनों तरफ अपनी कान्तिरूपी मञ्जरी के द्वारा तमाल पत्र के समान नीलवर्ण का यह अन्धकार श्रीभगवान् के सुस्नेहरूपी सुवर्ण की कसौटी के समान प्रतीत होता है ॥ ४ ॥

इदानीं तमस्यपि त्वामेव प्रतीक्षत इत्याह—काश्मीरेति । हे सखि ! एतत्तमिस्रं तस्य श्रीकृष्णस्य त्वयि यत्प्रेम तदेव हेम तन्निकषोपलतां तनोति । तमस्यपि बह्वीनामभिसारिकाणां प्राप्त्यवसरेऽपि त्वय्येव तस्य प्रेमेति निकषोपलहेमपरीक्षाश्मसाम्यम् । किम्भूतं तमिस्रम् ? अभितो रुचिमञ्जरीभिः कुङ्कुमगौरवपुषां स्वैरिणीनामाबद्धा रेखा आभोगो विस्तारो येन । किम्भूतं तमिस्रम् ? तमालदलनीलतमम् । एतावता तमसोऽतीव प्रवृद्धावभिसरेति प्रेरणम् । वसन्ततिलका वृत्तम् । अत्रोपमालङ्कारः ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—सखी कहती है कि इस अन्धेरे में केसर के समान गोरे बदन वाली अभिसारिकाएँ अपने प्रियतमों से मिलने के लिए जा रही हैं । उनके चारों तरफ विद्यमान अन्धकार तमालपत्र के समान नीला-नीला छाया हुआ है । किन्तु यह अन्धकार उसी तरह से प्रतीत होता है, जैसे सुवर्णपट्टिका के ऊपर नीली-नीली कसौटी हो । यह उसी प्रकार से है, जैसे श्रीभगवान् के तुम्हारे प्रति प्रेमरूपी सुवर्ण के ऊपर कसौटी हो । अर्थात् अनेक अभिसारिकाओं के रहने पर भी श्रीभगवान् का स्नेह तुम्हारे प्रति ही है । अतएव तुम शीघ्र जाकर श्रीभगवान् से संकेत स्थल में मिलो ॥ ४ ॥

इस श्लोक में उपमालङ्कार तथा वसन्ततिलका वृत्त है ।

हारावलीतरलकाञ्चनकाञ्चिदाम-
केयूरकङ्कणमणिद्युतिदीपितस्य ।
द्वारे निकुञ्जनिलयस्य हरिं निरीक्ष्य
व्रीडावतीमथ सखीमियमित्युवाच ॥ ५ ॥

अनुवाद—हारसमूह के बीच में विद्यमान मणि सुवर्णरचित करधनी, कुण्डल तथा कंगन में लगी मणियों की कान्ति से प्रकाशित निकुञ्ज गृह के द्वार पर विद्यमान श्रीहरि को देखकर लज्जित श्रीराधा से सखी ने कहा ॥ ५ ॥

इदानीं भावान्तरेण तं पुष्णाति—हारावलीति । इयं दूती राधां प्रति वक्ष्यमाणमुवाच । किं कृत्वा ? निकुञ्जनिलयस्य द्वारे हरिं निरीक्ष्य । किम्भूतां राधाम् ? व्रीडावतीम् । कामवतीनामपि युवतीनां प्रथमसङ्गमे लज्जा किमपि कामातिशयं विदधाति । किम्भूतस्य निलयस्य ? हारावल्यास्तरलो मध्यमणिः काञ्चनस्य काञ्ची मेखला दाम च

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मञ्जीरौ कङ्कणे च तेषु मणयः तेषां द्युत्या दीपितस्य। वसन्ततिलकावृत्तम्। अतिशयोक्तिरलङ्कारः ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—सखी द्वारा प्रोत्साहित किये जाने के पश्चात् श्रीराधा श्रीभगवान् से मिलने के लिए संकेतगृह में गयीं। वहाँ द्वार पर श्रीभगवान् पहले से ही विद्यमान थे। उनके हार, कुण्डल तथा कङ्कण आदि आभूषणों में जटित मणियों से वह निकुञ्ज-गृह देदीप्यमान था। श्रीराधा श्रीभगवान् को वहाँ पर विद्यमान देखकर लज्जित हो गयीं। उनके मन में हो रहा थां कि अभी-अभी मैंने श्रीभगवान् को न जाने क्या-क्या कहा है? इस प्रकार से लज्जित होती हुई श्रीराधाजी को देखकर सखी ने उनसे कहा। सखी की बातों का वर्णन इक्कीसवें प्रबन्ध में किया गया है।

इस श्लोक में वसन्ततिलका वृत्त तथा अतिशयोक्ति अलङ्कार है ॥ ५ ॥

वराडीरागरूपकतालाभ्यां गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ २१ ॥

अनुवाद—इस गीतगोविन्द काव्य का इक्कीसवाँ प्रबन्ध बराडीराग तथा रूपकताल से गाया जाता है।

मञ्जुतरकुञ्जतलकेलिसदने
विलस रतिरभसहसितवदने! ॥ १ ॥
प्रविश राधे! माधवसमीपमिह ॥ ध्रुवपदम् ॥

अनुवाद—हे रतिजन्य उत्साह से मुसकुराने वाली श्रीराधे! इस निकुञ्च में माधव के समीप प्रवेश करके विलास करो ॥ १ ॥

तदेव सखीवाक्यं विवृणोति—मञ्जुतरेति। अत्राष्टपद्यामुद्ग्राहापेक्षया ध्रुवस्य बाहुल्यम्। तत्रापि च प्रतिपादमन्तिमं खण्डं पदान्तरापेक्षया नवं नवमेवेति बोद्धव्यम्। तत्रापि राधाविशेषणानि सर्वाण्यनुभावत्वेन बोद्धव्यानि, स्थानविशेषणानि च विभावत्वेनेति। प्रविशेत्यादि। हे राधे! माधवसमीपं प्रविश। इह निकुञ्जे विलस गमनागमनादिचेष्टाः कुरु। किम्भूते राधे? रतिरभसेन रतिहर्षेण हसितं वदनं यस्याः। एतद्ध्रुवस्थानीयम्। तदनुस्यूतं त्वमेवपदमिहेत्यस्य विशेषणम्। किम्भूते? मञ्जुतरं मनोहरं यत्कुञ्जतलं कुञ्जस्याधःप्रदेशस्तदेव केलिसदनं यत्र ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में सखी कह रही है कि हे राधे! तुम तो इस समय प्रसन्न हो तथा रतिकेलि करने के उत्साह में भर कर मुसकरा रही हो। यह जो मनोहर निकुञ्ज है उसी के भीतर केलिगृह बना हुआ है। तुम उसी में श्रीभगवान् के सन्निकट में प्रवेश करो तथा विलास करो ॥ १ ॥

नवभवदशोकदलशयनसारे
विलस कुचकलशतरलहारे!। प्रविश० ॥ २ ॥

अनुवाद—हे स्तनकलशों के ऊपर सुशोभित चञ्चल हारवाली श्रीराधे! नवीन उत्पन्न अशोक दलों की जिसमें प्रधानता है, ऐसी शय्या पर तुम विलास करो ॥ २ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपि च—नवभवेति । हे कुचकलशतरलहारे ! कुचकलशे तरलश्चलो हारो यस्यास्तस्याः सम्बुद्धिः । इहेत्यस्य विशेषणम् । किम्भूते इह ? नवं भवद्यदशोकदलानां शयनं तेन सारमुत्कृष्टं तस्मिन् ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—तुम प्रवेश करके इस निकुञ्ज की उस किसलय शय्या पर श्रीमाधव के साथ विलास करो जिसमें अशोक के नये-नये पत्तों की प्रधानता है। देखो तुम्हारे स्तनकलशों के ऊपर चञ्चल हार लहरा रहा है ॥ २ ॥

कुसुमचयरचितशुचिवासगेहे ।
विलस कुसुमसुकुमारदेहे । प्रविश० ॥ ३ ॥

अनुवाद—हे कुसुम से भी सुकुमार देह वाली श्रीराधे ! पुष्पसमूह से विरचित पवित्र विलासगृह के भीतर तुम विलास करो ॥ ३ ॥

अपि च—कुसुमेति । हे कुसुमसुकुमारदेहे ! इह विलस । किम्भूते इह ? कुसुमानां चयस्तेन रुचिरं शुचि च वासार्थं गेहं यस्मिन्निकुञ्जतले । अत्र सर्वत्र एकैकं राधाविशेषणं एकैकं निकुञ्जविशेषणम् ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—सखी कहती है कि हे श्रीराधे ! तुम्हारा शरीर पुष्प से भी अधिक कोमल है। अतएव तुम इस लतानिकुञ्ज में प्रवेश करो। यह लतानिकुञ्ज पुष्पसमूह से विरचित है। उसी के भीतर तुम श्रीकृष्ण के साथ विलास करो ॥ ३ ॥

मृदुचलमलयपवनसुरभिशीते ।
विलस मदनशरनिकरभीते । प्रविश० ॥ ४ ॥

अनुवाद—हे कामदेव के बाणसमूह से भयभीत श्रीराधे ! कोमल तथा चञ्चल मलय समीर से सुगन्धित तथा शीतल बने इस लतानिकुञ्ज के भीतर प्रवेश करके विलास करो ॥ ४ ॥

अपि च—मृदुचलेति । हे राधे ! इह विलस । किम्भूते राधे ? मदनशरनिकराद्भीतिर्भयं यस्याः तस्याः सम्बुद्धिः । इह मृदु यथा स्यात्तथा चलो यो मलयपवनस्तेन सुरभि च तच्छीतं च मृदुपवनेन सुरभिशीतम् ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—सखी कहती है कि हे राधे ! तुम काम के बाणसमूह से भयभीत हो गयी हो, अतएव तुम इस लतानिकुञ्ज में प्रवेश करो। मलयानिल धीरे-धीरे चल रहा है। पुष्पों के बीच से होकर आने वाली तथा मृदुल स्पर्श वाली इस वायु के कारण यह लतानिकुञ्ज सुरभित तथा शीतल बना हुआ है। तुम उसी में श्रीभगवान् के साथ विलास करो ॥ ४ ॥

विततबहुवल्लिनवपल्लवघने
विलस चिरमलसपीनजघने ! । प्रविश० ॥ ५ ॥

अनुवाद—हे आलस्य युक्त तथा स्थूल जांघों वाली श्रीराधे ! तुम फैली हुई अनेक लताओं के नवीन पल्लवों से बने हुए इस लतानिकुञ्ज में दीर्घकाल तक विलास करो ॥ ५ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपि च—विततेति। हे राधे! इह चिरं विलस। किम्भूते राधे? अलसं पीनं जघनं यस्यास्तस्याः सम्बुद्धिः। किम्भूते इह? विततानि बहूनि वल्लीनां नवपल्लवानि तैर्घने ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—सखी कहती है कि हे राधे! तुम्हारी जंघाएँ आलस्य से युक्त तथा मोटी-मोटी हैं। इस निकुञ्ज की अनेक नवीन लताओं में नये-नये पल्लव निकल गये हैं जिनसे यह लतानिकुञ्ज घना हो गया है। इसके भीतर तुम श्रीकृष्ण के साथ दीर्घकाल पर्यन्त विलास करती रहो ॥ ५ ॥

मधुमुदितमधुपकुलकलितरावे।
विलस कुसुमशरसरसभावे। प्रविश० ॥ ६ ॥

अनुवाद—हे कामदेव में अनुराग युक्त भावनावाली श्रीराधे! जहाँ पर मधुमत्त भ्रमर गुञ्जन कर रहे हैं, उस निकुञ्ज में तुम विलास करो ॥ ६ ॥

अपि च—मधुमुदितेति। हे राधे! इह विलस। किम्भूते राधे? कुसुमशरे कामे रसो रागः साभिलाषो भावोऽभिप्रायो यस्यास्तस्याः सम्बुद्धिः। किम्भूते इह? मधुना मुदितं यन्मधुपकुलं तेन कलितो रावो गुञ्जारवो यत्र ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—सखी कहती है कि सखि श्रीराधे! तुम्हारा कुसुमशर (कामदेव) में अनुराग युक्त भाव है। तुम प्रवेश करके उस लतानिकुञ्ज में विलास करो, जहाँ पर मधुमत्त भ्रमरसमूह गुञ्जन कर रहा है ॥ ६ ॥

मधुरतरपिकनिकरनिनदमुखरे।
विलस दशनरुचिरुचिरशिखरे। प्रविश० ॥ ७ ॥

अनुवाद—हे दाँतों की कान्ति के समान कान्तिवाली मणि से सुशोभित श्रीराधे! कोकिलसमूह के अत्यन्त मधुर ध्वनि से मुखर बने लतानिकुञ्ज में तुम विलास करो ॥ ७ ॥

अपि च—मधुरतरेति। हे राधे! इह विलस। किम्भूते राधे? शुचीनि रुचिराणि दशनशिखराणि यस्यास्तस्याः सम्बुद्धिः। किम्भूते इह? मधुरतरो यः पिकनिकरस्य निनदस्तेन मुखरे ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—सखी कहती है कि तुम जिस मणि से समलंकृत हो उसकी कान्ति तुम्हारे दाँतों की कान्ति के समान अत्यन्त मनोहर है। इस प्रकार की तुम इस लतानिकुञ्ज में विलास करो, जहाँ पर कोकिल समूह अत्यन्त मनोहर पञ्चम स्वर आलाप रहा है ॥ ७ ॥

विहितपद्मावतीसुखसमाजे।
कुरु मुरारे! मङ्गलशतानि।
भणति जयदेवकविराजराजे। प्रविश० ॥ ८ ॥

अनुवाद—श्री पद्मावती जी के लिए सुखप्रद प्रासाद बनाने वाले कविराज राज

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयदेव कवि की कविता से प्रसन्न होकर हे भगवन् आप जगत् का अनन्तानन्त कल्याण करें ॥ ८॥

अपि च—विहितेति । इदानीमष्टपदीं परमेश्वरे समर्पयन्नाह—हे मुरारे ! जयदेवकविराजे मङ्गलशतानि कुरु । किम्भूते ? विहितं कृतं पद्मावत्या लक्ष्म्याः सुखं सुखरूपं समाजं स्थानं प्रासादो येन । किन्दुबिल्वे जयदेवकारितो महालक्ष्म्याः प्रासादोऽस्तीति प्रसिद्धिः । लक्ष्मीभक्त्या हरिस्तुष्यतीति ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—लक्ष्मीजी का एक नाम पद्मावती है। इस पद्मावती देवी के आराधक हैं श्रीजयदेव कवि । श्रीजयदेव कवि की पत्नी का नाम भी पद्मावती है । ये कविराजों में श्रेष्ठ हैं । कवि श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन् ! मैंने श्रीपद्मावती देवी की प्रासाद के भीतर प्रतिष्ठा की है । मैंने आपकी प्रसन्नता के लिए यह कविता की है । उससे प्रसन्न होकर आप हमारा अनन्तानन्त कल्याण करें ॥ ८॥

त्वां चित्तेन चिरं वहन्नयमतिश्रान्तो भृशं तापितः
कन्दर्पेण च पातुमिच्छति सुधासम्बाधबिम्बाधरम् ।
अस्याङ्कं तदलङ्कुरु क्षणमिह भ्रूक्षेपलक्ष्मीलव-
क्रीते दास इवोपसेवितपदाम्भोजे कुतः सम्भ्रमः ? ॥ १ ॥

अनुवाद—हे श्रीराधे ! तुमको हृदय में दीर्घकाल से धारण करने के कारण श्रीभगवान् अत्यन्त शान्त हो चुके हैं । इन्हें कामदेव ने अत्यन्त संतप्त किया है । ये तुम्हारे अमृत के समान लाल-लाल होठों का पान करना चाहते हैं; अतएव शीघ्र ही कटाक्ष विक्षेप रूपी मूल्य के द्वारा क्रीत दास के समान तुम्हारे चरणों की सेवा करने वाले श्रीहरि के अङ्क को समलंकृत करो, इसमें भय की क्या बात है ? ।। १ ॥

इदानीं त्रपानिरसनायाह—त्वामिति । हे राधे ! अयं श्रीकृष्णस्तव सुधासम्बाधं सुधायाः सङ्कटं बिम्बाधरं पातुमिच्छति । किम्भूतोऽयम् ? त्वामेवंविधां दुर्वहां चित्तेन वहन्नतिश्रान्तः श्रमं प्राप्तः अत एव भृशं तापितः । यतः यः श्रान्तस्तप्तश्च भवति स तदुपशान्त्यै सुधाविपानं कर्तुमिच्छति । तत्तस्मादस्य मुरारेरङ्कं क्षणमलङ्कुरु । कथं मयास्य तादृशस्य महानुभावस्यैतत्कर्तुं युज्यत इति वदसि चेदित्याशङ्क्याह—इह तावत्सम्भ्रम आदरः कुतः ? किम्भूते इह ? भ्रूक्षेप एव यो लक्ष्मीलवस्तेन क्रीते । एतावता मूल्येन गृहीते आदरो न कर्तव्य इति । अत एव दास इव । उपसेवितं तव पदाम्भोजं येन तस्मिन् । शार्दूलविक्रीडितम् । रूपकोत्प्रेक्षे अलङ्कृती ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—सखी श्रीराधा की लज्जा को दूर करती हुई कहती है, कि श्रीभगवान् ने तुम्हें दीर्घकाल से अपने हृदय में वहन किया है । जिस प्रकार कोई व्यक्ति किसी भार युक्त वस्तु को ढोते-ढोते थक जाता हैं, उसी प्रकार श्रीभगवान् भी हृदय में तुम्हें वहन करते-करते थक गये हैं । इन्हें काम ने तुम्हारे वियोग में बहुत संतप्त किया है । अब ये शान्ति पाना चाहते हैं । इसके लिए वे चाहते हैं कि तुम्हारे अमृत के समान स्वादु अधरबिम्ब का पान करें । तुमने जो इनके ऊपर प्रेमपूर्वक कटाक्षपात

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किया है, उसके मूल्य से ये तुम्हारे क्रीत दास हो गये हैं। जिस तरह कोई दास अपने स्वामी के चरणों की सेवा करता है; उसी तरह से ये जब तुम्हारे चरणों की सेवा कर रहे हों, उस समय तुम बिना किसी संकोच के इनके वक्ष:स्थल को अलंकृत करना। अर्थात् इनकी गोद में बैठना। इसमें कोई भी लज्जा करने की बात नहीं है। इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलङ्कार हैं ॥ १ ॥

सा ससाध्वससानन्दं गोविन्दे लोललोचना ।
सिञ्जानमञ्जुमञ्जीरं प्रविवेशाभिवेशनम् ॥ २ ॥

अनुवाद—श्रीराधा ने अपने चञ्चल नेत्रों से गोविन्द को देखते हुए लज्जा एवं आनन्दपूर्वक उस लता केलिगृह में प्रवेश किया। उस समय उनके पैरों के नूपुर आवाज कर रहे थे ॥ २ ॥

इदानीं त्रपानाशकृदुचितं कर्माह—सेति। सा राधा अभिवेशनं रतायोपकल्पित-केलिगृहं प्रविवेश। कथं यथा स्यात्तथा ? सिञ्जानौ सशब्दौ मञ्जुमञ्जीरौ यत्र तद्यथा स्यात्। किम्भूता सा ? ससाध्वसं च सानन्दं च ससाध्वससानन्दं यथा स्यात्तथा। गोविन्दे लोले सतृष्णे लोचने च यस्याः सा। साध्वसेन चले। आनन्देन साभिलाषे। अत्र ससाध्वसानन्दमिति एकेनैव 'सह'शब्देन कृते प्रत्येकमुपादानं चलसतृष्णयोः पृथग्योगार्थम्। अनुष्टुप्पथ्यावृत्तम् ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—रतिक्रीडा के लिए बनाये गये लतानिकुञ्ज में अपनी सखी के के द्वारा समझाये जाने के पश्चात् श्रीराधा ने प्रवेश किया। उस समय श्रीराधा ने श्रीभगवान् को अपने चञ्चल नेत्रों से लज्जा तथा अभिलाषापूर्वक देखा। उस समय उसके पैरों में विद्यमान नूपुर आवाज कर रहे थे। इस श्लोक में अनुष्टुप् पथ्यावृत्त है ॥ २ ॥

वराडीरागयतितालाभ्यां गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ २२ ॥

अनुवाद—गीतगोविन्द काव्य का यह बाइसवाँ प्रबन्ध वराडी राग तथा यति ताल से गाया जाता है।

राधावदनविलोकनविकसितविविधविकारविभङ्गम् ।
जलनिधिमिव विधुमण्डलदर्शनतरलिततुङ्गतरङ्गम् ॥ १ ॥
हरिमेकरसं चिरमभिलषितविलासम् ।
सा ददर्श गुरुहर्षवशंवदवदनमनङ्गनिवासम् ॥ ध्रुवपदम् ॥

अनुवाद—केवल राधा विषयक अनुराग से युक्त तथा दीर्घकाल से श्रीराधा के साथ विलास की अभिलाषा करने वाले श्रीराधा के महान् दर्शनजन्य हर्ष से हर्षित मुखवाले तथा कामदेव के निवासस्थानभूत श्रीराधा के मुख को देखने से प्रसन्न एवं अनेक प्रकार के सात्त्विक भावों से युक्त; जिस तरह से चन्द्रमण्डल को देखकर समुद्र चञ्चल हो जाता है तथा उसमें उत्ताल तरंगें उठने लगती हैं, उसी तरह से प्रसन्न श्रीभगवान् को राधा ने देखा ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आर्योक्तमेव विवृणोति—राधावदनेति। तत्र पूर्वं ध्रुवपदम्। हरिमेकरसमिति। सा राधा हरिं वदति स्म भोक्तृत्वेन हरिस्वरूपेण संवादं प्राप्नोति स्म। किम्भूतं हरिम्? एकरसमेक एव राधाविषये रसो रागो यस्य। पुनः किम्भूतम्? चिरमभिलषितो राधासम्बन्धी विलासो येन। पुनः किम्भूतम्? गुरुर्यो राधाया आगमननिमित्तो हर्षस्तस्य वशंवदं वशं वदनं यस्य। पुनः किम्भूतम्? अनङ्गनिवासं कामाश्रयम्। इति ध्रुवः॥ अथ पदानि। किम्भूतं हरिम्? राधावदनविलोकनेन विकसिता उल्लसिता विविधा विकाराणां सात्त्विकभावानां विभङ्गा यत्र। एतेन राधामुखदर्शनावक्रममेव स्तम्भादयः प्रादुर्भूता इत्यर्थः। कमिव? जलनिधिमिव। किम्भूतं जलनिधिम्? विधुमण्डलदर्शनेन तरलिता ललिता मनोहरास्तरङ्गा यत्र। अत्र 'मण्डल'ग्रहणं समुद्रवृद्धिहेतुत्वं ज्ञापयति॥ १॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधा ने केलिनिकुञ्ज में प्रवेश करके श्रीहरि को प्रेमपूर्वक देखा। इस गीत में श्रीहरि में अनेक विशेषताएँ बतलायी गयी हैं। श्रीहरि एक रस थे। अर्थात् उनके मन में प्रधान रूप से केवल शृङ्गार रस अपनी प्रधानता बना पाया। उनके लिए श्रीराधा का केलिनिकुञ्ज में आना एक बहुत बड़ी बात थी। श्रीराधा के आने से उनके मुखमण्डल पर प्रसन्नता प्रकाशित हो रही थी। लग रहा था जैसे उनमें कामदेव निवास कर रहे थे और दीर्घकाल से श्रीराधा के साथ विलास करने की अभिलाषा कर रहे थे। उनके मुखमण्डल पर श्रीराधाजी को देखने मात्र से अनेक प्रकार के सात्त्विक भाव प्रकाशित हो रहे थे। जिस तरह से पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखने मात्र से सागर हर्ष से आप्यायित हो जाता है और उसमें ऊँची-ऊँची तरंगें उठने लगती हैं, उसी प्रकार से श्रीराधा के मुखमण्डल को देखने मात्र से श्रीभगवान् के मन में अनेक प्रकार की कामभावनाएँ आविष्कृत होने लगी थीं॥ १॥

हारममलतरतारमुरसि दधतं परिरम्य विदूरम्।
स्फुटतरफेनकदम्बकरम्बितमिव यमुनाजलपूरम्॥ हरि०॥ २॥

अनुवाद—श्रीहरि के वक्षःस्थल पर स्वच्छ हार सुशोभित हो रहा था, जो उनके हृदय का बार-बार आलिङ्गन कर रहा था। ऐसा लग रहा था कि जैसे यमुना नदी का जल स्पष्ट रूप से विद्यमान फेनसमूह से मिश्रित हो गया हो॥ २॥

अपि च—हारमिति। किम्भूतं हरिम्? उरसि हारं दधतम्। किम्भूतं हारम्? अमलतरतां ऋच्छतीति अमलतरतारम्। अथवा अमलतरा निर्दोषास्तारा निर्मलमौक्तिकानि यत्र। किं कृत्वा? विदूरं दीर्घं विलम्ब्य विलम्बं कृत्वा। कमिव? यमुनाजले पूरमिव। किम्भूतं पूरम्? स्फुटतरा ये फेनास्तेन मिश्रितम्। अनेन स्वेदाख्यसात्त्विकभावोत्पत्तिर्दर्शिता। अनु च हारदर्शनं च तस्य श्यामव्यूढोरसि गौरी त्वं स्फुरन्ती दीप्तिमेष्यसीति प्रोत्साहनम्। पौरुषायितरतविशेषश्च। फेनकदम्बेन सुरतश्रमजनिता उदबिन्दवश्च दर्शिताः। यमुनाजलपूरोपमानेन समद्युतिश्च॥ २॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में कवि श्रीभगवान् की शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीभगवान् के वक्षःस्थल पर स्वच्छ मोतियों की माला सुशोभित हो रही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थी, जो श्रीभगवान् के वक्ष:स्थल का बार-बार आलिङ्गन कर रही थी और लग रहा था जैसे यमुना नदी का जल फेनों से सुशोभित हो रहा हो। श्रीभगवान् का वक्ष:स्थल नील वर्ण का था, जिसकी समता यमुना के नीलवर्ण के जल से बतलायी गयी है तथा उस पर सुशोभित होने वाली मोतियों की माला की समता यमुना जल में उठे फेनों से। दोनों की प्रतीति ऐसी हो रही थी जैसे यमुना के जल में फेन मिल गया हो। इससे श्रीभगवान् के भीतर स्वेद नामक सात्त्विक भाव के आविष्कार को भी सूचित किया गया है ॥ २ ॥

श्यामलमृदुलकलेवरमण्डलमधिगतगौरदुकूलम्।
नीलनलिनमिव पीतपरागपटलभरवलयितमूलम् ॥ हरि० ॥ ३ ॥

अनुवाद—श्रीभगवान् ने अपने श्याम वर्ण के शरीर पर पीताम्बर धारण किया था। ऐसा लग रहा था, जैसे नीलकमल आमूलचूल अपने पीले पराग से परिपूर्ण हो गया हो ॥ ३ ॥

अपि च—श्यामलेति। किम्भूतं हरिम्? श्यामलं मृदुलं कलेवरमण्डलं यस्य। पुनः किम्भूतम्? अधिगते गौरे दुकूले येन। किमिव? नीलनलिनमिव। पीतं यत्पराग-पटलं तस्य भरस्तेन वलयितं मूलं यस्य। अनेन गौराङ्ग्यास्तव कृष्णेन लतावेष्टिता-लिङ्गनविशेषे काप्यभिख्या भविष्यतीति प्रोत्साहनम्। तल्लक्षणं यथा—'प्रियमनुकृत-वल्लीविभ्रमा वेष्टयन्ती द्रुममिव सरलाङ्गी मन्दसीत्कारदीर्घम्। वदनमुदितखेलाक्रन्दमा-चुम्बनार्थं नमयति विनताङ्गी यल्लतावेष्टितं तत्' इति ॥ ३ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् का श्रीविग्रह श्याम वर्ण का था और उस पर धारण किया गया पीत वर्ण का पिताम्बर इस तरह से सुशोभित हो रहा था जैसे नीलकमल अपने पीले पराग से आमूलचूल परिपूर्ण हो गया है। इससे इस बात की भी सूचना श्रीराधा को दी गयी कि श्रीभगवान् के श्याम वर्ण के वक्ष:स्थल पर विद्यमान तुम गौराङ्गी की शोभा अत्यधिक होगी। इस पद्य में श्रीराधा को सखी ने विपरीत रति करने के लिए भी प्रोत्साहित किया है ॥ ३ ॥

तरलदृगञ्चलचलनमनोहरवदनजनितरतिरागम्।
स्फुटकमलोदरखेलितखञ्जनयुगमिव शरदि तडागम् ॥ हरि० ॥४॥

अनुवाद—चञ्चल नेत्रों के कोर चलाने के कारण मनोहर मुखड़े को देखकर श्रीराधा में रति के राग को उत्पन्न करने वाले श्रीभगवान् का मुखड़ा ऐसा लग रहा है जैसे शरत् काल में तड़ाग के भीतर खिले हुए कमल पर खञ्जरीट पक्षी खेल रहे हों ॥ ४ ॥

अपि च—तरलेति। किम्भूतं हरिम्? तरलदृगञ्चलचलनेन मनोहरं यद्वदनं तेन जनितो रतिरागो येन। अनेन कान्ता दृष्टिरुक्ता। यथा—'आपिबन्तीव दृश्यं या सा विकाशातिनिर्मला। सभ्रूक्षेपकटाक्षा च कान्ता मन्मथवर्धिनी'। कमिव? तडागमिव। किम्भूतं तडागम्? शरदि स्फुटे विकसिते कमलोदरे खेलितं खञ्जनयुगं यत्र। शरत्काले

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खञ्जनवर्णनमुचितमेव । पद्मेऽपि खञ्जनं मिलत्येव । तदुक्तम्—'अब्जेषु गोषु गजवाजि-महोरगेषु राज्यप्रदः कुशलदः शुचिशाद्वलेषु' । अत्र 'कमलोदर'ग्रहणेन पद्मासनं नाम रतिविशेषः सूचितः । यथा—'जङ्घायुगलस्य विपर्ययतः पद्मासनमुक्तमिदं युवतेः' ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—निकुञ्ज में प्रवेश की हुई श्रीराधा को देखकर श्रीभगवान् के नेत्रयुगल चञ्चल ही उठे। उससे श्रीभगवान् का मुखड़ा अत्यन्त मनोहर लगने लगा था। वे मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे। इस तरह से श्रीभगवान् के मनोहर मुखड़े को देख-कर श्रीराधाजी के मन में रति करने की इच्छा उत्पन्न हो गयी। उस समय मन्दहास्य मुक्त मनोहर मुखड़ा विकसित कमल के समान मनोहर लग रहा था। उनके चञ्चल दोनों नेत्र कमल पर क्रीड़ा करते हुए दो खञ्जरीट पक्षी के समान लग रहे थे। श्रीराधाजी को भी देखकर श्रीभगवान् में कोई विकार नहीं आया। अतएव यहाँ उनकी उपमा शरत्कालीन तड़ाग से दी गयी है ॥ ४ ॥

वदनकमलपरिशीलनमिलितमिहिरसमकुण्डलशोभम् ।
स्मितरुचिरुचिरसमुल्लसिताधरपल्लवकृतरतिलोभम् ॥ हरि० ॥५॥

अनुवाद—श्रीभगवान् के कानों में लगे कुण्डल-द्वय ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो श्रीभगवान् के मुखकमल का परिशीलन करने के लिए दो सूर्य मिल रहे हों। मन्द मुसकान की कान्ति से मनोहर तथा उत्कण्ठित अधर पल्लव के द्वारा श्रीराधा की सुरतेच्छा को उत्पन्न करने वाले श्रीभगवान् हैं ॥ ५ ॥

अपि च—वदनेति । किंलक्षणं हरिम् ? वदनकर्तृकपरिशीलनेन मिलितो यो मिहिरस्तेन समे ये कुण्डले ताभ्यां शोभत इति । अनेन शारीरकसूर्यसमाकर्षणसद्भावर-तान्तः सूचितः । तदेव चिह्नयति—स्मितकान्त्या रुचिरः समुज्ज्वलितो योऽधरपल्लव-स्तेन कृतो रतेर्लोभः सम्भोगतृष्णा येन । रतान्ते किल ताम्बूलादिरागह्रासादिना अधर उज्ज्वलो भवतीति कृतरतिलोभमिति रतिविरतावपि पुना रताय सस्पृहत्वम् । एतदेव शृङ्गारसर्वस्वं यद्रतिविरतावपि न जुगुप्सेति ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् के गालों पर कानों के दोनों कुण्डल लटक रहे थे। उससे लगता था कि मानों उनके मुखकमल का परिशीलन करने के लिए श्रीभगवान् के गालों पर दो सूर्य मिल रहे हों। इस कथन के द्वारा श्रीजयदेव कवि ने रतिकाल को सूचित किया है। रतिकाल के पश्चात् भी श्रीभगवान् मन्द मुसकान कर रहे थे। उसकी कान्ति से श्रीभगवान् का मुखकमल और भी मनोहर तथा श्रीराधा के अधरों का पान करने के लिए उत्सुक-सा प्रतीत होता था। श्रीभगवान् के ऐसे मुखड़े को देखकर श्रीराधा के भी मन में रतिकेलि की इच्छा उत्पन्न हो गयी ॥ ५ ॥

शशिकिरणच्छुरितोदरजलधरसुन्दरसकुसुमकेशम् ।
तिमिरोदितविधुमण्डलनिर्मलमलयजतिलकनिवेशम् ॥ हरि० ॥६॥

अनुवाद—पुष्पों से समलंकृत श्रीभगवान् के काले-काले बाल ऐसे लग रहे थे मानों बादल के भीतर चन्द्रमा छिपा हो। स्निग्ध श्याम वर्ण के मुखमण्डल पर लगा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुआ चन्दन का तिलक ऐसे सुशोभित हो रहा था, जैसे अन्धकार के बीच पूर्णचन्द्र उदित हुआ हो ।। ६ ।।

अपि च—शशिकिरणेति किम्भूतं हरिम् ? शशिकिरणैः कर्बुरितोदरजलधरवत्सुन्दराः सकुसुमाः केशा यस्य । पुनः किम्भूतम् ? तिमिरेऽन्धकारे उदितं यद्विधुमण्डलं तद्वन्निर्मलो यो मलयजतिलकस्य निवेशो यत्र आभ्यां विशेषणाभ्यां शशिकिरणमिलिताभ्रशोभया अनु च सतिमिरनवोदितचन्द्रशोभया च सुरतान्ते त्रस्तधम्मिल्लत्वं स्वेदाम्बुपूरैः किञ्चिन्मृष्टविशेषकत्वं मम भविष्यतीति मानसः प्रोत्साहः सूचितः ।। ६ ।।

भावप्रकाशिका—श्रीराधा-माधव की रतिक्रीड़ा पूर्ण हो गयी थी । श्रीभगवान् के केशों के बीच-बीच में पुष्प लगे हुए थे । उन काले-काले बालों के बीच में विद्यमान उजले-उजले पुष्पों की शोभा ऐसी लग रही थी जैसे काले-काले मेघों के भीतर चन्द्रमा छिपा हो । श्रीभगवान् ने अपने श्याम वर्ण के मुखमण्डल पर चन्दन का तिलक लगा रखा था । उसकी शोभा ऐसी हो रही थी, जैसे अन्धकार के बीच पूर्ण चन्द्रमण्डल उदित हुआ हो । अन्धकार के बीच चन्द्रमा नहीं उदित होता, अतएव यह अभूतोपमा का मनोहर उदाहरण है ।। ६ ।।

विपुलपुलकभरदन्तुरितं रतिकेलिकलाभिरधीरम् ।
मणिगणकिरणसमूहसमुज्ज्वलभूषणसुभगशरीरम् ।। हरि० ।। ७ ।।

अनुवाद—श्रीभगवान् के सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो रहा था । वे रतिकलाओं से चञ्चल हो रहे थे । मणिसमूह की कान्ति से देदीप्यमान होनें के कारण श्रीभगवान् का श्रीविग्रह सुशोभित हो रहा था ।। ७ ।।

अपि च—विपुलेति । किम्भूतं हरिम् ? विपुलपुलकभरैर्दन्तुरितं रोमाञ्चितम् । अपि च—उक्तलक्षणाभी रतिकेलिकलाभिरुपलक्षितम् । अत एव तदर्थमधीरम् । अपि च किम्भूतम् ? मणिगणकिरणसमूहसमुज्ज्वलानि यानि भूषणानि तैः सुभगं शरीरं यस्य । एतेन भविष्यत्सुरतान्ते भूषणपरिग्रहो द्योत्यते । 'सुचिर' इत्यादौ अभिसारिका प्रगल्भा नायिका । 'हारावली' इत्यादि आसर्गान्तं मध्या नायिका । तल्लक्षणं—'तुल्यलज्जास्मरा मध्या मोहान्तसुरतक्षमा' ।। ७ ।।

भावप्रकाशिका—कामक्रीड़ा के पूर्ण हो जाने के पश्चात् भी श्रीराधा के साथ बैठे हुए श्रीभगवान् के सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो रहा था । वे रतिकेलि-कला में उपयोगी चुम्बनादि क्रिया में व्यापृत होने के कारण चञ्चल हो रहे थे । उस समय श्रीभगवान् जिन आभूषणों को धारण किए हुए थे उन आभूषणों में लगी हुई मणियों के किरणसमूह से सभी आभूषण जगमगा रहे थे । उससे उनका शरीर और भी मनोहर लग रहा था ।। ७ ।।

श्रीजयदेवभणितविभवद्विगुणीकृतभूषणभारम् ।
प्रणमत हृदि विनिधाय हरिं सुचिरं सुकृतोदयसारम् ।। हरि० ।।८।।

अनुवाद—हे भगवद्भक्तो ! श्रीजयदेव की कविता के कारण जिनके आभूषणों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शोभा द्विगुण हो गयी है, तथा अपने पुण्योदय के सारस्वरूप श्रीभगवान् को अच्छी तरह से अपने हृदय में स्थापित करके आप लोग उन्हें प्रणाम करें ॥ ८ ॥

अपि च—श्रीजयदेवेति । हे जनाः! हरिं सुचिरं हृदि विनिधाय प्रणमत। किम्भूतं हरिम्? सुकृतोदये सारम्। पुनः किम्भूतम्? श्रीजयदेवभणितो यो विभवः सामर्थ्यं तेन द्विगुणीकृतां भूषणभां शोभां ऋच्छतीति । अथवा—द्विगुणीकृतां भूषणभां रातीति । एतत्कृत्वा उक्तेष्टदो भवतीति । अथवा—श्रीजयदेवभणितेन विभवन्विभुर्भवन्द्विगुणीकृतो भूषणानां भारः समूहो येन । जयदेवभणितं श्रुत्वा भूषणानामनादरोऽभूदित्यर्थः ॥ 'क्रमेण नट्टकेदारश्रीरागस्थानगौडकाः । धोरणी मालवीयश्च वराटी मेघरागकः ॥ मालवश्रीर्देवशाखो गौण्डकृच्चाथ भैरवी । धन्नासिका वसन्तश्च गुर्जरी च मल्लारकः ॥ ललितः सप्तदशमो रागास्तावन्ति च क्रमात् । पदानि तेषु तालाः स्युरितस्तन्नाम कीर्त्यते ॥ आद्यत्रिसप्तदशमद्वादशे द्रुतमण्ठकाः । द्वितीये नवमे चैकादशे चैव त्रयोदशे ॥ पदे पञ्चदशे सप्तदशे रूपक ईरितः । चतुर्थे प्रतितालव्या द्रुतालः पञ्चमे स्मृतः ॥ त्रिपुटः षष्ठाष्टमयोः स्याद् द्रुतप्रतिमण्ठकः । चतुर्दशे षोडशे च भद्रः स्यात्प्रतितालकम् ॥ मध्यमादौ पुनर्मुक्तिः श‍ृङ्गारः साभिलाषयोः । स्त्रीपुंसयोरुत्तमस्य नायकस्योपवर्णनम् ॥ कैशिकीं रीतिमाश्रित्य पदानां स्वस्वनामता । छन्दः स्वेच्छाविरचितं रूपके यत्र दृश्यते । स रागश्रेणिनामायं प्रीतिकृत्कमलापतेः ॥' इति सानन्दगोविन्दरागश्रेणिकुसुमाभरणनामा द्वाविंशतितमः प्रबन्धः ॥ ८ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीगीतगोविन्द काव्य के इस बाईसवें प्रबन्ध का नाम सानन्दगोविन्दरागश्रेणिकुसुमाभरण है । इस प्रबन्ध के अन्तिम इस आठवें पद्य के द्वारा श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि हे भगवद्भक्त पुरुषो! मुझ श्रीजयदेव कवि की कविता के माध्यम से श्रीभगवान् के आभरणों का महत्त्व बढ़ गया है । उनके आभूषणों की शोभा दुगुनी हो गयी । हम सभी के सम्पूर्ण पुण्यों के उदय का फल यह है कि हम श्रीभगवान् का अपने हृदय में ध्यान करें । उनको अपने हृदय में प्रतिष्ठित करके दीर्घकाल-पर्यन्त श्रीभगवान् को प्रणाम करते रहें; यही हम सभी का सबसे बड़ा कर्तव्य है ॥ ८ ॥

अतिक्रम्यापाङ्गं श्रवणपथपर्यन्तगमन-
प्रयासेनेवाक्ष्णोस्तरलतरतारं गमितयोः ।
इदानीं राधायाः प्रियतमसमायातसमये
पपात स्वेदाम्बुप्रसर इव हर्षाश्रुनिकरः ॥ १ ॥

अनुवाद—अब प्रियतम के संगम काल से अपने कटाक्षों का अतिक्रमण करके कानों तक पहुँचने के प्रयास में चञ्चल बने नेत्रों से पसीने के प्रसार के समान आनन्द के आँसू निकल पड़े ॥ १ ॥

इदानीं राधाया अपि सात्त्विकभावोत्पत्तिं दर्शयति—अतिक्रम्येति । इदानीं राधाया अक्ष्णोर्हर्षाश्रुनिकरः पपात । क्व? प्रियतमसमायातसमये प्रियतमस्य समायातं समागमस्तस्य समये काले । क इव? अपाङ्गं नेत्रप्रान्तमतिक्रम्य श्रवणपथपर्यन्तगमन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रयासेन स्वेदाम्बुपूर इव । किम्भूतयोर्नेत्रयोः ? प्रियदर्शनाकाङ्क्षया अतिशयेन चञ्चलत्वं प्रापितयोः । अत्र सात्त्विकभावान्तरित उपमालङ्कारः । शिखरिणी वृत्तम् ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—दीर्घकालीन विप्रयोग के पश्चात् श्रीराधा-माधव का जब मिलन हुआ, उस समय श्रीराधा में सात्त्विक भाव आविष्कृत हो गये । उनकी आँखों से आनन्द के आँसुओं का समूह निकल पड़ा । श्रीराधा की बड़ी-बड़ी आँखों से निकलते हुए आँसुओं का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि श्रीराधा की आँखों ने सोचा कि हम अपाङ्गों (कटाक्षपातों) का अतिक्रमण करके कानों तक पहुँच जायें । इसके लिए प्रयास किया उन सबों ने । जिस तरह दूर तक पहुँचने का प्रयास करने वाला व्यक्ति पसीने-पसीने हो जाता है, उसी प्रकार से मानों वे चलने के कारण थकी आँखों को पसीना हो गया और उन आँखों से निकलते हुए आनन्दाश्रु पसीने के समान टपक पड़े ।

इस श्लोक में उपमालङ्कार और शिखरिणी वृत्त है ॥ १ ॥

भजन्त्यास्तल्पान्तं कृतकपटकण्डूतिपिहित-
स्मितं याते गेहाद्बहिरवहितालीपरिजने ।
प्रियास्यं पश्यन्त्याः स्मरपरवशाकूतसुभगं
सलज्जा लज्जापि व्यगमदिव दूरं मृगदृशः ॥ २ ॥

अनुवाद—शय्या के सन्निकट पहुँची हुई श्रीराधा को देखकर सावधान सखियाँ बहाना बनाकर मुसकुराती हुई निकुञ्ज गृह से जब बाहर निकल गयीं तो कामभावना से मनोहर प्रियतम के मुख को देखने वाली श्रीराधा की लज्जा भी लज्जित होकर उनसे दूर चली गयी ॥ २ ॥

इदानीं मिलितायां तस्यां सखीकृत्यमाह—भजन्त्या इति । मृगदृशो राधाया लज्जापि अतिदूरं व्यगमत् । किम्भूता लज्जा ? सलज्जा लज्जासहिता । किम्भूतायाः ? प्रियास्यं पश्यन्त्याः । किम्भूतं प्रियास्यम् ? स्मरपरवशं यदाकूतमभिप्रायस्तेन सुभगं सुन्दरम् । पुनः किम्भूतायाः ? तस्यान्तं तल्पसमीपं भजन्त्या आश्रयन्त्याः । क्व सति ? अवहितालीपरिजने अवहितः सावधानो यः सखीलक्षणः परिजनस्तस्मिन्गेहान्निकुञ्जा-न्निर्याते सति । कथं यथा स्यात्तथा ? कृता या कपटकण्डूतिस्तया पिहितमाच्छादितं स्मितं यथा स्यात्तथा । शिखरिणी वृत्तम् । अव्यङ्ग्यो भावो रसवदलङ्कारता ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधाजी उस लता-निकुञ्ज में प्रवेश करके शय्या के पास पहुँचीं तो उनकी सावधान सखियों ने समझ लिया कि हमलोगों के रहने से श्रीराधा-माधव के मधुर मिलन में व्यवधान पड़ रहा है । विभिन्न प्रकार का बहाना बनाकर अपने कानों आदि को खुजलाती हुई तथा मुस्कुराती हुई वे सब उस लतानिकुञ्ज से बाहर चली गयीं । श्रीराधाजी ने भी जब काम परतन्त्रता के अभिप्राय से मनोहर बने श्रीकृष्ण के मनोहर मुख को देखा तो उस समय लता भी मानो लज्जित हो गयी । लज्जा नारी है और वह श्रीराधा माधव के मधुर मिलन को देखने में लज्जा का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुभव कर रही थी। और वह भी श्रीराधा से उसी तरह दूर हटकर चली गयी जिस तरह उनकी अन्य सखियाँ। अर्थात् अब श्रीराधा माधव के मिलन में किसी प्रकार का संकोच नहीं रह गया था।

इस श्लोक में रसवद् अलङ्कार तथा शिखरिणी वृत्त हैं॥ २॥

सानन्दं नन्दसूनुर्दिशतु मितपरं सम्मदं मन्दमन्दं
राधामाधाय बाह्वोर्विवरमनु दृढं पीडयन्प्रीतियोगात्।
तुङ्गौ तस्या उरोजावतनु वरतनोर्निर्गतौ मा स्म भूतां
पृष्ठं निर्भिद्य तस्माद्बहिरिति वलितग्रीवमालोकयन्वः॥ ३॥

अनुवाद—धीरे-धीरे श्रीराधा को अपनी भुजाओं के अन्तराल में करके पुनः प्रेमपूर्वक उनका गाढालिङ्गन करते हुए उन्नत उरोज कहीं इनकी पीठ को छेदकर बाहर न निकल जायें, मानो इस भावना से गले को घुमाकर देखते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अन्य सबों को अतिशय आनन्द प्रदान करें॥ ३॥

सानन्दमिति। नन्दसूनुः श्रीगोपालो वो युष्मभ्यं मितपरममेयं सम्मदं दिशतु। कथं यथा स्यात्? सानन्दं यथा स्यात्तथा। किं कुर्वन्? बाह्वोर्विवरमनु राधां मन्दं मन्दमाधाय। 'मन्दं मन्दम्' इति 'मैनां करस्पर्शोऽपि व्याकुलीकुर्यात्' इति तस्याः शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यं व्यज्यते। प्रीतियोगाद्दृढं पीडयन्नालिङ्गयन्। 'दृढं पीडयन्' इत्यनेनानुरागातिशयो व्यज्यते। तेन च तद्गतं विषयत्वं व्यज्यते। पुनः किं कुर्वन्? इति वलितग्रीवं यथा स्यात्तथा आलोकयन्। ते च इतीति किम्? तस्य वरतनोरतनु शीघ्रं यथा स्यात्तथा तुङ्गौ उरोजौ पृष्ठं निर्भिद्य तस्माद्बहिर्निर्गतौ मा स्म भूताम्। अनेनोरोजयोः काठिन्यं तीक्ष्णत्वं च व्यङ्ग्यम्। अथवा—अतनुवरतनोरिति एकपदत्वेन अतनोः कामस्य वरा उत्कृष्टा तनुरिति वेति। अनयैव कामो विश्वजयाय मूर्तिमानित्यर्थः; अत्राद्भुतो रसः। राधामाधायेत्यादिः शृङ्गारः। न चानयोरन्योन्यविरोधः। अन्यपरत्वात्। अद्भुतो वाच्योऽप्यङ्गम्। यदाह—'विवक्षितरसे लब्धप्रतिष्ठे तु विधायिनाम्। वाच्यानामङ्गभावं वा प्राप्तानामुक्तिरच्छला॥' इति। विशेषतस्तु प्रस्तुतपरिपोषकार्यसौ प्रकृतिरमणीयायां तस्यामधिकतरं सौकुमार्यमाविष्करोतीत्युपरम्यते। अलङ्कारसर्वस्वमतेनातिशयोक्तिरलङ्कारः। सम्मददाने सानन्दमौचितीमावहति पुरुषः प्रमदायुक्तः। शृङ्गारः (रसः)। वैदर्भी रीतिः। प्रसादो गुणः॥ ३॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधा माधव का मधुर मिलन हुआ। भगवान् आनन्दित हो गये। उन्होंने धीरे-धीरे शिरीष कुसुम मृद्वी श्रीराधा को अपनी बाहों में भर लिया। इसके पश्चात् आनन्दमग्न होकर उन्होंने श्रीराधा का गाढ आलिङ्गन किया। उस समय श्रीभगवान् अपने कन्धों को झुकाकर श्रीराधा की पीठ की ओर देख रहे थे। मानों वे इसलिए देख रहे थे कि कर्कश तथा उन्नत श्रीराधा के स्तन कहीं उनकी पीठ को छेदकर बाहर न निकल जायें। श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि इस प्रकार के श्रीभगवान् आप सभी पाठकों तथा श्रोताओं को अपरिमित आनन्द प्रदान करें॥ ३॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जयश्रीविन्यस्तैर्महित इव मन्दारकुसुमैः
स्वयं सिन्दूरेण द्विपरणमुदा मुद्रित इव ।
भुजापीडक्रीडाहतकुवलयापीडकरिणः
प्रकीर्णासृग्बिन्दुर्जयति भुजदण्डो मुरजितः ॥ ४ ॥

अनुवाद—अपनी भुजाओं की क्रीड़ा से कुवलयापीड़ नामक हाथी को मार देनें से उसकी रक्तबिन्दुओं से सुशोभित, हाथी के साथ संग्राम के आनन्द रूपी सिन्दूर से समलंकृत तथा विजयलक्ष्मी द्वारा मन्दारपुष्पों से पूजित श्रीभगवान् की भुजाओं की जय हो ॥ ४ ॥

जयश्रीति । मुरजितो भुजदण्डो जयति । मुरं दैत्यविशेषं जितवान्मुरजित्, तस्य मुरजितः कृष्णस्य दण्डाकारो बाहुः सर्वोत्कर्षेण वर्तत इत्यर्थः । सर्वोत्कृष्टत्वेन जगद्वन्द्यत्वमभिव्यञ्जितम् । कीदृशो भुजदण्डः ? प्रकीर्णासृग्बिन्दुः विस्तीर्णा असृजो रुधिरस्य बिन्दवो यत्र स तथा । अत्र हेतुमाह—कीदृशस्य मुरजितः ? भुजापीडेति । भुजापीडस्य भुजदण्डस्य क्रीडया विलासेन हतो व्यापादितः कुवलयापीडाख्यः करी गजो येन स तस्य तथेति । यद्वा—भुजापीडक्रीडया हतश्चासौ कुवलयापीडनामा करी च तस्येति कर्मधारयः । सम्बन्धे षष्ठी । तत्सम्बन्धिप्रकीर्णरुधिरस्य बिन्दवो यस्मिन्भुजदण्डे स तथेति 'क्रीडा'शब्देनानायासो व्यज्यते । 'रुधिरेऽसृग्लोहितास्त्ररक्तक्षतजशोणितम्' इत्यमरः । भुजहतहस्तिरुधिरबिन्दुभुजसम्बन्ध उत्प्रेक्षाबीजमित्युत्प्रेक्षते । कीदृश इव भुजदण्डः ? द्विपरणमुदा द्वाभ्यां नासामुखाभ्यां पिबतीति द्विपो हस्ती कुवलयापीडः तत्सङ्गरसमदेन स्वयमात्मना सिन्दूरेण मुद्रित इवाङ्कित इव । कुवलयापीडकरिसङ्ग्रामे 'साधुरयं मे बाहुः' इति हर्षवशाच्छोणेन सिन्दूराङ्कितो बाहुरिति भावः । रणमुदेति हेत्वर्थे तृतीया । मुद्रित इति तारकादित्वादितच् । पुनरुत्प्रेक्षते—कीदृश इव भुजदण्डः ? जयश्रीविन्यस्तैर्मन्दारकुसुमैर्महित इव । जयलक्ष्म्या प्रक्षिप्तमन्दारकुसुमैः पूजित इव । जयसम्पदि विन्यस्तैरर्थाद्दैवैरिति वा समरजयिन उपरि पुष्पवृष्टिरुचिता । यद्वा—जयश्रिया लक्ष्म्या क्षिप्तैर्मन्दारकुसुमैर्महित उत्सवं प्रापितः । पतिजये सति पत्नी उत्सवं करोतीत्युचितम् । कुसुमरक्तिमार्पकं 'मन्दार'पदमौचितीमावहति । 'मह पूजायाम्' इत्यस्य क्तप्रत्यये महित इति रूपम् । महं प्रापित इत्यर्थे तारकादित्वादितच्प्रत्यय इति वा । शिखरिणी छन्दः । तल्लक्षणं सङ्गीतराजे—'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' । उत्प्रेक्षालङ्कारः । तल्लक्षणं काव्यप्रकाशे (१०।९२)—'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्' इति । अनुप्रासः शब्दालङ्कारः । तल्लक्षणम् (का० प्र० ९।७९)—'वर्णसाम्यमनुप्रासः' इति । पाञ्चाली रीतिः । आरभटी वृत्तिः । वीरो रसः ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् ने मुर नामक दैत्य को परास्त किया था अतएव वे मुरजित् कहलाते हैं । श्रीभगवान् की भुजाओं को सर्वोत्कृष्ट बतलाते हुए कवि उनकी जय-जयकार मनाते हुए कहते हैं कि श्रीभगवान् ने अपनी भुजाओं की माला द्वारा ही कंस के कुवलयापीड नामक हाथी को मार दिया । उस हाथी के मारने से उसके खून के छींटे श्रीभगवान् की भुजाओं पर पड़े । उससे सुशोभित हैं भगवान् की भुजाएँ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुवलयापीड़ नामक हाथी को मारने से श्रीभगवान् को यह सोचकर प्रसन्नता हुई की मेरी भुजाएँ हाथी के साथ संग्राम करने में समर्थ हैं। उनकी इस प्रसन्नता ने ही मानो सिन्दूर का रूप धारण कर लिया, उस सिन्दूर से समलंकृत हैं. भगवान् की भुजाएँ। श्रीभगवान् को जो विजयलक्ष्मी मिली उस विजयलक्ष्मी ने मानो श्रीभगवान् की भुजाओं की पूजा मन्दार पुष्पों से की। उन श्रीभगवान् की भुजाओं की जय हो।

इस श्लोक में शिखरिणी छन्द है, अनुप्रास तथा उत्प्रेक्षालङ्कारों की संसृष्टि है। इस श्लोक में पाञ्चाली रीति, आरभटीवृत्ति तथा वीररस है ॥ ४ ॥

सौन्दर्यैकनिधेरनङ्गललनालावण्यलीलाजुषो
राधाया हृदि पल्वले मनसिजक्रीडैकरङ्गस्थले।
रम्योरोजसरोजखेलनरसित्वादात्मनः ख्यापय-
न्ध्यातुर्मानसराजहंसनिभतां देयान्मुकुन्दो मुदम् ॥ ५ ॥

इति श्रीजयदेवकृतौ श्रीगीतगोविन्दे राधिकामिलने
सानन्ददामोदरो नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

अनुवाद—कामदेव के अद्वितीय क्रीडास्थल के समान सौन्दर्य के प्रधान आकर कामपत्नी रति के समान सौन्दर्य वाली श्रीराधा के हृदय रूपी सरोवर में मनोहर स्तनकमल पर विहार करने में एकाग्रचित्त, अपना ध्यान करने वालों के मानस राज हंसत्व को ख्यापित करने वाले श्रीभगवान् मुकुन्द आपको आनन्द प्रदान करें ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीजयदेवकवि प्रणीत गीतगोविन्द काव्य में सानन्द-
दामोदर नामक ग्यारहवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ॥ ११ ॥

सौन्दर्येति। मुकुन्दो मुदं देयात्। अर्थाद्भक्तेभ्यः। मोचयति क्लेशात्प्राणिन इति मुकुन्दः। किं कुर्वन्? ध्यातुर्नरस्य मानस इव मानसे राजहंससदृशतां कथयन्। कस्मात्? राधाया हृदि पल्वले पल्वल इव पल्वले रम्योरोजसरोजखेलनरसित्वात्। रम्यौ मनोहरौ उरोजावेव सरोजे तत्र खेलनं तत्र रसित्वमेकाग्रभावस्तस्मात्। पल्वले किल सरोजसम्भवः? तत्र हंसेनैव भाव्यमिति रूपकमलङ्कारः। किं विशिष्टे हृदि? मनसिजः कामस्तस्य क्रीडार्थमद्वितीयरङ्गभूमौ। किंविशिष्टाया राधायाः? निधीयत इति सौन्दर्यस्याद्वितीयो निधिः सौन्दर्यैकनिधिस्तद्रूपायाः। पुनः किम्भूतायाः? अनङ्गस्य ललना रतिः तस्या लावण्यं तल्लीलया जुषतीति तस्या रतिरूपाया इत्यर्थः। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः। प्रतिपदं रूपकमलङ्कारः। तल्लक्षणम्—'किञ्चित्साधर्म्यसम्पत्तेस्तुल्यावयवलक्षणम्। स्वैर्विकल्पैर्विरचितं रूपं रूपकमिष्यते' इति। आशीश्चालङ्कारोऽपि ॥ ५ ॥

माद्यद्दन्तिवन्तावलबलदलनोद्दण्डदोर्दण्डपिण्डो-
द्दामस्तेमानधामाभिलषनवमभवद् भ्राजमानोरुकीर्तिः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्याचष्टस्पष्टसृष्टाष्टपदविवरणैः सर्गमेकादशं तं
पृथ्वीनाथः प्रथिम्ना चितपृथुमहिमाः कुम्भकर्णो महेन्द्रः ॥

इति श्रीयवनीपद्मिनीभानोः श्रीमहामहेन्द्रश्रीकुम्भकर्णस्य कृतौ रसिकप्रियायां सानन्ददामोदरो नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में पाठकों तथा श्रोताओं को आशीर्वाद देते हुए श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि समस्त आश्रित प्राणियों को क्लेश से मुक्ति दिलाने वाले श्रीभगवान् आप सबों को आनन्द प्रदान करें। उन श्रीभगवान् की विशेषता बतलाते हुए कवि कहते हैं कि श्रीराधाजी जो सम्पूर्ण सौन्दर्य की एकमात्र आश्रय हैं, तथा कामदेव की पत्नी रति के समान सौन्दर्य-सम्पन्न हैं, उनका वक्षःस्थल कामदेव की अद्वितीय क्रीड़ास्थली है। श्रीराधाजी का वह वक्षःस्थल ही मानो एक सरोवर है। जिस तरह से सरोवर में कमल विकसित होते हैं, उसी तरह से श्रीराधाजी के वक्षःस्थलरूपी तड़ाग में दोनों स्तन ही मनोहर कमल हैं। जिस तरह से सरोवर में कमलों के बीच राजहंस क्रीड़ा करते हैं, उसी तरह श्रीभगवान् भी श्रीराधाजी के वक्षःस्थल पर विकसित मनोहर स्तनरूपी कमलों के बीच क्रीडा करने वाले राजहंस हैं। इस तरह से श्रीभगवान् का जो लोग ध्यान करते हैं उन ध्यान करने वाले पुरुषों के मन में विहार करने वाले मानसरोवर के राजहंस के समान श्रीभगवान् आप सभी को मङ्गल प्रदान करें।

इस श्लोक में रूपक तथा आशीः अलङ्कारों की संसृष्टि है तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीशिवप्रसाद द्विवेदी कृत गीतगोविन्द काव्य में राधिकामिलन के प्रसङ्ग में सानन्ददामोदर नामक ग्यारहवें सर्ग की भावप्रकाशिका व्याख्या पूर्ण हुई ॥ ११ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वादशः सर्गः

(सुप्रीतपीताम्बरः)

गतवति सखीवृन्देऽमन्दत्रपाभरनिर्भर-
स्मरपरवशाकूतस्फीतस्मितस्नपिताधराम् ।
सरसमनसं दृष्ट्वा राधां मुहुर्नवपल्लव-
प्रसवशयने निक्षिप्ताक्षीमुवाच हरिः प्रियाम् ।। १ ।।

अनुवाद---सखी समूह के चले जाने पर अत्यधिक लज्जा के भार से युक्त कामाभिप्राय के कारण स्मित शोभित ओष्ठों वाली अनुराग युक्त मनवाली तथा बार-बार नवपल्लवों से बनी शय्या को देखने वाली प्रिया श्रीराधा से श्रीभगवान् ने कहा ।। १ ।।

मनसि शिवमजेयं चिन्तयित्वाऽप्रमेयं नृपतिमुकुटरत्नं कुम्भकर्णाभिधेयम् ।
वितनुत इह सम्यग्देशमार्गानुमेयं श्रुतिपुटपरिपेयं गीतगोविन्दगेयम् ।।

इदानीं चिरकालकाङ्क्षितराधादर्शनोल्लासिमानसो हरिस्तामाह—गतवतीति । हरिः प्रियां राधामुवाच । किम्भूतां प्रियाम् ? मुहुर्वारंवारं नवपल्लवानां प्रसवोऽथवा नवपल्लवाश्च प्रसवाः कुसुमानि च तेषां शयनं तस्मिन्दत्तदृष्टिम् किं कृत्वा ? सरसं सरागं मनो यस्या एवम्भूतां दृष्ट्वा । पुनः किम्भूताम् ? अमन्दो यस्त्रपाभरस्तेन निर्भरो यः स्मरः तत्परवशं यदाकूतमाशयस्तदनुविद्धं यस्मिन् तेन स्नपितोऽधरो यस्याः सा । क्व सति ? सखीसमूहे गतवति सति । 'स्मरवश' इति वक्तव्ये 'पर'ग्रहणमतिशयेन तदधीनत्वद्योतनाय । हरिणीवृत्तम् । अस्मिन्सर्गे स्वाधीनभर्तृका नायिका वर्णनीया । तल्लक्षणम् (शृ० ति० १।७४) 'यस्या रतिगुणाकृष्टः पतिः पार्श्वं न मुञ्चति । विचित्रविभ्रमासक्ता सा स्यात्स्वाधीनभर्तृका' ।। १ ।।

भावप्रकाशिका---सखियाँ विलासशय्या के सन्निकट निकुञ्ज में आयी हुई श्रीराधा को देखकर तथा श्रीराधा-माधव के मधुर मिलन में अपने को बाधक समझकर विभिन्न प्रकार का बहाना बनाकर जब बाहर चली गयीं तो श्रीभगवान् ने अनुभव किया कि श्रीराधा के मन में अत्यधिक लज्जा का भाव बना हुआ है, अतएव काम परतन्त्र उनके जो अभिप्राय थे उनको अभिव्यक्त करने के लिए वे बोल नहीं रही थीं, अपितु बहुत अधिक मुसकुरा रही थीं । उनके मनोहर ओष्ठ मानों मुसकान से स्नान कर लिये थे । उनका मन अनुराग से युक्त था तथा वे बार-बार नवपल्लवों से निर्मित शय्या को देख रही थीं । इस प्रकार से श्रीराधा की मानसिक स्थिति को देखकर श्रीभगवान् ने उनसे कहा ।

इस श्लोक में हरिणी वृत्त है । इस सर्ग की नायिका श्रीराधा स्वाधीनभर्तृका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नायिका है। शय्या को बार-बार देखने से श्रीराधा की सम्भोग के प्रति इच्छा व्यक्त होती है ॥ १ ॥

विभासरागैकतालीतालाभ्यां गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ २३ ॥

अनुवाद—गीतगोविन्द नामक काव्य के इस २३वें प्रबन्ध को विलासराग तथा एकताली ताल से गाया जाता है।

किंसलयशयनतले कुरु कामिनि ! चरणनलिनविनिवेशम् ।
तव पदपल्लववैरिपराभवमिदमनुभवतु सुवेशम् ॥ १ ॥
क्षणमधुना नारायणमनुगतमनुसर राधिके ! ॥ ध्रुवपदम् ॥

अनुवाद—हे कामिनि राधिके ! अपने चरणकमलों को इस किसलय शय्या पर रखो। तुम्हारे चरण-पल्लवों की वैरिणी यह मनोहर शय्या इस पराभव का अनुभव करे। तुम्हारे दर्शन से प्रहृष्ट तुम मुझ नारायण का अनुगमन करो ॥ १ ॥

तदेव वक्ष्यमाणमाह—किसलयेति। तत्र पूर्वं ध्रुवः। क्षणमिति। हे राधिके ! अधुना मामनुसर। किम्भूतं माम् ? क्षणमनुगतं त्वद्दर्शनोत्सवं प्राप्तम्। अथवा—मामनुसर। किम्भूतं माम् ? क्षणमधुना त्वत्सम्भोगोत्सवमदेनानुगतं व्याप्तम्। अत्र केचन क्षणमधुना नारायणमनुगतमनुसरेति पठन्ति। तत्र 'माम्' इति प्रकरणागतमनूद्य नारायणविशेषणत्वेनोपादेयम्। नारासु अप्सु अयनं यस्य इति कामतापोपशान्त्यै शीतलं मामनुसर। मया सह जलक्रीडां कुर्विति वाक्यार्थः। इति ध्रुवः ॥ अथ पदानि किसलये-त्यादि। हे कामिनि कामाभिकाङ्क्षिणि ! किसलयशयनतले चरणनलिननिवेशं कुरु विन्यासं कुरु। किसलयानि हि नलिनविशेषान्न म्लानिभाञ्जि भवन्तीत्यत्रावयोरनुरूपं रतं भविष्यतीति व्यज्यते। किसलयानि हि पदपल्लवस्पर्धीनीत्युक्तिलेशेन विवृणोति—इदं किसलयशयनं तव पदपल्लववैरिपराभवमनुभवतु। पदपल्लवावेव वैरिणौ ताभ्यां सकाशात्पराभवम्। अथवा—इदं किसलयशयनं तव पदपल्लववैरि स्पर्धाकृत्। अतः पराभवमनुभवतु। किम्भूतं शयनम् ? सुवेशं सुनेपथ्यम्। अत्र तल्पे पदपल्लवन्यासेन करणविशेषः सूचितः ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् ने श्रीराधा से जिन बातों को कहा उन्हीं बातों का वर्णन इस प्रबन्ध में किया जा रहा है। श्रीभगवान् ने कहा प्रिये राधिके ! तुम्हें आयी हुई देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अतएव तुम मेरा अनुगमन करो। क्योंकि मैं नारायण हूँ अर्थात् जलों के आश्रय स्वरूप हूँ। जिस तरह से कोई संतप्त व्यक्ति जलाशय में जलक्रीडा करता है, उसी तरह कामसंतप्ता तुम मेरे साथ रतिकेलि का अनुभव करके जलक्रीडा के समान आनन्दानुभव करो। इससे तुम्हें पूर्ण शान्ति प्राप्त होगी। तुम अपने चरणकमलों को इस पादपल्लवों से बनी शय्या पर रखो, जिससे कि यह सुन्दर शय्या जो तुम्हारे पादपल्लवों से बैर रखती है, वह अपने पराजय का अनुभव करे। कोई वैरी पुरुष अपने बैरी के ऊपर अपने पैरों को उसे पराजित करके ही रखता है ॥ १ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करकमलेन करोमि चरणमहमागमितासि विदूरम् ।
क्षणमुपकुरु शयनोपरि मामिव नूपुरमनुगतिशूरम् ।। क्षण० २ ।।

अनुवाद—राधे तुम दूर तक चलकर आयी हो । मैं अपने हाथों से तुम्हारे चरण कमलों की पूजा करता हूँ । अपने नूपुर के समान अनुसरण करने वाले तुम मेरा भी इस शय्या पर उपकार करो ।। २ ।।

अपि च—करकमलेनेति । हे राधे ! विदूरं बहुदूरं पन्थानमागमितासि । अतः करकमलेन चरणमहं पूजां करोमि । शयनोपरि मां क्षणं नूपुरमिव उपकुरु । यथा नूपुरमुपकरोषि धारयसि तथा मामप्युपकुरु ममाप्युपकारं कुरु । चरणधारणद्वारेण चारमनुलक्ष्य शूरं यथा तव चरणं गच्छति तथैव विक्रान्ति करोति । मामपि अनुसरणे शूरं त्वदनुसरणमेव पराक्रमो यस्य । अथवा—शयनोपरि वर्तमाना त्वं मामुपकुर्विति योजनीयम् ।। २ ।।

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् श्रीराधा से कहते हैं, कि तुम दूर तक चलकर आयी हो, अतएव मैं अपने करकमलों के द्वारा तुम्हारे चरणों की पूजा करता हूँ । जड़ तथा सर्वदा तुम्हारा अनुसरण करने वाले इन अपने पैरों के नूपुरों का जिस तरह से तुम उपकार करती हो उसी प्रकार से तुम इस शय्या पर मेरा भी उपकार करो । मैं भी तुम्हारा उसी प्रकार से अनुसरण करने वाला हूँ, जिस प्रकार यह नूपुर तुम्हारा अनुसरण करता है, उसी तरह से मैं तुम्हारा अनुसरण करने वाला हूँ । फलतः मैं भी तुम्हारे उपकार का पात्र हूँ ।। २ ।।

वदनसुधानिधिगलितममृतमिव रचय वचनमनुकूलम् ।
विरहमिवापनयामि पयोधररोधकमुरसि दुकूलम् ।। क्षण० ।। ३ ।।

अनुवाद—अपने मुखचन्द्र से निस्सृत अमृत के समान अनुकूल बातें करो । हम दोनों के मिलन में बाधक विरह के समान बाधक तुम्हारे स्तनों पर विद्यमान जो वस्त्र है उसे मैं दूर करता हूँ ।। ३ ।।

अपि च—वदनेति । हे राधे ! अनुकूलं रतिजनकं वचनं रचय । किमिव ? वदनं सुधानिधिरिव तस्माद्गलितममृतमिव । तव विरहेण तापिताऽहं कथं वदिष्यामीत्याशङ्क्याह—तत्र परस्परमुपमानोपमेयभावः । दुकूलमिव विरहमपनयामि विरहमिव दुकूलमपनयामि । किम्भूतं दुकूलम् ? उरसि वर्तमानम् । पुनः किम्भूतं दुकूलम् ? पयोधररोधकम् । विरहे हि पयोधरौ व वर्धेते । दुकूलमपि पयोधरावावृत्य तिष्ठति । अथवा—पयोधरो मेघ एव रोधको यस्य विरहस्येति । मेघालोके प्रियः समेत्य विरहं वणद्धीत्युक्तिलेशः ।। ३ ।।

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् कहते हैं कि हे राधे ! तुम्हारा मुख चन्द्रमा के समान है । जिस तरह चन्द्रमा अमृतस्रावी होता है, उसी तरह तुम भी अपने मुख रूपी चन्द्रमा से सुरत क्रीडा के अनुकूल वचन रूपी अमृत का क्षरण करो । जिस तरह से हम दोनों के मिलन में बाधक विरह है, उसी तरह से हम दोनों के साक्षात् मिलन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में बाधक तुम्हारे वक्ष:स्थल पर विद्यमान यह वस्त्र है। अतएव मैं इसे तुम्हारे स्तनों से हटा दे रहा हूँ ताकि हम दोनों के मधुर मिलन में किसी प्रकार की बाधा न रहे। अथवा जिस तरह कामिनी को पयोधरों की वृद्धि में विरह बाधक होता है, उसी तरह से वस्त्र से आवृत पयोधर की भी वृद्धि नहीं होती है। अतएव इस वस्त्र को भी मैं तुम्हारे वक्ष:स्थल के ऊपर से हटा दे रहा हूँ ॥ ३ ॥

प्रियपरिरम्भणरभसवलितमिव पुलकितमतिदुरवापम् ।
मदुरसि कुचकलशं विनिवेशय शोषय मनसिजतापम् ॥ क्षण० ॥ ४ ॥

अनुवाद—हे राधे प्रियतम के आलिङ्गन के उत्साह के कारण हर्षयुक्त के समान, रोमाञ्चित तथा दुष्प्राप्य अपने स्तनकलश को मेरे हृदय पर रखकर मेरे कामजन्य संताप को दूर करो ॥ ४ ॥

अपि च—प्रियेति। हे राधे ! मदुरसि कुचकलशं विनिवेशय। अत एव मनसिजतापं शोषय। कलशे सन्निहिते तापो यात्येव। किम्भूतं कुचकलशम् ? पुलकितं रोमाञ्चितम्। पुनः किम्भूतम् ? अतीव दुःखेनावाप्यते त्वदनुग्रहं विना। पुनः किम्भूतम् ? प्रियपरिरम्भणाय रभसेन औत्सुक्येन वलितं सम्भक्तमिव ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में भगवान् श्रीकृष्ण राधा से कहते है कि तुम्हारी कृपा के विना तुम्हारे कलश के समान शीतल करने वाले स्तन दुष्प्राप्य हैं। जिनमें प्रियतम के आलिङ्गन के उत्साह से मानों रोमाञ्च हो आया है। इस प्रकार के अपने स्तनकलश को मेरे वक्ष:स्थल पर रखकर मेरे कामजन्य सन्ताप को तुम दूर कर दो ॥ ४ ॥

अधरसुधारसमुपनय भामिनि ! जीवय मृतमिव दासम् ।
त्वयि विनिहितमनसं विरहानलदग्धवपुषमविलासम् ॥ क्षण० ॥ ५ ॥

अनुवाद—भामिनि ! तुममें ही मन को लगाये रखने के कारण, विरहाग्नि से दग्ध तथा विलास रहित अतएव मुझ मरे जैसे दास को अधरामृत का पान कराकर जिलाओ ॥ ५ ॥

अपि च—अधरेति। हे भामिनि प्रिये ! चरणपरिचरणपरेऽपि कोपं मुञ्च। मानापनोदाय सम्बोध्यते। हे कोपने ! अधरसुधारसमुपनय अर्पय। अधरवक्त्रसंयोगं कुरुष्वेत्यर्थः। मां दासं त्वदधरामृतपिपासुतया मृतमिव जीवयेत्यर्थः। अमृतपानं हि मृतं जीवयति। दासो हि अनुपेक्षणीयो भवति। किम्भूतं माम् ? त्वयि विनिहितमनसं आरोपितमानसम्। अत एव विरहानलेव दग्धं वपुर्यस्य। अत एव च न विद्यन्ते विलासा यस्य ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीभगवान् कहते हैं कि हे प्रिये राधे ! मेरा मन तुम में ही लगा हुआ है। अतएव विरह की अग्नि से मेरा शरीर दग्ध हो गया है। फलतः तुम्हारे वियोग में मैं मरे जैसा हो गया है। अतएव किसी प्रकार की चेष्टा से रहित हूँ। मैं तुम्हारा दास हूँ। तुम मुझ पर कृपा करके मुझे अपने अधरामृत का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पान करा कर जीवित कर दो। लोक में भी देखा जाता है कि अमृत का पान करके मृत पुरुष भी जीवित हो जाता है ॥ ५ ॥

शशिमुखि ! मुखरय मणिरशनागुणमनुगुणकण्ठनिनादम् ।
श्रुतियुगले पिकरुतविकले मम शमय चिरादवसादम् ॥ क्षण० ॥ ६ ॥

अनुवाद—हे चन्द्रवदने श्रीराधे ! अपनी करधनी को तुम ध्वनित करो तथा उसी के समान अपने कण्ठ से भी ध्वनि करो। ऐसा करके तुम कोकिल की ध्वनि से खिन्न मेरे श्रोत्रयुगल को शान्ति प्रदान करो ॥ ६ ॥

अपि च—शशिमुखीति। हे शशिमुखि ! मणिरशनागुणं मुखरय वाचालं कुरु। किम्भूतं मणिरशनागुणम् ? अनुगुणकण्ठनिनादम्। अनुगुणोऽनुरूपः अर्थादेव त्वदीय-कण्ठस्य निनादो यस्य। अत एव मम श्रुतियुगले चिरात्त्वदसङ्गमाद्वर्तमानमवसादं खेदं शमय। किम्भूते श्रुतियुगले ? तव विरहे पिकरुतेन विकले विकलीकृते। विरहिणो हि पिकरुतं दुःश्रवं भवतीति ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् कहते हैं कि हे श्रीराधे ! तुम्हारा मुख चन्द्रमा के समान आह्लादक है। अतएव मेरे साथ विपरीत रति करती हुई तुम अपने कमर की करधनी को मुखरित करो, तथा उस काल में अपनी करधनी की ध्वनि के ही समान अपने कण्ठ से भी ध्वनि करो। चिरकाल से कोकिल की आवाज सुनते-सुनते मेरे दोनों कान दुःखी हो गये हैं। तुम्हारी करधनी और कण्ठ की मधुर ध्वनि को सुनकर उन्हें शान्ति मिलेगी ॥ ६ ॥

मामतिविफलरुषा विकलीकृतमवलोकितुमधुनेदम् ।
लज्जितमिव नयनं तव विरमति सृजसि वृथा रतिखेदम् ॥ क्षण० ॥ ७ ॥

अनुवाद—तुम्हारे निरर्थक क्रोध के द्वारा विकल बने हुए मुझको देखने के लिए इस समय लज्जित के समान तुम्हारे नेत्र विराम प्राप्त कर रहे हैं, व्यर्थ के रति खेद का तुम त्याग कर दो ॥ ७ ॥

अपि च—मामिति। हे राधे ! इदं तव नयनमधुना अवलोकितुम्। अर्थान्मां लज्जितमिव विरमति। किम्भूतं नयनम् ? मामभिलक्ष्य विफलरुषा निरर्थकरोषेण विकली-कृतम्। अविकलं विकलं कृतमिति विकलीकृतम्। अत एव वृथा रतिखेदं सृजसि। अथवा 'विसृज' इति पाठान्तरम्। अतो वृथा निरर्थकम्। विसृज मुञ्च ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् कहते हैं कि हे राधे तुमने मेरे ऊपर निष्कारण ही क्रोध किया था। मेरा वैसा कोई भी दोष नहीं जैसा तुम समझती हो। किन्तु तुम्हारे इस क्रोध के कारण मैं व्याकुल हो गया था। तुम्हारे इस अत्यधिक क्रोध के कारण मैं घबरा सा गया। किन्तु इस समय तुम्हारे नेत्र मुझको प्रेमपूर्वक देखने के लिए अपने क्रोध का त्याग कर रहे हैं। तुम भी व्यर्थ के रतिजन्य खेद का त्याग कर दो और मेरे ऊपर प्रसन्न होओ ॥ ७ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीजयदेवभणितमिदमनुपदनिगदितमधुरिपुमोदम् ।
जनयतु रसिकजनेषु मनोरमरतिरसभावविनोदम् ।। क्षण० ।। ८ ।।

अनुवाद—अभी-अभी जिसमें श्रीभगवान् के विनोद का वर्णन किया गया है इस प्रकार की श्रीजयदेव कवि की कविता रसिकजनों में मनोरम रति राग को उत्पन्न करे ।। ८ ।।

श्रीजयदेवेति । रसिकजनेषु मनोरमो यो रतिरसो रतिरागस्तस्य भावस्तत्ता स्थैर्यं तस्य विनोदं कौतुकं जनयतु । किम्भूतमिदं श्रीजयदेवभणितम् ? अनुपमो निगदितो मधुरिपोर्मोदो यत्र येन वा तत् । 'पदानां दशकं यत्र ताले वर्णयतो भवेत् । ध्रुवः प्रतिपदं गेयः कविनामाङ्कितात्पदात् ।। गीतालापान्यथाशब्वं प्रतिताले ततः परम् । पाटास्तेनाः स्वराश्चैव शृङ्गारो रस उत्तमः । देवशाखाभिधो रागः प्रबन्धे सम्प्रदृश्यते । श्रीविद्याधर-लीलाख्यः श्रीपतिप्रीतिकारकः' ।। इति मधुरिपुमोदविद्याधरलीला नाम त्रयोविंशः प्रबन्धः ।। ८ ।।

भावप्रकाशिका—श्रीजयदेव कवि प्रणीत गीतगोविन्द काव्य के इस प्रबन्ध का नाम मधुरिपुमोदविद्याधरलीला है । इस प्रबन्ध में श्रीजयदेव कवि ने श्रीभगवान् के प्रमोद का वर्णन किया है । जयदेव कवि कहते हैं कि रसिकों की गोष्ठी में रतिरस की बड़ी ही महत्ता स्वीकार की जाती है । रतिरस का ही दूसरा नाम सम्भोग शृङ्गार है । यह रसराज कहलाता है । इस प्रबन्ध में रतिरस से ही सम्बन्धित श्रीभगवान् का प्रमोद वर्णित है । अतएव यह प्रबन्ध रसिकों में मनोहर रतिरस को उत्पन्न करे ।। ८ ।।

प्रत्यूहः पुलकाङ्कुरेण निबिडाश्लेषे निमेषेण च
क्रीडाकूतविलोकितेऽधरसुधापाने कथाकेलिभिः ।
आनन्दाधिगमेन मन्मथकलायुद्धेऽपि यस्मिन्नभू-
दुद्भूतः स तयोर्बभूव सुरतारम्भः प्रियं भावुकः ।। १ ।।

अनुवाद—जिस कामकला के युद्ध में रोमाञ्च के द्वारा गाढालिङ्गन में बाधा उत्पन्न हुई, क्रीडा में अभिप्रायपूर्वक अवलोकन में पक्ष्मपात के द्वारा बाधा उत्पन्न हुई, अधरसुधा पान में कामकेलि कथा के द्वारा बाधा उत्पन्न हुई तथा आनन्द प्राप्ति के कारण उस कामकला युद्ध में बाधा उत्पन्न हुई इस प्रकार की श्रीराधा-माधव की प्रिय कामक्रीडा प्रारम्भ हुई ।। १ ।।

इदानीं सुरतारम्भं विवर्णयिषुराह—'प्रत्यूह' इति । तयो राधामाधवयोः स चिरं काङ्क्षितः सुरतारम्भ उद्भूतः प्रवृद्धः सन् प्रियम्भावुको बभूव । स कः ? तस्मिन्सुरता-रम्भे निबिडाश्लेषे दृढतरालिङ्गने पुलकाङ्कुरेण रोमाञ्चमात्रेणापि प्रत्यूहोऽभूत् । 'अङ्कुर'ग्रहणं तन्मात्रमपि आलिङ्गनान्तराय इति ज्ञापनार्थम् । आश्लेषारम्भेऽपि सात्त्विको रोमाञ्चोऽभूदिति युज्यते । अपि च—यस्मिन्क्रीडाकूतविलोकितेऽपि निमेषेण प्रत्यूहोऽभूत् । विलोकितं निमेषितमात्रस्याप्यसहमभूत् । अनु च—अङ्गावङ्गान्तरसौन्दर्य-विधूतालोलं नेत्रं नैकत्राप्यवयवे धृतिं बध्नेति व्यज्यते । अधरसुधापाने कामकथाक्रीडन-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन्तरायो जातः, अधरपाने प्रियालापो न सोढः, अतिशयेनाधरं पातुमिच्छोरतिप्रियालापः कोऽपि तस्मादप्यधिकरुचिर इति व्यज्यते। अपि च—कामकलासु युद्ध इव युद्धे करणात्करणान्तरारम्भे आनन्दाधिगमेनापि अन्तरायो यथा कामजननाकाङ्क्षापि शिथिला भवेदिति वाच्यार्थः। कामोत्पत्तौ सञ्जायमानायामत्यमनस्कत्वाय तत्प्रतिबन्धककरणान्तरमारब्धमिति व्यङ्ग्योऽर्थः। अत एव प्रवृद्धत्वमुचितम्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। यथासङ्ख्यमलङ्कारः। सम्भोगाख्यः शृङ्गारो रसः। 'जयमङ्गलतालेन पद्यं शृङ्गारनिर्भरम्। गीताः पाटाः स्वरास्तेना उच्यन्ते यत्र रूपके॥ देवशाखाभिधे रागे सुरतारम्भनामतः। चन्द्रहासप्रबन्धोऽयं प्रबन्धः प्रीतिकृद्धरेः'॥ इति सुरतारम्भचन्द्रहासनामा चतुर्विशः प्रबन्धः॥ १॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीजयदेव कवि श्रीराधा-माधव के कामकेलि का वर्णन कर रहे हैं। इस श्लोक में कवि कह रहे हैं कि चिरकाल से अभिलषित श्रीराधा माधव को प्रिय लगने वाली सुरत क्रीडा प्रारम्भ हुई, जिस सुरत क्रीडा में रोमाञ्च का हो जाना ही गाढालिङ्गन का बाधक बना। अर्थात् पूर्णरूप से आलिङ्गन में बाधा रोमाञ्च के द्वारा हुई। किञ्च कामजन्य आशय विशेष के द्वारा किए जाने वाले अवलोकन में पलकों के गिरने से बाधा उत्पन्न हुई। कामकला सम्बन्धी वार्तालाप के कारण अधरपान में बाधा उत्पन्न हुई तथा आनन्द की प्राप्ति हो जाने के कारण काम कला युद्ध में बाधा उत्पन्न हुई। इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है, सम्भोगशृङ्गार रस है तथा यथासंख्य नामक अलङ्कार है॥ १॥

दोर्भ्यां संयमितः पयोधरभरेणापीडितः पाणिजै-
राविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतटेनाहतः।
हस्तेनानमितः कचेऽधरमधुस्यन्देन सम्मोहितः
कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः॥ २॥

अनुवाद—राधा की बाहुओं से बँधे उसके स्तन के भार से दबे नखक्षत कियें गये, दाँतों से काटे गये अधर वाले, नितम्ब के द्वारा आस्फालित, हाथों से बाल पकड़ कर झुकाये गये तथा अधर मधुधारा से संमोहित प्रियतम श्रीकृष्ण ने अनिर्वचनीय तृप्ति को प्राप्त किया। इस तरह काम की गति अत्यन्त टेढी ही होती है॥ २॥

तदेव विवृणोति—दोर्भ्यामिति। यद्यस्मात्कारणादेतावत्यपि व्यतिकरे कान्तः कृष्णः कामपि वाचामगोचरे वर्तमानां तृप्तिमाप, तत्तस्मादहो कामस्य वामा लोकपथातीता गतिश्चेष्टितम्। अत्र कमितुमिष्ट इति 'कान्त'शब्द औचितीमावहति। यतो दुःखवद्भुवने प्रीतिमापेति। किम्भूतः कान्तः? दोर्भ्यां संयमितो बन्धनं प्रापितः। अपि च—पयोधरभरेणापीडितः आ सामस्त्येन पीडामापितः। अनु च—पाणिजैर्नखैराविद्धः। अनु च—दशनैश्च क्षतमधरपुटं यस्य। तथा श्रोणीतटेनाहतस्ताडितः। अपि च—कचे हस्तेन गृहीत्वानमितः। अपि च—अधरमधुस्यन्देनाधरमधुपानेन निमित्तेन सम्मोहनं प्रापितः। 'अहो' इत्याश्चर्ये। कामस्य वामा गतिः; वामत्वं रसान्तराविर्भावात्। वीररसमाश्रित्य कृतापराधः स क्रमेण संयमनापीडनावेधक्षताहत्यवनमनसम्मोहनानि प्रापितः कामपि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृप्तिमाप। अपि तु—स्थिरोत्साहः सन् कामयुद्धान्न विरराममेति न कामपीत्यर्थः। अतो वामा गतिः। अत्र विरोधः, यस्तु कमितुमिष्टः तस्मिन्कथं संयमनादयो योज्यन्ते? संयमनादिभिश्च शृङ्गारानुभावेष्वालिङ्गनादिषु द्योतितेषु कामपि निरतिशयां प्रीतिमापेति विरोधपरिहारः। अथवा—'कामस्य वामा' इति वामेव गतिः वामाऽनिष्टेव गतिः। यदेवं व्यतिकरेऽप्युद्रिक्तो भवति। शार्दूलविक्रीडितम्। अत्र वाक्यार्थस्य प्राधान्याद्रसस्य च सङ्कीर्णत्वेनाङ्गत्वाद्रसवदलङ्कारता॥ 'विजयानन्दतालेन गौडीरागे विरच्यते। पद्यं पाटाः स्वरास्तेना लीला नायकसम्भवाः॥ शृङ्गारकैशिकी रीतिः कामतृप्तिपुरःसरः। कामिनीहासनामायं प्रबन्धः परिकीर्तितः'॥ इति कामतृप्तिकामिनीहासनामा पञ्चविंशतितमः प्रबन्धः॥ २॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीजयदेव कवि श्रीराधा द्वारा किये जाने वाली विपरीत रति का वर्णन कर रहे हैं। श्रीमाधव ने मानो श्रीराधा का कामापराध किया था, अतएव श्रीराधा एवं माधव का काम युद्ध प्रारम्भ हुआ। युद्ध में जो बलवान् होता है, वह अपने वैरी को पटक कर उसके ऊपर चढ़ जाता है तथा अपने वैरी अपराधी को अनेक प्रकार से दण्डित करता है। श्रीराधा भी इस कामयुद्ध में श्रीकृष्ण के ऊपर चढ़ गयीं और श्रीकृष्ण को मानो विपरीत रति के माध्यम से अनेक प्रकार से दण्डित किया। उन्होंने अपनी भुजाओं के बन्ध से श्रीकृष्ण को बाँध दिया, अपने भारी स्तनों के भार से श्रीकृष्ण को दबाया, अपने कोमल नखरूपी अस्त्रों के द्वारा उनकी क्षति की, अर्थात् नखक्षत किया, दाँतों से श्रीकृष्ण के ओठों को काट लिया। श्रीराधा ने अपने नितम्बों के द्वारा श्रीकृष्ण को बार-बार प्रताड़ित किया तथा अपने दोनों हाथों से श्रीकृष्ण के बालों को पकड़ कर अपनी ओर झुका लिया, पुनः अपने ओठों की मदिरा का पान कराकर श्रीकृष्ण को बेहोश कर दिया। किन्तु श्रीराधा की इन क्रियाओं से प्रियतम श्रीकृष्ण को ऐसी तुष्टि मिली कि उसका वर्णन भी नहीं किया जा सकता है। काम ऐसा पदार्थ ही है कि उसकी गति ही विपरीत होती है।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा रसवदलङ्कार हैं। गीतगोविन्द के रसिकप्रिया नामक व्याख्याकार इस श्लोक को कामिनीहास नामक पच्चीसवाँ प्रबन्ध तथा इससे पहले वाले श्लोक को इस काव्य का चन्द्रहास नामक चौबीसवाँ प्रबन्ध माना है। और अपने कथन की पुष्टि में प्रमाणों को भी उपन्यस्त किया है। किन्तु इन दोनों प्रबन्धों की चर्चा मूलग्रन्थ में नहीं की गयी है॥ २॥

वामाङ्गे रतिकेलिसङ्कुलरणारम्भे तथा साहस-
प्रायं कान्तजयाय किञ्चिदुपरि प्रारम्भि यत्सम्भ्रमात्।
निष्पन्दा जघनस्थली शिथिलिता दोर्वल्लिरुत्कम्पितं
वक्षो मीलितमक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिध्यति॥ ३॥

अनुवाद—रतिकेलि से परिपूर्ण युद्ध (कामक्रीडा) के प्रारम्भ होने पर वामाङ्ग में वर्तमान राधा ने कामयुद्धाभिनिवेश के कारण अपने प्रियतम पर विजय प्राप्त करने के लिए द्वितीय श्लोक में उक्त जो कुछ भी करना शुरू किया था,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उससे उनकी जङ्घाएँ निश्चेष्ट हो गयीं, भुजाएँ शिथिल हो गयीं, हृदय जोर से काँपने लगा और आँखें बन्द हो गयीं, स्त्रियों का पराक्रमाभिलाष कैसे सफल हो सकता है ।। ३ ।।

यदुक्तं तदेव वीरसंवलितं शृङ्गारं विवृण्वन्नाह—वामाङ्ग इति । अयं श्लोकः पूर्ववाक्यशेषत्वेन योजनीयः । तदेतयन्वयः । रतिकेलिसङ्कुलरणारम्भे वामाङ्गे वर्तमानया राधया सम्भ्रमात्स्मरसमराभिनिवेशात्संयमनादिभ्य उपरि कान्तजयाय यत्किञ्चित्समर-सम्पल्लम्पटभटयोग्यसाहसप्रायं बालाजनायोग्यं प्रारम्भि येन जघनस्थली निष्पन्दा इति चलितुमशक्तिः । अपि च दोर्वल्लिः शिथिलिता इति प्रहाराक्षमता । अपि च, वक्ष उत्कम्पितं हृदि कम्पो जातः । अपि च—अक्षि मीलितं दर्शनेऽशक्तं जातम् । अत्रार्थे वृद्धसम्मतिमाह—स्त्रीणामबलानां पौरुषरसो वीररसः कुतः सिध्यति । अपि तु न कुतोऽपि । केलौ वामाङ्गे ललनाया दक्षिणाङ्गस्थपुंसः भानुनाडीसम्बन्धात्सुरतान्तकारी कामोद्भवो भवतीति वात्स्यायनमतवेदिनां मतम् । तस्मिश्च ललनानामेवं चेष्टाः प्रसिद्धाः । अथवा—रतारम्भादुपरि इति योजना । इदमेव वाक्यं निरपेक्षं व्याख्येयम् । अत्र दोष्णो-र्वल्लित्वेन विशेषणं शैथिल्ये औचितीमावहति । अत्र 'विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः' । (का० प्र० १०।१०७) इति विशेषोक्तिरलङ्कारः । सम्भोगाख्यः शृङ्गारो रसः । कुतः सिध्यतीत्यनेन समरसकरणं व्यज्यते । गीत्यादि प्रसिद्धम् । 'जयश्रीसंज्ञतालेन पद्यं पाटाः स्वरास्तथा । स्तेनाश्च यत्र बध्यन्ते सम्भोगे रस उत्तमे ।। रागे कर्पटबङ्गाले स पौरुषरसात्परः । प्रेम्णा विलासनामायं प्रबन्धो माधवप्रियः' ।। इति पौरुषरसप्रेम-विलासनामा षड्विंशः प्रबन्धः ।। ३ ।।

भावप्रकाशिका—रसिकप्रियाकार ने इस श्लोक को गीतगोविन्द काव्य का छब्बीसवाँ प्रबन्ध माना है । इस श्लोक में कवि ने द्वितीय श्लोक में उक्त अर्थ को ही वीररस संवलित शृङ्गार रस का एक उदाहरण माना है । वे कहते हैं कि श्रीराधा माधव का जो रतिकेलि से व्याप्त युद्ध (कामक्रीड़ा) प्रारम्भ हुआ उसमें वामाङ्ग में रहने वाली श्रीराधा ने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण पर विजय प्राप्त करने के लिए मानो विपरीत रति प्रारम्भ की । श्रीराधा द्वारा की जाने वाली विपरीत रति का वर्णन इससे पहले के (द्वितीय) श्लोक में किया जा चुका है । इस कार्य को श्रीराधा ने अत्यन्त उत्साहपूर्वक प्रारम्भ किया था । उनके द्वारा किया जाने वाला यह कार्य साहसपूर्ण था, किन्तु परिणाम उनके पक्ष में नहीं हुआ । कामक्रीडा के अन्त में वे थक चुकी थीं, उनकी जंघाएँ निश्चेष्ट हो गयी थीं, भुजाएँ शिथिल हो गयी थीं, श्वास की गति तीव्र होने से हृदय ऊपर की ओर उछल रहा था तथा आँखें बन्द हो गयी थीं । स्त्रियाँ तो अबला होती हैं । उनके द्वारा इस तरह का पुरुषोपयोगी किया जाने वाला यह कार्य कैसे सिद्ध हो सकता है ?

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित वृत्त, सम्भोगशृङ्गार रस तथा विशेषोक्ति अलङ्कार है । इस प्रबन्ध का नाम रसिक प्रियाकार ने पौरुषरसप्रेमविलास बतलाया है ।। ३ ।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तस्याः पाटलपाणिजाङ्कितमुरो निद्राकषाये दृशौ
निर्धौताधरशोणिमा विलुलितस्रस्तस्रजो मूर्धजाः ।
काञ्चीदाम दरश्लथाञ्चलमिति प्रातर्निखातैर्दृशो-
रेभिः कामशरैस्तदद्भुतमभूत्पत्युर्मनः कीलितम् ।। ४ ।।

अनुवाद—लाल-लाल नखों से अङ्कित श्रीराधा का हृदय, निद्रा से लाल बनी आँखों, जिसकी लालिमा धुल गयी थी ऐसे अधर, जिनकी कुम्हलायी हुई पुष्पमाला गिर गयी थी ऐसे बालों, शिथिल करधनी तथा आँचल काम के पाँच बाण जो कि प्रातः-काल में श्रीभगवान् के नेत्रों में थे, उन सबों को देखकर श्रीभगवान् का मन मानो कीलित हो गया यह आश्चर्य की बात है ।। ४ ।।

इदानीं सम्भोगसन्तुष्ट्याऽऽसर्गसमाप्तेः सम्भोगान्ते लीलामाह—तस्या इति । एभिः पञ्चभिः कामशरैः पत्युः श्रीकृष्णस्य मनः कीलितम् । तदेतदद्भुतमाश्चर्यकारि अभूत् । किम्भूतैः कामशरैः ? इत्यनेन प्रकारेण प्रातर्दृशोर्निखातैः । बाणास्तु दृशोर्लग्नास्तैर्विद्धं मन इत्येतदद्भुतम् । कोऽर्थः ? प्रातः प्रियायामेतानि दृष्ट्वा पुनर्नव इव कामः सञ्जात इत्यर्थः । तान्येव च कामबाणपञ्चकव्याजेन वस्तून्युपदिशति । तस्या राधाया उरो हृदयं पाटला ये पाणिजास्तैरङ्कितं दृष्ट्वा । अनेन पाटलापुष्पं स्मरबाण उक्तः । अपि च—निद्रया कषाये कलुषिते दृशौ दृष्ट्वा । अनेन कमलाख्यः पुष्पबाणोऽभाणि । अपि च—निर्धौतोऽधरशोणिमा । तं दृष्ट्वा । अनेन बन्धुजीवपुष्पं स्मरशरोऽगादि । अपि च विलुलितस्रस्तस्रजो मूर्धजाः । तानपि दृष्ट्वा । स्रस्ता स्रक् येभ्यस्ते तथा । विलुलिताश्च ते स्रस्तस्रजश्च । अनेन मालतीदाम मीनकेतनेषुरुद्दिष्टः । अपि च दरश्लथाञ्चलमीषच्छ्लथप्रान्तं काञ्चीदाम मेखलादाम दृष्ट्वा । अनेन सुवर्णजात्यादिपीतकुसुमैः कुसुमास्त्र-शरो वर्णितः । एतानि दृष्ट्वा पुनः स्मरपरवशो जात इत्यर्थः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । अत्रापि वाक्यस्यान्यपरत्वाद्रसवदलङ्कारता । रसश्चाद्भुतोपबृंहितः शृङ्गार एव । 'यतितालेन तालेन पद्यं पाटस्वरास्तथा । स्तेनास्तदन्त आलापः शृङ्गारः प्रेम-निर्भरः ।। रागो मरुकृतिर्यत्र स प्रबन्धो निगद्यते । कामाद्भुताभिनवता मृगाङ्कलेखा-भिधानतः' ।। इति कामाद्भुताभिनवमृगाङ्कलेखाभिधः सप्तविंशः प्रबन्धः ।। ४ ।।

भावप्रकाशिका—इस श्लोक को रसिकप्रियाकार ने गीतगोविन्द काव्य का सत्ताईसवाँ कामाद्भुताभिनवमृगाङ्कलेखा नामक प्रबन्ध बतलाया है। कामदेव के पाँच बाण हैं तथा वे पुष्पमय हैं यह प्रसिद्धि है। श्रीराधा के अङ्गों में भी श्रीभगवान् ने कामदेव के बाणों को प्रातःकाल में देखा और देखकर वे पुनः कामजन्य विकार से युक्त हो गये। वे काम के कौन-कौन पाँच बाण श्रीराधा के अङ्गों में विद्यमान थे ? इसका वर्णन करते हुए कवि बतलाते हैं कि श्रीभगवान् ने कामक्रीड़ा के समय अपने श्वेत-रक्त कमल के समान नखों से श्रीराधा के वक्षःस्थल पर नखक्षत किया था, यही कामदेव का पलाश पुष्प का बाण था। रात्रि में नहीं सो पाने के कारण निद्रा के आवेग से आँखें लाल हो गयी थीं। इसके द्वारा कमल नामक पुष्प बाण को सूचित किया गया है। चुम्बनादि क्रिया के कारण श्रीराधा के ओठों की लाली धुल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गयी थी, ओठ साफ हो गये थे। इससे बन्धुजीव नामक पुष्पबाण को सूचित किया गया है। रतिकाल में केशों के मर्दित होने के कारण केशों में लगी मालती पुष्पमाला कुम्हलाकर गिर गयी थी। इससे मालती पुष्प नामक कामबाण को उद्दिष्ट किया गया है। श्रीराधा के कमर की करधनी तथा आँचल शिथिल हो गये थे, इससे कामदेव के सुवर्ण चम्पा आदि पीले पुष्पमय बाणों को सूचित किया गया है। इन सबों को श्रीभगवान् ने ज्यों ही देखा त्यों ही श्रीराधा के अङ्गों में विद्यमान कामदेव के पाँचों बाणों ने श्रीभगवान् की आँखों पर ही मानों प्रहार किया, इससे उनका मन कीलित हो गया। प्रहार आँखों पर होने से मन का कीलित हो जाना एक आश्चर्य की बात है और श्रीभगवान् का मन पुनः काम के विकारों से विकृत हो गया।

इस श्लोक में अद्भुतरसोपबृंहित शृङ्गार रस और शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥४॥

व्याकोशः केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेदमोक्षौ कपोलौ
क्लिष्टा बिम्बाधरश्रीः कुचकलशरुचा हारिता हारयष्टिः।
काञ्चीकान्तिर्हताशा स्तनजघनपदं पाणिनाच्छाद्य सद्यः
पश्यन्ती सत्रपा सा तदपि विलुलिता मुग्धकान्तिर्धिनोति ॥ ५ ॥

अनुवाद—श्रीराधा के बाल खुल गये थे, घुंघराले बाल अस्त-व्यस्त थे, गालों पर का पसीना सूख गया था, लाल होठों की शोभा मुरझा गई थी, हार की शोभा को स्तनकलशों की कान्ति ने तिरस्कृत कर दिया था तथा करधनी की शोभा हताश हो गयी थी। इस प्रकार रतिसुख के कारण विशेष रूप से श्रान्त भी राधा ने सद्यः हाथों से स्तन तथा जांघों के स्थानों को अपने हाथ से ढँककर लज्जापूर्वक श्रीकृष्ण को देखती हुई अपनी मनोहर कान्ति के द्वारा श्रीकृष्ण का मनोविनोद कर रही थी ॥५॥

व्याकोश इति। सा मुग्धकान्तिर्यत एव विलुलिता रतिपरिमर्दिता तथापि कृष्णं धिनोति प्रीणयति। किं कुर्वती? सत्रपा सती। सद्यस्तत्कालं स्तनजघनपदं पाणिना आच्छाद्य पश्यन्ती। कथं विलुलितेत्याह—केशपाशः (कबरी) व्याकोशः शिथिलो जातः। अपि च—अलकैश्चूर्णकुन्तलैस्तरलितमितस्ततो गतम्। कपोलौ स्वेदमोक्षौ जातौ। अनु च—बिम्बाधरकान्तिः क्लिष्टा जाता। अनु च हारयष्टिः कुचकलशरुचा हारिता कुतोऽपि नाशिता। अनेन कञ्चुकाभावाद्धारयष्टिः शरीरशोभयैव निगीर्णा। अपि च—काञ्चीकान्तिर्हताशा जाता। इयमपि वस्त्राभावात्तद्देशशोभयैव लुप्ता। निरलङ्करणापि सर्वातिशायिन्या शरीरशोभयैव पत्युर्मनोहारिण्यभूदित्यर्थः। स्रग्धरा-वृत्तम्। 'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्' ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधा कामक्रीड़ा के कारण पूर्णरूप से श्रान्त हो गयी थी। उनके बालों की चोटी खुल गयी थी, घुंघराले बाल मुख पर इधर-उधर लटक रहे थे, गालों पर सूखे पसीने के दाग पड़ गये थे, लाल-लाल ओठों की शोभा मलिन पड़ गयी थी तथा स्तनकलशों की शोभा के सामने स्वर्ण के बने हार एवं करधनी की शोभा फीकी पड़ गयी थी। इस प्रकार रतिकेलि में पूर्णतः श्रान्त श्रीराधा जब प्रातःकाल में जगीं तो उन्होंने अपने हाथों से स्तनों तथा जाँघों के स्थानों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को ढँक लिया, क्योंकि उस समय वे विवस्त्र थी; लज्जा से लाल होकर वे श्रीकृष्ण को देख रही थीं, फिर भी वे अपनी मनोहर शोभा के द्वारा श्रीभगवान् के मन को प्रसन्न कर रही थीं। इस श्लोक में स्रग्धरा वृत्त है ॥ ५ ॥

ईषन्मीलितदृष्टि मुग्धविलसत्सीत्कारधारावशा-
दव्यक्ताकुलकेलिकाकुविकसद्दन्तांशुधौताधरम् ।
शान्तस्तब्धपयोधरं भृशपरिष्वङ्गात्कुरङ्गीदृशो
हर्षोत्कर्षविमुक्तनिःसहतनोर्धन्यो धयत्याननम् ॥ ६ ॥

अनुवाद—मृगनयनी अनेक प्रकार की सुरतक्रीड़ाजन्य आनन्दातिशय के कारण आश्लेष रहित तथा अन्य प्रकार के व्यापार को सह सकने में असमर्थ शरीर वाली श्रीराधा की आँखें बन्द-सी हो रही थीं। गाढ़ आलिङ्गन के कारण रोमांचरहित तथा कठोर दोनों स्तन कुछ झुके हुए थे। रतिकाल में बार-बार सीत्कार करने के कारण अव्यक्त तथा आकुल ध्वनि-विकार के कारण विकसित दाँतों की किरणों से जिसके अधर साफ हो गये थे—इस प्रकार के मुखड़े को कोई पुण्यशाली व्यक्ति ही देख पाता है ॥ ६ ॥

इदानीमन्यापदेशेनात्मानं धन्यमिति ध्वनयति—ईषन्मीलितेति। हर्षोत्कर्षविमुक्त-निःसहतनोः हर्षोत्कर्षेण नानारतजनितानन्दातिशयेन विमुक्ताश्लेषत्वेन निर्व्यापारा निःसहा च कामावेशवशादन्यव्यापारासहा तनुर्यस्याः। एतावता सुरतमनु श्रान्ततनो-र्मृगलोचनाया धन्य एव मुखं धयति पिबति नाकृतपुण्यकर्मा। कथं यथा स्यात्? भृश-परिष्वङ्गाद्दृढालिङ्गनाच्छान्तस्तब्धपयोधरं शान्तौ विपुलकौ स्तब्धौ कठिनौ किञ्चिदा-नतौ पयोधरौ यस्मिन्कर्मणि तद्यथा स्यात्। एतावता सुरतान्ते नितान्तं कान्तं तन्मुखं दृष्ट्वा पुनरालिङ्ग्याधरपाने स्पृहाभवदित्यर्थः। किम्भूतमाननम्? ईषन्मीलितदृष्टि किञ्चिन्मुकुलेति दृष्टी यत्र। किम्भूतमाननम्? मुग्धं मनोहरं यथा स्यात्तथा विलसन्त्यो याः सीत्कृतानां धाराः श्रेणयस्तद्वशादव्यक्ता आकुलाश्च सुरतक्रीडायां याः काकवो ध्वनि-विकारास्तासु विकसन्तो ये दन्तांशवस्तैर्धौतोऽधरो यत्र तत्तथा। कस्मात्? दृढालिङ्गन-वशात्। एतेन वृक्षाधिरूढकमित्यालिङ्गनमुक्तम्। तल्लक्षणम्—'चरणेन चरणमाक्रम्य द्वितीयेनोरुदेशमाक्रमन्ती वेष्टयन्ती च तत्पृष्ठासक्तैकबाहुर्द्वितीयेनांसमवनमयन्ती ईषत्प्रवृ-त्तान्तःश्वसितसीत्कृतकूजिता चुम्बनार्थमधिरोढुमिच्छेदिति वृक्षाधिरूढकम्'। तच्च घटितमिति चुम्बनविशेषः। ईषत्प्रगृह्य निमीलितनयनावाच्छादयन्तीति 'घट्टितं नाम'। एतच्च तदालिङ्गनतोषेण आत्मनि धन्यत्वमारोप्य स्वात्मगतार्थचिन्तनपरं पद्यम्। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। जातिरलङ्कारः। पाञ्चाली रीतिः। मागधी गीतिः। भारती वृत्तिः। स्थितलयं गानम् ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में कवि कहते हैं कि श्रीराधाजी के नेत्र मृग के नेत्र के समान बड़े-बड़े तथा मनोहर थे। श्रीमाधव के साथ रात्रि में अनेक प्रकार की रतिक्रीड़ा करने के कारण उत्पन्न आनन्द प्राप्त कर लेने से सभी प्रकार के व्यापारों से रहित क्योंकि कामावेशों के कारण श्रीराधा का शरीर अन्य प्रकार के व्यापारों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सह सकने में असमर्थ था। रतिकाल में गाढालिङ्गन करने के कारण अब इस समय उनके स्तन रोमांच रहित, कठोर तथा कुछ झुके हुए थे, आँखें बन्द-सी हो रही थीं। रतिकाल में उनके द्वारा वार-वार मनोहर सीत्कार करने के कारण निकलने वाली अव्यक्त तथा आकुल काकु ध्वनि के कारण जिनके ओठ धुल गये थे। इस प्रकार के श्रीराधा के मुख का दर्शन कोई धन्य पुरुष ही पाता है।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द, जाति अलङ्कार, पाञ्चाली रीति, मागधी रीति तथा भारती वृत्ति है ॥ ६ ॥

अथ सहसा सुप्रीतं सुरतान्ते सा नितान्तखिन्नाङ्गी।
राधा जगाद सादरमिदमानन्देन गोविन्दम् ॥ ७ ॥

अनुवाद—इसके पश्चात् सुरतकाल के अन्त में अत्यन्त खिन्न अङ्गों वाली राधा अचानक प्रसन्न श्रीगोविन्द से आदरपूर्वक यह कहने लगी ॥ ७ ॥

अथानन्तरं तयोः परस्परानन्दसन्दोहरूपसुरतावसाने राधा गोविन्दमानन्दयतीत्युत्तर-कृत्यानि प्रति प्रोत्साहयन्ती जगाद—अथ सहसेति। अथ राधा आनन्देनोपलक्षितं गोविन्दमिदं वक्ष्यमाणं सादरं जगाद। किम्भूतं गोविन्दम्? सहसा वेगेन सुप्रीतम्। प्रीतिपरे हि नाथे विज्ञप्तिः सिद्धिमेतीति नीतिविदः। अथ सह हासेन वर्तत इति राधा-विशेषणमानन्देति वचने हेतुः। किंलक्षणा राधा? सम्भोगावसाने नितान्तमतिशयेन खेदं प्राप्तमङ्गं यस्याः सा तथा। इदं पथ्या आर्या छन्दः ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधा-माधव की यह कामकेलि दोनों के लिए आनन्दानन्द-संदोहप्रद था। उस सुरतकेलि के पश्चात् श्रीराधा के अङ्ग अत्यन्त खिन्न हो गये थे। उन्होंने अनुभव किया कि श्रीभगवान् अत्यन्त प्रसन्न हैं और उन्होंने श्रीभगवान् से प्रेम-पूर्वक उन वातों को कहना प्रारम्भ किया जिन वातों का वर्णन अगले प्रबन्ध में किया जाने वाला है ॥ ७ ॥

रामकरीरागयतितालाभ्यां गीयते ॥ प्रबन्धः ॥ २४ ॥

अनुवाद—गीतगोविन्द काव्य का यह चौबीसवाँ प्रवन्ध रामकरीराग तथा यति ताल से गाया जाता है।

विशेष—रसिकप्रिया व्याख्या के अनुसार यह इस काव्य का अट्ठाईसवाँ प्रवन्ध है न कि चौबीसवाँ।

कुरु यदुनन्दन! चन्दनशिशिरतरेण करेण पयोधरे।
मृगमदपत्रकमत्र मनोभवमङ्गलकलशसहोदरे ॥ १ ॥
निजगाद सा यदुनन्दने क्रीडति हृदयानन्दने ॥ ध्रुवपदम् ॥

अनुवाद—जब हृदयानन्दकारी यदुनन्दन क्रीड़ा कर रहे थे, उस समय श्रीराधा ने कहा—हे यदुनन्दन! चन्दन से भी अधिक शीतल अपने हाथों से कामदेव के मङ्गल-कलश के समान इन स्तनों पर आप कस्तूरीपत्रक का निर्माण करें ॥ १ ॥

अत्रान्वयसौकर्यार्थं पूर्वं ध्रुवपदं व्याख्यायते—निजगादेति। सा राधा वक्ष्यमाणं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रोवाच। क्व सति ? यदुनन्दने क्रीडां कुर्वति सति। किम्भूते ? हृदयानन्दकारिणि इति ध्रुवः ।। अथ पदानि। कुरु यद्विति। हे यदुनन्दन ! अत्र स्तनकलशे चन्दनवच्छीतलतरेण करेण कस्तूरिकया पत्रावल्यादि रचय। किम्भूते कुचकलशे ? कामस्य जगज्जयार्थमङ्गलकलशसदृशे। मङ्गलार्थकलशो हि पयःपूर्णो भवति सुनीलाम्रपल्लवैरुपचितश्च। एवमत्र पयोधरस्यौचिती। अनेन मयूरपदकं नाम नखरक्षतं व्यज्यते। तथा चाह वात्स्यायनः—'नान्यत्पटुतरं किञ्चिद्रागस्यास्ति विवर्धनम्। नखदन्तसमुत्थानां कर्मणां गतयो यथा ॥' इति ॥ १ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीभगवान् श्रीराधा के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले थे। वे जब प्रातःकाल में श्रीराधा के साथ क्रीड़ा कर रहे थे, उस समय श्रीराधा ने उनसे कहा—हे यदुनन्दन ! यदुवंश में उत्पन्न होने वाले श्रीभगवन् ! कामदेव के विश्वविजय यात्रा के समय सजाकर रखे गये मङ्गलकलश के समान मनोहर मेरे इन स्तनों के ऊपर आप कस्तूरीपत्र की रचना करे। आपके हाथ चन्दन से भी शीतल हैं। अपने उन्हीं हाथों से कस्तूरीपत्र का आप निर्माण करें ॥ १ ॥

अलिकुलगञ्जनमञ्जनकं रतिनायकसायकमोचने।
त्वदधरचुम्बनलम्बितकज्जल उज्ज्वलय प्रिय ! लोचने। निज० ॥ २ ॥

अनुवाद—हे प्रिय ! कामदेव के बाणों को छोड़ने वाले तथा जिनका काजल तुम्हारे अधरों के चुम्बन के कारण लटक गया है, उन मेरी आँखों में भ्रमरों को भी तिरस्कृत करने वाले अञ्जन की रेखा पुनः स्पष्ट कर दें ॥ २ ॥

अपि च—अलिकुलेति। हे प्रिय ! लोचने पुनर्नूतनकज्जललेखां कुरु। किम्भूतमञ्जनकम् ? भ्रमरसमूहस्य तिरस्कारम्। किम्भूते लोचने ? कामबाणानां मोचने इति कटाक्षविक्षेपैरुपलक्षिते। पुनः किम्भूते ? त्वदधरचुम्बनेन लम्बितं प्रसृतं कज्जलं यत्र। अनेन रागसन्धुक्षणार्थं नयनयोश्चुम्बनमुक्तम् ॥ २ ॥

भावप्रकाशिका—हे प्रियतम ! श्रीकृष्ण ! मेरे कटाक्षपात के द्वारा कामदेव के बाण चलते हैं। रतिकेलि काल में तुम्हारे अधरों द्वारा चुम्बन किये जाने के कारण मेरी इन आँखों में काजल फैल गया है। मेरी इन आँखों में भ्रमरों की भी कालिमा को तिरस्कृत करने वाली काजल की रेखा को पुनः स्पष्ट कर दें ॥ २ ॥

नयनकुरङ्गतरङ्गविकासनिरासकरे श्रुतिमण्डले।
मनसिजपाशविलासधरे शुभवेश ! निवेशय कुण्डले। निज० ॥ ३ ॥

अनुवाद—हे सुन्दर वेशवाले भगवन् ! नेत्ररूपी मृगतरङ्गविकास को तिरस्कृत करने वाले, युवकों के मन को बाँधने के लिए कामदेव के पाश के समान मेरे कानों में कुण्डल पहना दें ॥ ३ ॥

अपि च—नयनेति। शुभो वेशो नेपथ्यविशेषो यस्येति हे शुभवेश ! श्रुतिमण्डले कुण्डले निवेशय। किम्भूते श्रुतिमण्डले ? नयनयोस्तरङ्गा निरीक्षणविशेषा भ्रूक्षेपचयास्त एव कुरङ्गविलासास्तेषां निरासं करोतीति। पुनः किम्भूते ? मनसिजस्य युवमनोबन्धनार्थं पाशशोभाधृति। अनेन नेत्रयोः श्रुतिगामिता उक्ता ॥ ३ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भावप्रकाशिका—श्रीराधा के हृदय को आनन्दित करने वाले क्रीड़ापरायण तथा सुन्दर वेश धारण करने वाले श्रीभगवन् ! आप मेरे कानो में नेत्र रूपी मृग के तरङ्ग का जो विकास है उसको भी तिरस्कृत करने वाले, अर्थात् जिस प्रकार मृग चंचल होते हैं उसी प्रकार मेरे नेत्र भी चंचल हैं; उन नेत्र रूपी मृग के तरङ्ग का जो विकास है, प्रेक्षण-विशेष की जो प्रक्रिया है, उसको भी तिरस्कृत करने वाले युवकों के मन रूपी मृग को बाँधने के लिए कामदेव रूपी बहेलिया के जाल के समान दोनों कुण्डलों को पहना दें ॥ ३ ॥

भ्रमरचयं रचयन्तमुपरि रुचिरं सुचिरं मम सम्मुखे ।
जितकमले विमले परिकर्मय नर्मजनकमलकं मुखे । निज० ॥ ४ ॥

अनुवाद—हे यदुनन्दन ! कमल से भी सुन्दर स्वच्छ तथा प्रसन्न मेरे मुख पर परिहासजनक दीर्घकाल पर्यन्त भ्रमर की शोभा को उत्पन्न करने वाले मनोहर बालों को सजा दें ॥ ४ ॥

अपि च—भ्रमरचयमिति । 'हे यदुनन्दन' इत्यनुषञ्जनीयम् । मम मुखेऽलकं परिकर्मय अलकानां प्रसाधनं कुरु । किंविशिष्टे मुखे ? जितकमले पद्मसदृशे । पुनः किम्भूते ? विमले । पुनः किम्भूते ? प्रसादवति । किम्भूतमलकम् ? नर्मपरिहासवचनजनकम् । अलकभ्रमरपङ्क्त्या मुखं पद्ममित्युत्प्रेक्षितम् । इति उत्प्रेक्षालङ्कारः ॥ ४ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीराधा श्रीभगवान् से कह रही हैं कि हे यदुनन्दन ! मेरा मुख कमल से भी सुन्दर है, अनवद्य तथा स्वच्छ है। इस प्रकार के मेरे मुख पर आप मेरे बालों को संवार दें। मेरे ये घुंघराले बाल परिहास-वचन को उत्पन्न करने वाले हैं तथा मनोहर हैं एवं दीर्घकाल पर्यन्त भ्रमर-समूह की शोभा धारण करने वाले हैं। जिस प्रकार कमल के ऊपर काले-काले भौंरें रहते हैं, उसी प्रकार मेरे मुखकमल के ऊपर काले घुंघराले बालों को आप सँवार दें ॥ ४ ॥

मृगमदरसवलितं ललितं कुरु तिलकमलिकरजनीकरे ।
विहितकलङ्ककलं कमलानन ! विश्रमितश्रमशीकरे । निज० ॥ ५ ॥

अनुवाद—हे कमलवदन भगवन् ! जिसका पसीना सूख गया है, इस तरह के मेरे ललाट रूपी चन्द्रमा के ऊपर मृगलाञ्छन की शोभा धारण करने वाले मनोहर कस्तूरी का तिलक लगा दें ॥ ५ ॥

अपि च—मृगमदेति । हे कमलवदन ! मम अलिकरजनीकरे ललाटचन्द्रमसि ललितं मनोहरं तिलकं कुरु । किम्भूतं तिलकम् ? कस्तूरिकारसेन सम्भक्तम् । किम्भूतम् ? विहिता आरोपिता कलङ्कस्य कला येन । एतेन अलिकमष्टमीचन्द्रेणोपमीयते, कस्तूरीविशेषकं कलङ्केनेत्युपमालङ्कारः किम्भूते मुखे ? विश्रमिताः शान्तिमिताः श्रमजलकणा यत्र । एतेन पुनरुद्दीपनविभावाः सूचिता भवन्तीति ॥ ५ ॥

भावप्रकाशिका—श्रीराधाजी श्रीभगवान् से कहती हैं कि मेरा ललाट अष्टमी कें चन्द्रमा के समान मनोहर है। रतिकाल में उत्पन्न पसीना भी सूख गया है। जिस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकार अष्टमी के चन्द्रमा के ऊपर मृगलाञ्छन सुशोभित होता है, उसी प्रकार आप मेरे विशाल भाल पर मृगलाञ्छन के समान मनोहर कस्तूरी का तिलक लगा दें ॥५॥

मम रुचिरे चिकुरे कुरु मानद ! मनसिजध्वजचामरे ।
रतिगलिते ललिते कुसुमानि शिखण्डिशिखण्डकडामरे । निज० ॥ ६ ॥

अनुवाद—हे मानद ! कामदेव की पताका के चमर के समान तथा मयूर के शिखण्डक से भी मनोहर रतिकाल में बिखरे हुए मेरे मनोहर बालों में फूल सजा दें ॥

अपि च—मम रुचिर इति। हे मानद मानिनीमानखण्डन ! अथ च—हे पूजाप्रद ! मम चिकुरे कुसुमानि कुरु। किम्भूते चिकुरे ? रुचिरे रुचिप्रदे। पुनः किम्भूते ? मनसिजः कामस्तस्य ध्वजः तत्र चामरवच्चामरस्तस्मिन् । पुनः किम्भूते ? रत्या सम्भोगेन लुलिते विशकले। पुनः किम्भूते ? मनोहरे। पुनः किम्भूते ? शिखण्डिनो मयूरस्य शिखण्डकं बर्हभारः तस्य डामरे भयदे, जेतरीत्यर्थः। रासकच्छन्दः ॥ ६ ॥

भावप्रकाशिका—इस पद्य में श्रीराधा श्रीभगवान् को मानद पद से अभिहित करती हैं। श्रीभगवान् मानिनी नायिकाओं के मान का खण्डन करने वाले हैं अतएव वे मानद कहलाते हैं। 'मानं द्यति' यह मानद शब्द की व्युत्पत्ति है। अपने अनुकूल नायिकाओं का वे मान-सम्मान करते हैं, अतएव वे मानद हैं। 'मानं ददाति' यह भी मानद शब्द की व्युत्पत्ति है। वे कहती हैं कि मेरे काले-काले चंचल बाल कामदेव के ध्वज चमर के समान मनोहर हैं तथा अपनी शोभा से मयूरों के बर्हभार को भी तिरस्कृत करने वाले हैं। रतिकाल में ये मेरे बाल खुल गये हैं। मेरे इन मनोहर तथा रुचि उत्पन्न करने वाले बालों में आप पुष्पों को सजा दें॥ ६ ॥

सरसघने जघने मम शम्बरदारणवारणकन्दरे ।
मणिरशनावसनाभरणानि शुभाशय ! वासय सुन्दरे । निज० ॥ ७ ॥

अनुवाद—हे सुन्दर हाथ वाले भगवन् ! आप मेरी सुन्दर कामदेव रूपी हाथी के निवासभूत कन्दरा के समान चिकनी तथा मोटी जाँघों को मणि, करधनी, वस्त्र तथा आभूषण से समलंकृत करें ॥ ७ ॥

अपि च—सरसघन इति। हे शुभाशय शोभनहृदय ! अथ शुभ आ सामस्त्येन शयः करो यस्य। मणिरशनादीनां करसाध्यत्वादयमर्थो युक्तः। मम जघने श्रोण्यां मणिमया रशना च वसनानि च आभरणानि च वासय निवेशय। किंविशिष्टे जघने ? सरसं च तद्घनं च स्निग्धसान्द्रे। पुनः किंविशिष्टे ? शम्बरदारणः कामः स वारण इव तस्य निवासार्थकन्दर इव कन्दरे। पुनः कीदृशे ? सुन्दरे मनोहरे। गजगतीत्यादि। अनुकूलो नायकः। प्रगल्भा नायिका। सम्भोगः शृङ्गारः ॥ ७ ॥

भावप्रकाशिका—रात्रि में रतिकेलि में व्यापृत श्रीराधा विवस्त्र हो गयी थीं। प्रातःकाल जगकर उन्होंने अनुभव किया कि श्रीभगवान् प्रसन्न हैं। उन्होंने श्रीभगवान् से कहा—हे भगवन् ! आपके हाथ और हृदय दोनों मङ्गलमय हैं। आप अपने ही हाथों से मेरी सुन्दर कामदेव रूपी हाथी के निवासस्थानभूत कन्दरा के समान, चिकनी तथा मोटी जाँघों को मणिमय करधनी, वस्त्र तथा आभूषण से अलंकृत करें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रबन्ध के नायक श्रीभगवान् अनुकूल नायक हैं, प्रगल्भा नायिका श्रीराधा हैं तथा इसमें संभोगशृङ्गार रस है ।। ७ ।।

श्रीजयदेववचसि रुचिरे सदयं हृदयं कुरु मण्डने ।
हरिचरणस्मरणामृतनिर्मितकलिकलुषज्वरखण्डने । निज० ।। ८ ।।

अनुवाद—श्रीभगवान् के चरणों का स्मरण रूपी अमृत के द्वारा जिन्होंने कलि के पाप रूपी ज्वर को विनष्ट कर दिया है, उन श्रीजयदेव कवि की वाणी को अलंकृत करने में अपने हृदय को सदय बनायें ।। ८ ।।

अपि च—श्रीजयदेवेति । हे यदुनन्दन ! मण्डने इति मण्डननिमित्तं हृदयं सदयं कुरु, दयापरो भूत्वा मण्डनानि विधेहीत्यर्थः । किंलक्षणे मण्डने ? रुचिरे जयदेवपत्नी-सकाशादुत्कर्षप्रदे । पुनः किंलक्षणे ? श्रीजयदेववचसि विषयभूते । अथवा—'च'शब्द-मध्याहृत्य मण्डने जयदेववचसि च हृदयं सदयं कुर्विति व्याख्येयम् । अन्यानि पदानि उभयविशेषणत्वेन योजनीयानि । किंलक्षणे वचसि ? सहृदयालङ्करणे । जयदेववचसि किंविशिष्टे ? हरिचरणस्मरणमेवामृतं तत्र कृतो यः कलिकलुषज्वरो रोषरूपसन्तापः स एव ज्वरः तस्य खण्डने । हरिचरणस्मरणामृतेन पापखण्डने वचसीत्यर्थः । अथवा—हरिचरणस्मरणामृतेन कृतं पापस्य खण्डनं येन वचसा तस्मिंस्तादृशे ।। ८ ।।

भावप्रकाशिका—श्रीजयदेव कवि इस पद्य में कह रहे हैं कि हे भगवन् ! आप इस मण्डन-क्रिया को सम्पादित करने के लिए अपने हृदय को दया युक्त बनाये । यह मण्डन श्रीजयदेव की पत्नी के सान्निध्य के कारण उत्कर्षप्रद तथा उसका विषय श्रीजयदेव कवि की वाणी है । श्रीजयदेव कवि की यह वाणी श्रीभगवान् के चरणों के स्मरण रूपी अमृत के द्वारा कलिजन्य पाप को विनष्ट करने में समर्थ हैं ।। ८ ।।

रचय कुचयोश्चित्रं पत्रं कुरुष्व कपोलयो-
र्घटय जघने काञ्चीं मुग्धस्रजा कबरीभरम् ।
कलय वलयश्रेणीं पाणौ पदे मणिनूपुरा-
विति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाकरोत् ।। ९ ।।

अनुवाद—हे यदुनन्दन ! मेरे स्तनों पर आप मकरिकापत्र बना दें, दोनों गालों पर चित्रक बना दें, जाँघों को करधनी से सजा दें, मनोहर माला से मेरी चोटी को अलंकृत करें, हाथों में कंगन पहना दें तथा पैरों में मणिनूपुर पहना दें । श्रीराधा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने भी वैसा ही किया ।। ९ ।।

इदानीमष्टपद्युक्तमेव श्लोकेनावतारयति—रचयेति । पीताम्बरः श्रीकृष्ण इति राधया निगदितः प्रीतः सन्यथा निगदितं तथा सर्वमकरोत् । 'अपि'शब्दसमुच्चितं यद्यत्तदभीष्टं तत्तदकरोदित्यपिशब्दार्थः । इतीति किम् ? 'हे यदुनन्दन' इत्यनुषङ्गः । कुचयोः पत्रं पत्रवल्लीं रचय । अनु च कपोलयोर्मकरिकादि चित्रं रचय । जघने श्रोण्यां काञ्चीं मेखलामारोपय । अनु च मुग्धस्रजा मनोहरमालया कबरीभरं कलय बन्धय । अनु च वलयश्रेणीं पाणौ कलय । अनु च पदे मणिमयनूपुरौ कलय । अत्र यथासंख्यम-लङ्कारः । हरिणीवृत्तम् । प्रगल्भा नायिका । तल्लक्षणम् (शृं० ति० १।४२)—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'लब्ध्वा पतिं प्रगल्भा स्यात्समस्तरतकोविदा। आक्रान्तनायका बाढं विराजद्विभ्रमा यथा॥ स्वामिन्मञ्जुरयालकं सतिलकं भालं विलासिन्कुरु प्राणेश! त्रुटितं पयोधरयुगे हारं पुनर्योजयम्। इत्युक्त्वा सुरतावसानसुखिता सम्पूर्णचन्द्राननास्पृष्टा, तेन तथैव जातपुलका प्राप्ता पुनर्मोहनम्॥' दक्षिणो नायकः। 'यो गौरवं भयं प्रेम दाक्षिण्यं पूर्वयोषिति। न मुञ्चत्यन्यरक्तोऽपि ज्ञेयोऽसौ दक्षिणो यथा' (शृं० ति० १।२६)॥ ९॥

भावप्रकाशिका—श्रीजयदेव कवि इस अष्टपदी में उक्त अर्थों का ही इस श्लोक के माध्यम से अनुवाद कर रहे हैं। श्रीराधा ने भगवान् को प्रसन्न जानकर उनसे कहा—हे यदुनन्दन! आप मेरे स्तनों पर मकरिकापत्र का निर्माण कर दें, दोनों कपोलों पर आप कस्तूरी के रस से चित्रक का निर्माण कर दें। मेरी जाँघों को आप करधनी से सजा दें तथा मनोहर माला के द्वारा मेरे बालों की चोटी को सजा दें। हाथों में कंगनों को पहना दें तथा मेरे पैरों में मणिजटित नूपुरों को पहना दें।

इस प्रकार प्रगल्भा नायिका श्रीराधा के द्वारा कहे जाने पर अनुकूल नायक भगवान् श्रीकृष्ण ने उन सारे कार्यों को सम्पादित किया जो-जो श्रीराधा ने कहा।

इस श्लोक में हरिणी वृत्त, यथासंख्य अलंकार, प्रगल्भा नायिका, दक्षिण नायक तथा शृङ्गार रस हैं॥ ९॥

यद्गान्धर्वकलासु कौशलमनुध्यानं च यद्वैष्णवं
यच्छृङ्गारविवेकतत्त्वरचनाकाव्येषु लीलायितम्।
तत्सर्वं जयदेवपण्डितकवेः कृष्णैकतानात्मनः
सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः॥ १०॥

अनुवाद—जो गान्धर्व कला का कौशल है, भगवान् का जो चिन्तन है, जो शृङ्गार रस का तात्त्विक विवेचन है तथा जो काव्य-प्रणयन की लीला है, उन सभी को श्रीकृष्ण भगवान् में एकाग्र बुद्धि वाले श्रीजयदेव पण्डित कवि के गीतगोविन्द नामक काव्य से हीं विद्वान् लोग आनन्दपूर्वक प्राप्त करें॥ १०॥

इदानीं विद्वत्प्रार्थनाव्याजेन आत्मप्रशंसां तनुते—यद्गान्धर्वेति। हे सुधियः! जयदेवपण्डितकवेस्तत्सर्वं गीतगोविन्दतः। अत्र तसिल् सार्वविभक्तिकत्वात्सप्तम्यर्थे उपपत्तिः। गीतगोविन्दे परिशोधयन्तु शुद्धं कुर्वन्तु। अथवा—गीतगोविन्दादेव शुद्धं जानन्तु। अत्र 'यद्यपि संख्यावान्पण्डितः कविः' इति एकार्थपर्यवसायित्वं, तथापि 'विकर्तनस्तमसाम्' इत्यादिवत्पण्डितेष्वपि कविः क्रान्तदर्शीति विशेषणपरं बोद्धव्यम्। तदिति किम्? यद्गान्धर्वकलासु कौशलम्। गान्धर्वो मार्गदेशीवत् तस्य कला अङ्गविन्यासवैचक्षण्यादिकाः तत्र कौशलम्। तत्र गान्धर्वस्य स्वपदात्मकत्वेन मार्गत्वात् (?)। अत्र सम्भवित्वेऽपि केवलदेश्यां गान्धर्वशब्दवृत्तिरुपचारवृत्त्या बोद्धव्येति सुस्थितम्। अनु च यच्च वैष्णवमनुध्यानम्। अनु च चिन्तनम्। अनु च यच्च शृङ्गारस्य विवेकः सम्भोगविप्रलम्भत्वेन पृथग्भावस्तस्य तत्त्वं सम्यक्त्वेन निरूपणम्। तस्य रचनाविशेषवन्ति यानि काव्यानि तेषु यल्लीलायितं विलसितमिति यावत्। एतावता गाने विष्णुभक्तौ शृङ्गाररसनिरूपणे च यदेतस्य काव्यकौशलं तत्सानन्दाः सुधियोऽस्मादेव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रबन्धात्परिशोधयन्तु। किंभूतस्य कवेः ? कृष्णे एकतान एकाग्रचित्त आत्मा स्वरूपं यस्य। तथाविधस्येत्यर्थः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। वैदर्भी रीतिः। आरभटी वृत्तिः॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीजयदेव कवि विद्वानों से प्रार्थना करने के व्याज से आत्मश्लाघा कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि विद्वान् लोग इस गीतगोविन्द नामक काव्य में विद्यमान निम्नांकित वस्तुओं की परीक्षा करें। क्योंकि किसी भी वस्तु की प्रामाणिकता तब तक नहीं मानी जाती है जब तक कि उस वस्तु की परीक्षा विद्वान् लोग न कर लें। जिन वस्तुओं की परीक्षा करने की प्रार्थना श्रीजयदेव कवि कहते हैं वे वस्तुएँ निम्नांकित हैं—(१) गान्धर्वकला की जो कुशलता हो सकती है, उसका समावेश इस काव्य में किया गया है। गान्धर्वविद्या संगीतशास्त्र का एक नाम है। (२) श्रीभगवद्विषयक जो चिन्तन है, उसका समावेश इस ग्रन्थ में किया गया है। (३) जो कुछ भी विप्रलम्भ तथा संभोग नामक भेदों वाले शृङ्गार रस का विवेचन हो सकता है, उसका समावेश इस काव्य में किया गया है तथा (४) शृङ्गाररस-प्रधान काव्य-प्रणयन की जो लीला हो सकती है, उन सभी को श्रीकृष्ण भगवान् में एकाग्र मन वाले कविराज पण्डित श्रीजयदेव कवि ने समावेश किया है। विद्वान् वर्ग आनन्दपूर्वक इन सभी वस्तुओं की परीक्षा इस काव्य में करें अथवा इन सभी वस्तुओं का शुद्ध स्वरूप क्या हो सकता है, उसको विद्वान् लोग इस काव्य के माध्यम से जानें॥ १०॥

श्रीभोजदेवप्रभवस्य रामादेवीसुतश्रीजयदेवकस्य।
पराशरादिप्रियवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु॥ ११॥

अनुवाद—श्रीभोजदेव से उत्पन्न रामा अथवा राधा देवी के पुत्र श्रीजयदेव कवि के द्वारा प्रणीत श्रीगीतगोविन्द नामक काव्य का कवित्व भगवद्भक्त-समूह के कण्ठ में निवास करे॥ ११॥ (इस श्लोक पर रसिकप्रिया टीका उपलब्ध नहीं है।)

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में श्रीजयदेव कवि अपने माता-पिता का नाम बतलाते हैं। श्रीजयदेव कवि के पिता का नाम भोजदेव तथा माता का नाम राधा देवी हैं। इस गीतगोविन्द काव्य के प्रणेता जयदेव कवि कहते हैं कि इस काव्य का कवित्व पराशरादि प्रियवर्ग के गले को समलंकृत करे अर्थात् वे लोग इसका ज्ञान करें॥११॥

साध्वी माध्वीक! चिन्ता न भवति भवतः शर्करे! कर्कशासि
द्राक्षे! द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत! मृतमसि क्षीर! नीरं रसस्ते।
माकन्द! क्रन्द कान्ताधर! धर न तुलां गच्छ यच्छन्ति भावं
यावच्छृङ्गारसारं शुभमिव जयदेवस्य वैदग्ध्यवाचः॥ १२॥

अनुवाद—माध्वीक! तुम्हारी यह चिन्ता अच्छी नहीं है। शर्करे! तुम कर्कशा हो। द्राक्षे! तुम्हें कौन देखेगा? अमृत! तुम तो मरे हुए हो। दुग्ध! तुम्हारा रस तो जल के समान है। हे माकन्द (पके आम)! तुम रोओ। कान्ता के अधर! तुम भी अब शृङ्गार रस के सम्पूर्ण सारस्वरूप कल्याणमय जयदेव कवि की कुशलतापूर्ण वाणी के सदृश नहीं हो सकते हो॥ १२॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इदानीं कविरात्मनः प्रबन्धस्य माधुर्यादिगुणवत्त्वं ख्यापयति—साध्वीति। जयदेवस्य वैदग्ध्यवाचः शुभमिव शुभवत्। यावत्सारं यावत्सारस्य सम्भव इति यावत्सारम्। यत्र-कुत्रापि सारं विद्यते तत्र शृङ्गाररसस्य सारं तत्त्वं ज्ञातुमिच्छति। यथा यत्रकुत्रचिच्छुभं मङ्गलं विद्यते तत्र जगन्मङ्गलचरितानुवर्णनाद्यथा गन्तुमिच्छन्ति तथाह—तर्हि हे माध्वीक! तवेयं चिन्ता साध्वी न भवति। एतत्सदृशं भवामीति चिन्ता न कार्या। कथम्? त्वयि तथासाराभावात्। तदा 'भवतु' इति पाठान्तरम्। अथ भवतीति पाठपक्षे—हे शर्करे! भवती कर्कशासीति योज्यम्। तद्गवेषणं योग्यं (?) त्वयि सारं नास्त्येव। हे द्राक्षे! त्वं मा भैः। त्वां के वा द्रक्ष्यन्ति? न केऽपीत्यर्थः! हे अमृत! त्वया नाम्नाऽनेन गर्वो न धार्यः। तदपेक्षया त्वं मृतमसि। हे क्षीररस! रसोऽहमिति त्वं मा गर्वीः। तव रसो नीरमेव। नितरामीर्यंते प्रेर्यंत इति नीरम्। हे माकन्द पक्वसरसफल! त्वं क्रन्द वैकल्यं प्राप्नुहीति किम्? विकलस्य चिन्तामपि ते न करिष्यन्ति। हे कान्ता-धर! त्वं ताभिस्तुलां न धर। अहं त्वत्तुल्यो भवामीति मा सम्प्रतिपद्येथाः। अथ—हे कान्ताधर! वैकल्यं न गच्छेत्यर्थः। यतो जयदेवस्य वैदग्ध्यवाचो यावत्सारं यावद्भिः सारैः सह तुलां गन्तुमिच्छन्ति। तर्हि यावता न तुलयन्ति तावद्भूर्वद्भिरेवमुक्तप्रकारेण स्थातव्यम्। किम्भूता वाचः? शुभं मङ्गलं शृङ्गारसारमिव। अत्र 'मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते' इति न्यायमाश्रित्य प्रबन्धान्ते 'शुभ'-शब्दोपादानम्। अत्र तिरस्कृतोपमालङ्कारः। स्रग्धरा वृत्तम्। आरभटी वृत्तिः। वैदर्भी रीतिः। गुणकीर्तनं नाम नाट्यालङ्कारः। तल्लक्षणं सङ्गीतराजे—'बहूनां गुणिनां यत्र नामार्थजनितैर्गुणैः। एकोऽपविश्यते तत्तु कीर्तितं गुणकीर्तनम्' ॥ १२ ॥

भावप्रकाशिका—इस श्लोक में कवि इस काव्य की माधुर्यगुणयुक्तता को बतला रहे हैं। वे कहते हैं कि जयदेव कवि की जो यह गीतगोविन्द नामक विदग्ध वाणी है, वह शृङ्गार रस के सारस्वरूप है तथा मङ्गलमय है। अतएव इसमें जितने भाव हैं उतने भाव संसार की अन्य मधुर वस्तुएँ नहीं दे सकती हैं।

श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि हे माध्वीक अर्थात् अंगूर से बनी मदिरे! तुम्हारा चिन्ता करना व्यर्थ है, क्योंकि इस गीतगोविन्द के माधुर्य के सामने तुम्हारा माधुर्य व्यर्थ है। हे शर्करे (चीनी)! तुम तो अत्यन्त कर्कश हो, अतएव तुममें भी गीत-गोविन्द का माधुर्य नहीं मिल सकता। इस काव्य के माधुर्य के सामने कोई भी रसिक व्यक्ति द्राक्षा की ओर देख नहीं सकता। वे अमृत से कहते हैं कि तुम्हारा नाम तो अमृत है, किन्तु गीतगोविन्द काव्य के माधुर्य के सामने तुम भी मरे हुए हो। हे क्षीर रस! तुम्हें भी अपने रस पर गर्व नहीं करना चाहिए, क्योंकि तुम्हारा भी रस तो जल ही है। पके हुए आम को भी अपने रसमाधुर्य के लिए रोना ही है, क्योंकि इस काव्यमाधुर्य के सामने उसका भी माधुर्य फीका है। रसिक पुरुष प्रियतमा के अधर को अधिक मधुर मानते हैं, किन्तु जयदेव कवि कहते हैं कि काव्य रस के रसिक पुरुषों की दृष्टि में उसका भी माधुर्य गीतगोविन्द काव्य के समान नहीं है।

इस श्लोक में स्रग्धरा छन्द, आरभटी वृत्ति, वैदर्भी रीति तथा गुणकीर्तन नामक नाट्यालङ्कार हैं ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इत्थं केलिततीर्विहृत्य यमुनाकूले समं राधया
तद्रोमावलिमौक्तिकावलियुगे वेणीभ्रमं बिभ्रति ।
तत्राह्लादिकुचप्रयागफलयोर्लिप्सावतोर्हस्तयो-
र्व्यापाराः पुरुषोत्तमस्य ददतु स्फीतां मुदां सम्पदम् ॥ १३ ॥

इति श्रीजयदेवकृतौ गीतगोविन्दे सुप्रीतपीताम्बरो नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

समाप्तं चेदं काव्यम् ।

अनुवाद—इस प्रकार श्रीराधा के साथ यमुना के तट में अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं का विहार करके, श्रीराधा के रोमावली तथा मौक्तिकावली ये ही दोनों प्रयाग में विद्यमान गङ्गा एवं यमुना की शोभा धारण कर रहे थे। रोमावली काली होने के कारण यमुना की धारा के समान तथा मौक्तिकावली उजली होने के कारण गङ्गा के समान थी। उन दोनों वेणियों के आनन्दप्रद दोनों स्तन ही प्रयाग के फल हैं। उन श्रीराधा के स्तनों को प्राप्त करने की इच्छा वाले भगवान् पुरुषोत्तम के दोनों हाथों के व्यापार समस्त पाठकों और श्रोताओं को आनन्दसम्पत्ति को प्रदान करें ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीजयदेव कवि प्रणीत गीतगोविन्द काव्य में सुप्रीत-
पीताम्बर नामक बारहवाँ सर्ग पूर्ण हुआ ॥ १२ ॥

यह गीतगोविन्द काव्य भी पूर्ण हुआ।

इत्थमिति। पुरुषोत्तमस्य हस्तयोर्व्यापाराः स्फीतां मुदां सम्पदं ददतु। किंविशिष्ट-योर्हस्तयोः? तत्र वेण्यामाह्लादो विधत्ते ययोस्ते आह्लादिनी। कुचावेव प्रयागफले वटफले, आह्लादिनी च ते कुचप्रयागफले च आह्लादिकुचप्रयागफले, तयोर्लिप्सां वाञ्छां बिभ्रत इति लिप्साभृतौ, तयोर्लिप्साभृतोः। किं कृत्वा? इत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण स्वाधीन-भर्तृकया राधया सह यमुनाकूले क्रीडापरम्परा विहृत्येति स्वेच्छया विधानपरम्। क्व सति? तद्रोमावलि मौक्तिकावलियुगे। तस्या रोमावलिर्मौक्तिकानामावलिर्हारस्तयो-र्युग्मे। 'वेण्या' इति गङ्गायमुनयोः सङ्गमस्य भ्रमं विलासं बिभ्रति सति। रोमावलिर्य-मुनयोपमीयते; कृष्णवात्। मौक्तिकावलिश्चोज्ज्वलत्वाद्गङ्गयोपमीयते। तत्सङ्गमे प्रयागो भवत्येव। कुचौ तत्फलाभ्यामुपमीयेते। कुचप्राप्तेः प्रयागफलप्राप्तिरिति रूपकमलङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। स्वाधीनभर्तृका नायिका। तल्लक्षणम्—(शृं० ति० १।७४) 'यस्या रतिगुणाकृष्टः पतिः पार्श्वं न मुञ्चति। विचित्रविभ्रमासक्ता सा स्वाधीनपतिका यथा॥ लिखति कुचयोः पत्रं कण्ठे नियोजयति स्रजं तिलकमलिके कुर्वन्गण्डावुदस्यति कुन्तलान्। इति चटुशतैर्वारंवारं वपुः परितः स्पृशन् विरहविधुरो नास्याः पार्श्वं विमुञ्चति वल्लभः'॥ पाञ्चाली रीतिः। भारती वृत्तिः। पाञ्चाली गीतिः। 'आदिताल-स्तथा पञ्च हरवक्त्रसमुद्भवाः। प्रतिमण्ठश्चतुर्मात्रो मण्ठश्चैवाड्डुतालकः॥ तालो वर्णयति-श्चैव जयमङ्गलसंज्ञितः। विजयानन्दनामा च जयश्रीसंज्ञकः परः॥ प्रतितालं पदानि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्युः पाटास्तदुभयं तथा । मध्ये मध्ये यथाशोभालप्तियुक्तिविशेषवत् । विशेषतो वर्णयतो यदा श्रीसंज्ञिकोऽपि च ।। तेनकाः स्युः पदस्थाने प्रतितालेन वेश्यते । मुक्तिपावाक्षरैर्युक्तैरालापेन पुरस्कृतैः ।। पदान्येवं षोडश वै ताला एकोनविंशतिः । गौडः स्याद्देशतालादिरागः सर्वपदाश्रयः ।। धीरोदात्तगुणैर्युक्तो वर्ण्य उत्तमनायकः । छन्दः स्यात्स्वेच्छया बद्धं समानादिगुणा दृशः' ।। १३ ।।

इति श्रीसुप्रीतपीताम्बरतालश्रेणिनामाऽष्टाविंशः प्रबन्धः ।।

यस्य द्वादशराजकं वितनुते सेवां स्थितं किङ्करं
यस्मिन्द्वादशभानुभानुनिकरो भात्येककालोद्गतः ।
यश्च द्वादशभाःप्रभः प्रकृतिवद्व्याप्यैव लोभं स्थितः
सोऽयं द्वादशसर्गगं विवरणं श्रीकुम्भकर्णो व्यधात् ।।
पदवाक्यप्रमाणाख्यत्रिसरित्सङ्गमश्रिया ।
कुम्भकर्णगिरां योगो न स्यादिष्टार्थदः कथम् ।।
स्वभावगम्भीरतया निसर्गदुर्बोधभावा जयदेववाचः ।
व्याकर्तुमीष्टे यदि ता नरेशः श्रीकुम्भकर्णो न परः कदाचित् ।।
श्रीगीतगोविन्दविचारसूक्तिसुरापगासम्भवतोऽनुमेयम् ।
श्रीकुम्भकर्णेऽखिलराजिभूभृद्राजत्वभार्या अविचार्यमस्ति ।।
रे मूढाः ! किमुपास्यते गुणिगणप्रावीण्यपाटच्चरं
भूभृद्वृन्दमनेककाकुरचनाचातुर्यचाटूक्तिभिः ।
श्रीकुम्भः सकलाभिलाषफलदश्चेत्सेवितुं प्राप्यते
सौरभ्यं यदि मौक्तिके किमपरं श्लाघ्यं भवेद्भूतले ।।
सुवर्णमुक्ताफलनिर्मितेयं सत्सूक्तिमाला सुमनःप्रयुक्ता ।
श्रीकुम्भभूमीपतिनोपयुक्ता श्रीवासुदेवार्पणमस्तु साक्षात् ।।
नाभूवन्कति नाम केऽपि सुधियस्तत्त्वगुरूपासना-
भ्यासासादिततत्त्वतोषजननप्रोल्लासिवाग्विभ्रमाः ।
स्वच्छन्दप्रसरद्वचःसुरसरित्कल्लोललोलोक्तिभिः
स्वाधीनीकृतसर्वतःसहृदयः श्रीकुम्भ एव प्रभुः ।।

इति श्रीसरस्वतीरससमुद्भूतकैरवोद्याननायकेनाभिनवभरताचार्येण मालवाम्भोधिनाथमहीधरेण यवनवरतिमिरकुलसङ्कुलसरङ्गपुरजलधिजलैकचुलुकेनमुनिवरेण प्रागुक्तप्रतीचीदिगाधिपराजगजहठादानदर्शितानन्यसाधारणपौरुषेणमेवपाटसमुद्रसम्भवरोहिणीरमणेन रायगुरुचापगुरुसेलगुरुरामां च परमगुरुवङ्कालगारायां (?) चामुहवनेत्यादिबिरुदराजिविराजमानेन अरिराजमत्तमातङ्गपञ्चाननेन सङ्गीतमीमांसामांसलमतिना प्रत्यर्थिपृथ्वीपतितिमिरततिनिराकरणप्रौढप्रतापमार्तण्डेन वैरिवनितावैधव्यदीक्षावायगुरुणा बलोद्धतराजकदम्बकदम्बोत्पाटनदक्षिणेन बलहीनराजकस्थापनाचार्येण भूमण्डलाखण्डलेन चित्रकूटविभ्रमाभ्युष्टनरेश्वरेण गजनरतुरगाधीशराजत्रितयतोडरमल्लेन वेदमार्गस्थापनचतुराननेन याचककल्पनाकल्पद्रुमेण वसुन्धरोद्धरणादिवराहेण भवानीपतिप्रसादपरि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्तहृष्टशारीरशालिना ऋणत्रय्यपाकरणकारणसकलतीर्थाधिदैवतगयागतयवननिगड-निर्वासनेन त्रिजगतीतापत्रयोन्मूलनमूलहेतुना महेन्द्रमुखाभिनेयगताभिनयप्रपञ्चरचना-करतलकलितामन्त्यकफलवदविकलपथीकृतविश्ववास्तुवस्तुना वसुमतीमण्डलमध्यवर्ति-चापोपकारतोडरमल्लेन नादेनेव मूर्तिमता सूर्यत्रितयवेदितराजचक्रचूडामणिना महाराज्ञी-हृदयसौभाग्यदेवीहृदयनन्दनेन महाराजरणश्रीमोकयोर्विदटीलेन्द्रतनुजन्मना महाराज्ञी-श्रीअपूर्वदेवीहृदयाधिनाथेन ।

महाराजाधिराजमहाराजश्रीकुम्भकर्णमहामहेन्द्रेण विरचितायां रसिकप्रिया-नाम्न्यां श्रीगीतगोविन्दटीकायां द्वादशः सर्गः समाप्तः ॥ १२ ॥

भावप्रकाशिका—यह इस काव्य का अन्तिम श्लोक है। इसमें ग्रन्थ का अन्तिम मङ्गल करते हुए श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि श्रीभगवान् के हाथों के व्यापार आप सभी को अत्यधिक आनन्द देने वाली प्रसन्नता रूपी सम्पत्ति प्रदान करें। श्रीभगवान् ने श्रीराधाजी के साथ मिलकर श्रीयमुना के तट में अनेक प्रकार की कामक्रीडाएँ कीं। इसके पश्चात् श्रीभगवान् ने अनुभव किया कि यह श्रीराधा तो प्रयाग के समान है। जिस प्रकार प्रयाग में यमुना की नीली धारा तथा श्रीगङ्गा की उजली धारा मिलती है, उसी प्रकार श्रीराधा की रोमावली ही नीली-नीली यमुना की धारा के समान है। उसकी उजली-उजली मौक्तिकावली ही श्रीगङ्गा की धारा के समान है। इन दोनों के श्रीराधा में मिलने के कारण श्रीराधा प्रयाग के समान है। प्रयाग तीर्थ में स्नानादि क्रिया सम्पन्न करने वाले पुरुषों को आनन्दप्रद फल की प्राप्ति होती है। श्रीराधा के साथ विहार करने वाले श्रीभगवान् के भी समक्ष आनन्दप्रद श्रीराधा के दो स्तन विद्यमान थे। स्तन रूपी आनन्दप्रद फल को प्राप्त करने की इच्छा से श्रीभगवान् अपने हाथों से जो व्यापार कर रहे हैं, वे व्यापार ही आप समस्त सहृदयों को आनन्द रूपी सम्पत्ति प्रदान करें।

इस प्रबन्ध को रसिकप्रियाकार ने अट्ठाईसवाँ प्रबन्ध माना है, जब कि गीत-गोविन्द में इसे चौबीसवाँ ही प्रबन्ध बतलाया गया है।

इस प्रबन्ध का नाम सुप्रीतपीताम्बर तालश्रेणी बतलाया है। इस श्लोक में साङ्गरूपकालंकार है। इस श्लोक की नायिका श्रीराधा स्वाधीनभर्तृका नायिका हैं और इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित वृत्त है।

इस प्रकार शिवप्रसाद द्विवेदी कृत गीतगोविन्द काव्य के सुप्रीतपीताम्बर नामक बारहवें सर्ग की भावप्रकाशिका व्याख्या पूर्ण हुई ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गीतगोविन्दस्य सर्ग-प्रबन्धनामानि रसिकप्रिया-रसमञ्जर्योरनुसारेण प्रबन्धानां रागतालयोः परिचयात्मकं परिशिष्टम्

सर्गनाम	प्रबन्धनाम	रसिकप्रियायाम्		रसमञ्जर्याम्	
		रागः	तालः	रागः	तालः
१ सामोददामोदरः	१ दशावतारकीर्तिधवलः	मालवगौडः	रूपकः	मालवगौडः	रूपकः
	२ हरिविजयः	गुर्जरी	निस्सारः	गुर्जरी	प्रतिमण्ठः
	३ माधवोत्सवकमलाकरः	वसन्तः	यतिः	वसन्तः	रूपकः
	४ सामोददामोदरभ्रमरपदः	रामकरी	यतिः	रामकरी	रूपकः
२ अक्लेशकेशवः	५ मधुरिपुरत्नकण्ठिका	गुर्जरी	यतिः	गुर्जरी	प्रतिमण्ठः
	६ अक्लेशकुञ्जरतिलकम्	मालवगौडः	एकताली	गौडीमालवः	एकताली
३ मुग्धमधुसूदनः	७ मुग्धमधुसूदनहंसक्रीडनम्	गुर्जरी	यतिः	गुर्जरी	यतिः
४ स्निग्धमधुसूदनः	८ हरिवल्लभाशोकः	कर्णाटः	एकताली	कानर(डी)	एकताली
	९ स्निग्धमधुसूदनरामावलयः	देशाखः	एकताली	देशाखः	एकताली
५ साकाङ्क्षपुण्डरीकाक्षः	१० हरिसमुदयागरुडः	देशी	रूपकः	देशीवराडी	रूपकः
	११ स्वच्छन्दप्रदोषोदयः	गुर्जरी	एकताली	गुर्जरी	एकताली
६ धन्यवैकुण्ठकुङ्कुमः	१२ धन्यवैकुण्ठकुङ्कुमः	गोण्डकरी	रूपकः	गुणकरी	रूपकः
७ नागरनारायणः	१३ स्निग्धमधुसूदनरासावलयः	मालवः	यतिः	गौडीमालवः	प्रतिमण्ठः
	१४ हरिरमितचम्पककेशरः	वसन्तः	यतिः	वसन्तः	एकताली
	१५ हरिरसमन्मथतिलकम्	गुर्जरी	एकताली	गुर्जरी	एकताली
	१६ नारायणमदनायासः	देशवराडी	रूपकः	देशाखः	रूपकः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्गनाम	प्रबन्धनाम	रसिकप्रियायाम्		रसमञ्जर्याम्	
		रागः	तालः	रागः	तालः
८ विलक्ष्यलक्ष्मीपतिः	१७ लक्ष्मीपतिरत्नावली	भैरवी	यतिः	भैरवी	यतिः
९ मुग्धमुकुन्दः	१८ अमन्दमुकुन्दः	गुर्जरी	यतिः	गुर्जरी	यतिः
१० चतुरचतुर्भुजः	१९ चतुरचतुर्भुजरागराजिचन्द्रोद्योतः	देशवराडी	अष्टताली	देशवराडी	अष्टताली
११ सानन्ददामोदरः	२० श्रीहृद्तालराजिजलधरविलसितम्	वसन्त	प्रतिः	वसन्तः	रूपकः
	२१ —	वराडी	रूपकः	वराडी	प्रतिमण्ठः
	२२ सानन्दगोविन्दरागश्रेणिकुसुमाभरणम्	वराडी	यतिः	वराडी	यतिः
१२ सुप्रीतपीताम्बरः	२३ मधुरिपुमोदविद्याधरलीला	विभासः	आदिः	विभासः	आदिः
	२४ सुप्रीतपीताम्बरतालश्रेणिः	रामकरी	यतिः	रामकरी	यतिः

नोट—(१) रसिकप्रियाकार के अनुसार सर्ग १२, प्रबन्ध २३, श्लोक १ का सुरतारम्भचन्द्रहास नामक २४वाँ प्रबन्ध है।
(२) सर्ग १२, प्रबन्ध २३, श्लोक २ का कामतृप्तिकामिनीह्रास नामक २५वाँ प्रबन्ध है।
(३) सर्ग १२, प्रबन्ध २३, श्लोक ३ का पौरुषरसप्रेमविलास नामक २६वाँ प्रबन्ध है।
(४) सर्ग १२, प्रबन्ध २३, श्लोक ४ का कामाद्भुताभिनवभृङ्गाङ्कुलेखा नामक २७वाँ प्रबन्ध है।
(५) सर्ग १२, प्रबन्ध २४ का सुप्रीतपीताम्बरतालश्रेणि नामक २८वाँ प्रबन्ध है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi